JIWAN SAHITYA

1966 G: K: U:

जनवरी, १९६६ [अंक १

जीवन साहित्य

शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व

भारत जैसे देश के लिए जो अपना आर्थिक निर्माण करने में लगा हुआ है, शांति का विशेष महत्व है। गांधीजी और जवाहरलालजी के देश के सामने दूसरा लक्ष्य हो ही क्या सकता है? अगर सारी मानव जाति की बात सोचें, तो शांति का महत्व और भी बढ़ जाता है। हम सच्चाई को आंखों से ओझल नहीं कर सकते कि अब केवल दो देशों के बीच ही लड़ाई नहीं होगी, अब अगर लड़ाई की आग भड़की तो वह सारे संसार को लपेट लेगी।

—लालबहादुर शास्त्री

संपादक
हरिभाऊ उपाध्याय
यशपाल जैन

शुल्क एक प्रति चालीस पैसे

जीवन साहित्य

जनवरी, १९६६

विषय-सूची

ग्राहकों से

जिन सदस्यों का वार्षिक शुल्क समाप्त हो गया है उन्हें 'जीवन-साहित्य' की वी० पी० भेजी जा रही है। उनसे अनुरोध है, वह वी० पी० अवश्य छुड़ाने की कृपा करें।

—व्यवस्थापक

उत्तरप्रदेश, राजस्थान, मध्यप्रदेश, हिमाचलप्रदेश, दिल्ली, बिहार एवं पंजाब की राज्य-सरकारों द्वारा
कालेजों, लाइब्रेरियों तथा उत्तर प्रदेश और मध्यप्रदेश की ग्राम-पंचायतों के लिए स्वीकृत

जीवन साहित्य

● वर्ष २७ : अंक १ ● जनवरी, १९६६

ग्रामदान का प्राण

विनोबा

ग्रामदान की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि जो किया जाय, सब मिलकर किया जाय। मान लीजिये, गांव कोई शादी है। तो, एक शादी हो नहीं सकती। कोई ...च्छा शुभ मुहूर्त देखकर उसी दिन गांव में जितने सारे ...वाह करने हों, एक ही समय किये जायंगे। सभी मिलकर ...से तय करें और गांव के सभी जन मिलकर इन विवाहों का ...र्च उठा लें। प्रत्येक घर पर आठ आना या एक रुपया ...र्च पड़ेगा और जिसके घर विवाह होगा, उसका कुछ भी ...र्च न होगा। लेकिन यह भी सबको मिलकर तय करना ...गा।

गांव के सब लोग मिलकर हिसाब करें कि गांव को ...ालभर में कितना कपड़ा लगता है। उतनी रुई गांव में ...ी जाय और उसका सूत काता जाय। बुनाई तो मुफ्त ही हो जाती है। इससे बाहर से कपड़ा मंगाना न पड़ेगा। ...नाज के बारे में भी ऐसी ही व्यवस्था की जा सकती है। ...सी तरह अन्य अनेक बातें भी हो सकती हैं। लेकिन यह ...ब करते समय देखना यह होगा कि क्या यह सब करने ...लिए गांव के सभी लोग तैयार हैं? यदि सभी लोग ...यार न हों, तो यह बात नहीं हो सकती। मैंने अभी आपको ...ामूहिक विवाह की बात बताई। लेकिन उसे करने के लिए सभी तैयार ही होंगे, यह नहीं कहा जा सकता। यदि सभी तैयार न हों तो उसे भी नहीं करना चाहिए।

सारांश, जो करना है, आप लोगों को ही करना है। मैं तो केवल सलाह देनेवाला आदमी हूं। उसकी सलाह को अमल में लाने-न-लाने का निश्चय भी आप ही करेंगे। गांव के सभी लोग मिलकर तय करेंगे। इस प्रकार प्रगति थोड़ी हो, तो भी चल सकता है। लेकिन वह हो सभी की मदद से, यही मुख्य बात है। ग्राम-निर्माण का अर्थ है, ग्राम का विकास-कार्य। यह गांववालों का अपना काम है। कार्यकर्ता तो केवल सलाह देनेवाले हैं।

प्रश्न : चुनाव से गांव में अनेक गुट बन जायं, तो उन्हें कैसे मिटायेंगे?

उत्तर : हम लोगों ने तय किया है कि चुनाव सर्वानुमति से करवाया जाय, बहुमत से नहीं। ग्राम पंचायतों में गुट हो जाते हैं, इसके लिए यह योजना है। ग्रामदान एक्ट में यह धारा है कि ग्राम-सभा के चुनाव सर्वानुमति से होंगे। यही तो मुख्य बात है। हमें 'पंच बोले परमेश्वर' यह स्थिति पैदा करनी है। इसलिए गुट बनने का भय ही नहीं।

सिवा इसके ग्रामसभा गांव की बड़ी सभा है और उसमें गांव के हर घर से एक-एक व्यक्ति रहेगा। प्रश्न खड़ा

होगा केवल कार्यकारिणी समिति के निर्वाचन का। उसका चुनाव भी सर्वानुमति से होगा।

प्रश्न : कार्यसमिति में एकमत से चुनाव न हो पाये तो क्या करेंगे ?

उत्तर : चिट्ठी डालिये। पुराने जमाने में यही होता था। किसी तरह का मतभेद खड़ा होने पर दोनों मत अलग-अलग कागजों पर लिखकर भगवान के सामने दोनों कागज बन्द करके डाले जाते और फिर किसी छोटे बच्चे को उनमें से एक कागज उठाने को कहा जाता।

फिर, हमें पूछिये तो हम चुनाव को महत्त्व ही नहीं देते। आखिर चुनाव का माने ही क्या है ? उसमें १२ अनुकूल और १० प्रतिकूल हों, तो भी मैं खड़ा नहीं होऊंगा। इतना ही क्यों, एक भी प्रतिकूल हो तो मैं खड़ा नहीं होऊंगा। हां, सर्वानुमति से चुनें तो खड़ा हो सकता हूं। 'मैं हूं, मैं हूं' कहने की अपेक्षा 'आप हैं, आप हैं' यह कहें। 'मैं खड़ा हूं', यह क्यों कहा जाय ? हमें तो गांव की सेवा करनी है।

मनु किस तरह राजा बना, क्या आप यह जानते हैं ? वह जंगल में मनन, चिन्तन और तपस्या किया करता। गांववालों में ठन गई। आपस में पटती न थी। उन्होंने तय किया कि हमें कोई मार्गदर्शक चाहिए। राजा चाहिए। तब आपस में पटरी बैठ जायगी। वे जंगल में मनु के पास गये और उससे कहा : "आप हम लोगों के राजा होइये।" मनु ने कहा : "आप सब मिलकर यह तय करते हों, आप सबका यह मत हो, तभी मैं यह बोझ स्वीकार कर सकता हूं।" उन लोगों ने शर्त मान ली और तब मनु राजा बने। लेकिन यहां उलटी ही बात है।

प्रश्न : क्या जिला परिषद्, विधान सभा और लोकसभा के चुनाव के समय ग्रामसभावाले दल के आधार पर मतदान कर सकते हैं ?

उत्तर : दल के आधार पर मतदान करने की अपेक्षा आप सब लोग यह तय करें कि जो खड़े हैं, इनमें कौन अच्छा है। सभी मिलकर एकमत से तय करें कि अमुक अच्छा है और उसीको सभी के मत दें। कुछ दिन बाद हजारों ग्रामदान हो जायं तो आप लोग भी अपने प्रतिनिधि भेज सकते हैं। किसी भी पार्टी की जरूरत नहीं। ग्रामदानी गांव जिसे सर्वानुमति से चुनकर भेजे, वही प्रतिनिधि होगा।

मैं तो पार्टीवालों से यही कहूंगा कि आप सभी एक सभा में आकर बोलें। हम सब उसे सुनने के लिए तैयार हैं। इस तरह एक सभा हो जाय तो बस है। सबके भाषण सुनकर जिसे मत देना हो, दिया जाय। फिर उसमें गुटबन्दी या पार्टीबाजी का कोई प्रश्न ही नहीं उठता।

(पड़ाव : चौहाटा, ६-८-६५)

"इस बढ़ती हुई प्रजोत्पत्ति को ऐसे उपायों से रोकना चाहिए, जिससे जनता ऊपर उठे। यानी इसके लिए जनता को उसके जीवन से संबंध रखनेवाली तालीम मिलनी चाहिए, जिससे एक शाप के मिटते ही दूसरे सब अपने-आप मिट जायें। यह सोचकर कि रास्ता पहाड़ी है और उसमें चढ़ाइयां हैं, उससे दूर नहीं भागना चाहिए। मनुष्य की प्रगति का मार्ग कठिनाइयों से भरा पड़ा है। उनसे डरना क्या ? उनका तो स्वागत करना चाहिए।"

—मो० क० गांधी

देवदूत

कन्हैयालाल माणेकलाल मुन्शी

गांधीजी को देशभक्त 'राष्ट्रपिता' और इतिहासवेत्ता 'भारत के मुक्तिदाता' कह सकते हैं। किन्तु यह भूलना नहीं चाहिए कि वह उन महान अवतारों में से थे, जिन्होंने बर्बरता की शक्तियों के मुकाबले नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों की हिमायत की और उनकी रक्षा करने के लिए लड़े और कष्ट-सहन किया।

गांधीजी के लिए किसी युग अथवा सभ्यता की बदलती आचार-संहिता का बहुत कम महत्त्व था। वह उस नैतिक व्यवस्था के हिमायती थे, जिसकी अवतारों ने चर्चा की है और कवियों ने गान किया है। इस प्रकार गांधीजी ने अभूतपूर्व सफलता के साथ मनुष्यों के नैतिक सत्व को पुष्ट किया।

गांधीजी की सफलताएं इसलिए और भी उल्लेखनीय थीं कि वह हमारे ऐसे जमाने में हुए और काम किया जो मोटे तौर पर ईश्वर की उपेक्षा करता है और नैतिक नियमों की हँसी उड़ाता है।

मनुष्य की आन्तरिक आकांक्षाओं पर भौतिक जगत के नियमों को लागू करना बेकार है, फिर भी गत शताब्दी के वैज्ञानिक सिद्धान्तों ने नैतिक व्यवस्था में मनुष्य की श्रद्धा को तोड़ दिया है और बड़ी हद तक मनुष्य को अपने-आप पर भी विश्वास नहीं रहा है।

उदाहरण के लिए सदाचार के उपयोगितावादी सिद्धान्त की कसौटी यह है कि अधिकतम लोगों का अधिकतम हित हो। वह इस धारणा पर आधारित है कि बुद्धि सभी व्यक्तियों के लिए अचूक पथ प्रदर्शिका है। सार रूप में, उसने सामूहिक स्वार्थपरता की अवहेलना की है। इसने सत्ता के भूखे दलों को स्वतंत्रता दे दी है कि वे विशाल जनसमुदायों को मतदान केन्द्रों पर ले जाएं। ये दल अपने अहंकार और परोपकार के बीच की खाई पाटने की कोई कोशिश नहीं करते।

विकास सिद्धान्त के पिता डार्विन ने नैतिक जीवन पर प्राणि-विज्ञान के नियम लागू करने का प्रयास किया। उनकी कसौटी यह थी कि सर्वाधिक सबल ही जीवित रहता है। इस प्रकार उन्होंने मानव आकांक्षाओं के मार्ग दर्शन के लिए केवल जंगल का कानून प्रचारित किया।

आधुनिक तानाशाही के पिता हीगल की विचार-धारा ने व्यक्तिगत आचार को गौण स्थान दिया, नैतिक आचार को राज्य की आवश्यकताओं से नीचा स्थान दिया।

इन विचारधाराओं से 'सोवियत नैतिकता' के कम्यूनिस्ट सिद्धान्त का जन्म हुआ। उसके अनुसार सत्य पूर्ण नहीं हो सकता। लेनिन ने कहा है: "हमारी नैतिकता पूर्णतया वर्ग संघर्ष के हितों के अधीन है।" उसकी कसौटी है कि साम्यवाद के लक्ष्यों को पूरा करने के लिए क्या उचित है? और जो उचित है, उसका आखिरी फैसला कम्यूनिस्ट पार्टी करती है, यानी पार्टी के तत्कालीन नेता करते हैं। आज जो नैतिक है वही कल अनैतिक हो सकता है। ठीक इसका उलटा भी हो सकता है।

गांधीजी नैतिक व्यवस्था के दृढ़ और असंदिग्ध हिमायती थे। सबसे पहले उन्होंने उसके मूल्यों को अपने व्यक्तिगत जीवन में चरितार्थ किया। धीमे-धीमे उन्होंने सत्य और अहिंसा ही नहीं, बल्कि अस्तेय, संयम और अपरिग्रह का भी व्रत लिया। पातंजलि ने योग सूत्र में अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह ये पांच महाव्रत गिनाये हैं। योगी को देश काल का ध्यान रखे बिना इन व्रतों की साधना करनी चाहिए।

नैतिक सदाचार का मूल नियम, जिसे गांधीजी विश्व व्यवस्था का अंग मानते थे, सर्वव्यापी और अपरिवर्तनशील है। इस नियम के अनुसार सत्य की प्राप्ति से शाश्वत सफलताएं मिलती हैं; अहिंसा की सिद्धि से जगत का प्रेम

मिलता है, ब्रह्मचर्य से शक्ति, पूर्ण ईमानदारी से समृद्धि और अपरिग्रह से आत्म-सिद्धि मिलती है, और किसी प्रकार से नहीं। अगर इस नियम पर सोच-समझ कर अमल किया जाय तो मनुष्य और उसका वातावरण इस जीवन में और भविष्य में बदल जायगा और सर्वोदय अर्थात् सबका श्रेष्ठतम हित सिद्ध हो सकेगा।

इन सूत्रों की गांधीजी की व्याख्या उस पद्य में निहित है जिसका सुबह और शाम की प्रार्थनाओं में पाठ होता था। इस पद्य में सत्य, अहिंसा, अस्तेय, असंग्रह, अस्वाद, ब्रह्मचर्य, शरीर-श्रम, स्वदेशी, स्पर्श भावना, सम भाव और अभय की गणना की गई है।

गांधीजी का कहना था कि मनुष्य भौतिक शक्तियों की सन्तान नहीं है और न उनका गुलाम है। कतिपय आधुनिक समाज-शास्त्रियों के मतानुसार वह वातावरण की उपज भी नहीं है। वह वंशानुगतीय और वातावरणीय शक्तियों तथा जन्म-जन्मान्तर में काम करनेवाली नैतिक और आध्यात्मिक शक्तियों का मिलनबिन्दु है।

मनुष्य में नैतिक शक्ति के उदय से नैतिक प्रक्रिया—मानव द्वारा महाव्रतों को अपने व्यक्तिगत जीवन में चरितार्थ करने का प्रयास—की पूर्ति होती है। यही मार्ग है, जिसमें जागतिक व्यवस्था मानव आचार के अक्षरों में प्रकट होती है।

नैतिक शक्ति मनुष्य को, जो अन्यथा पशु ही रहता, ईश्वर में बदलती है और ईश्वर बनना उसका विशेष अधिकार है।

वह इस रचनात्मक शक्ति का उपयोग न केवल अपने वर्तमान और भावी जीवनों के प्रवाह को बदलने में, बल्कि सामाजिक और भौतिक वातावरण के स्वरूप को बदलने में भी कर सकता है।

गांधीजी की आत्मकथा—'सत्य के प्रयोग' एक आसाधारण मानव कृति है, जिसमें यह वर्णन किया गया है कि वह साधारण आदमी से सत्य के अवतार कैसे बने।

बचपन से ही गांधीजी ने अनुशासन का अभ्यास किया। उन्होंने धूम्रपान और मांसाहार छोड़ा, विलासिता और भौतिक सुखों को छोड़ा, व्यक्तिगत सौभाग्य और सम्पत्ति को छोड़ा। विवाहित होने पर भी ३७ वर्ष की आयु में ब्रह्मचर्य का व्रत लिया। धीरे-धीरे क्रोध, घृणा, अहंकार, प्रतिशोध आदि पर काबू पाया। कुष्ट रोगियों के प्रति अरुचि को दूर किया और प्लेग आदि रोगों का भय छोड़ा और स्वार्थ तथा अहंकार मूलक विकारों और भावनाओं पर विजय प्राप्त की। अपने शरीर और उसकी जरूरतों पर कठोर संयम रखने के साथ-साथ उनका नैतिक और आध्यात्मिक विकास हुआ। यह सब सत्य की शोध और उसके पालन की दृष्टि से किया गया। वह सत्य को ही ईश्वर कहते थे।

उनका सारा जीवन अपने व्यक्तिगत जीवन में इस शक्ति को जगाने का एक प्रयोग था; मन, वचन, कर्म में एकता सिद्ध करने का महाप्रयास था। मानसेकम्, वचसेकम्, कर्मण्येकम् महात्मनम्' यह केवल पुस्तकी सूत्र नहीं था, इस नियम का आचरण में अनिवार्यतः पालन किया जाता था। उनकी सफलताएं यद्यपि महान थीं, किन्तु उनमें इस प्रयास की आंशिक अभिव्यक्ति ही हुई।

यह देखना दिलचस्प होगा कि गांधीजी ने सत्य की शक्ति का कैसे पता लगाया।

अपने बचपन में उन्होंने श्रवण पितृ-भक्ति नाटक पढ़ा। उसका अभिनय भी देखा। इस नाटक ने उनके मन पर गहरा असर डाला। उन्होंने मन में कहा कि मुझे इस उदाहरण का अनुकरण करना चाहिए।

उन्होंने हरिश्चन्द्र नाटक भी देखा। उन्होंने लिखा है, "यह मेरे दिमाग पर छा गया और मैंने असंख्य मर्तबा हरिश्चन्द्र का पार्ट अदा किया होगा। सब हरिश्चन्द्र जैसे सत्यवादी क्यों न हों?' यह प्रश्न मैं दिन-रात अपने मन से पूछता था।" इसने उन्हें सत्य मार्ग का पथिक बना दिया।

उनके प्रारम्भिक संघर्ष की कहानी से पता चलता है कि उनमें मानवी कमजोरियों की कमी नहीं थी। वह मांसाहारी और धूम्रपेयी बने और सिगरेट खरीदने के लिए भाई के पैसे चुराये। वह एक वेश्या के यहां गये, किन्तु शर्म के मारे भाग आये। जब पिता मृत्यु शय्या पर पड़े थे, तब भी वह पत्नी से संयोग के लिए आतुर थे। वह अपनी दुर्बलताओं पर इतने दुखी हुए कि उन्होंने पिता को पत्र लिखकर अपने अपराध स्वीकार किये और दण्ड की याचना की।

"पिता ने रोगी शय्या पर वह पत्र पढ़ा और उनके गालों

पर आंसू बह निकले। उन्होंने पत्र को फाड़ दिया। "मैं भी रो पड़ा। .... प्रेम के इन आंसुओं ने मेरे हृदय को शुद्ध किया और मेरे पाप को धो डाला। केवल अनुभवकर्ता ही यह जान सकता है कि यह प्रेम कैसा था। ... यह मेरे लिए अहिंसा का यथार्थ पाठ था। जब यह अहिंसा सर्वस्पर्शी होती है तो अपने संसर्ग से सब को बदल डालती है। उसकी शक्ति की कोई सीमा नहीं होती।"

धार्मिक कर्मकाण्ड और शिक्षा-सम्बन्धी प्रवृत्तियों का उनपर कोई असर नहीं पड़ा। भगवद्गीता और तुलसी रामायण की चौपाइयों का सस्वर पाठ करने और संत-कवि नरसी मेहता का भजन 'वैष्णव जन तो तेने कहिए' को बार-बार गुनगुनाने से उन्हें यह विश्वास हो गया कि नैतिकता सब वस्तुओं का मूल है और सत्य समस्त नैतिकता का सार है। उन्होंने कहा : "और सत्य मेरा एकमात्र लक्ष्य बन गया।"

अपनी आत्म-कथा में गांधीजी ने ब्रह्मचर्य की विस्तार से चर्चा की है। ब्रह्मचर्य का अर्थ है काम विकार पर विजय प्राप्त करना। "ऐसे ब्रह्मचारी के लिए सारा जगत एक विशाल कुटुम्ब होगा, मानव जाति के दुःखों का निवारण ही उसकी एक मात्र आकांक्षा होगी। ...."

श्री अरविन्द कठोर तापसी जीवन बिताने के सम्बन्ध में गांधीजी से सहमत नहीं हैं। उनका 'समग्र योग' शरीर को ताड़ना देने अथवा वृत्तियों के कठोर दमन की आवश्यकता नहीं समझता। वह युक्त आहार और युक्त निराहार पर जोर देते हैं। किन्तु जिनके सामने ईश्वर प्राप्ति का सर्वोच्च ध्येय हो और इस जन्म में ही जो दैवी जीवन और दैवी प्रेम हासिल करना चाहें, उनके लिए उन्होंने पूर्ण ब्रह्मचर्य का विधान किया है।

अपने व्यक्तिगत जीवन में गांधीजी आखीर तक ब्रह्मचर्य के सम्बन्ध में प्रयोग करते रहे। हमारे ऋषियों ने दावा किया है कि अगर काम को जय कर लिया जाय और उसे रूपान्तरित कर दिया जाय तो नैतिक और आध्यात्मिक दोनों प्रकार की शक्तियां उन्मुक्त हो सकती हैं। गांधीजी इस दावे की सत्यता को परखने की कोशिश करते रहे।

इन प्रयोगों में उन्होंने स्त्रियों से सम्पर्क नहीं छोड़ा; स्त्रियों के प्रति शिष्टाचार दिखाने और उनका लिहाज रखने में वह कभी पीछे नहीं रहे। वह नित्य सब उम्र की स्त्रियों से मिलते थे, उनके साथ घूमते थे और उनकी कठिनाइयों को समझने की कोशिश करते थे।

बड़ी उम्र में भी बड़ी-छोटी स्त्रियों के साथ वैसा ही प्रेम दिखाते थे जैसा स्त्रियों में आपस में होता है। कतिपय लड़कियों को चरण स्पर्श करने देते थे; व्यक्तिगत स्नेह के उन्मुक्त प्रदर्शन के तौर पर वे उनकी छाती से लग जाती थीं। कभी-कभी इस प्रयोग का गलत अर्थ भी लगा लिया जाता था, किन्तु वह बराबर ब्रह्मचर्य के तेज की शक्ति और प्रखरता का अन्दाज लगाते रहते थे।

उनके आश्रम में स्त्री और पुरुष, जवान और बूढ़े आजादी और शिष्ट ढंग से रहते थे। किन्तु मानव प्रकृति कभी-कभी अपना रूप दिखाती थी और आश्रम के युवा स्त्री-पुरुषों के सम्बन्धों के बारे में समस्याएं उठ खड़ी होती थीं। ऐसे अवसरों पर वह मानव प्रकृति के विस्तृत ज्ञान के साथ इन समस्याओं में गहरे उतरते थे।

'क' गांधीजी के कट्टर और कार्यकुशल अनुयायी थे। उनकी प्रवृत्तियों के एक महत्त्वपूर्ण विभाग में काम करते थे, करीब-करीब अनिवार्य थे और जनता उन्हें आदर की दृष्टि से देखती थी। पढ़ाते समय एक अविवाहित युवा स्त्री के साथ उनकी घनिष्टता हो गई। जब गांधीजी को इस भूल का पता चला, उन्होंने 'क' को बुलाया और सत्य बोलने को कहा। 'क' ने आरोप को अस्वीकार किया।

गांधीजी ने मामले की छानबीन की। पता चला कि इन्कारी असत्य है। उन्होंने सार्वजनिक रूप से 'क' की भूल का जिक्र किया। अन्त में 'क' ने सत्य को स्वीकार किया। उन्हें अपने कार्यक्षेत्र से हटा लिया गया। उनके साथियों को उनके आचरण से बड़ा धक्का लगा था। उन्हें व्यक्तिगत परिचारक के रूप में सेवाग्राम ले आया गया।

इस घटना का जिक्र करते हुए गांधीजी ने मुझसे कहा, "उन्हें मैं केवल इसी तरह से बचा सकता था। मैंने लड़की को किसी दूर जगह 'च' के पास भेज दिया है। वह गर्भवती है। वहां उसकी देखभाल हो रही है। प्रसूति की व्यवस्था की जा रही है।" फिर वह मुस्कराये और बोले, "यह प्रेम की गुत्थी थी। उसके तलवार से दो टुकड़े नहीं किये जा सकते थे।" इस घटना ने मुझे स्मरण दिलाया कि ईसा ने

मेरी मेडेलिन के साथ कैसा व्यवहार किया था।

गांधीजी ने अपने व्यक्तिगत जीवन में अस्तेय और अपरिग्रह को भी सिद्ध किया। आश्रम में आनेवाले रुपये के सम्बन्ध में वह बहुत सावधान रहते थे। हिसाब ठीक से रखने पर उनका बड़ा आग्रह था। वह गड़बड़ी को ज़रा भी बर्दाश्त नहीं करते थे, चाहे उसे करने वाला कितना ही बड़ा आदमी क्यों न हो और राशि कितनी ही छोटी क्यों न रही हो।

वह प्रतिष्ठा का विचार किये बिना अपनी 'हिमालय जैसी भूलों' को स्वीकार करने का साहस कर सकते थे। अभय उनका सबसे बड़ा गुण था; उनमें शारीरिक साहस ही नहीं था, बल्कि उनका मन भी निर्भय था। उसका मूल था ईश्वर में श्रद्धा और उसकी इच्छा के सामने आत्मसमर्पण।

उन्होंने नाना प्रवृत्तियों के द्वारा ईश्वर की भक्ति की।

"मेरा ईश्वर नाना रूप है। कभी मैं उसका साम्प्रदायिक एकता में दर्शन करता हूं, कभी अस्पृश्यता निवारण में और इस प्रकार आत्मा के आदेश के अनुसार ईश्वर के साथ तादात्म्य स्थापित करता हूं।"

अपने हर काम को उन्होंने आध्यात्मिक मूल्य प्रदान किया। उनका हर काम ईश्वरार्पित था। कुछ समय लिखने का अभ्यास करने के बाद उन्होंने देखा कि यह कार्य आध्यात्मिक और भौतिक दोनों दृष्टियों से आवश्यक हो गया है।

सत्य शब्द में बहुत कुछ शामिल है। सत्य वाक अथवा सत्य प्रतिज्ञ का यही मतलब नहीं है कि आदमी सत्य बोलता है या सत्य की प्रतिज्ञा लेता है। इसका मतलब है कि आदमी ने जो बात कह दी या जो वचन दे दिया, उसकी पूर्ति हर कीमत पर प्राण देकर भी करेगा।

सत्य की इस कल्पना के अनुसार—

(१) व्यक्तिगत जीवन में सत्य का अनुसरण ही स्थायी रचनात्मक प्रवृत्ति का एकमात्र आधार हो सकता है।

(२) जो सत्य का अनुसरण करना चाहता है, उसे उसकी खातिर प्राण गंवाने के लिए भी प्रस्तुत रहना चाहिए।

गांधीजी इसी सत्य के अवतार थे।

इस रोशनी में सत्य मानव प्रतिष्ठा का प्रतिपादक है। यह जीवन के एक सूची संचालन, सामाजिक, राजनीतिक अथवा धार्मिक कट्टर मान्यताओं की गुलामी और दुनिया के कुछ देशों में स्थापित तानाशाही के विरुद्ध विद्रोह है।

साथ ही गांधीजी का खयाल था कि अहिंसा के अभाव में अपने ही सत्य का अनुसरण अनैतिक हो सकता है। सत्य और अहिंसा के इस मिश्रण से ही वह सत्याग्रह शस्त्र का आविष्कार कर पाये।

बुराई का प्रतिकार करने के लिए सत्याग्रह शस्त्र के उपयोग के साथ अनेक और विभिन्न मर्यादाएं जुड़ी हैं। सत्याग्रही को इस शस्त्र का उपयोग अन्यायकर्ता के विरुद्ध नहीं, बल्कि अन्याय के विरुद्ध करना चाहिए। आत्मशुद्धि की सतत प्रक्रिया के बिना ऐसा करना बहुत कठिन होगा।

साथ ही सत्याग्रही का स्वयं कष्ट सहन करके संतुष्ट रहना होगा, और यह ध्यान रखना होगा कि उससे प्रतिपक्ष के प्रति हिंसा तो नहीं हो रही है। जब कोई आदमी ऐसे उद्देश्य के लिए राजी खुशी कष्ट सहन करता है जिसे वह ठीक समझता है तो उससे स्वभावतः मन की दुर्भावना दूर होती है और विरोधी के मन की कटुता दूर होने में मदद मिलती है।

सत्याग्रह की प्रभावशीलता इस पर निर्भर करती है कि सत्याग्रही बुराई का प्रतिकार करने के लिए कितना दृढ़-संकल्प रहता है। सत्याग्रह हिंसा का त्याग सिखाता है, किन्तु हर प्रकार की जोखिम का खुशी-खुशी सामना करने की वृत्ति का भी सत्याग्रही में विकास करता है। इस प्रकार बल के द्वारा आक्रमण करने के बजाय आत्मशक्ति द्वारा प्रतिकार करने पर जोर दिया जाता है।

जब इन मर्यादाओं का पालन किया जाता है तो अहिंसक सत्याग्रह आजादी की लड़ाई में और आत्मसिद्धि के लिए अन्याय के प्रतिकार का एक शक्तिशाली अस्त्र बन जाता है। यह सही है कि परिणाम धीमे अंशों में निकलते हैं, किन्तु उनके फलस्वरूप उत्पन्न कटुता अल्पजीवी होती है।

सामाजिक शक्ति के रूप में सत्याग्रह शान्तिवादियों का निषेधकारी सिद्धान्त, पवित्र इच्छा, आवेग रहित श्रद्धा नहीं है। वह ऐसी प्रवृत्ति है, जो इस प्रभावकारी इच्छा शक्ति से उत्पन्न होती है कि नैतिक व्यवस्था की श्रेष्ठता सिद्ध होनी

(शेष २२ पृष्ठ पर)

संस्मरण

जी० ए० नटेसन

गांधीजी के साथ मेरा परिचय उस समय शुरू हुआ, जब उनके नेतृत्व में ट्रान्सवाल (दक्षिण अफ्रीका) में भारतीय संघर्ष शुरू हुआ था। इस बात को चार दशाब्दियों से अधिक हो गया। मेरा व्यक्तिगत सम्पर्क उनसे तब हुआ, जब वह अगस्त १९१५ में दक्षिण अफ्रीका से स्वदेश लौटे। मैं मद्रास की भारतीय दक्षिण अफ्रीकी लीग का मंत्री था और इस नाते मुझे अक्सर उनसे पत्र-व्यवहार का सौभाग्य प्राप्त हुआ। गांधीजी अपने देश वासियों की मदद से उन कानूनों के विरुद्ध जबर्दस्त सत्याग्रह आन्दोलन चला रहे थे, जिन पर बोअर सरकार बड़ी कड़ाई और सतर्कता से अमल करा रही थी। इस काम में उस उपनिवेश में रहनेवाले करीब-करीब सभी देशवासी उनके साथ थे। वे अनुभव करते थे कि उनका ध्येय न्यायपूर्ण है। गांधीजी के नेतृत्व पर उन्हें पूरा भरोसा था।

कैसे तो वह नेता थे और कैसे थे उनके अनुयायी! दुबला-पतला छोटे कद का यह आदमी भारतीयों के एक बड़े जुलूस के आगे चल रहा था। सभी जातियों और पेशों के लोग उसमें शामिल थे—गुजराती व्यापारी, मद्रासी फेरी, वाले, उत्तर प्रदेश और बंगाल के कारीगर, बिहार और असम के किसान, सभी वर्गों के स्त्री पुरुष, धनी और निर्धन समान रूप से उनके नेतृत्व में चलने को तैयार थे और दुनिया में कहीं भी उनके पीछे जा सकते थे। आराम, घर, सम्पति सब कुछ छोड़ कर उन्होंने कैद के कष्टों और जुल्मों को बर्दाश्त किया। उन्होंने कष्टों का इस प्रसन्नता और हिम्मत के साथ सामना किया कि उसका दूसरों पर भी जादू-सा असर हुआ।

मातृभूमि ने इस महान नाटक को आश्चर्य मिश्रित पीड़ा और गर्व से देखा और अपनी प्रवासी सन्तान को यथाशक्ति नैतिक और भौतिक सहायता देने का प्रयत्न किया, जो अपने सम्मान की रक्षा के लिए बहादुरी से लड़ रहे थे। जैसा गोखलेजी ने एक बार कहा था कि गांधीजी मिट्टी से वीर पैदा कर रहे थे। फिर भी गांधीजी ने बड़े विनय के साथ जोहान्सबर्ग से उग्र संघर्ष के मध्य मुझे जुलाई १९१० में लिखा, "हमने यहां जो काम किया है उसमें हमको भारत के महान नेताओं से प्रेरणा मिली है, इसलिए मैं नहीं समझता कि सत्याग्रहियों के गुणों की बढ़ा-चढ़ा कर प्रशंसा करने की जरूरत है।"

अपनी स्वाभाविक विनम्रतावश उन्होंने संग्राम में अपने योग का उल्लेख करने से परहेज किया, किन्तु वह अपने अनुयायियों के शानदार योग को कभी नहीं भूले, जिन्होंने असीम परेशानी और कष्ट उठाये थे, उन्होंने मुझे लिखा: "आश्चर्य यह है कि इतना कम शिकवा-शिकायत हुआ। इसका श्रेय उन आदमियों को है, जो इतनी महानता, बहादुरी और बिना किसी शिकायत के लड़ रहे हैं।"

दक्षिण अफ्रीका का संग्राम, उसमें गांधीजी और उनके देशवासियों के योगदान की कहानी इतिहास की वस्तु बन गई है। दक्षिण अफ्रीका की इस हृदयस्पर्शी घटना ने सरकार को और इस देश के लोगों को कितना प्रभावित किया, यह बताने के लिए मैं तत्कालीन वायसराय लार्ड हार्डिंज के शब्द उद्धृत करूंगा: "हाल में आपके देशवासियों ने दक्षिण अफ्रीका में उन कानूनों के विरुद्ध, जिनको वे भेदभाव-मूलक और अन्यायपूर्ण समझते थे, कथित सत्याग्रह आन्दोलन को संगठित करके मामला अपने हाथों में ले लिया है। हम जो दूर से इस संग्राम को देखते हैं, दक्षिण अफ्रीकी कानूनों के सम्बन्ध में उनकी राय से सहमत हुए बिना नहीं रह सकते। उन्होंने इन कानूनों की अवहेलना की है, अच्छी तरह से यह जानते हुए कि क्या दण्ड भुगतना पड़ेगा। वे धीरज और साहस से दण्ड सहन करने को प्रस्तुत रहे हैं। इस सब

में उनके प्रति भारत की गहरी और प्रबल सहानुभूति है, केवल भारत की ही नहीं, बल्कि उन सब लोगों की, जो मेरे समान भारतीय न होते हुए भी इस देश के लोगों से सहानुभूति रखते हैं ।"

गांधीजी इस आन्दोलन की आत्मा थे और मद्रास के महान धार्मिक पुरुष बिशप ह्वाइट हेड ने इस संग्राम में गांधीजी के नेतृत्व का सही मूल्यांकन किया था, "मैं खुले तौर से स्वीकार करता हूं, हालांकि मुझे यह कहते गहरा दुःख होता है कि गांधीजी न्याय और दया की खातिर धैर्यपूर्वक कष्ट सहन कर रहे हैं। जिन्होंने गांधीजी को जेल में डाला; फिर भी जो ईसा के साथ अपना नाम जोड़ते हैं, उनकी अपेक्षा गांधीजी सूली पर चढ़नेवाले मुक्तिदाता ईसा के अधिक सच्चे प्रतिनिधि हैं।"

गांधीजी का यश सारे साम्राज्य में इस कोने से उस कोने तक फैल गया था और जब जनवरी १९१५ में वह बम्बई उतरे तो शाही स्वागत उनकी प्रतीक्षा कर रहा था। गांधीजी के हृदय में मद्रास के लिए और अनेक तमिल-वासियों के लिए, जिन्होंने इस संग्राम में उनका साथ दिया था हमेशा प्यार रहा। उनकी बहादुरी और सतत निष्ठा की तारीफ करते वह कभी नहीं थकते थे और उन ग्रामीणों के मित्रों और रिश्तेदारों की पूछताछ करना उन्हीं जैसे आदमी का काम था। यह वे लोग थे जो गरीब थे, दूरवर्ती गांवों में रहते थे तथा अज्ञात और उपेक्षित थे।

वह अप्रैल महीने की एक संध्या को कस्तूरबा के साथ मद्रास पहुंचे। उनका स्वागत करने के लिए स्टेशन प्लेटफार्म पर पुष्प-हार हाथों में लिये हुए प्रमुख नागरिकों का दल उपस्थित था और उनके दर्शनों के लिए स्टेशन के बाहर जनता की भीड़ खुशी के नारे लगाती हुई खड़ी थी। उन दिनों गांधीजी अपने अन्तिम दिनों की भांति कम कपड़े नहीं पहनते थे। उनके शरीर पर गुजराती फैशन की सफेद हाथकती पोशाक थी और सिर पर मोटी पगड़ी। वह तीसरे दर्जे के डिब्बे से उतरे और उनके पास कपड़ों का एक बण्डल था। ऐसा लगता था मानो कोई गरीब किसान दम्पत्ति दूर गांव से शहर देखने आया हो। दूर देश में सैंकड़ों साहस और अचरज भरे काम करने वाला कोई वीर पुरुष ऐसा होगा, यह कोई कल्पना नहीं कर सकता था।

उनकी मेहमानी करने का सौभाग्य मुझे मिला। उनके बारे में हम बहुत कुछ पढ़ चुके थे, किन्तु उनके अत्यन्त सादे जीवन की हमें कोई कल्पना नहीं थी। काफी सावधानी और सलाह-मश्विरे तथा सोच-विचार के बाद मैंने अपने कार्यालय एसप्लेनेड में उनके आवास का प्रबन्ध किया। मैंने अपने खयाल के मुताबिक ठीक तरह से रहने के लिए न्यूनतम चीजों का प्रबन्ध किया—दो चारपाइयां, एक गद्दीदार कुर्सी, एक मेज और एक डेस्क जुटाई। जब मैंने उन्हें कमरे दिखाये तो थोड़ी देर देखने के बाद वह जोरों से हँसे। उन्होंने कहा कि कस्तूरबा के कमरों से चारपाइयां, बिछा हुआ गलीचा, और सब फर्नीचर हटा दो। उन्होंने बिना सजावट के सादे कमरे पसन्द किये और जब तक वे विलास की चीजें हटा नहीं दी गईं, उन्होंने घर जैसा महसूस नहीं किया।

२१ अप्रैल को विक्टोरिया पब्लिक हाल में गांधी दम्पति का स्वदेश लौटने पर सम्मान करने के लिए मद्रास के नागरिकों ने बड़ा जल्सा आयोजित किया। सर सुब्रह्मण्य अय्यर सभापति थे। मुझे याद पड़ता है कि मद्रास के आदरणीय लार्ड बिशप, भारतीय दक्षिणी अफ्रीकी लीग के अध्यक्ष ने सभा को अपनी गहरी सहानुभूति का संदेश भेजा था और कहा था कि गांधी दम्पति ने अपने देशवासियों की ओर से शानदार लड़ाई लड़ी है। लीग के मंत्री के नाते मैंने अभिनन्दन पत्र पढ़ा, जिसमें इस प्रकार सुन्दर उद्गार प्रकट किये गए थे :

"हमारी मातृभूमि की सेवा करनेवालों की सूची लम्बी है; उनमें से कुछ ही सफलताओं की दृष्टि से आपकी बराबरी कर सकते हैं और आपसे आगे तो कोई नही जा सकता। .... आपने वर्तमान पीढ़ी के सामने देवत्व और संत के गहरे विवेक का उदाहरण उपस्थित किया। श्रीमती गांधी हमारे लिए सती की अवतार हैं, पतिमय हैं और पति के लिए जीती है और छाया की तरह अमीरी और गरीबी में, सुख और दुःख में, घर और जेल में तथा भ्रमण में पति के साथ रहती हैं।"

गांधीजी का उत्तर सहृदयता और सरलता का नमूना था। हमने पहली मर्तबा उन्हें सार्वजनिक सभा के मंच पर बोलते सुना। उनके भाषण में कोई तर्जन-गर्जन, भावोन्माद अथवा अभिनय नहीं था। आवाज़ सम और ढंग गम्भीर था

और शब्द सरल शिष्टाचार और सौम्यता लिये हुए थे। किन्तु भाषण में कुछ ऐसा था कि सीधा श्रोताओं के हृदय में प्रवेश कर रहा था; आलंकारिक भाषण से यह सम्भव न होता। और जब उन्होंने मद्रास के बहादुर बलिदानियों का जिक्र किया तो उसका भारी प्रभाव हुआ।

"बंधुओ, इस अभिनन्दन पत्र में आपने जिस भाषा का प्रयोग किया है, उसके दसवें हिस्से के भी हम हकदार हों तो आप उन लोगों के लिए कौन-सी भाषा का प्रयोग करेंगे जिन्होंने अपने जीवन दे दिये और इस प्रकार दक्षिण अफ्रीका में आपके पीड़ित देशवासियों का काम पूरा किया? आप १७ और १८ वर्षीय युवक-नागप्पन और नारायण स्वामी के लिए कौन-से शब्द काम में लेंगे, जिन्होंने सरल श्रद्धा से मातृभूमि के सम्मान की रक्षा के लिए हर प्रकार के कष्ट और अपमान सहन किये? (तालियां) आप वल्लिअम्मा के लिए कौन-सी भाषा का प्रयोग करेंगे, जिसकी उम्र १७ वर्ष थी और जिसे मरित्जबर्ग जेल से तब छोड़ा गया, जब वह केवल हड्डियों का ढांचा मात्र रह गई थी, बुखार से पीड़ित थी और रिहा होने के एक महीने बाद चल बसी? (शर्म-शर्म की आवाजें)

"हम सब की नियन्ता ईश्वरीय शक्ति ने मद्रासियों को ही इस महान काम के लिए चुना। क्या आप जानते हैं कि जोहान्सबर्ग के बड़े शहर में मद्रासी अपने लिए इसे अपमान की बात समझते हैं। यदि पिछले आठ वर्षों में दक्षिण अफ्रीका में आपके देशवासियों को जिस भयंकर संकट का सामना करना पड़ा, उसके दौरान कोई मद्रासी एक या दो बार जेल न गया हो? आपने कहा कि मैंने इन वीर स्त्री-पुरुषों को प्रेरित किया, किन्तु मैं यह नहीं मान सकता। यह तो वे सरल आदमी थे जो श्रद्धा से प्रेरित थे और जिन्हें किसी पुरस्कार की आशा न थी, उन्होंने मुझे प्रेरित किया, ठीक स्तर पर रखा और अपनी महान श्रद्धा तथा ईश्वर के प्रति महान विश्वास के द्वारा मुझे वह काम करने के लिए बाध्य किया (तालियां)। यह मेरा दुर्भाग्य है कि मुझे और मेरी पत्नी को प्रकाश में आकर काम करना पड़ा और हम जो थोड़ा काम कर पाये, उसे आप लोगों ने बेहिसाब बढ़ाया-चढ़ाया है। (नहीं, नहीं की आवाजें)

"इस मुकुट के तो वे हकदार हैं, जिसे आप हमारे सिर पर रखना चाहते हैं। ये युवक उन सब विशेषणों के हकदार हैं जिनकी आपने प्यार से किन्तु अन्धे होकर हम पर वर्षा की है। केवल हिन्दुओं ने ही नहीं, बल्कि मुसलमानों, पारसियों और ईसाइयों ने भी संघर्ष किया। करीब-करीब भारत के हर हिस्से का इस संग्राम में योग रहा। उन्होंने समान खतरे को अनुभव किया और उन्होंने यह भी अनुभव किया कि एक हिन्दुस्तानी की हैसियत से उनका भविष्य क्या है और केवल मात्र उन्हींको श्रेय है कि उन्होंने शारीरिक बल के मुकाबले आत्मिक बल का परिचय दिया।" (दीर्घ हर्ष-ध्वनि)

मद्रास के लिए यह नया अनुभव था; शब्द थोड़े थे, किन्तु उन्होंने इसमें प्राणों का उन्मेष भर दिया। भाषण के ढंग में ज्यादा विशेषता न थी, किन्तु उसमें सार बहुत था। वह दूसरों की सम्मति क्वचित ही दोहराते और हर विषय पर उनके विचार तरोताजा मौलिक होते थे। चाहे वह अराजक अपराधों की निन्दा करते, चाहे ब्रिटिश राज की भक्ति पर बोलते, उसमें कुछ न कुछ असाधारण रहता और अपने विचारों को जो आकर्षक मोड़ वह देते थे, वह श्रोताओं को हमेशा आश्चर्य में डाल देता था। प्राचीन देश की समस्याओं पर उन्होंने नवीन मानस से विचार किया और उनके हल हमेशा आश्चर्यजनक होते थे।

मद्रास के वकीलों के भोज में मैं भी मौजूद था। इस अवसर पर ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति अपनी शुभकामना प्रकट करते हुए गांधीजी ने कहा:

"सत्याग्रही की हैसियत से मैंने पता लगाया कि सत्याग्रही को अपना सत्याग्रह का अधिकार सिद्ध करना चाहिए; चाहे सत्याग्रही किसी भी दशा में क्यों न हो। मैंने देखा कि ब्रिटिश साम्राज्य के कुछ आदर्श हैं और उन्हें मैं प्यार करने लगा हूं। उनमें एक आदर्श यह है कि ब्रिटिश साम्राज्य के हर प्रजाजन को अपनी शक्तियों और सम्मान के लिए और अपने अन्तःकरण के अनुसार चलने के लिए अधिकतम स्वतंत्रता हासिल है। मेरा विचार है कि ब्रिटिश साम्राज्य के लिए यह जितना सत्य है, उतना और किसी सरकार के लिए नहीं है। (हर्ष) मैं अनुभव करता हूं जैसाकि आप जानते हैं कि वह सरकार सर्वोत्तम है जो न्यूनतम शासन करती है। और मैंने पाया

है कि ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत मुझ पर कम-से-कम शासन संभव होगा। इसलिए ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति मेरी भक्ति है।" (दीर्घ हर्ष)

किन्तु मैं गांधीजी की इस मद्रास-यात्रा के एक और दिलचस्प पहलू का जिक्र करूंगा। थुम्बु चेट्टी स्ट्रीट पर जब वह मेरे मकान पर ठहरे थे तो एक दिन अपने साथ एक पंचम लड़के को लाये। उसे वह नायकर कहने लगे। गांधीजी विचार और वाणी के साथ कर्म का मेल साधते थे। उन्हें अपने काम में कोई नवीनता नहीं लगती थी। वह पंचम लड़के को सीधे हमारे घर में ले आये। घर के लोग और मेरी बूढ़ी मां कट्टर पुराने विचारों के थे और घर के 'अपवित्र' हो जाने पर क्षुब्ध हो उठे। कुछ वर्ष पहले मद्रास में मैंने अछूत कान्फ्रेंस की अध्यक्षता की थी और सवर्णों द्वारा अछूतों के प्रति होने वाले दुर्व्यवहार की कड़े शब्दों में निन्दा की थी। गांधीजी ने मेरा भाषण पढ़ा था और स्वभावतः वह इस नतीजे पर पहुंचे होंगे कि लड़के को मेरे घर में लाने में कोई कठिनाई नहीं होगी।

स्पष्टतः मैं मुश्किल में पड़ गया। एक ओर मेरे मन में गांधीजी के विचारों के प्रति आदर था और दूसरी ओर मुझे अपनी बूढ़ी मां की भावनाओं का भी ख़याल था। स्थिति सचमुच विचित्र थी। गांधीजी ने विषम स्थिति को समझकर अपने ही विचित्र और प्रभावशाली ढंग से उससे निपटने की कोशिश शुरू की। नायकर बीमार पड़ गया और गांधीजी को अपना काम करने का अवसर मिला। गांधीजी निरन्तर लड़के के पास बैठे रहते और उसकी सेवा-सुश्रूषा करते। उपदेश देने के बजाय यह विचित्र तरीका ज्यादा प्रभावशाली था और मैंने देखा कि मेरी बूढ़ी मां धीरे-धीरे इस स्थिति को सहन करने के लिए प्रस्तुत हो रही है। यह परिवर्तन प्रायः चुपचाप हुआ और गांधीजी ने अपने पत्र में उसका जिक्र किया :

"आपने देखा कि आपकी मां नायकर के मामले में कितनी सज्जनता से पेश आईं। आपको सन्देह था कि आप उन्हें अपने से सहमत नहीं कर पायेंगे। हम सुधारकों की यह आदत हो गई है कि हम अपने घर से शुरूआत करने की कभी कल्पना नहीं करते। हम अब अपने को सुधारना कठिन समझते हैं।"

मायावरम में ब्राह्मणों और पंचमों के बारे में जब उन्होंने अपना सनसनीखेज भाषण दिया तो मेरे ख़याल में ऐसे ही अनुभव उनके मन में चक्कर काट रहे थे। उस कट्टरता के गढ़ में उन्होंने कुछ नग्न सत्यों को प्रकट किया, जिससे कटु विवाद उत्पन्न हो गया। किन्तु अस्पृश्यों के प्रश्न पर कोई समझौता नहीं हो सकता था। हम अब जानते हैं कि यरवदा जेल में बन्द होने पर भी उन्होंने अपने आध्यात्मिक ढंग से किस प्रकार देश की प्रतिक्रियावादी शक्तियों का मुकाबला करना शुरू किया था। मध्ययुगी सन्तों की भांति गांधीजी ने अपनी गहरी वेदना को इन शब्दों में प्रकट किया :

"मैं फिर जन्म लेना नहीं चाहता, किन्तु अगर मेरा सचमुच जन्म हो ही तो मैं किसी अस्पृश्य के घर में जन्म लेना चाहूंगा, ताकि उनकी मुसीबतों में भागीदार बनूं और उनकी मुक्ति के लिए प्रयत्न कर सकूं।"

उनकी बराबर यही स्थिति रही। सत्याग्रह की प्रतिज्ञा की एक मुख्य शर्त्त यह थी कि सत्याग्रही छुआछूत को नहीं मानेगा। स्वराज्य के लिए भी उन्होंने यही शर्त्त रखी थी। किन्तु गांधीजी की कोटि का आदमी विश्वासों की कोरी घोषणाओं अथवा सिद्धान्त के प्रखर प्रतिपादन से ही संतुष्ट नहीं हो सकता था।

कुछ इतने ही महत्त्व की स्मृतियां मेरे दिमाग में जाग रही हैं। मुझे याद पड़ता है कि मैं उनके साथ महान देशभक्त और पत्रकार जी० सुब्रह्मण्यम अय्यर के घर पर गया था। वह अपनी गम्भीर बीमारी और पीड़ा के बावजूद देश की सेवा करते जा रहे थे। अय्यर ने कहा कि देश को गांधीजी के कार्यों पर गर्व है, किन्तु मेरा हाल देखिये कि गम्भीर बीमारी के कारण मैं देश की कोई सेवा नहीं कर पा रहा हूं। इस पर उन्हें बड़ा रंज था। गांधीजी ने उनको यह कह कर सांत्वना दी कि उन्होंने देश के लिए बड़ा काम किया है और उनको रंज नहीं करना चाहिए। यह कहकर वह उनके जख्मों को अपने कपड़े से पोंछने लगे। मैंने और मेरे मित्र वी० एस० श्रीनिवास शास्त्री ने इस दृश्य को देखा और हमारा हृदय पानी-पानी हो गया।

गांधीजी ने अपने पुत्रों का कैसे लालन-पालन किया, इस बारे में भी मैं कुछ कहना चाहूंगा। आज की शिक्षा में

उन्हें कभी श्रद्धा नहीं थी और इसलिए उन्होंने अपने पुत्रों को उसका 'संसर्ग' नहीं लगने दिया। गांधीजी तरह-तरह के कामों में व्यस्त थे, फिर भी उन्होंने खुद अपने बच्चों को पढ़ाना शुरू किया। मुझे याद है कि सन् १९१८ में उन्होंने देवदास को मेरे पास रह कर हिन्दी प्रचार का काम करने के लिए मद्रास भेजा था। उन्होंने लिखा था, "मैं नहीं चाहता कि देवदास किसी गुजराती परिवार में रहे। उसे तमिल पढ़नी है और हिन्दी सिखानी है।" यह था शिक्षा देने का गांधीजी का तरीका। देवदास को अपनी फिक्र खुद करनी चाहिए। अगर वह बीमार पड़ता है तो यह उसका दोष है। एक बार उन्होंने सुना कि देवदास मेरे यहां बीमार पड़ गया है तो उन्होंने मुझे लिखा, "मैंने उम्मीद की थी कि देवदास इस बुरी तरह नहीं रहेगा कि वह बीमार पड़ जाय।"

एक घटना से उनके दूसरे पुत्र मणिलाल की याद आती है। मणिलाल सत्याग्रह आश्रम में रहते थे। इस आश्रम की स्थापना गांधीजी ने की थी। आश्रमवासी होने के कारण मणिलाल पर आश्रम के नियम लागू थे। एक नियम यह था कि आश्रमवासी व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं रखेगा। मालूम होता है आश्रम में आने के पहले मणिलाल के पास बचत खाते में कुछ रुपया था। उनके भाई ने मणिलाल को लिखा कि कुछ रुपया भेज दो। मणिलाल ने अपने भाई की मदद करने के खयाल से और अनधिकृत रुपये को खत्म करने की दृष्टि से बैंक से रुपया निकाल कर भाई को भेज दिया। यथा समय रसीद लौट कर आश्रम आई और गांधीजी ने उसे देखा। गांधीजी का पुत्र ही आश्रम के नियम को भूल कर निजी रुपया रखे और उसे अपनी मर्जी के मुताबिक खर्च करे, इसमें गांधीजी को बड़ा दोष नजर आया और उन्होंने सोचा कि इसका उचित प्रायश्चित्त होना चाहिए। पुत्र की सफाई और मां के अनुनय विनय के बावजूद गांधीजी ने आग्रह किया कि मणिलाल को आश्रम से चला जाना चाहिए।

मणिलाल एक रात जार्ज टाउन में मेरे मकान पर आये और यह घटना सुनाई। उन्होंने अपने पिता का एक पत्र भी दिया, जिसमें और बातों के अलावा गांधीजी ने लिखा था कि मणिलाल को कड़े अनुशासन में रखा जाय। वह अपना भोजन खुद पकाये और कातना सीखे।

एक और घटना है, जिसे मैं कभी नहीं भूल सकता। जब वह मद्रास में थे तो मैंने कस्तूरबा को एक से अधिक बार परेशानी की हालत में देखा। मैंने इस ओर गांधीजी का ध्यान दिलाया। वह उत्तर के लिए एक क्षण भी नहीं रुके और कहा, "यह परेशानी बा ने खुद पैदा की है। वह चाहती है कि मैं उसे अपने पोतों के लिए कीमती कपड़े खरीदने के लिए पैसा दूं।" मैंने विनोद में कहा कि आप बड़े कठोर पति हैं। गांधीजी ने उत्तर दिया : "देखो, तुम मेरे प्रति कठोर हो। अगर मैं इन या दूसरे मामलों में उसकी इच्छा पूरी करने लगूं तो यह प्रश्न मेरे सिद्धान्तों को छोड़ने का हो जाता है। वह मेरे विचारों को अच्छी तरह जानती है और मेरे रहन-सहन के तरीके से भी परिचित है। मैंने कई बार उससे कहा कि तुम मुझसे अलग रहने लगो और अपने को परेशानियों से बचा लो तथा आराम से अपने बच्चों के साथ रहो। किन्तु वह ऐसा नहीं करेगी। वह तो पतिभक्ता हिन्दू पत्नी की भांति मेरे साथ-साथ जायगी।" अपनी स्वाभाविक कोमलता के साथ-साथ वह कितने अनुशासन प्रिय थे, यह इसका एक नमूना है।

दूसरी घटना यह है कि डा० बेसेंट ने गांधीजी को अड्यार में अपने मुख्य केन्द्र पर निमंत्रित किया। हमारा थियोसॉफी सोसाइटी के सुन्दर भवन पर स्वागत किया गया और शालीन शिष्टाचार और सौजन्य का परिचय दिया गया। उस आदरणीय महिला के लिए गांधीजी के हृदय में बड़ा आदर और सराहना थी, कारण उसने इस देश की सेवा के निमित्त अपना जीवन पूर्णतया समर्पित कर दिया था। डा० बेसेंट अपने अतिथि को शानदार हाल और सुसज्जित कमरों में ले गई और बाद में पड़ोस के एक सादे छप्पर में ले गई, जहां अछूतों का एक स्कूल चलता था। डा० बेसेंट ने एक अर्थ में पंचमों को शिक्षा सुविधा देने के मामले में पहल की थी। किन्तु गांधीजी को यह सहन नहीं हुआ कि कुछ लोगों के लिए भव्य निवास हो और दूसरों के लिए हीन स्थान।

उन्हें इतना दुःख हुआ कि उन्होंने रात को वहां रहने का अपना कार्यक्रम रद्द कर दिया और जार्ज टाउन में अपने निवास-स्थान को लौट जाने का आग्रह किया। मैंने विरोध प्रकट किया और कहा कि इससे डा० बेसेंट को बड़ा दुःख

होगा और वह मुझ से भी नाराज होंगी । गांधीजी अपने आग्रह पर अटल रहे और अड्यार भवन से रात को ही विदा हो गए ।

हमारे जमाने की एक अति सुन्दर मैत्री गोखले और गांधीजी की थी । गोखले केवल तीन वर्ष उनसे बड़े थे, किन्तु गांधीजी ने उन्हें हमेशा अपना राजनीतिक गुरु माना और स्वभाव तथा दृष्टिकोण के प्रकट भेद के बावजूद एक दूसरे के प्रति उनके मनों में गहरा आदर रहा । किस प्रकार वे एक दूसरे में गुण-ही-गुण देखते थे यह देख कर हृदय पुलकित हो जाता था । गांधीजी की नज़रों में "गोखले बहादुर और निस्वार्थ महारथी थे, जिन्हें समस्त भारत अपना सर्वश्रेष्ठ पुत्र मानता था" गांधीजी के बारे में गोखले की राय भी विशिष्टता लिये हुए थी : "जो लोग गांधीजी के व्यक्तिगत सम्पर्क में आये हैं, वही उनके अद्भुत व्यक्तित्व को जान सकते हैं । वह निश्चय ही उस धातु के बने हैं जो वीरों और शहीदों का निर्माण करती है । अपने जीवन में मैं केवल दो आदमियों को जानता हूं, जिन्होंने गांधीजी की भांति मुझ पर आध्यात्मिक प्रभाव डाला उनमें एक है हमारे महान् वयोवृद्ध दादाभाई नौरोजी और दूसरे हैं मेरे गुरु रानाडे । ये ऐसे पुरुष हैं जिनके सामने न केवल कुछ भी अशोभनीय करने में लज्जा अनुभव होती है, बल्कि कुछ अशोभनीय सोचने में भी डर लगता है ।"

यह भारी प्रशंसा है, पर अतिरंजित नहीं है । किन्तु गोखले को यह चतुर संदेह था कि भारत से लम्बे समय बाहर रहने के कारण गांधीजी ने भारतीय जीवन के कुछ पहलुओं को शायद आदर्श का जामा पहना दिया है और इसलिए उसका परिमार्जन करने के लिए उन्होंने सलाह दी कि वह एक साल देश का भ्रमण और निरीक्षण करें । इस सलाह का गांधीजी ने अक्षरशः पालन किया । गोखले ने शायद यह उम्मीद की थी कि गांधीजी भारत-सेवक-समिति में उनके उत्तराधिकारी बन सकेंगे, किन्तु गांधीजी ने अपनी पुस्तिका 'हिन्द स्वराज्य' में जो उग्र विचार प्रकट किये थे, उस पर गोखले प्रकटतः परेशान हुए । यह पुस्तिका ज़ब्त कर ली गई थी । यद्यपि देश की सेवा और कठोरतापूर्वक कर्तव्यपालन के बारे में दोनों नेताओं में मौलिक एकता थी, किन्तु गोखले ब्रिटिश उदारवाद की दीक्षा प्राप्त विधानवादी थे और गांधीजी थोरो और टॉलस्टाय से प्रेरित उग्र क्रान्तिकारी । स्पष्ट ही उनके मार्ग बिल्कुल एक नहीं हो सकते थे । गांधीजी ने भारत-सेवक-समिति के सदस्यों की भावना को समझा और उन्हें परेशानी में न डालने का निश्चय किया । यह उनकी कोमलता और उदारता थी कि वह उस संस्था में शामिल नहीं हुए, कारण अपने जीवन के उस काल में और अपने निश्चित विचारों के होते हुए वह संस्था से प्रभावित होने के बदले उसे ही अपनी दिशा में मोड़ते ।

सन १९२० में होमरूल लीग के सम्बन्ध में ऐसी ही समस्या उनके सामने उपस्थित हुई और उन्होंने मुक्त भाव से इन शब्दों में मित्रों की सलाह मांगी : "उन लोगों ने मुझे होमरूल लीग में शामिल होने का अनुरोध किया है । मैंने उन्हें कहा है कि मेरे जीवन के इस समय में और अनेक मामलों में अपने निश्चित विचार होने से मैं किसी संस्था में उसकी नीति को अपना मोड़ देने के लिए शामिल हो सकता हूं, न कि उससे प्रभावित होने के लिए । इसका यह मतलब नहीं कि अब मैं नया प्रकाश पाने के लिए खुला मस्तिष्क नहीं रखूंगा । मैं केवल यह कहना चाहता हूं कि मुझे मुग्ध करने के लिए किसी भी नये प्रकाश को विशेष रूप से जाज्वल्यमान होना पड़ेगा ।"

क्या आश्चर्य कि अन्त में गांधीजी कांग्रेस में शामिल हुए और वह कांग्रेस उनकी शिक्षाओं से इतनी अभिभूत हुई कि गांधी कांग्रेस कही जाने लगी । गांधीजी और कांग्रेस एक हो गए थे ।

गांधीजी कांग्रेस अधिवेशनों की विषय समिति की बैठकों में नियमित रूप से जाते और करीब-करीब मौन बैठते । मैंने उनसे पूछा : "आप चुप क्यों रहते हैं और इन कमेटियों की कार्रवाइयों में कोई हिस्सा क्यों नहीं लेते ?" उनका उत्तर मुझे याद है : "नटेसन, स्पष्ट ही ये बैठकें और चर्चाएं मुझे प्रभावित नहीं करतीं । ये बौद्धिक और कथित शिक्षित लोगों की चर्चाएं हैं । मुझे इस संगठन में आम जनता को प्रेरित करनेवाली कोई बात नजर नहीं आती । अगर कांग्रेस का ठीक संगठन बनाना हो तो कुछ ऐसा होना चाहिए कि वह आम जनता का हृदय स्पर्श कर

(शेष पृष्ठ १७ पर)

तुमने देखे हैं ताजमहल

रामदेव आचार्य

(१)

तुमने समीपता ही पाई हर मंजिल में
तुम क्या समझो बोझिल राहों की दूरी को,
तुमने देखे हैं ताजमहल जगमग करते
तुम क्या समझो बिन-मोल बिकी मजदूरी को !

रंगीन शमाओं ने तुमको दुलराया है,
तुमको बहलाया है फूलों ने, कलियों ने,
चंचल चितवन ने चकित किया चंचलता से
तुमको भरमाया है रूमानी गलियों ने।

तुमने केवल आदर्शों के शुक-पाठ किये
तुमने यथार्थ के कड़े घूंट को पिया नहीं,
तुमने सहलाये कुंतल शोख कल्पना के
तुमने दिल के रिसते घावों को सिया नहीं।

तुमको जीवन से मिले छलकते पैमाने
तुम क्या समझो आंसू-भीगी मजबूरी को !

(२)

हर नये क्षितिज ने तुम्हें दिये उपहार नये
हर पगडंडी को दीपित किया चांदनी ने
हर नई मोड़ पर तुम्हें मिली मनुहार नई,
हर चौराहे पर स्वागत किया रोशनी ने !

तुमने केवल बहते झरनों के गीत सुने,
सागर में उठते गिरते ज्वार नहीं देखे,
है तुम्हें रिझाया घूंघट डाल घटाओं ने,
तुमने बिजली के खर श्रृंगार नहीं देखे !

है तुम्हें मुबारक अर्थ-हीन हर नई सुबह
तुम क्या समझो बेबस संध्या सिंदूरी को !

हमारी सर्वमंगल विदेशनीति

हरिभाऊ उपाध्याय

हमारी स्वतन्त्रता के देवता, अहिंसा के पुजारी, शान्ति के अग्रदूत महात्माजी की अकाल-मृत्यु के बाद हमने दो लड़ाइयां लड़ीं। एक हमारे महान् नेता, पंचशील के आधुनिक प्रवर्तक नेहरूजी के नेतृत्व में चीन के साथ; दूसरी अभी हमारे वर्तमान प्रधानमन्त्री के शासन-काल में पाकिस्तान के साथ, जो अभी चल ही रही है। जिस समय हमारी पहली स्वतन्त्र सरकार बनी तब शायद ही किसीने सोचा हो कि हमें जल्दी ही किसी पड़ोसी से भारी लड़ाई लड़नी पड़ेगी। हमें अपने विकास की भी बहुत चिन्ता थी। हम शान्तिवादी भी थे और हैं। हमारे प्रधानमंत्री उच्चमना, आदर्श-प्रेमी, विशाल हृदय मानव थे। इन कारणों से हमने, किसी युद्ध की आशंका को मन में स्थान न देते हुए, केवल विकास-योजनाओं की पूर्ति का ही ध्यान रखा। बजट में रक्षा-योजनाओं के लिए कोई खास धन-राशि नहीं रखी जाती रही। बल्कि उसको अनावश्यक समझते रहे। यह सब हमारी पंचशील की तथा शान्त की रीति-नीति के अनुकूल ही हुआ। परन्तु जैसे ही चीन ने, जिसे हमने अपना भाई कहा था, जिससे हमारे सांस्कृतिक सम्बन्ध सैकड़ों वर्षों से चले आ रहे थे, जिसे हमारे महामना नेहरूजी ने एशिया के नेतृत्व में काफी आगे बढ़ाया, जब एकाएक हमला कर दिया तो हम मानों नींद से जग पड़े और रक्षा की तैयारी में लग गए। चीन एक हद के बाद, पीछे हटा; परन्तु हमें अपने देश की सीमा-रक्षा तथा सुरक्षा के लिए जगा गया। हमने जी-जान से तैयारी शुरू की——साथ ही पाकिस्तान से भी आशंका होने लगी। और अन्त को वह सत्य ही सिद्ध हो गई। पाकिस्तान ने जिस छल-बल और धूर्तता से लड़ाई चलाई, उस पर हमें विशेष दुःख है; क्योंकि वह हमारा ही अंग था, कल तक हिन्दुस्तान था, कट-छंट कर अलग हो गया। दोनों जगह की जनता एक ही है सिर्फ राज्यान्तर हो गया——एक प्रशासनिक सीमा-रेखा बीच में खिंच गई। पाकिस्तान अक्सर छेड़खानी करता रहता था; परन्तु ऐसी गंदी लड़ाई हमें उसके साथ लड़नी पड़ेगी, इसका अन्दाज कइयों को नहीं था; लेकिन वह भी होना ही था——यहां भी हमारे जवानों ने कोई कसर नहीं रखी, आखिर पाकिस्तान के दांत खट्टे हो गये। छेड़छाड़ अब भी उसकी तरफ से चल रही है।

इन कुछ अनुभवों से भारत की विश्वासशील, मैत्रीभाव-पूर्ण, आत्मा को बड़ा धक्का लगा। और उसके दिल में यह विचार जम गया कि हमें चारों ओर अपनी सीमा-रक्षा की सुव्यवस्था करनी ही होगी——चाहे जो भी कीमत उसकी चुकानी पड़े। यह स्वाभाविक था।

अब चारों ओर से दबाव पड़ रहा है कि काश्मीर के मामले में पाकिस्तान से बात की जाय। हमने तय कर लिया है——बार-बार ऐलान किया है कि काश्मीर सब तरह भारत का अविभाज्य, अभिन्न अंग है और उसके बारे में कोई बात नहीं हो सकती। इधर इन दिनों लड़ाइयों से भारत का मानस युद्धमय होता जा रहा है। मानों युद्ध नित्य धर्म हो। आज की वास्तविकता की दृष्टि से यह सब सहज, स्वाभाविक है——इसमें दो राय नहीं हो सकतीं। घोर अहिंसावादियों ने चीन से भी अधिक इस समय, पाकिस्तान के साथ लड़ाई का पूरी तरह समर्थन किया। परन्तु जैसे-जैसे सुलह की और समझौते की बातें आगे बढ़ती जाती हैं, उसके अनुकूल वातावरण बनता जा रहा है, वैसे-वैसे इस बात पर चर्चा होने लगी है कि क्या काश्मीर पर बात करने का दरवाजा बिल्कुल ही बन्द कर देना वाजिब है? क्या दिन-रात धुंआधार प्रचार के द्वारा स्थायी युद्ध मानस बनाना ठीक है, क्या पाकिस्तान के रास्ते——द्वेष-प्रचार——हमारा जाना हमारी रीति-नीति के अनुकूल होगा? क्या राजनीति और प्रशासन में किसी

बात को पत्थर की लकीर बना देना या समझ लेना बुद्धिमानी है ?

चीन की लड़ाई के समय में एक-दो को छोड़कर प्रायः सब विदेशी राष्ट्र हमारे समर्थक थे, इस बार बहुतेरे हमारे विरोधी, कुछ दबे-छिपे कुछ सीधे-खुले, रहे। अब कुछ-कुछ अनुकूल होते जा रहे हैं; परन्तु अब भी उनकी भीतरी मन्शा के बारे में हम विश्वास-पूर्वक कुछ नहीं कह सकते। यह देखकर कुछ लोगों ने यह आवाज उठाई और बुलन्द की है कि हमारी विदेश-नीति में फर्क करना चाहिए। तटस्थता की नीति छोड़कर उन राष्ट्रों से मित्रता की नीति रखनी चाहिए, जो हमारे सहायक हुए हैं, तथा उनसे नाता तोड़ देना चाहिए, जिन्होंने हमारा विरोध किया है, या पाकिस्तान को सहायता दी है।

इन सब प्रश्नों पर हमें गम्भीरता से विचार करना चाहिए। पहले हम काश्मीर के प्रश्न को लें। यह सही है कि वैधानिक या कानूनी दृष्टि से काश्मीर भारत में मिल चुका है, और इस स्थिति पर कोई कानूनी ऐतराज नहीं किया जा सकता। पर अभी तक यह सर्वमान्य सिद्धान्त या नीति चली आ रही है कि युद्ध में जिस भाग पर जिसका कब्ज़ा हो जाता है, वह उसीका हो जाता है—यदि बाद में समझौते-सुलह के द्वारा जो कुछ भी फैसला हो जाय, नहीं तो हमेशा के लिए वह विजित प्रदेश जेता का हो जाता है। आजाद काश्मीर आज हमारी सिद्धान्त की वजह से पाकिस्तान का अंग बन रहा है। अब यदि लड़ाई में हारकर इस स्थिति को स्वीकार करते हैं तो, समझौते से इसे मानने में क्यों आपत्ति होनी चाहिए। समझौता वाग्युद्ध का फल है, इसमें जो प्रमाण और दलील में हार गया, वह जेता की बात को मान लेता है। यदि इसका कोई जवाब नहीं है तो फिर हमारा यह कहना और कहते रहना कि हम काश्मीर के बारे में कोई बात ही किसी से नहीं करना चाहते—कहां तक युक्तिसंगत या ग्राह्य है ? मुझे तो पहली बात—शस्त्र बल से जीते प्रदेश पर जेता का कब्ज़ा रहने की नीति अलबत्ता आपत्तिजनक मालूम होती है। आपस के समझौते से किसी वस्तु को मान लेना उतनी आक्षेप-योग्य न होनी चाहिए।

युद्ध-मानस के प्रश्न पर तो अधिक चर्चा की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए। जो इस समय जोश या क्रोध में, बदले की प्रतिप्रहार की उमंग मे खूंखार युद्ध के हामी हैं, शत्रु का खून पीने के लिए उतावले और मतवाले हो रहे हैं, वे भी शायद यह नहीं चाहते कि नित्य दो दफा भोजन और दो दफा चाय-पान की तरह युद्ध-ही-युद्ध भारत के जीवन में सर्वोपरि हो जाय; हमारा बच्चा सुबह उठते ही भगवान् का नाम, या कोई मंगलाचरण करने की जगह लड़ाई, हमला, बचाव, रक्तपात, की ही माला जपता रहे। सब कोई मानेंगे और मानते हैं कि युद्ध किसी राष्ट्र का, किसी समाज का, किसी दल का, कभी नित्य धर्म नहीं हो सकता, न पृथ्वी पर आज तक हुआ है, न होगा। सभी कालों में, सभी देशों में, सभी राष्ट्र-नेताओं ने, इसे युगधर्म या आपद्धर्म माना है। इसका अर्थ यह है कि जबतक वह धर्म है, तबतक वह शान्ति-धर्म या विकास-धर्म की तरह ही, बल्कि उससे भी अधिक आचरणीय धर्म है; परन्तु उसकी आवश्यकता समाप्त हो जाने पर, वह धर्म नहीं रह जाता है, अधर्म ही हो सकता है। आपको बुखार आया, हैज़ा हो गया, यह युगधर्म, विशेष धर्म, आपद्धर्म, का अवसर है। इसमें सब बातों को, स्वास्थ्य-काल की सब चीजों को, एक ओर रखकर पहले रोग का उपचार जी जान से, एक निष्ठा से, करना पड़ता है, करना आवश्यक है; परन्तु बुखार या हैज़ा ठीक हो जाने पर, फिर हम अपने साधारण नियम, जीवन पर आ जाते हैं। अलबत्ते घर में या नगर में यह व्यवस्था जरूर रखनी चाहिए कि फिर रोग का दौर होने पर उसकी चिकित्सा और उपचार तुरन्त हो जाय। इसी तरह हमने शान्ति को अपना साधारण जीवन माना है, जगत में हमने उसका नारा बुलन्द किया है, जगत उसे धीरे-धीरे अपनाता भी जा रहा है; बड़े-बड़े युद्ध-प्रभु उसकी उपयोगिता और श्रेष्ठता बल्कि अनिवार्यता को भी समझते जा रहे हैं तो फिर उसे, इस क्षणिक आपत्ति के कारण, कैसे छोड़ सकते हैं, छोड़ भी नहीं रहे हैं। हमने, हमारे नेताओं ने, हमारे राष्ट्रपति और प्रधानमंत्रीजी ने, बार-बार हमें इस बात की याद दिलाई है कि युद्ध से प्रश्न हल नहीं होते, हमें अन्त में शान्ति की ही स्थापना करनी है—हमें सुलह-शान्ति का कोई अवसर आवे तो उससे कतराना नहीं है। यह सही नीति है। बल्कि मैंने तो गांधीजी को देखा है कि वह युद्ध या संग्राम-काल में भी इस टोह में रहते थे कि सुलह का मौका मिलते ही सुलह कर लें। बल्कि

लड़ाई लड़ते हुए भी, दूसरे तटस्थ व्यक्तियों को प्रेरित करते रहते थे कि मैं लड़ाई के लिए लड़ाई थोड़े ही लड़ रहा हूं, मजबूरी से, और और कोई उपाय न देखकर लड़ता हूं, पर तुम क्यों बैठे हो—या तो मेरा साथ दो, या सुलह का रास्ता खोजो, क्योंकि अन्त में सुलह हमारा ध्येय है न कि लड़ाई। लड़ाई न्याय-प्राप्ति का एक साधन है। हार-जीत नहीं, न्याय-प्राप्त करना हमें इष्ट होता है। उसका साधन, परस्पर बातचीत है, न कि युद्ध। जयप्रकाशबाबू ने ठीक ही कहा है कि हमें युद्ध उन्माद से बचना चाहिए। युद्ध अनिवार्य हो, उचित हो, धर्म हो, तो भी उसका उन्माद हमें अपने लक्ष्य से दूर फेंक सकता है।

अब रही बात हमारी विदेश नीति की। हमारी विदेश नीति एक शब्द में कही जाय तो 'पंचशील' है। इसका उद्देश्य अहिंसा और शान्ति के सिद्धान्त में से हुआ है। हम अपने घर में स्वतंत्र, निर्भय, अदम्य, रहना चाहते हैं—दूसरों को अपने घर में स्वतंत्र, निर्भय, अदम्य रहने देना चाहते हैं। हमारे पारस्परिक सहयोग, शान्ति, मित्रता की यह भूमिका है। "यस्मान् नो छिजते लोकोलोकान्न छिजते जयः" "परोपकारः पुण्याय पापाय पर पीड़नम्" "सत्यमेव जयते" "अहिंसा परमो धर्मः" आदि मार्ग-दर्शक अभिवचनों के संस्कारों ने हमें इस नीति पर चलने की प्रेरणा की है। हमारी नीति केवल स्वार्थपरक नहीं है, जैसी कि इंग्लैंड आदि की है कि पहले हम अपना स्वार्थ देखेंगे—बल्कि अपने ही स्वार्थ-सिद्धि या रक्षा की दृष्टि से दूसरी सब चीज़ों को देखेंगे। स्वार्थ-रक्षा तो हमें भी करनी है, परन्तु हम दूसरों को हड़पकर, सताकर नहीं करना चाहते। हमारे सामने लक्ष्य है—"सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयः। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चित् दुःख भाग् भवेत्" संपत्काल हो या विपत्काल हो—हम अपने को इस नाप से नापना चाहते हैं, दुनिया को भी हमने अपना यही कांटा दिया है कि हमें तौलती रहे। इसीको मद्देनज़र रखकर हमने दूसरे देशों को स्वतंत्र होने में सहारा लगाया है। जिस भी राष्ट्र या देश को दूसरे पर अनुचित दबाव, या पक्षपात करते देखा है, हमने उसका निषेध किया है। इसके आधार पर हम सभी देशों से मित्रता चाहते हैं—किसीसे हम छेड़छाड़ नहीं करते। सिर्फ दोनों की सामान्य समस्याओं पर मिलजुलकर बातचीत करके निपटारा किया है और करना चाहते हैं। जिनसे आज हमारी लड़ाई है, उनसे भी हम शान्ति और समझौता से ही रहना चाहते हैं। उनकी धौंस, ज्यादती, सहन नहीं करना चाहते। हमारे राष्ट्रीय सम्मान, आत्म-गौरव को, हमारी प्रभुसत्ता, अखण्डता की कीमत पर हम कुछ भी नहीं करेंगे, न किसी को करने देंगे। इसमें हम कहां गलती कर रहे हैं, इससे हमें क्या हानि हुई है, जो इस नीति को बदलने पर जोर दिया जा रहा है। अमरीका और रूस दोनों की विचार-धारा नहीं मिलती; परन्तु दोनों हमारी सहायता कर रहे हैं। वे न भी करें, तब भी हमें अपने पांवों पर खड़ा रहना ही चाहिए—यह बात अलग है। उनकी या किसी भी बाहरी शक्ति की खुशामद करके हम कुछ नहीं लेना चाहते, नहीं लेना चाहिए। जो वाजिब बात मानता है काम करता है, उसका साथ दें, जो गैरवाजिब करें उसका विरोध करें—इसमें कहां दोष है? जो हमारी मदद करे वह हमारा मित्र, जो विरोध करे, या लड़े वह हमारा शत्रु—यह धारणा भी बहुत गलत नहीं है; किन्तु यह समय-विशेष की नीति—युगधर्म—आपद्धर्म हो सकता है, क्योंकि यह हम सबसे मित्रता के साथ रहना चाहते हैं, हम सबको अपना मित्र बनाना चाहते हैं, इस नीति से टकराता है। आखिर शत्रुता भी तो हमारी शान्ति-नीति के मार्ग की एक मंजिल है। कोई आज शत्रु है तो कल मित्र बनेगा—हमें ऐसा प्रयास करना चाहिए, ऐसी हवा पैदा करना चाहिए कि जिससे वह मित्र बन जाय। इस समय हमारा झगड़ा मुख्यतः चीन और पाकिस्तान से हो गया तो हमने झगड़ा नहीं खड़ा किया। चीन को हमने भाई बनाया। पाकिस्तान से अभी-अभी कच्छ में, कुछ वर्षों से ही सही, लेकिन एकसमझौता किया। यह हमारी वैदेशिक नीति के अनुकूल ही था; परन्तु उन्होंने दगाबाजी की, अचानक हमला कर दिया, तो हमने उसी तत्परता और दृढ़तासे उसका मुकाबला भी किया और कर रहे हैं। सबसे मित्रता की नीति रखते हुए भी, यह स्वाभाविक है कि किसीसे हमारी तटस्थता हो, किसी से साधारण मित्रता, किसी से घनिष्टता, किसीसे लगभग अभिन्नता। हमारे परिवार में, समाज में भी यही होता है। हो सकता है कि हमारी रूस या अमरीका से घनिष्टता हो, ब्रिटेन से उतनी न हो। यह पारस्परिक

व्यवहार, सद्भाव, सहयोग आदि कई बातों पर आधारित है और रहेगा। परन्तु इससे हमारी मूल नीति में फरक नहीं पड़ सकता——नहीं पड़ना चाहिए। हमारी अमरीका या रूस से मित्रता, यदि हमें चीन या पाकिस्तान या लंका से मित्रता करने में रोकता हो तो हम उसे नहीं मानेंगे। इनसे मित्रता न रखने या होने के दूसरे स्वतंत्र कारण हों——यह बात दूसरी है, परन्तु एक की मित्रता का आवश्यक परिणाम यह हो कि दूसरा अपने-आप हमारा शत्रु हो जाय—यह नीति-रीति गलत है। थोड़े समय के लिए हमें ऐसा व्यवहार किसीके साथ करना भी पड़े——तो यह बात दूसरी है, परिस्थिति विशेष में वह हमारा रुख हो सकता है, जैसाकि चीन से हमें लड़ना ही पड़ा, पाकिस्तान से लड़ने पर मजबूर होना ही पड़ा—परन्तु यह नैमित्तिक कार्य हुआ——नित्य धर्म नहीं। इसलिए, आज की परिस्थिति में, यदि इस बात का आग्रह किया जाय कि हम किसीके अधिक नजदीक जायं, घनिष्टता प्राप्त करें, तो इसमें ऐतराज की कोई बात नहीं है। यह हमारी वर्तमान विदेश नीति के अन्तर्गत बिल्कुल किया जा सकता है, और हमारे स्वार्थ या हित की दृष्टि से इतना ही काफी भी है, परन्तु स्थायी रूप से किसी गुट में मिल जाना और परिणामतः अपने आप दूसरों को अपना शत्रु बना लेना किसी भी दशा में हमारे भीतरी और बाहरी दोनों हितों के अनुकूल नहीं हो सकता। अतः जो इस प्रश्न को उठाते हैं, उनकी दृष्टि संकुचित, महज निकट-दर्शी है। आज के लाभ की दृष्टि से कल को खतरा पहुंचाना हमारे लिए उचित न होगा। किसीके भी लिए यह हितकारी नहीं होगा। आज की समस्या हल करते हुए हमें यह ध्यान में रखना ही चाहिए कि कल को इससे बड़ी उलझन, मुसीबत न पैदा हो जाय।

हमें खुशी है कि इस समय हमारे राष्ट्रपति और प्रधान मंत्री दोनों देश की भीतरी और बाहरी दोनों हितों की रक्षा बड़ी सावधानी, दूरदर्शिता, सद्भावना और दृढ़ता से कर रहे हैं। हमारे महान् नेता स्व० नेहरूजी ने भारत का मान विदेशों में——सारे संसार में बढ़ाया, हमारे वर्तमान राष्ट्र-नेता हमें भीतरी एकता, दृढ़ता, संगठन की ओर ले जा रहे हैं। इससे बढ़कर सन्तोष की बात और क्या हो सकती है? एक ओर से हमारी सेना, दूसरी ओर से हमारी पचरंगी जनता, दोनों ने राष्ट्र की मुट्ठी इस मजबूती से बांध रखी है कि दुनिया की कोई ताकत, ताकत के घमण्ड में, उसे नहीं खोल सकती। इस नीति में, इस नेतृत्व में, भारत सब तरह सुरक्षित है—विकासशील, प्रगतिशील रहेगा—— इसका हमें अखण्ड विश्वास है।

●

(पृष्ठ १२ का शेष)

सके; एक नई और प्राणवान शक्ति का उदय होना चाहिए।"

सब जानते हैं कि गांधीजी के कांग्रेस में शामिल होने के बाद किस प्रकार यह कल्पना साकार हुई। उन्होंने चवन्नी सदस्यता जारी की और कांग्रेस के अधिवेशन गांवों में हुए और उनमें ग्रामीणों को बड़ी संख्या में भाग लेने की सुविधा दी गई।

गांधीजी की एक सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि उनका हृदय दुर्भावना मुक्त था। उन्होंने बहुत सहन किया, किन्तु अनेक मुकदमों और जेल-यात्राओं ने उनमें कटुता पैदा नहीं की। दूसरा गुण यह था कि वह अपने से भिन्न दूसरों के विचारों के प्रति स्वभाव से सहिष्णु थे। वह अपने विचार पर इतनी दृढ़ता से डटे रहते थे कि उनके मित्र और साथी भी आसानी से समझ नहीं पाते थे, किन्तु उन्होंने दूसरों के अपनी राय रखने के अधिकार को कभी चुनौती नहीं दी। एक असाधारण सार्वजनिक जीवन के उतार-चढ़ाव के दौरान में उनके अनेक साथियों ने वैचारिक मतभेदों के कारण उनका साथ छोड़ा। उनके कुछ साथी विरोधी दलों में भी शामिल हुए। किन्तु उनके साथ गांधीजी के मधुर सम्बन्धों में कोई अन्तर नहीं आया। मैंने स्वयं कभी यह नहीं छिपाया कि उनकी शिक्षाओं अथवा उनके सार्वजनिक नीति सम्बन्धी कुछ पहलुओं से मेरा मतभेद है। किन्तु इससे एक पुराने मित्र के प्रति उनकी अविचल मैत्री भावना में कोई फर्क नहीं पड़ा। वह मेरे घर को अपना 'पुराना घर' कहते थे और थोड़े समय के लिए मद्रास आते और बहुत व्यस्त होते तो भी उस घर में आने का समय निकाल लेते। गांधीजी की निगाह में उस आदमी की कीमत कम हो जाती थी, अगर कोई उनके लिहाज़ से अपने विचारों को दबाने या छोड़ने की कोशिश करता था।

●

आधुनिक काव्य पर गांधीवादी प्रभाव

हरीश 'मधुर'

साहित्य की गति-धारा एक ही पथ पर अक्षुण्ण होकर नहीं चलती। समय-समय पर उसमें मोड़ आते रहते हैं और कभी-कभी तो इन मोड़ों का प्रभाव इतना व्यापक होता है कि साहित्यिक जीवन ही परिवर्तित हो जाया करता है। वर्तमान हिन्दी साहित्य की क्षिप्र प्रगति एवं विकास में अनेक शक्तियों ने गतिवर्द्धन का काम किया। उसमें महात्मा गांधी का प्रमुख हाथ रहा है। कर्मवीर गांधी ने सत्याग्रह और असहयोग द्वारा राष्ट्रीय जीवन को एक निश्चित क्रान्ति-योग दिया। गांधीजी की सबसे बड़ी देन, जो भारत और उसके स्वातंत्र्य आन्दोलन को है, वह यही कि उन्होंने स्वतंत्रता की आग को अभिजात वर्ग से लेकर अखिल जन-जीवन में फैला दिया। वर्ग आन्दोलन उन्हींके दिशा-निर्देश में जन-आन्दोलन बना। उन्होंने राष्ट्रीय मंचों की ध्वनि को जन-ध्वनि बताकर जनता को अपने साथ मर-मिटना सिखलाया। 'राष्ट्रपिता' में स्वर्गीय श्री जवाहरलालजी ने कहा है, "वह एक शान्त और धीमी आवाज थी, लेकिन जन-समुदाय की चीख से ऊपर सुनाई देती थी। वह आवाज कोमल और मधुर थी, परन्तु उसमें कभी-कभी फौलादी स्वर छिपा दिखाई देता था। उस आवाज में शील था और वह हृदय को छू जाती थी। फिर भी उसमें एक ऐसा तत्त्व था, जो कठोर भय उत्पन्न करनेवाला था। उस आवाज का एक-एक शब्द अर्थपूर्ण था और उसमें एक तीव्र आत्मीयता का अनुभव होता था। शान्ति और मित्रता की उस भाषा में शक्ति और कर्म की कांपती हुई छाया थी और था अन्याय के सामने सिर न झुकाने का संकल्प।"

महात्मा गांधीजी के अफ्रीका से लौटने के बाद ही सिन्धु की लहरों के साथ महा- मानव के रूप में उनकी कीर्ति स्वदेश के वातावरण में गूंजने लगी थी। राष्ट्रवीर महात्मा गांधी को खंड-काव्य का नायक स्वीकार करते हुए गोपालचन्द्र शर्मा ने लिखा है—

"उनका हृदय मानवीय प्रेम का पारावर है, परमात्मा में उनकी अविचल और अनन्य श्रद्धा है। वह सत्य के सेवक हैं। सेवा के सिपाही हैं। धर्म ही उनकी ध्वजा है। सत्याग्रह ही उनका अमोघ अस्त्र है। आत्मबल ही उनका तेजोमय तनत्राण है। वह निर्भयता की मूर्ति हैं, सहिष्णुता के सह्याद्रि हैं। दया के अवतार हैं। नम्रता के नीरनिधि हैं और पतितों के प्राणाधार हैं। उनके मत में घृणा का प्रतिकार प्रेम है। पराजय शब्द उनके कोश में नहीं। वह संयमशील हैं, कर्मवीर हैं, मातृभूमि के भक्त हैं, स्वतंत्रता के उपासक हैं।"

ऐसे महात्मा गांधी के प्रभाव से हिन्दी साहित्य कैसे अछूता रह सकता था। उनके तेजोमय व्यक्तित्व से साहित्य-सागर में भी ज्वार उठा और उसने जिन अमिट चिह्नों को इतिहास के धरातल पर अंकित किया, वे निम्न हैं। उनका समकालीन युग तो उससे प्रभावित रहा ही है, पर भावी युग भी उस पग-ध्वनि के स्वर सुन अपने को कृतार्थ मानेगा, इसमें सन्देह नहीं ! तभी तो गांधी को वर्तमान संघर्षशील युग का राम और कृष्ण माना है। स्वयं चरितनायक को देवत्व देते हुए कवि का कहना है—

गांधी तुम्हारी टेक किस, अविवेक को न विवेक है ?
श्रीराम के वनगमन से क्या, प्रिय अधिक अभिषेक है ?

और साथ में सत्याग्रह के विजयघोष द्वारा आततायियों को भारतभूमि से खदेड़ने का संकल्प भी—

है शक्ति सत्याग्रह अमोघ, अजेय है, अविवाद है।
इस विश्व में विश्रुत रहा, इसका सदा जयनाद है॥

दूसरी ओर 'निःशस्त्र सेनानी' की अविचल साधना के व्यक्तिकरण के लिए 'एक भारतीय आत्मा' को भागवत की कथा से प्रेरणा मिली है जहां भारतमाता द्रौपदी हो गई और मोहनदास गांधी हो गए—

यह प्रियतम भारत देश,
सदा पशुबल से जो बेहाल।
वेश? यदि वृन्दावन में रहे—
कहा जावे प्यारा गोपाल।
द्रोपदी, भारत मां का चीर,
बढ़ाने दौड़े यह महाराज।
मान लें, तो पहचाने लगूं—
मोर पंखों का प्यारा ताज!

कवि की आत्मा में गीता का ज्ञान सदैव प्रज्वलित रहा है, तभी तो मोहन के मुंह से 'भारतीय आत्मा' ने उन्हीं शब्दों का उद्घोष कराया है, जिन्हें 'गीता' के अमर ज्ञान के रूप में देकर विश्व को ज्ञानसरिता का द्वार खोल दिया है। गांधीजी किसी भी प्रकार द्वापरयुगीन कृष्ण से कम नहीं—

'देह' ?—प्रिय यहां कहां परवाह,
टंगे शूली पर चर्म क्षेत्र!
'गृह' ?—छोटा सा हो तो कहूं,
विश्व का प्यारा धर्मक्षेत्र!
शोक?—वह दुखियों की आवाज़,
कंपा देती है मर्म क्षेत्र!
हर्ष भी पाते हैं ये कभी?
तभी जब पाते कर्मक्षेत्र!

यहां जहां हमें 'धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे' की याद दिलाता है, वहां कृष्ण के ये शब्द न्याय के पक्ष में निःशस्त्र रहने का संकल्प दुहराते हैं—

लपकती हैं लाखों तलवार, मचा डालेंगी, हाहाकार,
मारने मरने की मनुहार, खड़े हैं बलि-पशु सब तैयार!
किन्तु क्या कहता है आकाश? हृदय! हुलसो यह सुन गुंजार,
पलट जाये चाहे संसार न लूंगा इन हाथों हथियार!
उधर वे दुःशासन के बन्धु, युद्ध भिक्षा की झोली हाथ,
इधर से धर्म-बन्धु जयसिन्धु, शस्त्र लो, कहते हैं दो साथ!

इस प्रकार गांधी के नेतृत्व में स्वतंत्रता आन्दोलन ने एक मोड़ लिया। उसमें जीवन आया, चेतना आई। सारे राष्ट्र की भावनाएं एक होकर गूंज उठीं, केवल एक इस आह्वान पर—

असहयोग आन्दोलन की समर भेरी बजा दीजै!
निडर हो द्वेषियों को शक्ति, अब अपनी दिखा दीजै।
स्वशासन कौन देता है, खुशी से, पैर पड़ने से,
अगर हो हिम्मते मरदां तो कब्जा खुद जमा लीजै।

और भारत का बच्चा-बच्चा सत्याग्रही वीर बन बापू के पदचिह्नों पर जैसे प्रतिज्ञा कर स्वयं दौड़ पड़ा—

चलो हम आहुति दे दें प्राण, न होगा कर्मयज्ञ बिन त्राण,
करें कल्याण राष्ट्र निर्माण, ध्वनित हो वन्देमातरम् गान!
करें तन मन धन बलिदान, सुदृढ़ तेंतीस कोटि सन्तान,
पूर्ण हो विजय यज्ञ भगवान, जपेंगे जयजय-मंत्र महान्!

इस आत्म बलिदान में बरसों से सुलगी आग ठंडी हो गई। हिन्दू और मुसलमान जो एक-दूसरे के खून के प्यासे थे अब आंखों के तारे होगए, यह उसी तेजोमय व्यक्तित्व का प्रभाव है। उस कृष्ण का जिसे कौरव नरेश भी अपनी शक्ति का आधार मानता था। साम्प्रदायिक एकता की जो भावना बही, उसने राष्ट्र को नवीन शक्ति दी—

हिन्द माता की दोनों आंख, 'नाक' को रखकर बीचोंबीच,
अश्रु की उज्ज्वल धारा छोड़, प्रेम का पौधा देवें सींच।
मुहम्मद पर सबकुछ कुर्बान, मौत के हों तो हों महमान,
'कृष्ण' की सुन मुरली की तान, चलो हों सब मिलकर बलिदान।

इस प्रकार एकता, न्याय धर्म, सत्य और अहिंसा के बल पर 'बापू' ने क्रान्ति का उद्घोष किया था। युगों से चली आई हिंसक क्रान्ति की परम्परा को कच्चे सूत के समान गुंफित कर 'युग सत्य' के रूप में अहिंसा का उद्घोष कर विश्व इतिहास में एक नया अध्याय जोड़ दिया। साथ ही आत्मविश्वास और बलिदान की महती भावनाओं का सच्चा स्वरूप दिखाते हुए कहा—

हे माता वह दिन कब होगा, जब तुझपर बलिबलि जाऊंगा,
तेरे चरण सरोजों पर मैं निज मन सुमन चढ़ाऊंगा?
कब सपूत कहाऊंगा

और—

खुला कहते हैं हम यह आज स्वराज्य लेंगे, स्वराज लेंगे।
करेंगे न आवाज़ मध्यम, स्वराज लेंगे स्वराज लेंगे॥

इसी आत्मविश्वास पर सत्याग्रही स्वतंत्रता के आह्वान के लिए संकल्प होते हैं—

सत्य का झंडा लेकर वीर, चलेंगे श्रीचरणों के साथ,
पहिनकर प्रभापूर्ण प्रियचीर, देवि अब आओ करो सनाथ!

गांधीजी के दो आधारभूत सिद्धान्त रहे हैं—सत्य और

अहिंसा ! सत् वह है जो अखंड और एक रस है, जिसके अतिरिक्त किसीका अस्तित्व नहीं है, तभी गांधीजी ने कहा है, 'इसीलिए परमेश्वर का सच्चा नाम सद् अर्थात् सत्य है।' जब विश्व के सभी मानव एक ही तत्त्व (सत्य) से अनुप्राणित हैं तब सबका अस्तित्व समान है। उन्होंने कहा है, 'मैं ईश्वर की और इसीलिए मानव की नितान्त एकता में विश्वास करता हूं।' इस प्रकार गांधीजी के सत्य के दो व्यावहारिक रूप जगत के सम्मुख आये। पहला विश्व के समस्त प्राणियों के प्रति समभाव ! हम सभी एक सत्य के अंश हैं फिर धर्म, जाति, वर्ग, लिंग, राष्ट्र के भेदभाव मात्र हमारे हृदयों के विकार हैं। दूसरे, एक चेतन का दूसरे चेतन पर अनिवार्य प्रभाव, क्योंकि, मनुष्य का जीवन उसी आत्मा की क्रिया है जो चराचर में अनुस्यूत है। उन्होंने कहा है, "जो घटना एक शरीरधारी पर घटती है उसका समग्र जड़-पदार्थ पर और उसकी आत्मा पर प्रभाव पड़ता है। यही कारण है कि यदि एक मनुष्य का आध्यात्मिक विकास होता है तो उससे सारे संसार को लाभ होता है और यदि एक मनुष्य का पतन होता है तो उस अंश में सारे संसार का पतन होता है।"

अहिंसा सत्य का दूसरा रूप है, अर्थात सत्य का भाव पक्ष है। केवल हिंसा का या व्यापक अर्थों में द्वेष का नाशमात्र ही अहिंसा नहीं है, क्योंकि इस प्रकार उदासीन पक्ष अपनाकर विश्व-कल्याण की भावना का समायोजन कैसे हो सकता है। अतः अहिंसा का वास्तविक रूप है समग्र प्राणिमात्र के लिए प्रेम की भावना, क्योंकि सारा विश्व एक ही सत्य से अनुप्रभावित है। यह प्रेम स्वार्थ और मोह आदि से सर्वथा मुक्त होता है। अब प्रश्न यह है इस प्रकार की अहिंसा की प्राप्ति कैसे हो ? गांधीजी ने इसके लिए सरल मार्ग बताया है अहंकार एवं दुष्प्रवृत्तियों का दमन कर आत्म-शुद्धि की ओर बढ़ना। इस प्रकार हम कठोर तप द्वारा अपनी आत्मा का अहंकार गलाकर उस विश्वसत्ता (सत्य) से तादात्म्य करने की ओर बढ़ते हैं तब निर्मल मन की प्राप्ति होती है जहां व्यक्ति कल्याण की अपेक्षा लोक-कल्याण की भावना का उदय होता है। तप से केवल अपने पाप का अपनी हिंसादिक भावनाओं का दमन नहीं होता, वरन हिंसामात्र का नाश होता है। इसीलिए गांधीजी अपने को वैष्णव मानते थे, जहां परपीड़ा के परिहार और भगवदानुग्रह पर ही भक्ति केन्द्रित रहती है। गांधीजी ने सदैव त्याग और तप को ही अपनाया है भोग की सदा भर्त्सना की है। इसी कारण उनके जीवन में लोक-कल्याण भावना गहरी जड़ें जमा सकी ! जैसाकि 'उन्मुक्त' में श्री सियारामशरणजी ने कहा है--

> हिंसा से शान्त नहीं होता हिंसानल,
> जो सबका है वही हमारा भी है मंगल !
> मिला हमें चिर सत्य आज यह नूतन होकर,
> हिंसा का है एक अहिंसा ही प्रत्युत्तर !

जिस जीवन में घृणा और पाशविकता दिखाई देती है, वह जीवन सत्य नहीं है, वह तो मिथ्या आवरणमात्र है। जीवन का सत्य स्नेह है, जिसके बल पर चराचर को जीता जा सकता है। घृणा और द्वेष की विभीषिका कुछ समय तक ही रहती है पर अन्त में माया का आवरण हट जाता है और निर्मल स्नेह के दर्शन होते हैं---

> उस सैनिक का रुधिर वहां वह हृदय विमोहन,
> नवजीवन के अरुण राग में परिवर्तित है।
> जिसे घृणा की गई उसीके लिए नमित है,
> धरणी की वह सुमन मंजरी मृदुलान्दोलित,
> स्नेह सुरभि की लोल लहर ही है उत्तेलित,
> इधर उधर सब ओर !

यह थी घृणा पर स्नेह की विजय। साथ ही गांधी-दर्शन आत्म-त्याग और बलिदान सिखाता है, उत्पीड़न और हिंसा नहीं--

> जो नर दृढ़व्रत हैं, नहीं टलते कभी निज मार्ग से,
> पद तो न बाहर जायगा, गर जायगा सर जायगा।
> दुःख दे न दुःखियों को कभी, धारण अहिंसा धर्म कर,
> यह याद रख सन्तत कभी उस ईश के घर जायगा।

लोक-कल्याण की भावना का व्यावहारिक पक्ष है 'वसुधैव कुटुम्बकम्' को जीवन में सत्य उतारना। गांधीजी के महान व्यक्तित्व से प्रभावित हो हिन्दी कवि भी इस आदर्श को जीवन सत्य के रूप में देखने लगे--

> सबके होकर रहो सहो सबकी व्यथा,
> दुःखिया होकर सुनो सभी की दुःख-कथा।
> परहित में रत रहो, प्यार सबको करो,

जिसको देखो दुखी उसीका दुःख हरो।
वसुधा बने कुटुम्ब प्रेम धरा बहे—
मेरा तेरा भेद नहीं जग में रमे !

इसी प्रकार निम्न पंक्तियों में गांधीजी की सौम्यवाणी में लोक-कल्याण की जो उद्‌भावना हुई है, वह निसर्ग रूप में सत्य है ! हिंसा वीरता का चिह्न नहीं, वरन् कायरता और पाशुविकता की निशानी है—

भय ही नहीं किसीका है जब, करें किसी पर हम क्यों क्रोध ?
जियें विरोधी भी, विरोध भी पायेगा हमसे परिशोध !
अस्त्र अपूर्व अमोघ हमारा, निश्चित है निष्क्रिय प्रतिरोध,
प्रतिपक्षी भी रण में, हम से पावें प्रेम, प्रसाद, प्रबोध !
रक्तपात वीरत्व नहीं, वह है बीभत्स–विधान !
सुनो, सुनो भारत-सन्तान !

'निष्क्रिय प्रतिरोध' एवं 'प्रेम प्रसाद' उस सत्याग्रह में पशुबल के लक्षण नहीं वरन् आत्मबल के प्रतीक हैं जिनके बल पर वे उद्‌घोष करते हैं—

मैं अमर हूं मौत से डरता नहीं, सत्य हूं मिथ्या डरा सकती नहीं,
मैं निडर हूं, शस्त्र का क्या काम है, मैं अहिंसक हूं न कोई शत्रु है।

विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार एवं आर्थिक स्वावलम्बन गांधीजी के दो प्रमुख नारे रहे हैं, जिनके बलपर भारत आजादी की ओर कदम रख सका। भूखे रहकर कहीं उच्च राष्ट्रीयता का विकास हो सकता है तभी कवियों ने कहा है—

स्वदेशी वस्त्र का स्वीकार कीजै, विनय इतना हमारा मान लीजै,
शपथ करके विदेशी वस्त्र त्यागो, न जाओ पास उससे दूर भागो।

देशी चीजों का अनुराग, विदेशी वस्त्रों का कर त्याग,
करो सभी इसका उद्धार, विनती यही पुकार पुकार !

'निष्क्रिय प्रतिरोध' की यह विचारधारा गांधीजी को लियो टॉलस्टाय से मिली, परन्तु इसे कार्यान्वित करने का श्रेय उन्हींको है। इसी नैतिक विचारधारा को उन्होंने सत्याग्रह (सत्य का आग्रह) का नाम दिया जो एक आत्मा की वृत्ति है, शरीर का बल नहीं। इसी सत्य के आग्रह का सम्बन्ध व्यापक अहिंसा से किया जो उनके अहिंसक जीवन-क्रम का आधार हो सका ! 'पशु' मनुष्य को नहीं दबा सकता वरन् मानव ही पाशविकता को मानवता सिखा सकता है, क्योंकि मानव की पशुता में मानवता सुप्त है। गांधीजी ने इसी अस्त्र से अपनी राजनीति का संचालन किया और उस समय जब स्वतंत्रता के लिए प्राणों की होली खेली और जलाई जा रही थी इस प्रकार का सशक्त स्वर उठाना आश्चर्यजनक एवं अप्रत्याशित था ! उन्हींकी विराट क्षमता थी कि उग्रवादी दल भी उनके आगे नतमस्तक हो सका। काव्य में यह राजनैतिक अहिंसावाद स्पष्टतया ध्वनित है। जिसके लिए स्वयं गांधीजी ने कहा है, "निशस्त्र प्रतिकार भारत की कई बुराइयों का एक रामबाण उपाय है। हमारी संस्कृति के अनुरूप यही एक शस्त्र हमारे पास है। हमारे देश एवं जाति को आधुनिक सभ्यता से बहुत कम सीखना है, क्योंकि उसका आधार घोर-से-घोर हिंसा पर है जोकि मानव में दैवी अभावों को सूचित करती है और जो स्वयं आत्मविनाश की ओर दौड़ रही है।" इस प्रकार सत्य और अहिंसा की संस्कृति राजनीति का प्राण बन गई थी। इस समय अहिंसावादी राजनीति से सम्बन्धित जो राष्ट्रीय भावना की कविताएँ लिखी गईं उनपर गांधीजी की स्पष्ट छाप है। किसान और मजदूरों और उनकी श्रमपूजा में विराट शक्ति निहित है इसका दर्शन भी हमें गांधीजी ने कराया, साथ ही सत्य के आग्रह पर उन्होंने भारत का सामाजिक पुनर्संस्कार भी कराया। विराट सत्ता को एक ही सत्य से अनुप्राणित बता उन्होंने हरिजन उद्धारक एवं हिन्दू-मुस्लिम ऐक्यता के सस्वर उद्‌घोष किये और कहा कि सामाजिक कायाकल्प ही राजनैतिक मुक्ति की भित्ति है। विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार कर आर्थिक स्वावलम्बन के पथ पर बढ़ना भी गांधीजी की सफलताओं में से एक है। इन सभी का प्रतिबिम्ब एवं प्रभाव हमें समकालीन कविमानस पर मिलता है। तभी तो गांधीजी के देहावसान पर करोड़ों आत्माएं सिसक उठी थीं। कविमानस से श्रद्धांजलि की अश्रु-धारा बह निकली थी। उनकी मृत्यु पर भी कवि हृदय मौन न रह सके ? भारत-जननी में एक भारतीय आत्मा की सिसकीभरी पुकार है—

मैं ही हूं, मुझ इकलौती ने अपना जीवन धन खोया,
रोने दो मुझ हतभागिन ने अपना मन मोहन खोया।

और भारतपुत्रों की राष्ट्रपिता के लिए पुकार आंखों में आंसू लादने वाली है, जिसमें कोटि-कोटि कंठों से उद्‌गत करुण उच्छ्‌वास है—

क्यों चल बसना स्वीकार हुआ , बोलो बोलो किस ओर चले ?
ये तीस कोटि किसे पावें, क्यों इन सबके सिरमौर चले ?
क्यों आर्य देश के तिलक चले, कमजोरों के सिरमौर चले ?
तुम तो सहसा उस ओर चले, यह भारतमाता किधर चले ?

और अन्त में राष्ट्रपिता को पुनः पुकारता हुआ कवि कहता है कि हे भारतीय जीवन के सर्वस्व, पुनः देश की ओर लौटो--

तुम पर सब बलि बलि जायेंगे, हे दानव घालक लौट पड़ो,
भावों के फूल चढ़ावेंगे, हे भारत पालक लौट पड़ो !
दु:खियों के जीवन लौट पड़ो, मेरे घन गर्जन लौट पड़ो,
जसुदा के मोहन लौट पड़ो, सित काली-मर्दन लौट पड़ो !

इस प्रकार हमें आधुनिक हिन्दी कविता में सर्वत्र गांधीवाद के दर्शन होते हैं। काव्य पर गांधीजी का गहरा प्रभाव पड़ा है, जिससे धारा ही बदल गई है। सत्याग्रह के समय की कविता में उदान्त उत्साह और जीवन है, जिससे उत्कट राष्ट्रवाद की प्रेरणा और प्राणोत्सर्ग की स्फूर्ति उद्बुद्ध होती है।

●

(पृष्ठ ९ का शेष)

चाहिए। खतरे के समय वह उउच्चकोटि की वीरता और आत्मसंयम की अपेक्षा करता है।

सत्याग्रही शक्ति इसमें निहित है कि वह विनय भाव से अपनी जान की बाजी लगाकर भी सत्य की रक्षा करता है। सत्याग्रही में यह शक्ति तभी पैदा होती है, जब उसे यह श्रद्धा होती है कि जिस ध्येय के लिए वह लड़ रहा है, वह ईश्वर प्रदत्त है। इस पहल पर गांधीजी ने इन शब्दों में प्रकाश डाला है :

"सत्याग्रह प्रेम है। प्रेम का कानून, इसे आप चाहें तो आकर्षण, लगाव, एकता कुछ भी नाम दे लें, दुनिया पर शासन करता है। मौत के सामने जीवन है। सतत हो रहे विनाश के बावजूद जगत टिका है। असत्य पर सत्य की विजय होती है। प्रेम घृणा को जीत लेता है। ईश्वर हमेशा ही शैतान पर विजय पाता आया है। सत्याग्रही की अपनी कोई शक्ति नहीं होती। उसमें जो भी शक्ति दिखाई देती है वह ईश्वर की शक्ति है।"

गांधीजी ने कहा है, "सत्याग्रही को ईश्वर में जीवित श्रद्धा होनी चाहिए। कारण यह है कि ईश्वर में अविचल श्रद्धा के अलावा उसकी और कोई शक्ति नहीं है।

"किन्तु मैं कौन हूं ? मेरी अपनी कोई शक्ति नहीं है। ईश्वर जो शक्ति मुझे देता है, वही मेरी शक्ति है। देशवासियों पर मेरी विशुद्ध नैतिक सत्ता के अलावा और कोई सत्ता नहीं है। अगर इस समय जबकि धरती पर भयंकर हिंसा छाई हुई है, मुझे ईश्वर अहिंसा के प्रचार का अचूक अस्त्र समझता है तो वही मुझे शक्ति देगा और रास्ता दिखायेगा। मेरा सबसे बड़ा हथियार मूक प्रार्थना है। इसलिए शान्ति का ध्येय ईश्वर के अच्छे हाथों में है। उसकी इच्छा के बिना कुछ नहीं हो सकता। वह उसके शाश्वत अपरिवर्तनीय कानन में प्रकट होती है और यह कानून वह स्वयं है।"

इतिहास के विभिन्न कालों में विभिन्न लोगों ने किसी-न-किसी रूप में अहिंसक प्रतिकार को अपनाया है। डा० अशोक मजुमदार ने अपनी पुस्तक 'स्वतंत्रता का उदय' में अहिंसक प्रतिकार के अनेक उदाहरण दिये हैं, जिनका इस देश के लोगों ने अंग्रेजी राज के प्रारम्भिक दिनों में प्रयोग किया था।

किन्तु इसका श्रेय गांधीजी को ही है कि उन्होंने इसकी विधि का परिष्कार किया, जिसके द्वारा सामूहिक प्रतिरोध कटुता की विरासत शेष न छोड़ते हुए स्थायी नतीजे हासिल कर सकता है।

●

नेताजी : एक असाधारण शक्तिपुंज

पी० एन० ओक

नेताजी के जीवन का अन्तिम अध्याय मध्ययुगीन इतिहास के एक पृष्ठ की तरह हमारे सामने आता है। जो अतुल प्रतिभाशाली व्यक्तित्व, असाधारण कार्य, फरारी, अपने कट्टर शत्रु ब्रिटिश साम्राज्य के साथ आंख मिचौनी, अन्तर्राष्ट्रीय मैत्रियों, बड़ी-बड़ी सेनाएं खड़ी करने, तथा राज्य स्थापित करने तथा सुसंगठित ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध एक खुला युद्ध छेड़ने जैसी रोमांचक गतिविधियों से भरा पड़ा है। और उनके कार्यों का स्मरण हर बार हमें एक स्फूर्तिप्रद प्रेरणा और शक्ति प्रदान करता है।

यद्यपि गरीब देश के एक धनी परिवार में उनका जन्म हुआ था, यद्यपि उनके पास वे डिग्रियां व योग्यताएं थीं और प्रतिभाएं थीं जो महान् माने जानेवाले ब्रिटिश राज्य में बड़े से बड़ा पद दिला सकती थीं, पर उनकी लक्ष्य दिशा तो प्रारम्भ से ही दूसरी थी। उनके जीवन का एक भिन्न ही ध्येय था। वे स्वान्तःसुखाय में विश्वास नहीं करते थे अपितु उन्होंने वह मार्ग चुना जिसे कि वे अपने व अपने देश के लिए परम दायित्व का मानते थे।

अपनी किशोरावस्था में ही अपने कुछ साथियों के साथ सुभाष ने देश की स्वतंत्रता के लिए कार्य करना प्रारम्भ कर दिया था। उन्होंने अपने बीस प्रभावशाली और उत्साही साथियों के साथ मिलकर साधारण से भिन्न गृहस्थ जीवन बिताने की शपथ ली, परन्तु बाद में अकेला सुभाष ही इसमें खरा उतरा। अन्य साथियों में से एक के बाद एक उन्हें छोड़ गए। सिंगापुर में १९४३ में तमिल समाज द्वारा दिए गए अभिनन्दन में उन्होंने अपने मन के कुछ पृष्ठ खोले थे। इसमें उन्होंने कहा था कि उनका हृदय आन्तरिक संपर्क से छलनी हो रहा है। दो विभिन्न धाराओं ने उन्हें विपरीत दिशाओं में मोड़ दिया था। जहां उनका अन्तिम उद्देश्य संसार को त्यागकर आध्यात्मिक मुक्ति पाना था वहां तात्कालिक उद्देश्य देश को ब्रिटिश राज्य के चंगुल से मुक्त कराना था।

कभी-कभी उनकी विरागवृत्ति भी उन्हें उनके भौतिक व तात्कालिक कर्तव्यपथ से दूर रखने का प्रयत्न करती। परन्तु उनकी अन्तश्चेतना उन्हें समय पर चेतावनी देती कि अपने देश और देशवासियों के प्रति किए जानेवाले कार्य को छोड़ संसार से विराग लेना उचित नहीं है। इस प्रकार उनके मन में दो भिन्न बातें परोक्ष में उनको दो भिन्न दिशाओं में आकर्षित करती रहतीं। इस सबके बावजूद उनमें विद्यमान चेतना उनकी जीवन नौका का पथप्रदर्शन करती रही। उन्हें इसका ज्ञान था कि स्वतंत्रता की लड़ाई बहुत कठिन है और लम्बी चलनेवाली है। सम्भव है यह उनके जीवन से भी आगे जाय पर वे उसके लिए बार-बार जन्म लेने को तैयार थे। उन्होंने कहा भी था कि जो काम मैं अधूरा छोड़ जाऊंगा वह मेरी आत्मा को कचोटती रहेगी और उसकी मुक्ति के लिए की गई तपस्या को निष्प्रभावी कर देगी। और तब उन्हें कुछ भी नहीं मिलेगा।

निश्चय ही अपनी इस आत्मा की कचोट के कारण ही वे नियमित रूप से गीता का पाठ करते थे। किसी प्रकार की दैवी कृपा पाने के साधन रूप में नहीं वरन् इसके अध्ययन को वे मार्ग-दर्शन और शक्ति पाने के लिए जरूरी मानते थे। गीता पढ़ते समय वे अपने आपको अर्जुन की जगह पाते जिसमें कि वे युद्ध से भाग न जायं तथा कर्तव्य से मुख न मोड़ लें।

मुक्ति व देशभक्ति के प्रति उनकी आसक्ति की झलक हमें प्रारम्भ से ही कई घटनाओं से मिलती है। एक बार अपनी किशोरावस्था में ही वे संन्यासी का वेश धारण करके घर छोड़ हिमालय पर चले गए, परन्तु वहां योग्य और सही गुरु न पाने के कारण भविष्य में समुचित मार्गदर्शन प्राप्त

करने की कांक्षा में वापस लौट आए।

प्रेसीडेंसी कालेज कलकत्ता में पढ़ते समय भारतीयों के बारे में अंग्रेज प्रोफेसर के कथन को न सहने पर उन्होंने दृढ़ विरोध किया। उनको निष्कासन का दण्ड दिया गया। सौभाग्य से एक अन्य कालेज ने उन्हें प्रवेश दे दिया और उन्होंने बी० ए० की डिग्री प्राप्त की। यद्यपि वे इस मृत्युलोक की सभी विषमताओं से गुजरे; परन्तु सभी रास्तों पर उनके कदम गौरव और शान से पड़े। शिक्षा-काल में वे सदैव सर्वोच्च स्थान प्राप्त करते रहे। हिन्द फौज के उनके साथ श्री राय की बहिन व सुभाषबोस की सहपाठिनी ने मुझे एक बार एक दिलचस्प स्मृति सुनाई कि वे जब कभी भी पुरस्कार वितरण समारोह के बाद घर आती थीं तो अपने छोटे भाइयों को बताती थीं कि मेज पर रखे सभी पुरस्कार सुभाष नाम के एक लड़के ने जीते।

भाषाओं पर अधिकार की भी यही स्थिति थी। अंग्रेजी और हिन्दी के अपने धाराप्रवाह भाषणों में वे कहीं भी बंगला उच्चारण का आभास तक न होने देते थे। यह सिद्धहस्तता उनकी लगन और मेहनत का परिणाम थी।

अपने जीवन के उद्देश्यों के अनुरूप राजनीति, दर्शन और इतिहास उनके प्रिय विषय थे। सभी प्रसिद्ध और महान् देशभक्तों, संतों और दार्शनिकों का जीवन-चरित्र का उन्होंने बड़ी लगन से अध्ययन किया।

उनका विश्वास था कि स्वतंत्रता सशस्त्र लड़ाई के द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है।

सुभाषचन्द्र बोस की विद्रोही भावनाएं उनके माता-पिता व रिश्तेदारों के लिए आशंकाजनक थीं। यह सोचकर कि उनकी शैक्षणिक योग्यता उन्हें आई० सी० एस० बना देगी, उन्होंने उन्हें इंग्लैण्ड भेज दिया। परंतु सुभाष का जीवन-लक्ष्य दूसरा ही था। वे इंग्लैण्ड तो गए पर इस उद्देश्य से कि शत्रु के घर में ही उसका अच्छी तरह से अध्ययन कर सकेंगे। घरवालों के लिए प्रकट में वे परीक्षा में भी बैठे और चुन भी लिए गए। परन्तु इसके बाद उन्होंने त्यागपत्र दे दिया।

भारत आने पर वे महात्मा गांधी से मिले। अपने अनुभवों को बतलाते हुए उन्होंने लिखा कि वे महात्मा गांधी की राजनीतिक नीति से सहमत नहीं हैं। यद्यपि स्वाधीनता आन्दोलन में वे उनके साथ हो लिये पर जल्दी ही भारत के राजनीतिक संघर्ष को देखकर वे बेचैन होते गए, क्योंकि भारत की स्वतंत्रता में देरी का अर्थ उनके लिए आत्मज्ञान प्राप्त करने में देरी था। इसी दिशा में उन्होंने गांधीजी के उम्मीदवार के खिलाफ़ कांग्रेस अध्यक्ष का चुनाव लड़ा तथा बहुमत से विजयी हुए। भारत के प्रमुख राजनीतिक दल का अध्यक्ष होने पर उन्होंने अंग्रेजों को छः महीने के अन्दर-अन्दर देश छोड़ने का अल्टीमेटम दिया। ऐसा न होने पर उन्होंने खुले विद्रोह संघर्ष की घोषणा की। ऐसा था उनका साहस और निश्चय कि उन्होंने खुले संघर्ष की घोषणा करने में एक पल देरी नहीं की।

पर उनके साथियों के असहयोगी रुख ने उन्हें अपना रास्ता स्वयं चुनने के लिए बाध्य कर दिया। द्वितीय महायुद्ध शुरू हो चुका था और सुभाषचन्द्र बोस जेल में थे। अस्वस्थता के आधार पर उन्हें पैरोल पर रिहा किया गया लेकिन उन्हें अपने घर में ही नजरबन्द रखा गया। फिर ब्रिटिश सरकार के कर्मचारियों को पता भी न चला और वे फरार हो गए। उनके लापता हो जाने से दुनिया में तहलका मच गया और एक दिन उनकी दृढ़ आवाज़ बर्लिन रेडियो पर सुनी गई।

उन्होंने विदेश में एक स्वाधीन भारतीय सरकार की स्थापना की व जापानियों के साथ इस सम्बन्ध में एक समझौता किया। २ जुलाई, १९४३ को वे खादी की पोशाक में सिंगापुर में उतरे। पर चूंकि अब उन्हें एक सशस्त्र सेना का नेतृत्व करना था अतः उन्होंने शीघ्र खादी की जगह खाकी सैनिक वर्दी धारण कर ली। उस समय वे नेताजी नहीं थे बल्कि एक सशस्त्र सेना के नायक थे। कुछ समय बाद अन्डमान, निकोबार में स्वाधीन भारत का ध्वज लहराने लगा। उनके झंडे के नीचे स्वाधीनता की तमन्ना लिये लाखों भारतीय एकत्रित हो गए। पर इतिहास का प्रवाह दूसरी ही ओर था। इस समय उनके मुख्य सहायक जापानी महा-युद्ध में पराजित हुए। नेताजी ने इस पर हिम्मत न हारी। उन्होंने बैंकाक में अपनी बची-खुची सेना एकत्रित की और पराजय मानने से इन्कार कर दिया और गुरिल्ला युद्ध चलाने का निश्चय किया। लेकिन इतिहास ने फिर धोखा किया और दुर्भाग्य से दुर्घटनाग्रस्त विमान का शिकार हो गए।

(शेष पृष्ठ २७ पर)

मौलाना मज़रुल हक़

नेमिशरण मित्तल

"हिन्दुस्तान के लोग चाहे हिन्दू हों या मुसलमान, एक नाव में सवार हैं और हम या तो एक साथ तैर जायेंगे अथवा एक साथ डूबेंगे।" ये शब्द महान् देशभक्त और भारतीय धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रीयता के महाजनक मौलाना मज़रुल हक ने १९१४ में बंबई की एक राजनैतिक सभा में कहे थे।

आज से ठीक १०० वर्ष पूर्व १८५५ में जन्मे हक साहब लाला लाजपतराय से आयु में छोटे और महात्मा गांधी से १४ वर्ष बड़े थे। १९०३ से १९२० तक राष्ट्रीय स्वाधीनता-संग्राम के निर्माण-काल में उन्होंने एक प्रामाणिक देशभक्त के रूप में राष्ट्र की सेवा की। डा० पट्टाभि सीतारामैया ने कांग्रेस के इतिहास में उनको 'देशभक्ति का महाजनक' कहा।

मौलाना साहब बिहार के एक संपन्न कुल में जन्मे थे। प्रारंभिक शिक्षा-दीक्षा के पश्चात् वे लंदन गये और वहां से बैरिस्टर बनकर भारत लौटे। बैरिस्टर हक ने पटना हाईकोर्ट में वकालत शुरू कर ली और बहुत ही थोड़े से समय में वे अपनी तर्कपटुता, भाषण-शक्ति और दूसरों के भीतर न्याय-निष्ठा जाग्रत करने की विलक्षण प्रतिभा के बल पर अपने व्यवसाय में चमक उठे। अपनी वकालत की कमाई के बल पर वे राजकुमारों की भांति सुख और सुविधा का जीवन व्यतीत करते थे। श्री हक आमतौर पर नवाबों की तरह सिल्क पहनते और बहुमूल्य इत्रों का प्रयोग किया करते थे, परंतु इस सारी संपन्नता के बावजूद मौलाना के हृदय को किसी प्रकार की बुराई न छू सकी। उनका आचरण बहुत शुद्ध रहा और उनके जीवन का उत्तर-काल देखकर तो कहा जा सकता है कि वह एक महर्षि थे। उनकी धवल दाढ़ी ऐसी भव्य और विशाल थी कि वह दूर से ही एक महान् सूफी सन्त जैसे लगते थे।

भारतीय राजनीति के क्षितिज पर महात्मा गांधी के अभ्युदय से बहुत पहले मौलाना मज़रुल हक अपनी विशुद्ध राष्ट्रीयता के लिए राष्ट्र में प्रसिद्ध हो चुके थे, तथा जो लोग उन्हें जानते थे वे पूरी तरह समझते थे कि हक साहब आदि से अंत तक भारतीय हैं तथा उनके मन में सांप्रदायिकता की भावना दूर तक भी नहीं है। यद्यपि इस समय तक वह कांग्रेस के सदस्य नहीं बने थे तथापि वह व्यक्तिगत स्तर पर दो लक्ष्यों की सिद्धि के लिए कार्य कर रहे थे—देश के भीतर सांप्रदायिक एकता की स्थापना तथा भारत के लिए आत्मनिर्णय के अधिकार की प्राप्ति। वह होमरूल आंदोलन के लोकप्रिय नेता तथा पंडित मोतीलाल नेहरू के घनिष्ठ मित्र थे।

मौलाना साहब १९०६ में कांग्रेस में सम्मिलित हुए तथा शीघ्र ही बिहार कांग्रेस के एक लोकमान्य नेता बन गये। १९१२ में वे बांकीपुर कांग्रेस अधिवेशन की स्वागत-समिति के अध्यक्ष बनाये गये। उनका स्वागत-भाषण राजनीतिक इतिहास की ही नहीं, साहित्य की भी एक अनमोल निधि है।

१९१७ की बात है। गांधीजी बिहार के एक किसान श्री राजकुमार शुक्ला के साथ कलकत्ता से पटना पहुंचे। राजकुमारजी उन्हें सीधे राजेन्द्रबाबू के घर ले गये। बाबूजी पुरी गये हुए थे। पहले तो गांधीजी सोच में पड़ गये कि अब क्या करें, परंतु शीघ्र ही उन्हें याद आया कि १९१५ के बंबई कांग्रेस-अधिवेशन के समय पटना के बैरिस्टर हक ने उन्हें अपने यहां आने का निमंत्रण दिया था। बैरिस्टर हक को गांधीजी लंदन से जानते थे, क्योंकि जिन दिनों वे वहां पढ़ते थे उन दिनों बैरिस्टर हक भी वहां थे। इस प्रसंग का वर्णन करते हुए गांधीजी ने 'आत्मकथा' में लिखा है, "मुझे उस निमंत्रण का स्मरण हो आया तथा मैंने अपने

पटना आगमन के उद्देश्य का वर्णन करते हुए उनके पास एक नोट भेजा। वे तुरंत अपनी कार लेकर आये और आग्रह करने लगे कि मैं उनका आतिथ्य स्वीकार करूँ। मैंने आतिथ्य के निमंत्रण के लिए उन्हें धन्यवाद दिया तथा उनसे कहा कि मुझे रेलवे मार्गदर्शिका से कुछ भी पता नहीं चल रहा है, अतः वह मुझे बतायें कि मैं सबसे पहली गाड़ी से किस स्टेशन तक जा सकता हूं।"

चम्पारन में गांधीजी निलहे गोरों के विरुद्ध अपना ऐतिहासिक सत्याग्रह चला रहे थे, सारे देश का ध्यान उस ओर खिंचा। बैरिस्टर हक ने इस अवसर को खोया नहीं, वह हर प्रकार से गांधीजी की सहायता करते रहे तथा निरंतर उनके संपर्क में रहे। गांधीजी के संस्पर्श ने श्री हक का मानस एकदम बदल डाला और वह नवाब से फ़क़ीर बन गये। गांधीजी ने उनके बारे में लिखा है, "मौलाना मज़रुल हक ने अपना नाम मेरे आंदोलन के उन समर्थकों की सूची में लिखा लिया है, जिन्हें मैं आवश्यकता पड़ने पर किसी भी कार्य के लिए बुला सकता हूं। उन्होंने अपने आपको हमारे साथ इस प्रकार आत्मसात् कर लिया है कि हम उन्हें अपने में से एक समझने लग गये हैं, तथापि उनके राजसी जीवन को देखकर इसके विपरीत कल्पना होती है।"

१९२० में गांधीजी ने असहयोग आंदोलन शुरू किया और मौलाना हक अपनी चलती बैरिस्टरी छोड़कर आंदोलन में कूद पड़े। उन्होंने अपनी शाही कोठी छोड़ दी तथा गंगा के किनारे एक आश्रम की नींव डाली। यही आश्रम सदाकत आश्रम के नाम से प्रसिद्ध है जो देशरत्न डा० राजेन्द्रप्रसाद की कर्मभूमि तथा विहार कांग्रेस का प्रधान-कार्यालय बना और आज भी है।

सदाकत आश्रम की शुरूआत भी बहुत अनोखे ढंग से हुई। डा० राजेन्द्रप्रसाद ने आत्मकथा में उसका बहुत ही मनोहारी चित्र खींचा है। बात यह हुई कि पटना इंजीनियरिंग कालेज के विद्यार्थियों ने असहयोग आंदोलन में सक्रिय भाग लिया, जिसके कारण उनके प्रिंसिपल ने नाराज होकर उन्हें आदेश दिया वह तुरंत छात्रावास छोड़कर चले जायं। छात्र दौड़े-दौड़े मौलाना हक के पास पहुंचे और उन्होंने उनसे शरण मांगी। हक साहब इस मांग से पूर्णतया भावुक हो उठे और उन्होंने छात्रों को शरण देने के लिए सदाकत आश्रम की नींव डाली और उन्हें लेकर वहां रहने लगे। गांधीजी को जब यह बात मालूम हुई तो उन्होंने मौलाना मज़रुल हक को बधाई देते हुए लिखा कि मज़रुल हक साहब देश की सेवा के लिए अपने आप को गला रहे हैं, और उनका संकल्प-बल अनुकरणीय है।

मौलाना मज़रुल हक १९१४ में एक प्रतिनिधि मंडल के सदस्य के रूप में इंग्लैण्ड गये। वहां से लौटकर वे लखनऊ कांग्रेस में सम्मिलित हुए और वहां कांग्रेस-प्रतिनिधियों के सामने उनका भाषण भारत की धर्म और संप्रदाय-निरपेक्ष राष्ट्रवादिता का सबसे पहला और सबसे श्रेष्ठ उदाहरण माना जाता है। उन्होंने कहा, "भाषणों, चर्चाओं तथा लेखों का युग बीत चुका है, और प्रत्यक्ष कार्यवाही, देश के प्रति वफादारी तथा आत्म बलिदान की वेला आ गई है। अब अंग्रेजों को यह समझ लेना चाहिए कि भारत का प्रत्येक बच्चा स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए कटिबद्ध है।" उनके इस भाषण में दो बातें बहुत महत्वपूर्ण हैं—देश के प्रति वफ़ादारी की बात तथा प्रत्येक बच्चे के संकल्प की बात। यह वफ़ादारी मौलाना हक के लिए हक की वफ़ादारी थी और उनकी समस्त वफ़ाओं से ऊंची वफ़ादारी थी—धर्म और संप्रदाय, जाति और प्रांत ये सब राष्ट्र से छोटे हो गये थे और हक साहब भारतीय राष्ट्रीयता के अनूठे व्याख्याता बन गये थे। इससे भी बहुत पहले १९१० से १९१३ तक हक साहब ने हिन्दू-मुस्लिम एकता के पक्ष में अनेक लेख लिखे जो पायोनियर, लीडर, इंडियन पैट्रियाट, बंगाली और एडवोकेट सरीखे प्रचलित पत्रों में प्रकाशित हुए।

मौलाना मज़रुल हक एक विद्वान् लेखक और पत्रकार थे। उनके लेखों ने राष्ट्रीय चेतना के बीज बोये। १९२१ में राष्ट्रीय विचारधारा का पोषण करने के लिए उन्होंने अपनी संपत्ति, बुद्धि और शक्ति लगाकर 'मदरलैंड' नामक साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन आश्रम से शुरू किया। पत्र अभी एक वर्ष भी पूरा नहीं कर पाया था कि सरकार की कोपदृष्टि उसपर जा पड़ी। पत्र बन्द कर दिया गया तथा मौलाना को गिरफ्तार करके उनपर मुकदमा चलाया गया। उन्होंने अदालत के सामने अपना अपराध स्वीकार किया और कहा कि वे राजद्रोह के अपराधी अवश्य हैं, परंतु वैसा करना उनके लिए धर्म हो गया है। उन्हें कारा-

वास का दंड दिया गया तथा उन पर १००० रुपये का जुर्माना भी किया गया, जिसके बदले में उन्हें तीन मास अधिक का दण्ड भोगना था। हक साहब ने जुर्माना देने से मना कर दिया तथा तीन मास की अधिक अवधि के लिए जेल में रहना पसंद किया। इस घटना से सिद्ध होता है कि वे संपादक का काम किस जागरूकता के साथ करते थे, तथा उस कार्य में वे निर्भीकता को प्राथमिकता देते थे। वे मानते थे कि निर्भीक आलोचना किसी भी लोकतंत्र का प्राण है।

मौलाना हक ने २ जनवरी १९३० को यह शरीर छोड़ दिया। उस अवसर पर गांधीजी ने शोक व्यक्त करते हुए लिखा था—"वह ऐसे व्यक्ति थे, जिनका अभाव सदा तक बना रहेगा। हमारे देश के इतिहास की इस संकट वेला में उनका अभाव मेरे लिए और भी अधिक दुःखदायी होगा।"

मौलाना साहब जहां कहीं भी होंगे, उनकी रूह को यह जानकर तसल्ली होगी कि देश के सारे मुसलमान भारत को अपना राष्ट्र न मान सके तथा उन्होंने पाकिस्तान बनाकर भारत से संबंध तोड़ लिया तथापि भारत के ५ करोड़ मुसलमान भारत के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक जीवन में पूरी तरह घुलमिल गये हैं तथा हक साहब ने जिस धर्म-निरपेक्षता की नींव डाली थी वह आज एक सुदृढ़ दुर्ग के रूप में अजेय सिद्ध हुई है, एक विशाल अश्वत्थ के रूप में हमने उसे देखा है।

देश की ऐसी अनुपम एकता की घड़ी में जबकि हमारा दुश्मन हमारी चौखट पर बैठकर तथा हमारी दहलीज में घुस-घुसकर उत्पात मचा रहा हो तथा हमारी निष्ठाएं भंग करने की चेष्टा कर रहा हो, हमारे लिए एक महान गौरव की बात है। परंतु इस गौरव के क्षण में हमारा सिर सहज ही मौलाना मजरुल हक और अपने उन समस्त नेताओं के चरणों में झुक जाता है जो अपने रक्त की अंतिम बूंद तक देश की एकता और स्वतंत्रता की बलिवेदी पर चढ़ा गये हों।

सारे देश में उनकी शताब्दी मनाई जा रही है। हमारा सबका यह कर्त्तव्य हो जाता है कि हम उनकी बात के बहाने अपनी कृतज्ञता का ज्ञापन तो करें ही, साथ ही एक बार फिर से यह प्रतिज्ञा करें कि मौलाना मजरुल हक जिस संप्रदाय-निरपेक्ष लोकतंत्र के हामी थे और गांधीजी ने जिसकी रक्षा के लिए अपने प्राणों का उत्सर्ग किया हम उस पवित्र धरोहर को किसी भी स्थिति में हाथों से गिरने नहीं देंगे। हमारे प्रधान मंत्री ने यह आशा व्यक्त की है कि मौलाना मज़रुल हक की जन्म शताब्दी के बारे में देश की जनता और प्रेस समुचित उत्साह और कृतज्ञता का परिचय देंगे।

राष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन ने इस विषय में कहा है—"महान देशभक्त मौलाना मज़रुल हक को इस प्रकार जो मान्यता प्रदान की जा रही है, आज उसका महत्व और भी अधिक हो जाता है, क्योंकि आज हम अपनी समूची शक्ति एक ऐसे समाज के निर्माण पर लगा रहे हैं, जो सब प्रकार के धार्मिक और सांप्रदायिक भेदभाव से मुक्त हो। मौलाना मज़रुल हक एक प्रतिष्ठित राष्ट्रीय-मुसलमान थे। उनको श्रद्धांजलि अर्पित करने में मैं उनके असंख्य प्रशंसकों के साथ हूं और मुझे पूर्ण विश्वास है कि उनका शताब्दी-समारोह हमारे सच्चे राष्ट्रवाद को जाग्रत और प्रदर्शित करेगा।"

●

(पृष्ठ २४ का शेष)

उनके अपने संपर्क से मैं जहां तक अपने व्यक्तित्व के बारे में जान सका हूं, वे असाधारण ऊंचाई पर थे। उन्हें भारत के राजनैतिक नेताओं के प्रति किसी प्रकार की कोई शिकायत नहीं थी अपितु उनके प्रति जो अपने ढंग से भारत की स्वाधीनता के लिए संघर्ष कर रहे थे, वे श्रद्धानत थे। इसका प्रमाण है उनके समस्त रेडियो भाषण। सभी के प्रारम्भ में उन्होंने राष्ट्रपिता गांधी को अपना आदर अर्पित किया। वे देश की स्वाधीनता को सर्वोपरि मानते थे और प्रासंगिक मतभेदों पर उन्होंने कभी ध्यान नहीं दिया।

●

संकटकालीन संकल्प

कालिदास कपूर

जब से भारत का पाकिस्तान से सैनिक संघर्ष हुआ है, तब से अहिंसा, सहिष्णुता और शांति सेना के सर्वोदयी समर्थक धर्म-संकट में फंसे दीखने लगे हैं। श्री हरिभाऊजी उपाध्याय विशुद्ध गांधीवादी हैं। 'जीवन साहित्य' में प्रकाशित उनके 'कौन दोषी है ?' शीर्षक लेख से मुझे अपने विचार व्यक्त करने की प्रेरणा मिली है।

युगीन प्रगति के प्रतिकूल जिन दूषित विचारों के आधार पर पाकिस्तान बना, वे कांग्रेसी नेतृत्व के कभी नहीं रहे। परन्तु गांधीजी गृहयुद्ध के मार्ग से स्वतन्त्रता नहीं चाहते थे और स्वतन्त्रता को पटेलजी तथा जवाहरलालजी जैसे नेताओं ने विभाजन पर वरीयता दी, इस आशा से कि भारत दो राष्ट्रों में बंट जाय तो कोई विशेष हर्ज नहीं, क्योंकि तब दोनों के नेता अपने-अपने जनों के नैतिक तथा आर्थिक उद्धार में लग जायेंगे, सहयोग के मौके अधिक रहेंगे, संघर्ष के बहुत कम।

परन्तु धतूरे के बीज से उत्पन्न पेड़ में आम कैसे लगते ? पाकिस्तान की ओर से विद्वेष का विष उसके जन्मकाल ही से उगला जाने लगा। विष-वमन के बहाने पाकिस्तान को मिलते रहे और शिव स्वरूप जवाहरलालजी गरल पान भी करते रहे। परन्तु जब कश्मीर ने स्वेच्छा से भारत का पल्ला पकड़ने का निश्चय किया, तब दोनों राष्ट्रों के सामने अपने-अपने बुनियादी भेदों की बात उठ खड़ी हुई। अन्य गुत्थियां तो ले-देकर थोड़ी-बहुत सुलझ भी गईं, परन्तु कश्मीर की समस्या यों ही सुलझ सकती थी कि पाकिस्तान भारतीय मुस्लिमों की भारतीय नागरिकता मान लेता या फिर भारत हिन्दू राष्ट्र हो जाता और भारतीय मुस्लिमों के साथ वही बर्ताव होता जो पाकिस्तान का गैर मुस्लिमों के साथ होता आ रहा है। दूसरा विकल्प युगीन प्रगति के नितांत प्रतिकूल होता और उस भारतीय संस्कृति के प्रतिकूल भी जिसकी रक्षा गांधीजी समेत हमारे सभी मान्य पूर्वज करते रहे थे। सन् १९४७ के पाकिस्तानी अतिक्रमण की आग कभी ठंढी नहीं होने दी गई। सन् १९६२ में चीनी अतिक्रमण होने पर पाकिस्तानी नेता आग सुलगाने के लिए उतावले हुए। परन्तु तब तक पाकिस्तान संयुक्त राज्य तथा ब्रिटेन का आश्रित था और चीन से उसकी कोई सांठ-गांठ भी नहीं हुई थी। इसलिए विराम रेखा पर आग लगनी रुक गई। परन्तु तभी से पाकिस्तान का चीन से षड़यंत्र प्रारम्भ हो गया।

५ अगस्त से अब तक के खुले और हिंसात्मक संघर्ष की कहानी दुहरानी नहीं। परन्तु अभी तक इसके जो कुछ परिणाम हुए हैं, उनसे हमें वे पाठ अवश्य मिलते हैं जिनमें हिंसा के साथ अहिंसा का समन्वय है, सशस्त्र सेना के साथ शान्ति-सेना का सहअस्तित्व है, विचार-स्वातंत्र्य के साथ अनुशासित आचरण का मेल है।

भारतीय आत्मा जाग्रत है और हमारे लोकतंत्र का सैनिक या साम्यवादी तानाशाही से संघर्ष है। तो लोक-शक्ति का संगठन करने के लिए हमें वे तंत्र सुधार अत्यन्त शीघ्रता से संपन्न करने हैं, जिनके परिणामस्वरूप राष्ट्रीय जीवन के सभी क्षेत्रों में हमारा उत्पादन बढ़े और विशाल संख्या के अनुपात से लोकशक्ति का संग्रह हो।

अंग्रेजों से हमारा अहिंसात्मक संघर्ष चालू रह सका, क्योंकि हम ब्रिटिश शासन की छत्र-छाया में थे और विदेशी शासक निम्नसंख्यक होते हुए भी नीतिवश मानवता की यथेष्ट रक्षा करते रहते थे। अभी तक किसी ऐसे राष्ट्र का अस्तित्व संभव नहीं हुआ है, जिसने नितांत निःशस्त्र और अरक्षित रहते हुए स्वरक्षा कर पाई हो। सशस्त्र राष्ट्रों के जंगल में निःशस्त्र राष्ट्र अपनी रक्षा तभी कर सकता, यदि संयुक्त राष्ट्र संघ जैसी संस्था की न्याय शक्ति के साथ

भारी मात्रा में सैनिक शक्ति भी प्राप्त होती। परन्तु संयुक्त राष्ट्र संघ इन शक्तियों से सर्वथा हीन है। इसलिए भारत जैसे शांतिप्रिय राष्ट्र को भी सशस्त्र प्रतिरक्षा का सहारा लेना पड़ा है। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं होता कि शांति सेना विफल हो गई है और उसकी कोई जरूरत नहीं। सशस्त्र सैनिक और पुलिस अब विदेशी आक्रामकों से देश की प्रतिरक्षा में व्यस्त हैं, तो आंतरिक शांति-सेना जैसे संघ की सक्रियता अब पहले से भी अधिक आवश्यक है। देश के भीतर दंगे न हों, उत्पादन में कोई विघ्न न पड़े, इसमें शांति-सेना सरकारी अधिकारियों का हाथ बटा सकती है; सशस्त्र पुलिस को आंतरिक शांतिरक्षा के दायित्वों से मुक्त कर सकती है।

प्रश्न उठता है कि सशस्त्र सेना के लिए भरती बढ़ेगी तो शांति-सेना के रंगरूट कहां से आयेंगे? शांति-सेना में युवकों-युवतियों को देखकर मुझे आश्चर्य होता है। युवकों को सशस्त्र सेना में भरती होना चाहिए; युवतियों को परिचर्या, चिकित्सा और शिक्षा जैसी सेवाएं अपनानी चाहिए और वे युवतियां भी राष्ट्र की कम महत्वपूर्ण सेवा नहीं करतीं जो मातृत्व का सफल निर्वाह करती हैं। इनको शांति-सेना में भरती करना भूल है, जिससे शांति-सेना का नेतृत्व अभी तक मुक्त नहीं हो सका है।

लोकशक्ति के अन्तर्गत बालक और किशोर हैं, वयस्क हैं, बूढ़े हैं, नर हैं, नारियां भी हैं। सार्वजनिक सेवा के क्षेत्र में नारियों की संख्या बढ़ रही है और बढ़नी चाहिए। हिंसा के लिए सशस्त्र सेना में नारी की भर्ती वर्जित होनी चाहिए, परन्तु शान्ति-सेना का नेतृत्व प्रौढ़ समाज सेविकाओं को ही करना चाहिए। प्रौढ़, वयोवृद्ध और अवकाशप्राप्त नर भी इसमें भरती हों, जो ऊंचे अधिकारी रह चुके हों या सार्वजनिक सेवा में लगे हों। भारी भरती की आवश्यकता नहीं। लखनऊ जैसे नगर के लिए पंद्रह की संख्या यथेष्ट है। दंगे आमतौर से नगरों में होते हैं और अब गांवों में भी होने लगे हैं तो वहां भी शांति-सैनिक आवश्यक होंगे। परन्तु पहले नगरों और कस्बों में शांति-सैनिक संगठित हों और उन्हें अधिकारियों का सक्रिय सहयोग मिले। गांवों की बारी इनके बाद आये।

ये शान्ति-सैनिक अवैतनिक होंगे, अपने-अपने धंधों में लगे रहकर भी इन्हें एक दूसरे से संपर्क की सुविधा मिलनी चाहिए और स्थिति के नाजुक होने पर मौके तक इनका पहुंचना और अधिकारियों से संपर्क करना इनके लिए अत्यन्त आवश्यक होगा। शांति सेना की व्यवस्था न होते हुए भी राष्ट्रीय संकट काल में देश के भीतर व्यापक शांति रही, जिससे सिद्ध होता है कि भारतीय जन अब यथेष्ट जाग्रत हैं, इन्हें पथ-प्रदर्शन की विशेष आवश्यकता नहीं। तो भी शांति-सेना के अस्तित्व से शांति-भावना को बल मिलेगा, इसमें कोई सन्देह नहीं।

लोक शक्ति संग्रह भारत के लिए नितांत आवश्यक है, क्योंकि हमारी विशाल जनसंख्या ही हमारी प्रमुख निधि हो सकती है यदि उसका संग्रह और सदुपयोग किया जा सके। चीन भारत की भांति पिछली शतियों में परतंत्र नहीं हुआ, परन्तु इस विशाल और अभागे देश की एक शती तक नोच-खसोट चलती रही और इस शती के अंतिम तीस वर्षों तक यह देश गृहयुद्ध या जापानी अतिक्रमण से त्रस्त रहा। साम्यवादी क्रान्तिकारियों के नेतृत्व में चीन की विदेशी अधिकारों से मुक्ति सन् १९५० में ही हो सकी। तबतक चीन नैतिक तथा आर्थिक शक्ति से सर्वथा हीन हो चुका था। यह सही है कि चीन के साम्यवादी नेताओं ने चीनी जन-शक्ति का संग्रह बड़ी निर्ममता से और प्रतिकारात्मक वृत्ति से युक्त होकर किया है। परन्तु इस विशाल देश के लोकशक्ति संग्रह से इन्कार नहीं किया जा सकता।

राष्ट्रपिता गांधी के आशीर्वाद से और उनके मानस-पुत्र विनोबा के नेतृत्व में भारतीय लोकशक्ति संग्रह का उद्देश्य नितांत विपरीत है। परन्तु हमें यह भी मान लेना चाहिए कि अठारह वर्षों से स्वतंत्र रहते हुए यह देश जितना शक्ति संग्रह कर पाया है वह उस शक्ति संग्रह से कहीं कम है जो चीनी क्रान्तिकारियों ने पन्द्रह वर्षों के भीतर कर लिया है। चीन हमारा पड़ोसी है और वैरी भी। पाकिस्तान से सांठ-गांठ करके तो वह हमारे लिए और भी भयावह हो गया है। अतएव लोक शक्ति संग्रह तो हमारे लिए अब जीवन-मरण का प्रश्न है।

राष्ट्रपिता को स्वतंत्र मानस प्राप्त रहा और उनके मानसपुत्र विनोबा भी उनके जैसे भारतीय अतीत और भावी के द्रष्टा हैं। अतएव पिता की राय रही और पुत्र

की है कि जो संविधान सुरक्षित, सम्पन्न और सुशिक्षित ब्रिटेन, संयुक्त राज्य, कनाडा और आस्ट्रेलिया में लंबे अतीत तक स्वतंत्र जनमानस में पोषित होकर सफल हुआ है, वह परतंत्रता के लंबे अतीत प्राप्त, अरक्षित, निर्धन और अशिक्षित देश पर आरोपित होकर सफल नहीं हो सकता। हमारे देश में विदेशी संविधान की ही नकल नहीं की गई, वह शासन तंत्र भी अपना लिया गया है, जिसे निम्नसंख्यक विदेशी बहुसंख्यक जनता के प्रति अविश्वास के आधार पर गढ़कर विरासत के रूप में हमारे लिए छोड़ गये थे। तभी तो नवजात भारतीय स्वतन्त्रता सभी उन्नत देशों से सहायता पाकर भी उतना शक्ति संग्रह नहीं कर पायी है, जो वैरी और पड़ोसी चीन ने संभव कर दिखाया है।

वैयक्तिक स्वातंत्र्य हमारे राष्ट्र की निधि है। परन्तु स्वतंत्र्य के साथ अनुशासन है, स्वच्छंदता नहीं। हम अपने विचार निर्भयता से प्रकट कर सकें, परंतु हमारा आचरण अनुशासित रहे। तभी शक्ति संग्रह संभव होगा।

स्वातंत्र्य रक्षा का तकाजा है कि हम स्वेच्छा से अपने ही संगठन द्वारा अनुशासित हों। जहां व्यक्ति को विचार की स्वतंत्रता प्राप्त है, वहां उसे संगठन की स्वतंत्रता भी प्राप्त है, बशर्तें कि संगठन राष्ट्रीय रक्षा और विकास के विपरीत न हो।

शक्ति संग्रह की नींवें हमारे विद्यालयों में बनती हैं। शिक्षक एक सूत्र में संगठित हों, वेतन के लिए अवश्य, परन्तु अपनी सेवा की स्तरोन्नति के लिए भी। माता-पिता संगठित हों अपनी संतति के सर्वांगीण विकास के लिए, उनके शिक्षकों पर निगरानी रखने के लिए, उनकी सेवा को सुपुरस्कृत करने के लिए भी। विद्यार्थी भी संगठित हों अपने मानसिक, नैतिक और शारीरिक विकास के लिए, हड़ताल द्वारा अपने शिक्षकों को छुट्टी देने के लिए नहीं। दलबंद राजनीति के भूत ने सारे देश की जनता पर सवारी गांठ रखी है। हमारे कर्णधारों को शीघ्रन्सेन्शीघ्र उसे इस सवारी से मुक्त करना है, सन् १९६७ के चुनाव के पहले ही। अभी तक लोक-शक्ति का अधिकांश दलबंद रस्साकशी में नष्ट होता रहा है। अब उसे दलबंदी से मुक्त होकर राष्ट्रशक्तिके विकास की ओर प्रवृत्त होना है।

व्यापक भ्रष्टाचार और काम चोरी की देश में धूम है। हम अहिंसावादी बनते हैं, परन्तु अमूल्य समय की हत्या करते रहते हैं। भ्रष्टाचार के मूल में दलबंद खर्चीली चुनाव प्रणाली है। अधिकार से दायित्व का समन्वय आवश्यक है। परन्तु चालू चुनाव प्रणाली में सफल प्रत्याशी को दायित्व-हीन अधिकार मिल जाता है। गांधीजी और विनोबा जी ने इस सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट किये हैं। जयप्रकाशजी ने सुधार के रचनात्मक तथा व्यावहारिक सुझाव भी दिये हैं। कर्णधारों को इन पर गौर करने, अपना निर्णय देने की फुरसत मिलनी चाहिए।

यहां शिक्षकों, माता-पिता और विद्यार्थियों ही के संगठन की बात कही गई है, क्योंकि लेखक शिक्षक रहा है। तो जोड़ना है कि जाति-धर्म के भेदों के आधार पर नहीं, जनसेवा के विभिन्न भेदों के आधार पर अधिक-से-अधिक संगठनों की मांग है। कृषक संगठित हों, लगान और माल-गुजारी घटवाने के लिए ही नहीं, उत्पादन और वितरण बढ़ाने के लिए भी; सरकारी कर्मचारी संगठित हों वेतन वृद्धि ही के लिए नहीं, अपनी सेवा क्षमता बढ़ाने के लिए भी। ऐसे संगठनों को प्रोत्साहित करना, उनका मार्गदर्शन करते रहना करदाता के ट्रस्टियों का काम है। अभी तो वे पिछले चुनाव की क्षति पूर्ति में लगे हैं और अगले चुनाव की तैयारी में।

कसौटी पर

स्वामी शिवानंद सरस्वती की दो पुस्तकें

१. जीवन में सफलता के रहस्य और आत्म-दर्शन; हिन्दी रूपान्तरकार : स्वामी सत्यानंद सरस्वती और स्वामी ईश्वरानंद सरस्वती; पृष्ठ : ४७८; मूल्य : ६ रुपये

२. कर्मयोग-साधना; अनुवादक : श्री ति० न० आत्रेय; पृष्ठ : ४२७; मूल्य : ५ रु०

पहली पुस्तक में जीवन की सफलता के लिए आठ प्रयोग दिये गए हैं। पहले अध्याय में संकल्प और स्मृति का विकास किस प्रकार हो, यह बताया गया है। दूसरे में राजयोग महाविद्या के अभ्यास के उपाय सुझाये गए हैं। तीसरे में आत्मशक्ति के प्रभाव, चौथे में सद्‌गुणों के उपार्जन, पांचवें में दुर्गुणों का निराकरण, छठे में योग की अभ्यास माला, सातवें में सत्संग की महिमा और आठवें में दो शिक्षाप्रद कथाएं दी गई हैं।

जीवन को सफल बनाने की आकांक्षा सभी के हृदय में होती है। अतः यह पुस्तक निर्विवाद रूप से सबके काम की है। आत्मार्थी तो इसमें बहुत कुछ उपयोगी पायंगे।

जैसा कि नाम से स्पष्ट है, दूसरी पुस्तक कर्मयोग से संबंधित है। उसमें कर्म सिद्धान्त की विशुद्ध विवेचना की है और बताया है कि मनुष्य के लिए किस प्रकार का कर्म अभीष्ट है। पुस्तक के आठ अध्यायों में विद्वान लेखक ने बताया है कि मनुष्य का स्वधर्म क्या है; मनुष्य जैसा बोता है, वैसा ही काटता है। व्यक्ति पुरुषार्थ करे और अपने आदर्शों के लिए जीवित रहे। गीता के कर्मयोग की भी उन्होंने एक अध्याय में चर्चा की है। अन्तिम अध्याय में ९ प्रेरणादायक कथाएं दी हैं।

पुस्तक दिशा-दर्शक है। जो अपने जीवन को सामान्य स्तर से ऊपर उठाना चाहते हैं, उन्हें इस पुस्तक को अवश्य पढ़ना चाहिए।

दोनों पुस्तकों के प्रकाशक हैं : योग-वेदान्त फारेस्ट एकैडेमी (डिवाइन लाइफ सोसायटी) शिवानंद नगर।

भारत की संस्कृति और कला; लेखक : राधाकमल मुकर्जी, प्रकाशक : राजपाल एण्ड संस, दिल्ली; पृष्ठ : ३७६; मूल्य : १२ रुपये

प्रस्तुत पुस्तक एक इतिहासज्ञ तथा भारतीय संस्कृति के अधिकृत व्याख्याता द्वारा लिखी गई है। इसमें प्राचीनकाल से लेकर अर्वाचीनकाल तक भारतीय संस्कृति और कला के विकास पर प्रकाश डाला गया है। वस्तुतः यह विद्वान लेखक की 'द कल्चर एण्ड आर्ट ऑव इंडिया' का हिन्दी रूपान्तर है। अनुवादक हैं रमेश वर्मा। पुस्तक ज्ञानवर्द्धक तो है ही, भारतीय संस्कृति तथा कला के लिए जिज्ञासा भी उत्पन्न करती है। पुस्तक की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह तटस्थभाव से लिखी गई है। इसलिए उसमें कहीं भी अतिशयोक्ति नहीं है। इससे भारतीय संस्कृति के प्रचार एवं प्रसार में निश्चय ही सहायता मिलेगी।

दो चट्टानें; लेखक : बच्चन, प्रकाशक : वही; पृष्ठ : २१६; मूल्य : ७ रुपये।

इस पुस्तक में हिन्दी के लोकप्रिय कवि बच्चन की पिछले तीन वर्षों में लिखी गई कविताओं का संग्रह है। पुस्तक का आरंभ 'सूर समर करनी नहिं' से होता है, और अंत 'दो चट्टानें अथवा सिसिफ़स बरक्स हनुमान' से कविताओं में विविधता है। प्रारंभ की कुछ कविताएं चीन के आक्रमण के बाद की हैं। फिर आते हैं गुलाब, फूल। विक्रमादित्य का सिंहासन, खून के छापे, गांधी, बाढ़-पीड़ितों के शिविर में, घर उठाने का बखेड़ा, दिये की मांग, दो बजनिये, आदि-आदि कविताएं बताती हैं कि कवि का पटल विस्तृत है। अंतिम कविता प्रतीकात्मक है। उसके पीछे हनुमान तथा सिसिफ़स की कथाओं के निमित्त शाश्वत मूल्यों पर अपनी भावना व्यक्त की है। पुस्तक की सभी कविताएं पढ़ने योग्य हैं।

हिन्दी गद्य शैली और विधाओं का विकास; लेखक : अमरनाथ सिन्हा; प्रकाशक : भारती भवन, पटन,; पृष्ठ : १३०, मूल्य : २ रुपये

जैसा कि नाम से विदित होता है, इस पुस्तक में लेखक ने पहले हिन्दी की गद्यशैली पर अनुसंधानात्मक रूप में विचार किया है, अनंतर उपन्यास, कहानी, नाटक, आलोचना आदि के वर्गों को लेकर हिन्दी गद्य के विकास का विवेचन किया है। पुस्तक सामान्य है। वह प्राध्यापक की दृष्टि से लिखी गई है, मौलिक चिंतन का उसमें अभाव है । विद्यार्थी उसे उपयोगी पायंगे ।

सर्वसेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी की पुस्तकें

मेरा गांव; लेखक: बबलभाई मेहता, अनुवादक : काशिनाथ त्रिवेदी; पृष्ठ : २१०; मूल्य : ढाई रुपये

सन् १९३४–३५ में गांधीजी के ग्राम-सेवा के आह्वान से प्रेरित होकर इस पुस्तक के लेखक तीन साल तक (१९३४ से १९३७) तक खेड़ा जिले के मासरा नामक गांव में रहे थे। वहां के अनुभवों के आधार पर उन्होंने गुजराती में 'मारुं गामडुं' नामक पुस्तक लिखी । प्रस्तुत पुस्तक उसीका हिन्दी रूपान्तर है। तीन वर्ष की अवधि में उन्होंने मासरा में जो देखा, जाना और अनुभव किया, उन्हींको तथ्यों तथा चित्रों के सहारे इस पुस्तक में दिया है। पुस्तक उपन्यास के समान रोचक है और ग्राम-सेवा की मौलिक दृष्टि प्रदान करती है। ऐसी पुस्तकें प्रत्येक शिक्षा-संस्था में पढ़ाई जानी चाहिए ।

बालवाड़ी; लेखक : जुगतराम दवे, अनुवादक : काशिनाथ त्रिवेदी; पृष्ठ : ३२४; मूल्य : अजिल्द तीन रुपये सजिल्द चार रुपये

बाल शिक्षा के आचार्य द्वारा लिखी यह पुस्तक लेखक के बाल-मानस संबंधी अनुभवों का निचोड़ है। इसमें उन्होंने बाल-शिक्षा की समस्याओं, बाल-स्वभाव, बाल-आरोग्य, बाल-उद्योग, बाल-साहित्य, बालवाड़ी की पढ़ाई आदि पर विचार किया है ।

हमारे देश में सबसे अधिक उपेक्षा बच्चों की शिक्षा की है। आज जो शिक्षा बच्चों को दी जाती है, वह न उनका विकास करती है और न उन्हें भावी-जीवन की सही दिशा देती है। फलतः उनकी प्रतिभा, मौलिकता तथा सृजनात्मक शक्तियां कुंठित हो जाती हैं ।

यह पुस्तक बताती है कि बच्चों को किस प्रकार की शिक्षा मिलनी चाहिए और कैसे। पुस्तक अत्यन्त उपयोगी है और शिक्षा-शास्त्रियों तथा शिक्षा-प्रेमियों को इसका अध्ययन अवश्य करना चाहिए ।

उगते तारे, खिलते फूल; लेखक : विनोबा; पृष्ठ : ७५; मूल्य : रु० १-००

सर्व-सेवा-संघ ने पाकेट बुक्स का प्रकाशन आरंभ किया है। उसीमें यह तथा आगे की पुस्तकें निकली हैं । प्रस्तुत पुस्तक में विनोबाजी की वे कथाएं दी गई हैं,जिन्हें वह अपने भाषणों के बीच सुनाया करते हैं। ये कथाएं प्राचीन इतिहास, पुराण, कुरान, बाइबिल तथा पुरातन लोक-गाथाओं में से ली गई हैं । सभी कहानियां रोचक, शिक्षाप्रद तथा प्रेरणादायक हैं। हर छोटे-बड़े को इन्हें पढ़ना चाहिए––इतना ही नहीं, इसे अपने दैनिक स्वाध्याय की पोथी बनाना चाहिए। इन छोटी-छोटी कहानियों में जीवन को बदल देने की क्षमता है ।

यह कैसा अंधेर; लेखक : टॉल्स्टाय; अनुवादक : सुरेशराम; पृष्ठ : ६५, मूल्य : एक रुपया

टॉल्स्टाय पसीने की कमाई के पोषक थे। वह चाहते थे कि हर व्यक्ति जमीन पर मेहनत करे और कोई किसीके ऊपर बोझ न बने। इस पुस्तक में उन्होंने बड़े प्रभावशाली ढंग से भूमि और भूमि-पुत्रों की समस्याओं पर प्रकाश डाला है और आशा व्यक्त की है कि परोपजीवी लोग अपने पाप को समझें और उसे खतम करें। पुस्तक विचारोत्तेजक है ।

भग्न मूर्त्ति; लेखिका : निर्मला; पृष्ठ : ९२; मूल्य : १ रु०

प्रस्तुत पुस्तक में भग्न मूर्त्ति, दीक्षा, तथा हारजीत, इन तीन नाटकों का संग्रह है। प्रारंभ में ठीक ही लिखा गया है, "एकांकी नाटकों का यह संग्रह प्रेरणाप्रद है, सामयिकता की दृष्टि है, रोचक है, कथानक की दृष्टि से।" और इसमें हम इतना और जोड़ देना चाहते हैं––"उपयोगी है, समाज को अहिंसक दृष्टि देने के विचार से।"

इन नाटकों की एक विशेषता यह भी है कि ये मंच पर खेले जा सकते हैं।

––सव्यसाची

क्या व कैसे ?

यह क्या हो गया !

श्री लालबहादुर शास्त्री का ११ जनवरी की रात को अचानक ताशकंद में देहांत हो गया। यह ऐसी अप्रत्याशित घटना है, जिसपर विश्वास ही नहीं होता।

शास्त्रीजी के चरित्र में क्या गुण थे और उन्होंने देश की किन-किन रूपों में और क्या सेवा की, इसके विस्तार में जाने की आवश्यकता नहीं है। उन्होंने आरंभ से ही सेवा का व्रत लिया था, जिसे अंत समय तक निभाया। आजादी की लड़ाई के दिनों में हर राष्ट्रीय आंदोलन में वह आगे रहे, कई बार जेल गये और बाद में जब देश स्वतंत्र हुआ तो वह और भी लगन से सेवा में जुट गये। कांग्रेस के महामंत्री, फिर केन्द्रीय मंत्री और अंत में प्रधान मंत्री के रूप में उन्होंने जो कार्य किया, उसका निःसंदेह ऐतिहासिक महत्व है। उन्होंने गांधीजी और नेहरूजी की परम्परा को बड़ी कुशलता से आगे बढ़ाया।

शास्त्रीजी की ऐसी विशेषताएं थीं, जो आज के युग में दुर्लभ हैं। पहली तो यह कि वह कभी सत्तात्मक राजनीति में नहीं पड़े, न उन्होंने कभी कोई अपनी पार्टी बनाई; दूसरी यह कि उन्हें कभी और किसी भी पद से मोह नहीं हुआ। बड़े-बड़े पदों पर भी वह जल में कमल की भांति रहे।

पिछले अठारह महीनों में उन्होंने जो-कुछ किया, उसके लिए यह युग उनका सदा ऋणी रहेगा। पाकिस्तान के आक्रमण का मुकाबला करते हुए भी उन्होंने शान्ति के रास्ते को नहीं छोड़ा। यह बड़ी विचित्र-सी बात लगती है कि आदमी एक ओर लड़े और दूसरी ओर शांति की बात करे। पर शास्त्रीजी ने युद्ध किया, क्योंकि वह दिल से शांति चाहते थे और लड़ते हुए भी उन्होंने बराबर शान्ति का स्वर ऊंचा किया। ताशकंद की वार्त्ता और घोषणा उनकी उसी निष्ठा का परिणाम थी।

अपने गुणों तथा कार्यों से शास्त्रीजी ने लोगों के दिलों में अपनी गहरी जगह बना ली थी। यही कारण है कि उनके विछोह से सारा देश शोकातुर हो उठा है, बल्कि सारे संसार में ही व्यथा की एक लहर दौड़ गई है, क्योंकि प्रायः सभी राष्ट्र यह जानते और मानते थे कि शास्त्रीजी से बढ़कर शान्ति चाहने तथा उसके लिए अथक परिश्रम करनेवाला और कोई व्यक्ति मिलना मुश्किल था।

हम शास्त्रीजी को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं और उनके कुटुम्बीजनों को समवेदना। साथ ही हम यह आशा करते हैं कि शास्त्रीजी ने अपनी जीवनाहुति द्वारा जिस परम्परा का पोषण किया, उसे देश आगे बढ़ावेगा।

'जीवन-साहित्य' का नये वर्ष में प्रवेश

नया वर्ष पाठकों को सब प्रकार से शुभ और आनंददायक हो।

१ जनवरी से 'जीवन साहित्य' २७वें वर्ष में प्रवेश कर रहा है। इस मंगल अवसर पर हम उन सबका अभिनंदन करते हैं, जिनका प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष संबंध इस पत्र के साथ रहा है। सबसे पहले हम अपने लेखकों का अभिनंदन करते हैं, जो पत्र की आत्मा का निर्माण करते हैं। हमें इस बात का बड़ा गौरव है कि पत्र को लेखकों का निरंतर सक्रिय सहयोग प्राप्त होता रहा है। सीमित पृष्ठ होने के कारण हम ही बहुत-सी रचनाओं का उपयोग नहीं कर पाते। आज पत्र को लोग जिस चाव से पढ़ते हैं, इसका श्रेय मुख्यतः हमारे लेखकों को ही है।

पाठकों का अपना महत्त्व है। जिस पत्र के पाठक नहीं, उसके अस्तित्व का मूल्य ही क्या है? इसलिए हम अपने पाठकों का भी अभिनंदन करते हैं। आज के अधिकांश पत्र विज्ञापनों के जोर पर चलते हैं। समय-समय पर हमें भी विज्ञापन लेने पड़ते हैं, लेकिन हमारा मुख्य सहारा पाठकों पर है। इसलिए इस अवसर पर हम अपने पाठकों का भी अभिनंदन करते हैं।

ग्राहकों तथा विज्ञापनदाताओं का भी हम हृदय से अभिनंदन करते हैं। बिना आर्थिक स्थायित्व के किसी भी

पत्र का चलना मुश्किल होता है। 'जीवन साहित्य' इतने वर्षों से जो कुछ थोड़ी बहुत सेवा कर सका है और आगे भी करेगा तो उसमें ग्राहकों का निश्चय ही विशेष योगदान है।

हमें विश्वास है कि लेखकों, पाठकों तथा ग्राहकों का स्नेहभाव इसी प्रकार भविष्य में भी बना रहेगा।

कुछ पाठक चाहते हैं कि पत्र के पृष्ठ बढ़ा दिये जायं। कुछ का कहना है कि उसमें कुछ स्थायी स्तंभ खोले जायं। हम स्वयं चाहते हैं कि पत्र के पृष्ठ बढ़ा दिये जायं, हम यह भी चाहते हैं कि उसमें कुछ नये विषयों का समावेश किया जाय, लेकिन वह तब संभव हो सकता है, जब पत्र के ग्राहक बढ़ें। यदि उस दिशा में हमारे पाठक मदद करेंगे तो हमें उनकी सूचनाओं के अनुसार पत्र को परिवर्द्धित करने में प्रसन्नता ही होगी। वर्तमान परिस्थितियों को देखकर ऐसा लगता है कि आगे आने वाला समय और अधिक कठिनाई का होगा। ऐसी अवस्था में पाठकों का विशेष सहयोग अपेक्षित होगा। आशा है, अपने-अपने क्षेत्र में पाठक कुछ-न-कुछ ग्राहक जुटाने में हमारी सहायता अवश्य करेंगे।

गांधी पुण्य-दिवस

३० जनवरी गांधीजी का पुण्य-दिवस है। इस युग-पुरुष के विषय में क्या कहा जाय! हमारे देश का कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं है, जो उनकी सेवाओं से अछूता हो। भारत ने आजादी पाई, दलित जातियां उठीं, महिलाओं में चैतन्य आया, देश ने नये मूल्य ग्रहण किये; यह सब उन्हींके किये हुए हैं। लेकिन गांधीजी गये, कि उनका जादू भी गया और आज हम मूल्यों के भयंकर संघर्ष का मुकाबला कर रहे हैं। आंतरिक और बाह्य अनेक कठिनाइयां हमारे सामने हैं।

इस सबका परिणाम क्या निकलेगा, इसका उत्तर तो समय देगा, लेकिन एक बात स्पष्ट है और वह यह कि अगर भारत को भारत रहना है तो गांधीजी के रास्ते के अलावा दूसरा रास्ता कोई नहीं है।

गांधीजी का संदेश था—सादा जीवन व्यतीत करो और आत्मिक शक्ति प्राप्त करो। अहिंसा, सत्य, अपरिग्रह आदि में उनकी निष्ठा बड़ी गहरी थी और वह चाहते थे कि राजनीति में भी इन गुणों का समावेश हो। इसके लिए उन्होंने प्रयत्न भी किया। लेकिन हमारा दुर्भाग्य था कि मूल्यों के स्थायी बनने से पहले ही वह चले गये।

गांधीजी का भौतिक शरीर गया, लेकिन उनके विचार आज भी मौजूद हैं। हम उनपर कितना चलते हैं, यह हमारी क्षमता पर निर्भर करता है।

गांधीजी के पुण्य दिवस पर हम उन्हें अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि हमें ऐसी शक्ति प्राप्त हो, जिससे हम उनके बताये रास्ते पर चल सकें।

गणतंत्र-दिवस का संदेश

भारत १५ अगस्त १९४७ को आजाद हुआ था, लेकिन उसे गणतंत्र का दर्जा मिला—सन् १९५० की २६ जनवरी को।

२६ जनवरी का दिन हमारे इतिहास में पहले से ही प्रसिद्ध है। उस दिन रावी के तट पर पहली बार निश्चय हुआ था कि हम जबतक पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त नहीं कर लेंगे, तबतक चैन नहीं लेंगे। कोटि-कोटि व्यक्तियों के संकल्प में कितना बल होता है, यह बताने की आवश्यकता नहीं। उसी संकल्प का परिणाम था कि विदेशी सत्ता को यहां से जाने के लिए विवश होना पड़ा।

आज १८ वर्ष से हमारा देश स्वतंत्र है, लेकिन सच बात यह यह है कि देशवासी आजादी का आनंद अनुभव नहीं कर रहे हैं। बहुत-सी विकट समस्याएं आज सामने हैं और देश भारी संकट की स्थिति से गुजर रहा है, हमारा निश्चित मत है कि जिस देशव्यापी संकल्प ने परतंत्रता की बेड़ियों को तोड़ा था, वही स्वतंत्रता की रक्षा करेगा। आखिर ऐसी कौन-सी समस्या है, जो राष्ट्र के संकल्प से सुलझ न सके। आवश्यकता इस बात की है कि समस्याओं को सुलझाने के लिए सारा देश कृतसंकल्प हो। यह ठीक है कि आज अपनी सरकार है, लेकिन अकेली सरकार क्या करेगी, जबतक कि उसके पीछे जनता का बल न हो।

आजाद होने के बाद सरकार पर निर्भर होने की हमारी आदत हो गई है। छोटी-बड़ी हर चीज़ के लिए हम शासन का मुंह ताकते हैं। शासन अपना है तो अपने साथ होगा ही, लेकिन इतने बड़े देश को वह अकेले कैसे संभाल सकेगा, देश की आवश्यकताओं की पूर्ति कैसे कर सकेगा!

गणतंत्र-दिवस का एक ही संदेश है और वह यह कि हम स्वावलम्बी बनें और अपना रास्ता आप खोजें। जनतंत्र की आधारमूलक इकाई 'जन' होता है और बिना जन अर्थात्

लोक शक्ति के जनतंत्र कदापि नहीं चल सकता।

हम आशा करते हैं, हमारा यह राष्ट्रीय पर्व हमें नई प्रेरणा देगा और अपने कर्तव्यों के प्रति हमें अधिकाधिक सजग बनने के लिए अनुप्राणित करेगा।

वंदनीय हैं ये

इस महीने की कुछ और तिथियां स्मरणीय हैं। १२ जनवरी को स्वामी विवेकानंद और २३ जनवरी को नेताजी सुभाषचंद्र बोस का जन्म हुआ। १९ जनवरी को ठक्कर बापा हमसे बिछुड़ गये। इन तीनों ही महापुरुषों की अपनी-अपनी देन है। लोकसेवा का अनुपम आदर्श स्वामी विवेकानंद ने प्रस्तुत किया। उन्होंने विश्व में भारत का नाम ऊंचा किया। नेताजी की सेवाओं को कौन भूल सकता है! आजादी की लड़ाई में उन्होंने जो कुर्बानी की, वह हमारे इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखी जायगी। उनकी आजाद-हिन्द-फौज और आजाद हिन्द सरकार ये दोनों आजादी की मंजिलें थीं। ठक्कर बापा तो दीनों के सच्चे बंधु ही थे। जिन्हें हम छोटा और नीच मानकर उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं, उन्हें ठक्करबापा ने उठाया और गले लगाया। सेवा का व्रत लेकर उन्होंने अपने जीवन का प्रत्येक क्षण हरिजनों, गिरिजनों तथा पिछड़ी जातियों के उद्धार में व्यतीत किया।

इन सब वंदनीय महापुरुषों का आज हमें विशेष रूप से स्मरण होता है, क्योंकि उन्होंने जो काम उठाया था, वह अभी पूर्ण नहीं हुआ है।

हम इन सबको अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं। हमें विश्वास है कि उनका देश आज नहीं तो कल, अपनी शक्ति को पहचानेगा और विश्व में उस गौरव को प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करेगा जिसका वह अधिकारी है।

—य०

दबाव से नहीं

लोग तो आम तौर पर कहते हैं कि बिना गर्दन दबाये सरकार कुछ नहीं करती। सिफारिश के बिना अधिकारी कुछ नहीं करते। इसमें अत्युक्ति हो सकती है। पर जब हम श्री लक्ष्मीनारायणसिंह 'सुधांशु' जैसे जिम्मेवार, बिहार विधान-सभा के अध्यक्ष, के मुंह से यह सुनते हैं कि आज की सरकार आन्दोलन की भाषा ही समझती है, तो हमें दुःख होता है। हमने भी यह देखा है कि अक्सर सत्य, न्याय, औचित्य की अवहेलना की जाती है और दबाव, प्रभाव, जोर-जबरदस्ती के आगे सिर झुकाया जाता है। तब उन लोगों के मन में भी, जो सही रास्ते चलना चाहते हैं, क्षोभ और विद्रोह के भाव आने लगते हैं। श्री सुधांशुजी के भाषण में यही क्षोभ टपकता दीखता है।

यह सही है कि मांग करनेवाले की दृष्टि एकांग पर होती है, और पूर्ति करनेवालों को चारों ओर देखना पड़ता है। चारों ओर देखकर चलनेवालों का कदम ढीला और 'आहिस्ता' हो जाता है। यह बात समझने में आने जैसी है, परन्तु सही बात को सही मानकर चलना और दबाव से गलत बात को भी सही मानना या उसके प्रति आंख मिचौनी करना तो वाजिब नहीं कहा जा सकता। हिन्दी के प्रश्न पर यदि ढील इसलिए की जाती है कि दक्षिण में कुछ लोगों ने एक बवंडर खड़ा कर दिया था, तो इससे दबना उचित नहीं है। पाकिस्तान के संकट के कारण, या और किसी मसलहत से देरी करना भी समझ में आ सकता है। परन्तु संविधान का तकाजा और हमारे अपने आश्वासनों का सबसे अधिक मूल्य है। भारत सरकार को यह हमेशा स्मरण रखने की जरूरत है।

सामूहिक अभिनंदन

कुछ दिन पहले हिन्दी के लब्ध-प्रतिष्ठ लेखक और पत्रकार श्री बनारसीदासजी चतुर्वेदी ने एक छापित पत्र भेजा था, जिसमें उन्होंने व्यक्तिगत अभिनंदनों के मुकाबले में सामूहिक अभिनंदन करने का सुझाव दिया था। मुझे वह पसन्द आया था। इसलिए मैंने मुझे दिये जानेवाले अभिनंदन ग्रन्थ का काम रुकवा दिया था। इधर मेरे पास कई पत्र आये हैं, जिनमें अभिनंदन-ग्रन्थों के लिए लेख, संस्मरण, सराहना (Appreciation) आदि के लिए अनुरोध किया गया है। योग्य की कद्र होनी ही चाहिए। इसमें दो राय नहीं हो सकतीं। पर यह सवाल जरूर मन में उठता है कि वह कब हो? अभिनंदन-ग्रन्थ में अभिनंदनीय की प्रशंसा-स्तुति-सराहना रहना लाजिमी है। एक मत तो यह है कि मनुष्य के जीवन का सच्चा हिसाब उसकी मृत्यु के बाद ही लग सकता है। मृत्यु के थोड़े दिन पहले भी व्यक्ति से ऐसे काम हो सकते हैं, जिनसे प्रशंसा के बजाय वह निन्दा का पात्र

हो जाय। आज हमने यदि पहले अभिनंदन में प्रशंसा कर रखी है तो बाद में क्या निन्दा-ग्रन्थ भेंट करेंगे? इधर एक मत यह है कि मरने के बाद यदि हम प्रशंसा-पत्र या अभिनंदन-ग्रन्थ भेंट करते हैं तो अभिनंदनीय व्यक्ति को उससे क्या लाभ हुआ? उसे आनन्द, सन्तोष, समाधान तो उसी अवस्था में हो सकता है जब वह खुद उसका साक्षी हो। मैंने एक-दो जगह यह विचार प्रदर्शित किया है कि मरने के बाद हम जो कुछ करते हैं, अपने लिए करते हैं। मरने वाले के लिए जो कुछ करना हो तो उसके जीतेजी कर देना अच्छा है। मरणोपरांत श्राद्ध करने के बजाय, या उसके साथ जीवित श्राद्ध करना क्या बुरा है? यह अभिनंदन जीवित श्राद्ध होता है? इन सबपर विचार करने से ऐसा तो आवश्यक लगता है कि इन अभिनंदनों के बारे में कोई एक आधार, एक स्टैंडर्ड, एक नाप-तौल तय करें। साठ साल के बाद मनुष्य की बुद्धि परिपक्व मानी जाती है। अतः साठ साल बीत जाने पर ऐसे अभिनंदनक समारोह हों तो ठीक हो सकता है। सामूहिक अभिनंदनों का सुझाव भी कई दृष्टियों से अच्छा है। प्रति ५ वर्ष में ऐसे अभिनंदनों का आयोजन किसी एक केन्द्रीय स्थान पर किया जाय। एक बार साहित्यकारों का, एक बार कलाकारों का, एक बार दर्शनकारों का, एक बार विज्ञान-वेत्ताओं का, इस प्रकार पारी-पारी से यदि आयोजन हों तो अच्छा रहेगा। उस दिन उन वर्षों के अन्दर देश के सभी उच्च कोटि के व्यक्तियों के एकसाथ अभिनंदन किये जायं। अच्छा सुझाव है। भिन्न भिन्न विषयों की केन्द्रीय संस्थाएं इस विषय में अपने-अपने नियम तय कर लें। विश्वविद्यालय, केन्द्रीय शिक्षालय भी इस विषय में कुछ कार्रवाई कर सकते हैं। बहरहाल इस संबंध में कोई निश्चित परिपाटी अवश्य होनी चाहिए।

—ह० उ०

लेखकों से निवेदन

यह लेखकों की बड़ी कृपा है कि वे समय-समय पर हमें अपनी रचनाएं भेजते रहते हैं, लेकिन कुछ लेखक हमें एक-साथ कई रचनाएं भेज देते हैं और फिर उनके प्रकाशन के लिए चिट्ठी-पर-चिट्ठी भेजते हैं। उनसे हमारा विनम्र निवेदन है कि एक समय में केवल एक रचना भेजी जाय और जबतक वह प्रकाशित न हो जाय, तबतक दूसरी न भेजी जाय। प्रत्येक रचना के अंत में अपना पूरा पता अवश्य दिया जाय, जिससे रचना के छपते ही अंक भेजा जा सके।

रचनाएं शुद्ध छपें, इसके लिए आवश्यक है कि लिखावट साफ़ हो। यदि रचनाओं को टाइप करा कर भेजा जा सके तब तो कहना ही क्या, अन्यथा पर्याप्त हाशिया और लाइनों के बीच सम्पादन के लिए जगह छोड़कर उन्हें स्पष्ट और सुंदर लिखावट में लिखा जाय।

अस्वीकृत होने की दशा में रचनाओं को लौटाया जा सके, इसके लिए डाक-टिकट का भेजना आवश्यक है।

बहुत-से लेखक चाहते हैं कि उन्हें 'जीवन-साहित्य' स्थायी रूप से मिले। यह संभव नहीं हो सकता। पत्र के लेखकों की संख्या काफ़ी है। उन सबको निःशुल्क पत्र भेजने के लिए पर्याप्त आर्थिक साधन चाहिए। उसे निकालनेवाली संस्था एक सार्वजनिक संस्था है, जो बिना मुनाफ़े के अपना कार्य करती है। ऐसी अवस्था में उसके पास इतना पैसा कहां से आ सकता है कि वह अपने पत्र को भेंट स्वरूप लेखकों को देती रहे? जिस अंक में जिसकी रचना छपती है, वह अंक उसे भेजा ही जाता है।

ऐसी दशा में एक ही रास्ता है और वह यह कि लेखक अपने क्षेत्र में पांच ग्राहक बना दें तो हम उन्हें एक वर्ष तक 'जीवन-साहित्य' बड़ी प्रसन्नता से निःशुल्क भेज देंगे। पत्र का वार्षिक शुल्क कुल चार रुपये है। किसी भी क्षेत्र में पांच हिन्दी-प्रेमी व्यक्तियों तथा संस्थाओं का मिलना कठिन नहीं है।

—य०

'मंडल' की ओर से

'मंडल' का एक अभिनव प्रकाशन

'सस्ता साहित्य मण्डल' ने पिछले दिनों कई पुस्तकें निकाली हैं, लेकिन उनमें तीन ग्रंथों का प्रमुख स्थान है। पहला ग्रंथ है 'राजेन्द्रबाबू : व्यक्तित्व दर्शन'। इस ग्रंथ में मुख्यत: देशरत्न डा० राजेन्द्रप्रसाद से संबंधित विभिन्न व्यक्तियों के संस्मरण हैं, साथ में अनेक चित्र भी। दूसरा ग्रंथ है 'नेहरू : व्यक्तित्व और विचार'। इस ग्रंथ में लोकनेता पं० जवाहरलाल नेहरू से संबंधित न केवल संस्मरण हैं, अपितु ऐतिहासिक अवसरों पर व्यक्त किये गए विचार भी हैं। लगभग डेढ़ सौ चित्र हैं। तीसरा ग्रंथ है 'संस्कृति के परिव्राजक', जो गांधी विचारधारा के व्याख्याता, स्वतंत्र चिंतक तथा भारतीय संस्कृति के उन्नायक काकासाहब कालेलकर को समर्पित किया गया है। इस ग्रंथ में काकासाहब से संबंधित संस्मरण हैं, उनकी संक्षिप्त जीवनी तथा विचार हैं और अहिन्दी क्षेत्रों द्वारा की गई हिन्दी की सेवाओं का विवरण है।

इसी क्रम में पाठकों को शीघ्र ही एक नया ग्रंथ उपलब्ध हो रहा है—'गांधी : व्यक्तित्व, विचार और प्रभाव'। जैसाकि नाम से स्पष्ट है, इस ग्रंथ में विभिन्न व्यक्तियों द्वारा लिखे गांधी-विषयक संस्मरण हैं, बैरिस्टरी पढ़ने के लिए पहली बार जब वह लंदन गये थे, तब वहां से लिखे पहले पत्र (सन् १८८८) से लेकर दक्षिण अफ्रीका में मानवोचित अधिकारों के लिए लड़कर भारत लौटने (सन् १९१५) तक के समय के चुने हुए विचार तथा विभिन्न वर्गों एवं क्षेत्रों में गांधीजी के व्यापक प्रभाव पर अनेक व्यक्तियों के लेख हैं। बड़े आकार के ६०० पृष्ठों में जो सामग्री दी गई है, वह अन्यत्र शायद ही मिले।

हिन्दी तथा भारतीय भाषाओं के लिए एक अनूठी चीज़ है।

ग्रंथ में बहुत-से चित्र भी दिये गए हैं, जिनसे गांधीजी के व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश पड़ता है।

ऊपर का आवरण अत्यन्त आकर्षक है। ग्रंथ का मूल्य बीस रुपये रखा गया है।

अपनी प्रति शीघ्र ही सुरक्षित करा लीजिये। विलम्ब होने पर कहीं आपको दूसरे संस्करण के लिए प्रतीक्षा न करनी पड़े।

गांधी डायरी १९६६

नये वर्ष, अर्थात १९६६ की गांधी डायरी की थोड़ी ही प्रतियां बची हैं। अपनी प्रति शीघ्र ही मंगा लीजिये। गत वर्ष अनेक पाठकों को निराश होना पड़ा था। इस बार विलम्ब से अपनी मांग भेजेंगे तो बहुत संभव है कि उस समय तक डायरी की एक भी प्रति न बचे। बड़ी डायरी का मूल्य ढाई रुपये और छोटी का सवा रुपया है।

नये प्रकाशन

'मण्डल' से और भी बहुत-से नये प्रकाशन हुए हैं। इस अंक के अंत में पूरी सूची दी गई है। इनमें से अपनी रुचि की पुस्तकें छांटकर उनका आर्डर भेज सकते हैं। नवीन प्रकाशनों की संक्षिप्त सूची तीसरे कवर पर दी हुई है।

उपहार में पुस्तकें दीजिये

नया वर्ष सबके लिए बड़ी प्रसन्नता का अवसर होता है। उस समय अच्छी पुस्तकों की भेंट दीजिये। आपका यह उपहार पानेवाले को हर्ष होगा और उसे एक ऐसी वस्तु प्राप्त होगी, जिसका उपयोग पूरे वर्ष किया जा सकेगा। उत्तम साहित्य को जितनी बार पढ़ा जाय उतना ही लाभ होता है।

—मंत्री

हिन्दुस्तान को अपने किसानों पर गर्व है। वे खून-पसीना एक करके फसलें पैदा करते हैं, जिससे सरहद पर तैनात सैनिकों को खाना मिलता है; कारखानों में काम करने वालों को खाना मिलता है; देश की जनता को खाना मिलता है। वे दिन रात अधिक से अधिक पैदा करने में जुटे हैं ताकि देश में ही सबके लिए अनाज पैदा हो सके। हमारे किसान समझते हैं कि जितना कम अनाज हमें विदेशों से मंगाना पड़ेगा, उतना ही अधिक धन हम देश के विकास और रक्षा पर खर्च कर सकेंगे। इस अथक मेहनत के बदले वे केवल आपका अथक परिश्रम चाहते हैं।

एक महान देश हमारा
एक महान राष्ट्र

DA 63/67

सस्ता साहित्य मंडल के प्रकाशन

(गांधी साहित्य)

गांधीजी लिखित

प्रार्थना-प्रवचन—भाग १	४.००
प्रार्थना-प्रवचन—भाग २	३.५०
गीतामाता	५.००
पन्द्रह अगस्त के बाद	२.५०
धर्म-नीति	२.५०
दक्षिण अफ्रीका का सत्याग्रह	४.५०
मेरे समकालीन	६.००
आत्मकथा (सम्पूर्ण), सजिल्द	५.००
आत्मकथा (सम्पूर्ण), अजिल्द	२.५०
आत्म-संयम	४.००
गांधी-विचार-रत्न	३.५०
आत्मकथा (संक्षिप्त)	१.१०
अनासक्तियोग	१.००
अनीति की राह पर	१.५०
आज का विचार (दो भाग)	०.८०
आश्रमवासियों से	०.४०
एक सत्यवीर की कथा	०.३०
गांधी-शिक्षा (तीन भाग)	०.९२
गीता-बोध	०.७५
ग्राम-सेवा	०.५०
नीति-धर्म	०.४०
ब्रह्मचर्य—भाग १	१.५०
ब्रह्मचर्य—भाग २	१.००
बापू की सीख	०.७५
मंगल-प्रभात	०.४०
सर्वोदय	०.५०
हमारी मांग	१.२५
हिन्द-स्वराज्य	१.२५
हृदय-मंथन के पांच दिन	०.४०
देश-सेवकों के संस्मरण	१.५०
अगर मैं डिक्टेटर होता	०.३०
शराबबन्दी करें	०.३०
स्वराज में अछूत कोई नहीं	०.३०
खादी पहनो	०.३०
शिक्षा ऐसी हो	०.३०
कंगाली ऐसे दूर होगी	०.३०
कताई यज्ञ है	०.३०
ग्राम-सेवा यों करें	०.३०
स्त्रियां यह करें	०.२०

(अन्य लेखकों द्वारा लिखित)

गांधी : व्यक्तित्व, विचार और प्रभाव		२०.००
मेरे हृदयदेव	(हरिभाऊ उपाध्याय)	३.००
गांधीजी और उनके सपने	(वियोगी हरि)	१.००
गांधी की कहानी	(लुई फिशर)	प्रेस में
अहिंसा की शक्ति	(रिचर्ड बी० ग्रेग)	१.७५
गांधी-श्रद्धांजलि ग्रंथ	(स० राधाकृष्णन्)	प्रेस में
गांधीजी की छत्रछाया में	(घ० दा० बिड़ला)	२.००
जीवन-प्रभात	(प्रभुदास गांधी)	६.००
बा, बापू और भाई	(देवदास गांधी)	०.५०
बापू	(घनश्यामदास बिड़ला)	२.००
डायरी के पन्ने	,,	१.२५
बापू के पत्र	(सं० काका कालेलकर)	३.५०
बापू के आश्रम में	(हरिभाऊ उपाध्याय)	१.२५
गांधी-विचार-दोहन	(कि० मशरूवाला)	२.००
श्रद्धाकण	(वियोगी हरि)	१.००
गांधीवादी संयोजन के सिद्धांत	(श्रीमन्नारायण)	५.००
स्वतंत्रता की ओर	(हरिभाऊ उपाध्याय)	४.५०
सर्वोदय की बुनियाद	,,	१.००
इंग्लैण्ड में गांधीजी	(महादेव देसाई)	१.२५
बापू की कारावास कहानी	(सुशीला नैयर)	७.५०
सर्वोदय-योजना		०.५०
विनोबा के जंगम विद्यापीठ में	(कुंदर दिवाण)	२.५०
बापू-स्मरण सजिल्द)		५.००
,, ,, (अजिल्द)		४.००
गांधी : एक जीवनी (सजिल्द)	(बी० नंदा)	५.००
अहिंसा की कहानी	(यशपाल जैन)	१.७५

विनोबा-साहित्य

ईशावास्यवृत्ति	१.००
ईशावास्योपनिषद्	प्रेस में
उपनिषदों का अध्ययन	१.००
गांधीजी को श्रद्धांजलि	०.४०
जीवन और शिक्षण	२.५०
भूदान-यज्ञ	०.२५
राजघाट की सन्निधि में	०.७५
सर्वोदय-संदेश	१.५०

विचार-पोथी	१.००
विनोबा के विचार (दो भाग)	४.००
,, ,, (भाग ३)	१.५०
शान्ति-यात्रा	१.७५
स्थित-प्रज्ञ-दर्शन	१.२५
स्वराज्य-शास्त्र	०.५०
सर्वोदय का घोषणा-पत्र	प्रेस में
सर्वोदय-विचार	१.१२
विनोबा के पत्र (सजिल्द)	४.००
,, ,, (अजिल्द)	२.००
विनोबा की बोध कथाएं	१.५०

डा० राजेन्द्रप्रसाद

आत्मकथा (नया संस्करण)	१२.००
गांधीजी की देन	१.५०
गांधी-मार्ग	०.१५

जवाहरलाल नेहरू

मेरी कहानी (संपूर्ण)	१२.००
मेरी कहानी (संक्षिप्त)	२.७५
राजनीति से दूर	२.५०
राष्ट्रपिता	२.००
विश्व-इतिहास की झलक (दोनों खंड)	२०.००
विश्व-इतिहास की झलक (संक्षिप्त)	८.००
हिन्दुस्तान की कहानी (संपूर्ण)	१२.००
हिन्दुस्तान की कहानी (संक्षिप्त)	३.५०
हिन्दुस्तान की समस्याएं	२.५०
कुछ पुरानी चिट्ठियां	१०.००
इतिहास के महापुरुष	३.५०
सामुदायिक विकास और पंचायती राज	२.५०
सहकारिता	२.००
लड़खड़ाती दुनिया	३.००
नेहरू : व्यक्तित्व और विचार	२५.००

चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य

दशरथ-नंदन श्रीराम (सजिल्द)	६.००
,, ,, (अल्पमोली)	३.००
कुब्जा-सुन्दरी	२.२५
*महाभारत-कथा	६.००
शिशु-पालन	(प्रेस में)
राजाजी की लघु कथाएं	२.००

हरिभाऊ उपाध्याय

युगधर्म	२.५०
मनन	१.५०
*साधना के पथ पर	२.५०
श्रेयार्थी जमनालालजी	(प्रेस में)
*भागवत-धर्म	७.००
हिंसा का मुकाबला कैसे करें	०.३७

वियोगी हरि

जपुजी	०.३५
संत-सुधासार (संक्षिप्त)	६.००
यों भी तो देखिये !	१.२५
संत-वाणी	२.५०
शेख-फरीद	०.३५
कबीरदास	०.५०
स्वामी दादूदयाल	०.३५
बुद्ध-वाणी	१.२५

काउंट लियो टाल्स्टाय

अंधेरे में उजाला	१.५०
ईसा की सिखावन	१.२५
कलवार की करतूत	०.३५
जीवन-साधना	१.५०
धर्म और सदाचार	१.५०
*प्रेम में भगवान	२.५०
बालकों का विवेक	०.७५
बुराई कैसे मिटे ?	१.५०
मेरी मुक्ति की कहानी	२.००
स्त्री और पुरुष	१.२५
सामाजिक कुरीतियां	२.५०
हम करें क्या ?	४.००
हमारे जमाने की गुलामी	१.००

प्रिंस क्रोपाटकिन

क्रांति की भावना	२.५०
नवयुवकों से दो बातें	०.५०
संघर्ष नहीं, सहयोग	२.००

खलील जिब्रान

जीवन सन्देश	१.२५
आंसू और मुसकान	(प्रेस में)
धरती के देवता	१.००
पागल (गद्य-काव्य)	१.००
बटोही	१.५०
तूफान	१.२५
हीरे और मोती	१.००

जीवनी तथा संस्मरण

संस्कृति के परिव्राजक : (काका कालेलकर)	२०.००
अमिट रेखाएं (सं० सत्यवती मल्लिक)	३.५०

एक आदर्श महिला	(विनायक तिवारी)	१.००
क्रांतिकारी के संस्मरण	(ब० दास चतुर्वेदी)	१.००
कोई शिकायत नहीं	(कृष्णा हठीसिंग)	प्रेस में
काश्मीर पर हमला	(कृष्णा मेहता)	२.५०
मानवता के झरने	(ग० वा० मावलंकर)	२.५०
मेरे संस्मरण	,,	२.५०
मेरी जीवन-यात्रा	(जानकी देवी बजाज)	३.५०
*मील के पत्थर	(रामवृक्ष बेनीपुरी)	२.२५
मैं भूल नहीं सकता	(कैलासनाथ काटजू)	२.५०
लोकमान्य तिलक और उनका युग	(इन्द्र विद्यावाचस्पति)	४.५०
विनोबा के साथ सात दिन	(श्रीमन्नारायण)	०.७५
स्मरणांजलि	(सं० काका कालेलकर)	२.००
मैं इनका ऋणी हूं	(इन्द्र विद्यावाचस्पति)	२.२५
सेतबन्धु	(वनारसीदास चतुर्वेदी)	२.००
गुरुदेव और उनका आश्रम	(शिवानी)	१.००
मेरा वकालती जीवन	(मावलंकर)	४.००
लाला लाजपतराय	(मुकुट बिहारी)	१.००
राजेन्द्रबाबू : व्यक्तित्व-दर्शन	(सजिल्द)	१५.००
,, ,,	(अजिल्द)	८.००
विश्व की विभूतियां	(हरिभाऊ उपाध्याय)	२.००
कुछ शब्द : कुछ रेखाएं	(विष्णु प्रभाकर)	३.५०
कुछ देखा कुछ सुना	(घनश्यामदास बिड़ला)	३.५०
जमनालालजी	,,	१.५०
त्याग का मूल्य (जीवनियां)	(गौड़)	१.५०
सती का तेज	,, ,,	२.००
मृत्यु पर विजय	,, ,,	१.००

कथा : कहानी : नाटक : काव्य

कहावतों की कहानियां	(म० पोद्दार)	२.२५
परमहंस की कथाएं	,,	२.००
सप्तदशी (कहानी संग्रह)	(सं० विष्णु प्रभाकर)	२.००
रीढ़ की हड्डी (एकांकी संग्रह)	,, ,,	१.५०
नवप्रभात (नाटक)	,, ,,	१.००
नाश का विनाश	(मामा वरेरकर)	३.००
जीवन-पराग (कहानियां)	(सं० विष्णु प्रभाकर)	१.२५
कथा सरित्सागर	(सोमदेव)	६.५०
ज्ञान की गरिमा (कथाएं)	(बलदेव उपाध्याय)	२.२५
ध्रुवोपाख्यान	(घनश्यामदास बिड़ला)	०.३०
भागवत-कथा	(सूरजमल मोहता)	४.००
बरगद की छाया	(देवराज 'दिनेश')	२.५०
उपेक्षित (काव्य)	(भगवद्दत्त 'शिशु')	१.००
राष्ट्रीय गीत (संकलन)		०.३०
*शारदीया (नाटक)	(जगदीशचन्द्र माथुर)	१.५०
खंडित पूजा	(विष्णु प्रभाकर)	३.५०
नीली झील	,,	३.५०
हारजीत का भेद	(आनंदकुमार)	२.००
*प्रकाश की रेखा	(रणजित भट्टाचार्य)	१.५०
अशोकवन (खण्ड-काव्य)	(गोकुलचंद शर्मा)	१.५०
दूर्वा-दल (कविता)	(हरिभाऊ उपाध्याय)	२.००
ईंट की दीवार	(मौलाना रूमी)	१.२५
उदयन-कथा	(विराज)	०.७५
चाणक्य कथा	,,	०.७५
मानव-धर्म की आख्यायिकाएं	(नानाभाई भट्ट)	१.२५
मंगल-मार्ग (काव्य)	(गोकुलचन्द शर्मा)	१.५०
उपनिषदों की कथाएं	(शंकरराव देव)	१.००

उपन्यास

तट के बन्धन (सजिल्द)	(विष्णु प्रभाकर)	३.५०
,, (अजिल्द)	,,	२.५०
देवदासी	(बा० भ० बोरकर)	३.५०
कित्तूर की रानी	(अ० न० कृष्णराव)	२.००
नवीन यात्रा	(मनोज वसु)	२.५०
*प्रभु पधारे	(झवेरचन्द्र मेघाणी)	२.५०
ज्वालामुखी	(अनंत गोपाल शेवड़े)	३.५०
मानवता के दीये	(झवेरचन्द्र मेघाणी)	४.५०
विराट	(स्टीफेन ज्विग)	१.५०
स्वाभिमानी	(तुर्गनेव)	२.००
तूफान और ज्योति	(सुमतिदेवी धनवटे)	२.५०
रेबेका	(दाफ्न द्यु मोरिये)	५.००
सिपाही की बीवी	(मामा वरेरकर)	२.५०
अनोखा	(विक्टर ह्यूगो)	२.५०
हृदयनाद (सजिल्द)	(सुब्रह्मण्यम)	३.५०
जिन्दगी दांव पर	(स्टीफेन ज्विग)	३.००
प्रेम प्रपंच	(तुर्गनेव)	२.००
मास्टर महिम	(मनोज बसु)	४.००
प्रियदर्शी अशोक (सजिल्द)		३.३७
,, ,, (अजिल्द)		२.५०

यात्रा-साहित्य

हिमालय की गोद में	(महाबीर प्र० पोद्दार)	२.००
जापान की सैर	(रामकृष्ण बजाज)	(प्रेस में)
जय अमरनाथ	(यशपाल जैन)	,,
उत्तराखंड के पथ पर	,,	२.५०
रूस में छियालीस दिन	(अल्पमोली) ,,	१.५०
दुनिया की सैर अस्सी दिन में	(पं० शुक्ल)	१.५०
प्रा० चिकित्सक की यूरोप-यात्रा	(वि० मोदी)	१.५०
आज का इंग्लिस्तान	(मु० बि० वर्मा)	२.००
आतलांतिक के उस पार	(रामकृष्ण बजाज)	२.५०
रूसी युवकों के बीच	,,	२.५०
जमना-गंगा के नैहर में	(विष्णु प्रभाकर)	४.५०

पुस्तक	लेखक	मूल्य
जय केदारनाथ	(माधव उपाध्याय)	१.००
पड़ोसी देशों में	(यशपाल जैन)	६.००

साहित्य और संस्कृति

पुस्तक	लेखक	मूल्य
भारतीय संस्कृति	(साने गुरुजी)	४.५०
केरली साहित्य-दर्शन	(रत्नमयीदेवी)	४.००
तमिल साहित्य और संस्कृति	(अवधनंदन)	४.५०
रामायणकालीन समाज	(शां० ना० व्यास)	६.००
रामायणकालीन संस्कृति	,,	६.००
भारत-सावित्री (दो भाग)	(वासुदेवशरण अग्रवाल)	९.००
बंगला-साहित्य-दर्शन	(मन्मथनाथ गुप्त)	४.००
हिन्दुओं के व्रत और त्यौहार		३.५०

इतिहास-राजनीति

पुस्तक	लेखक	मूल्य
अठारह सौ सत्तावन	(हर्डीकर)	३.५०
आधुनिक भारत	(आचार्य जावड़ेकर)	५.००
कांग्रेस का इतिहास—भाग तीसरा	(डा० पट्टाभि सीतारमैया)	१०.००
कांग्रेस का इतिहास (संक्षिप्त)		६.००
मानव-अधिकार	(प्रभाकर : त्रिपाठी)	१.००
चीन का विश्वासघात	(शंभुप्रसाद शाह)	०.३०
पंद्रह वर्ष में हमारी प्रगति	(अवनींद्रकुमार)	०.७५
भारतीय स्वाधीनता-संग्राम का इतिहास	(इंद्र विद्यावाचस्पति)	६.००
अफ्रीका जागा	(एन्क्रूमा की आत्मकथा)	३.००
परीक्षा की घड़ी	(शंभुप्रसाद शाह)	०.७५

आचार, नीति तथा शिक्षा

पुस्तक	लेखक	मूल्य
परम सखा मृत्यु	(काका कालेलकर)	२.२५
अमृत की बूंदें	(आनंदकुमार)	२.५०
तामिलवेद	(ऋषि तिरुवल्लुवर)	१.५०
तुकाराम-गाथासार		१.५०
शिष्टाचार	(कंचनलता सब्बरवाल)	१.००
रामतीर्थ-संदेश (३ भाग)		१.१२
आत्मोपदेश	(एपिक्टेट्स)	प्रेस में
आगे बढ़ो	(स्वेट मार्डेन)	२.००
दिव्य जीवन	,,	१.५०
व्यवहार और सभ्यता	(गणेशदत्त)	१.५०
सुभाषित-सप्तशती	(मंगलदेव शास्त्री)	२.५०
सूफी सन्त-चरित	(महात्मा भगवान)	३.००
सूक्ति-रत्नावली	(आनंदकुमार)	१.५०
आत्म-रहस्य	(रतनलाल जैन)	३.५०
बोधि-वृक्ष की छाया में	(भरतसिंह उपाध्याय)	२.५०
भारतीय दर्शन-सार	(बलदेव उपाध्याय)	५.५०
मानव और धर्म	(इंद्रचंद्र शास्त्री)	३.००
महाभारत के सूक्ति-रत्न	(इंद्रचंद्र शास्त्री)	२.५०
मानस का सामाजिक दर्शन	(बैजनाथसिंह)	३.००
सच्ची आजादी	(भगवानदीन)	२.००
शिक्षा का विकास	(भगवान प्रसाद)	३.००
बेकार कुछ नहीं	(अमरनाथ राय)	०.७५
जैनधर्म का प्राण	(सुखलाल संघवी)	२.००
लोकतंत्र का लक्ष्य	(इंद्रचंद्र शास्त्री)	४.००
हमारे संस्कार सूत्र	(लक्ष्मीराम शास्त्री)	३.००

निबंध

पुस्तक	लेखक	मूल्य
अशोक के फूल	(हजारीप्रसाद द्विवेदी)	प्रेस में
कल्पवृक्ष	(वासुदेवशरण अग्रवाल)	२.५०
जीवन-साहित्य	(काका कालेलकर)	२.५०
रूप और स्वरूप	(घ० बिड़ला)	०.७५
साहित्य और जीवन	(ब० दा० चतुर्वेदी)	२.००
कहिये समय विचारि	(लक्ष्मीनिवास बिड़ला)	१.५०
इतनी परेशानी क्यों ?	(श्रीमन्नारायण)	२.५०
आचार और विचार	(हरिभाऊ उपाध्याय)	३.००
रचनात्मक राजनीति	(जमनालाल बजाज)	४.००

स्वास्थ्य और प्राकृतिक चिकित्सा

पुस्तक	लेखक	मूल्य
कब्ज : कारण और निवारण	(महावीरप्रसाद पोद्दार)	१.२५
प्राकृतिक चिकित्सा : क्या व कैसे ?	(महावीरप्रसाद पोद्दार)	१.००
नवीन चिकित्सा	,,	२.५०
मैं तंदुरुस्त हूं या बीमार ?	(लुई कूने)	०.५०
प्राकृतिक जीवन की ओर	(वि० मोदी)	१.५०
सरल योगासन	(धर्मचंद सरावगी)	२.५०
हमारा शरीर	(गंगाप्रसाद गौड़ 'नाहर')	१.००
बालकों का पालन-पोषण	(डा० आचार)	२.५०
नीरोग होने का सच्चा उपाय		१.००
पहला सुख निरोगी काया	(विष्णु प्रभाकर)	०.५०
आकृति से रोग की पहचान	(लूई कूने)	२.००
हमारा भोजन	(ओमप्रकाश त्रिखा)	०.७५
व्यायाम करो : स्वस्थ रहो	(राधाकृष्ण नेवटिया)	१.२५
तंदुरुस्त रहने के उपाय	(धर्मचंद सरावगी)	१.२५

कृषि साहित्य

पुस्तक	लेखक	मूल्य
कृषि-ज्ञान-कोष	(नारायण दु० व्यास)	७.००
अन्नों की खेती	,,	२.००
फलों की खेती	,,	३.५०
साग-भाजी की खेती	,,	३.५०
*तिलहन की खेती	,,	१.००
*दलहन की खेती	,,	१.००

रोक-फ़सलों की खेती	,,	१.७५
*खेती के साधन	,,	१.२५
कृषि दीपिका	,,	प्रेस में
खाद और उसके उपयोग	(शंकरराव जोशी)	३.५०
पुष्पोद्यान	,,	३.००
धान की खेती	(राजदेव त्रिपाठी)	१.००

ग्रामोपयोगी

खादी द्वारा ग्राम-विकास	(प्रभुदास गांधी)	१.००
ग्राम-सुधार	(ओमप्रकाश त्रिक्खा)	१.५०
चारा-दाना	(परमेश्वरीप्रसाद गुप्त)	०.२५
पशुओं का इलाज	,,	०.७५
हमारे गांव की कहानी	(रामदास गौड़)	२.००
सहकारी समाज	(बैजनाथसिंह)	१.००
ग्रामोद्योग	(शोभालाल गुप्त)	१.००
आधुनिक सहकारिता	(विद्यासागर शर्मा)	२.५०
पंचायत-राज	,,	३.५०
गांव का आर्थिक मूल्यांकन	(परमेश्वरीप्रसाद)	२.२५
भारत के गाय-बैल	,,	२.२५
सहकारिता का उदय और विकास	(विद्यासागर शर्मा)	२.५०

विविध

हमारा कानून	(रामस्वामी अय्यर)	५.००
नये जीवन की ओर	(विमला : दत्ता)	१.००
आग से रक्षा	(सचित्र)	१.००
जान बचाने के तरीके	,,	२.००
Save your Home from fire		1.00
Light Resque		2.00

लोक-कथा माला

हमारी लोक-कथाएं	(शिवसहाय चतुर्वेदी)	२.५०
पुण्य की जड़ हरी	(ब्रज की लोक-कथाएं)	२.००
जैसी करनी वैसी भरनी	(बुन्देलखंडी ,,)	२.५०
सतवंती	(मालवी लोक-कथाएं)	२.००
कर भला होगा भला	(मैथिली ,,)	२.००
आकाश दानी दे पानी	(गढ़वाली ,,)	२.५०

सचित्र बाल-साहित्य

१. अक्षर-गीत	(कमलारत्नम्)	२.००
२. बिम्बी की कहानी		१.२५
३. खूब मिले		१.२५
४. हीरे का राजकुमार	(मंदाकिनी)	१.५०
५. तीन कुमार	(पृथ्वीकुमार)	१.००
६. हिरन और राजा	(पृथ्वीकुमार)	१.००
७. चिड़िया जीती राजा हारा	(लहरी)	१.२५
८. सयाना सेरू	(नारायण दत्त पांडे)	१.२५
९. बुढ़िया की सूझ	(मुरारीलाल शर्मा)	१.२५
१०. कुंती के बेटे	(विष्णु प्रभाकर)	१.२५
११. जब दीदी भूत बनी	,,	१.२५
१२. दुनिया के अचरज	(मुरारीलाल शर्मा)	१.२५
१३. मूर्खों की दुनिया	(नारायणदत्त पांडे)	१.२५
१४. भालू बोला	(राधेश्याम झिंगन)	१.२५
१५. सेवा करे सो मेवा पावे	(यशपाल जैन)	१.२५
१६. बहादुरी का भूत	(अनु० वि० गुप्त)	१.५०
१७. एक थी चिड़िया	(यशपाल जैन)	१.२५
१८. बाल राम-कथा	(सुदक्षिणा)	२.००
१९. जल्दी जागो	(मंदाकिनी)	प्रेस में

बाल-साहित्य-माला

१. सीख की कहानियां	(शिवनाथसिंह)	०.५०
२. चिड़िया की नसीहत	,,	०.५०
३. बालकों के आचार	(सोमाभाई)	०.५०
४. एक झाड़ी में सौ सांप	(माधव)	०.५०
५. बीरबल की कहानियां	(शांडिल्य)	०.५०
६. छत्रपति शिवाजी (जीवनी)	(माधव)	०.५०
७. देश-प्रेम की कहानियां	(मुकुल)	०.५०
८. नटखट नंदू	(दयाशंकर 'दद्दा')	०.५०
९. गुरुजी बुरे फंसे	(आनंदकुमार)	०.५०
१०. धोखे में जान गई	,,	०.५०
११. चार दिन की चांदनी	,,	०.५०
१२. जैसे को तैसा	,,	०.५०
१३. यह मुंह मसूर की दाल	(शिवनाथसिंह)	०.५०
१४. दादा की कचहरी	(विष्णु प्रभाकर)	०.५०

बालोपयोगी जीवनियां

१. जनता के जवाहर	(बाबूराव जोशी)	०.७५
२. राष्ट्रपति राजेन्द्र	,,	०.७५
३. सन्त विनोबा	,,	०.७५
४. सबके बापू	,,	०.७५
५. हमारे सरदार	(सोमाभाई)	०.७५
६. राष्ट्रमाता कस्तूरबा	(बाबूराव जोशी)	०.७५
७. विश्व कवि रवीन्द्र	(नारायणदत्त पांडे)	०.७५
८. लोकमान्य तिलक	,,	०.७५

महाभारत-पात्र-माला

महाभारत की कथा, पात्रों की जीवनी के रूप में। पढ़ने में कहानी-जैसा आनन्द आता है।

१. सूतपुत्र कर्ण	(नानाभाई भट्ट)	१.००
२. पांचाली द्रौपदी	,,	१.००
३. दुर्योधन	,,	१.००
४. महावीर भीमसेन	,,	१.००

५. महारथी अर्जुन	,,	१.००
६. धर्मराज युधिष्ठिर	,,	१.००
७. कुन्ती-गांधारी	,,	१.००
८. द्रोण-अश्वत्थामा	,,	१.००
९. पितामह भीष्म	,,	१.००
१०. धृतराष्ट्र	,,	१.००
११. श्रीकृष्ण	,,	१.००

सामान्य ज्ञान

क्या, क्यों, कैसे ?	(आनन्दकुमार)	०.७५
कहां, कौन, कितना ?	,,	०.७५
इनकी भी कहानी है	,,	१.५०

सुलभ विज्ञान-माला

*१. प्रकाश की बातें	(ब्रह्मानंद : नरेश वेदी)	२.००
२. ध्वनि की लहरें	(ब्रह्मानंद : नरेश वेदी)	२.००
३. गरमी की कहानी	(ब्रह्मानन्द : नरेश वेदी)	२.००
४. धरती और आकाश	(छोटूभाई सुथार)	२.००
५. आकाश-दर्शन	,,	२.००
६. जड़-जगत की कहानियां	(नंदलाल जैन)	२.००
७. आओ विमान चलायें	(देवव्रत वसु)	२.००

जीव-जगत की कहानी

*१. समुद्र के जीव-जन्तु	(सुरेशसिंह)	२.००
२. पक्षियों की दुनिया	(सुरेशसिंह)	२.००
३. जानवरों का जगत्	,,	२.००
४ कीड़े-मकोड़े	,,	२.००
५. रेंगनेवाले जीव	,,	२.५०

पत्र-साहित्य

जमनालालजी बजाज का पत्र-व्यवहार

भाग १	(राजनैतिक नेताओं से)	३.००
भाग २	(रियासती कार्यकर्ताओं से)	३.००
भाग ३	(रचनात्मक कार्यकर्ताओं से)	३.००
भाग ४	(जानकीदेवी बजाज से)	३.५०
भाग ५	(संबंधियों से)	४.००

मानव की कहानी

१. पृथ्वी बनी	(दे० प्र० चट्टोपाध्याय)	१.२५
२. जीव आया	,,	१.२५
३. मनुष्य जन्मा	,,	१.२५
*४. मनुष्य का बचपन	,,	१.२५

तुलसी-रामकथामाला

राम-जन्म से लेकर राजतिलक तक रामचंद्रजी की जीवनी, तुलसी रामायण के आधार पर।

१. राम-जन्म	०.४०
२. धनुष-यज्ञ	०.४०
३. राम-विवाह	०.४०
४. राम-वन-गमन	०.४०
५. भरत-भेंट	०.४०
६. पंचवटी में	०.४०
७. सीताहरण	०.४०
८. सुग्रीव से मित्रता	०.४०
९. सीता की खोज	०.४०
१०. लंका-दहन	०.४०
११. रामदूत-अंगद	०.४०
१२. लक्ष्मण-शक्ति	०.४०
१३. लंका-विजय	०.४०
१४. राजतिलक	०.४०

प्रगति के पथ पर

१. नया भारत	(जवाहरलाल नेहरू)	०.३०
२. आजादी के दस साल	,,	०.३०
३. सिंचाई और बिजली	(अवनींद्रकुमार)	०.३०
४. गांव के उद्योग-धंधे	(शोभालाल गुप्त)	०.३०
५. अन्न-समस्या का हल	(कृष्णचन्द्र)	०.३०
६. सामुदायिक योजना	(अवनींद्रकुमार)	०.३०
७. श्रमदान	(सत्यप्रकाश 'मिलिंद'	०.३०

अल्पमोली प्रकाशन

लोकोपयोगी पुस्तकें, बढ़िया ढंग पर सस्ते मूल्य में निकाली जा रही हैं। अबतक निम्नलिखित पुस्तकों के अल्पमोली संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं—

दशरथनंदन श्रीराम	(च० राजगोपालाचार्य)	३.००
इंग्लैण्ड में गांधीजी	(महादेव देसाई)	१.२५
गांधी की कहानी	(लुई फिशर)	१.५०
कोई शिकायत नहीं	(कृष्णा हठीसिंह)	(प्रेस में)
आंसू और मुस्कान	(खलील जिब्रान)	(प्रेस में)
सर्वोदय-संदेश	(विनोबा)	१.५०
बापू की कारावास कहानी	(सुशीला नैयर)	२.५०
तूफान और ज्योति	(सुमति धनवटे)	१.५०
रूस में छियालीस दिन	(यशपाल जैन)	१.५०
प्राकृतिक जीवन की ओर	(एडोल्फ जुस्ट)	१.५०
खंडित पूजा	(विष्णु प्रभाकर)	१.५०
भारत-विभाजन की कहानी	(जान्सन)	१.५०

यूरोप-यात्रा	(विट्ठलदास मोदी)	१.५०
सूफी-संत-चरित	(महात्मा भगवान)	१.५०
रेबेका	(दाफ्न द्यू मोरिये)	२.००
सिपाही की बीवी	(मामा वरेरकर)	१.५०
अनोखा	(विक्टर ह्यूगो)	२.५०
धरती के देवता	(खलील जिब्रान)	१.००
सूक्ति-रत्नावली	(सं० आनन्दकुमार)	१.५०
संघर्ष नहीं सहयोग	(क्रोपाटकिन)	२.००
विनोबा के पत्र		२.००
इतनी परेशानी क्यों ?	(श्रीमन्नारायण)	१.५०

राष्ट्र-निर्माण-माला

विद्यार्थियों के लिए प्रेरणादायक तथा ज्ञानवर्धक उपयोगी पुस्तकें

बोध कथाएं	२.००
आजादी के सेनानी	१.५०
साहस की यात्राएं	१.५०
बड़ों का बचपन	१.५०
हमारी नदियां	२.००
पावन प्रसंग	१.५०
साहस के पुतले	२.००
नीति के बोल	१.५०
चार नाटक	२.००
आदर्श देवियां	१.५०
लोक कथाएं	२.००
मेल की महिमा	१.५०
तीन लोक की कहानी	१.५०

संस्कृत-साहित्य सौरभ-माला

मूल्य प्रत्येक का ४० पैसे

१. कादम्बरी	(बाण भट्ट)
२. उत्तररामचरित	(भवभूति)
३. वेणी-संहार	(भट्ट नारायण)
४. शकुन्तला	(कालिदास)
५. मृच्छकटिक	(शूद्रक)
६. मुद्राराक्षस	(विशाखदत्त)
७. नलोदय	(कालिदास)
८. रघुवंश	(कालिदास)
९. नागानन्द	(श्रीहर्ष)
१०. मालविकाग्निमित्र	(कालिदास)
११. स्वप्नवासवदत्ता	(भास)
१२. हर्षचरित	(बाणभट्ट)
१३. किरातार्जुनीय	(भारवि)
१४-१५. दशकुमारचरित (दो भाग)	(दण्डी)
१६. मेघदूत	(कालिदास)
१७. विक्रमोर्वशी	
१८. मालतीमाधव	(भवभूति)
१९. शिशुपाल-वध	(माघ)
२०. बुद्ध-चरित	(अश्वघोष)
२१. कुमार-सम्भव	(कालिदास)
२२. महावीर-चरित	(भवभूति)
२३. रत्नावली	(श्रीहर्ष)
२४. पंचरात्र	(भास)
२५. प्रियदर्शिका	(श्रीहर्ष)
२६. वासवदत्ता	(सुबन्धु)
२७. रावण-वध	(भट्टि)
२८. सौंदरनंद	(अश्वघोष)
२९. कुंदमाला	(दिङ्नाग)
३०. यशस्तिलक	(सोमदेव)
३१. तिलकमंजरी	(धनपाल)
३२. प्रतिमा-नाटक	(भास)
३३. तीन नाटक	,,
३४. नैषध चरित्र	(श्रीहर्ष)
३५. चम्पू भारत	(अनन्त कवि)
३६. प्रतिज्ञा यौगंधरायण	(भास)

समाज-विकास माला

मूल्य प्रत्येक का ४० पैसे

१. बदरीनाथ	(यात्रा)
२. जंगल की सैर	(ज्ञानवर्द्धक)
३. भीष्म पितामह	(कथा)
४. शिवि और दधीचि	(कथा)
५. विनोबा और भूदान	(परिचय)
६. कबीर के बोल	(जीवन और काव्य)
७. गांधीजी का विद्यार्थी जीवन	(जीवनी)
८. गंगाजी	(कथा)
९. गौतम बुद्ध	(जीवनी)
१०. निषाद और शबरी	(कथा)
११. गांव सुखी, हम सुखी	(विचार)
१२. कितनी जमीन ?	(कहानी)
१३. ऐसे थे सरदार	(संस्मरण)
१४. चैतन्य महाप्रभु	(जीवनी)
१५. कहाजतों की कहानियां	(कथा)
१६. सरल व्यायाम	(स्वास्थ्य)
१७. द्वारका	(वर्णन)
१८. बापू की बातें	(संस्मरण)
१९. बाहुबलि और नेमिनाथ	(जीवनी)
२०. तन्दुरुस्ती हजार निचामत	(स्वास्थ्य)
२१. बीमारी कैसे दूर करें ?	(स्वास्थ्य)
२२. माटी की मूरत जागी	(परिचय)
२३. गिरिधर की कुंडलियां	(संकलन)
२४. रहीम के दोहे	(संकलन)

२५. गीता-प्रवेशिका (चुने हुए श्लोक)
२६. तुलसी-मानस-मोती (संकलन)
२७. दादू की वाणी (संकलन)
२८. नजीर की नज्में (संकलन)
२९. संत तुकाराम (जीवनी)
३०. हज़रत उमर (जीवनी)
*३१. बाजीप्रभु देशपांडे (जीवनी)
३२. तिरुवल्लुवर (जीवनी)
३३. कस्तूरबा गांधी (जीवनी)
*३४. शहद की खेती (ज्ञानवर्धक)
३५. कावेरी (वर्णन)
३६. तीर्थराज प्रयाग (वर्णन)
३७. तेल की कहानी (ज्ञानवर्धक)
३८. हम सुखी कैसे रहें ? (ज्ञानवर्धक)
३९. गो-सेवा क्यों ? (ज्ञानवर्धक)
४०. कैलाश-मानसरोवर (वर्णन)
४१. अच्छा किया या बुरा ? (विचारोत्तेजक)
४२. नरसी मेहता (जीबनी)
४३. पंढरपुर (वर्णन)
४४. ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती (जीवनी)
४५. संत ज्ञानेश्वर (जीवनी)
४६. धरती की कहानी (ज्ञानवर्धक)
*४७. राजा भोज (जीवनी)
४८. ईश्वर का मंदिर (कहानी)
४९. गांधीजी का संसार-प्रवेश (जीवनी)
५०. ये थे नेताजी (संस्मरण)
५१. रामेश्वरम् (वर्णन)
५२. कब्रों का विलाप (कहानी)
५३. रामकृष्ण परमहंस (जीवनी)
५४. समर्थ रामदास (जीवनी)
५५. मीरा के पद (संकलन)
५६. मिल-जुल कर काम करो (ज्ञानवर्धक)
*५७. कालापानी (वर्णन)
५८. पाव-भर आटा (कहानी)
५९. सबेरे की रोशनी (कहानी)
६०. भगवान के प्यारे (जीवनी)
६१. हारूं-अल-रशीद (जीवनी)
६२. तीर्थंकर महावीर (जीवनी)
*६३. हमारे पड़ोसी (सामाजिक ज्ञान)
६४. आकाश की बातें (ज्ञानवर्धक)
६५. सच्चा तीर्थ (कहानियां)
६६. हाजिर-जवाबी (विनोबा)
६७. सिंहासन-बत्तीसी भाग-१ (कहानी)
६८. " " भाग-२ "
६९. नेहरूजी का विद्यार्थी-जीवन (जीवनी)
७०. मूरखराज (कहानी)

७१. नाना फड़नवीस (जीवनी)
७२. गुरु नानक (कहानी)
७३. हमारा संविधान (ज्ञानवर्धक)
७४. राजेन्द्रबाबू का बचपन (जीवनी)
७५. परमहंस की कहानियां (कहानी)
७६. सोने का कंगन (कहानी)
७७. झांसी की रानी (जीवनी)
७८. हुआ सबेरा (कहानी)
७९. बीरबल की बातें (विनोद)
८०. मन के जीते जीत (ज्ञानवर्धक)
८१. मुरब्बी (नाटक)
८२. हरिद्वार (वर्णन)
८३. सागर की सैर (ज्ञानवर्धक)
८४. आन-बान के रखवारे (कहानी)
८५. महामना मालवीय (जीवनी)
८६. भर्तृहरि (जीवनी)
८७. देवताओं का प्यारा (जीवनी)
८८. देश यों आगे बढ़ेगा (सामाजिक ज्ञान)
८९. हमारे मुस्लिम संत (जीवनियां)
९०. नन्हा अबाबील (कहानी)
९१. स्वामी विवेकानंद (जीवनी)
९२. आप भला, जग भला (कहानियां)
९३. नासिक (वर्णन)
९४. सूर के पद (संकलन)
९५. संत वेमन्ना (जीवनी)
९६. आराम हराम है (नाटक)
९७. गोरा बादल (जीवनी)
९८. पाटलिपुत्र (वर्णन)
९९. महर्षि अगस्त्य (जीवनी)
१००. दानवीर कर्ण (कहानी)
१०१. शेख सादी (जीवनी)
*१०२. गोदावरी (वर्णन)
१०३. कुम्हार की बेटी (नाटक)
१०४. नर्मदा (वर्णन)
*१०५. शंकराचार्य (जीवनी)
१०६. अमरनाथ (यात्रा)
१०७. अहल्याबाई (जीवनी)
१०८. पढ़ेंगे-लिखेंगे (सामाजिक-ज्ञान)
१०९. कोणार्क (वर्णन)
*११०. मंगू भैया (सामाजिक ज्ञान)
१११ संत नामदेव (जीवनी)
११२. सेवामूर्ति ठक्करबापा (जीवनी)
*११३. वन-संपदा (ज्ञानवर्धक)
११४. ईश्वरचन्द्र विद्यासागर (जीवनी)
११५. जगन्नाथपुरी (वर्णन)
११६. गुरुवायूर (वर्णन)

*११७.	झलकारी	(जीवनी)
११८.	पशु-पक्षी	(ज्ञानवर्धक)
११९.	लल्लेश्वरी	(जीवनी)
*१२०.	समय का मोल	(विचार)
१२१.	देवता	(नाटक)
१२२.	बंगाल का बीरबल	(कहानियां)
१२३.	शंकरदेव	(जीवनी)
*१२४.	विनोबा के पावन प्रसंग	(संस्मरण)
१२५.	सती अनुसूया	(कथा)
१२६.	वेतालपच्चीसी, भाग १	(कहानी)
१२७.	,, भाग २	(कहानी)
१२८.	रामानुजाचार्य	(जीवनी)
१२९.	यमुना की कहानी	(ज्ञानवर्धक)
१३०.	भरत	(नाटक)
१३१.	बाल गंगाधर तिलक	(जीवनी)
१३२.	लाल किला	(वर्णन)
१३३.	रवीन्द्रनाथ ठाकुर	(जीवनी)
१३४.	कुदरत की मिठाइयां	(ज्ञानवर्धक)
१३५.	संत एकनाथ	(जीवनी)
१३६.	मछेरा और देव	(कहानी)
१३७.	लाला लाजपतराय	(जीवनी)
१३८.	ऐवरेस्ट की कहानी	(वर्णन)
१३९.	गणेशशंकर विद्यार्थी	(जीवनी)
१४०.	चतुराई की कहानियां	(कहानी)
१४१.	शेरे-पंजाब	(जीवनी)
१४२.	वसीयत	(नाटक)
१४३.	अज़ीज़न	(जीवनी)
१४४.	गोलकुण्डा का किला	(ज्ञानवर्धक)
१४५.	मिर्ज़ा ग़ालिब	(जीवनी)
१४६.	अजंता-एलोरा	(यात्रा)
१४७.	हमारा हिमालय	(वर्णन)
*१४८.	हारिये न हिम्मत	(वर्णन)
१४९.	गोमुख	(यात्रा)
१५०.	गांधीजी के आश्रम, भाग १	(वर्णन)
१५१.	,, ,, भाग २	(वर्णन)
१५२.	भक्त पोतना	(जीवनी)
१५३.	संत फ्रांसिस	(जीवनी)
*१५४.	'सबै भूमि गपाल की'	(ज्ञानवर्धक)
१५५.	दक्षिण की काशी	(वर्णन)
१५६.	फाहियान की भरत-यात्रा	(ज्ञानवर्धक)
१५७.	संगीत की कहानी	(ज्ञानवर्धक)
१५८.	राजा राममोहन राय	(जीवनी)
१५९.	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	(जीवनी)
१६०.	चम्बल की कहानी	(परिचय)
१६१.	सबसे बड़ी सेवा	(कहानी)
१६२.	पुष्कर	(वर्णन)
१६३.	सुख की कुंजी	(विचार)
१६४.	हमारे नये तीर्थ—१	(ज्ञानवर्धक)
१६५.	हमारे नये तीर्थ—२	,,
१६६.	सर्वोदय की महिमा	(जीवनी)
१६७.	तानसेन	(जीवनी)
१६८.	गामा पहलवान	(जीवनी)
१६९.	चित्रकूट	(ज्ञानवर्धक)
१७०.	हमदर्दी	(एकांकी)
१७१.	कालटी	(ज्ञानवर्धक)
१७२.	दक्षिण की मीरा	(जीवनी)
१७३.	संयम और साहस	(कहानी)
१७४.	सच्ची दौलत	(कहानी)

* पुष्पांकित पुस्तकें केन्द्रीय सरकार तथा राज्य सरकारों द्वारा पुरस्कृत हैं ।

सूचना

'जीवन-साहित्य' के 'नेहरू-स्मृति अंक' की थोड़ी ही प्रतियां शेष हैं। जिन्हें चाहिए, वे कृपया शीघ्र मंगा लें। मूल्य रु० २-२५

नवीन प्रकाशन

१९६५

पुस्तक	लेखक / संपादक	मूल्य
नेहरू व्यक्तित्व विचार		२५.००
महात्मा गांधी (जीवनी)	बी० आर० नंदा	५.००
विनोबा के विचार : भाग -३		१.५०
रचनात्मक राजनीति (राजनीति)	सं० रामकृष्ण बजाज	४.००
पत्र-व्यवहार (भाग ५)	सं० रामकृष्ण बजाज	५.००
सहकारिता (ग्रामोपयोगी)	जवाहरलाल नेहरू	२.००
शिक्षा का विकास (शिक्षा)	भगवानप्रसाद	३.००
सामुदायिक विकास और पंचायती राज	जवाहरलाल नेहरू	२.५०
अहिंसा की कहानी	यशपाल जैन	१.७५
लड़खड़ाती दुनिया	जवाहरलाल नेहरू	३.००
भारत-सावित्री (खण्ड २)	वासुदेवशरण अग्रवाल	५.००
ज्वालामुखी	अनंतगोपाल शेवड़े	३.५०
तंदुरुस्त रहने के उपाय (स्वास्थ्य)	धर्मचंद सरावगी	१.२५
विनोबा की बोध-कथाएं (कथाएं)		१.५०
पुरंदरदास (जीवनी)		१.५०
मेरा वकालती जीवन (संस्मरण)	ग० वा० मावलंकर	४.००
जिन्दगी दांव पर (उपन्यास)	स्टीफन ज्विग	३.००
जमना-गंगा के नैहर में (यात्रा)	विष्णु प्रभाकर	४.५०
मास्टर महिम (उपन्यास)	मनोज बसु	४.००
राष्ट्र-निर्माण-माला	(पूरे सेट का मूल्य)	२०.००
लोकतंत्र का लक्ष्य	इन्द्रचन्द्र शास्त्री	४.००
जैनधर्म का प्राण	सुखलाल संघवी	२.००
पंजाब-केसरी लाला लाजपतराय	मुकुटबिहारी वर्मा	१.००
हारजीत का भेद	आनंद कुमार	२.००
कुछ शब्द : कुछ रेखाएं	विष्णु प्रभाकर	३.५०
हमारे संस्कार-सूत्र	लक्ष्मीराम शास्त्री	३.००
कुछ देखा, कुछ सुना	घनश्यामदास बिड़ला	३.५०
जमनालालजी	घनश्यामदास बिड़ला	१.५०
पड़ोसी देशों में	यशपाल जैन	६.००
संस्कृति के परिव्राजक	संकलन	२०.००
गांधीजी और उनके सपने	वियोगी हरि	१.००
नीली झील	संपा० विष्णु प्रभाकर	३.५०
आकाशदानी दे पानी	गोविन्द चातक	२.५०
मेरे हृदयदेव	हरिभाऊ उपाध्याय	३.००
मानवता के दीये	झवेरचंद मेघाणी	४.५०
रेंगनेवाले जीव	सुरेशसिंह	२.५०
नाश का विनाश	वा० भ० बोरकर	३.००
परमसखा मृत्यु	काका कालेलकर	२.५०

मण्डल के सम्पूर्ण साहित्य के लिए एक कार्ड लिखकर नया सूचीपत्र मंगा लीजिये :

सस्ता साहित्य मण्डल

एन. ७७ कनॉट सर्कस, नई दिल्ली

शाखा : जीरो रोड, इलाहाबाद

मार्तण्ड उपाध्याय, मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल नई दिल्ली द्वारा न्यू इंडिया प्रेस, नई दिल्ली में छपवाकर प्रकाशित।

, बिहार एवं पंजाब की राज्य-सरकारों द्वारा
देश की ग्राम-पंचायतों के लिए स्वीकृत

साहित्य

● वर्ष २७ : अंक २ ● फरवरी, १९६६
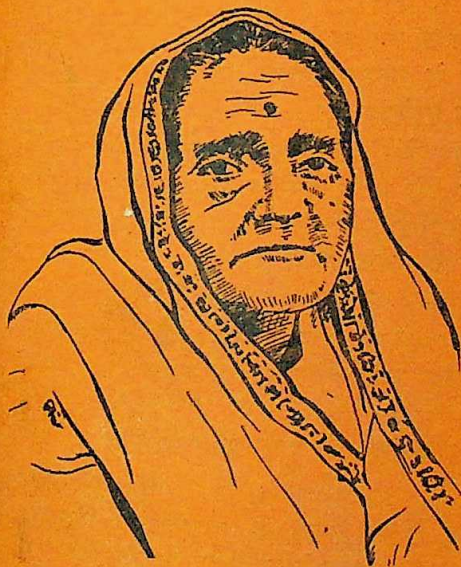
बा का जबर्दस्त गुण महज अपनी इच्छा से मुझमें समा जाने का था। जैसे-जैसे मेरा सार्वजनिक जीवन उज्ज्वल बनता गया, वैसे-वैसे बा खिलती गईं और पुख्ता विचारों के साथ मुझमें यानी मेरे काम में समाती गईं।...अपनी दृढ़-इच्छा-शक्ति के कारण वह अनजाने ही अहिंसक असहयोग की कला में मेरी गुरु बन गईं।

——मो० क० गांधी

संपादक
हरिभाऊ उपाध्याय
यशपाल जैन

एक प्रति
चालीस पैसे

जीवन साहित्य

गांधी व्यक्तित्व विचार

ग्राहकों से

जिन सदस्यों का वार्षिक शुल्क समाप्त हो गया है उन्हें **'जीवन-साहित्य'** की वी० पी० भेजी जा रही है। उनसे अनुरोध है, वह वी० पी० अवश्य छुड़ाने की कृपा करें।

—व्यवस्थापक

उत्तरप्रदेश, राजस्थान, मध्यप्रदेश, हिमाचलप्रदेश, दिल्ली, बिहार एवं पंजाब की राज्य-सरकारों द्वारा कालेजों, लाइब्रेरियों तथा उत्तर प्रदेश और मध्यप्रदेश की ग्राम-पंचायतों के लिए स्वीकृत

जीवन साहित्य

● वर्ष २७ : अंक २ ● फरवरी, १९६६

गांव-गांव में स्वराज्य

विनोबा

हिन्दुस्तान में कोशिश हो रही है, जबसे स्वराज्य-प्राप्ति हुई तब से, कि लोगों का जीवन-स्तर ऊपर उठाया जाय। इसलिए तीन-तीन पंचवर्षीय योजनाएं चलीं। अब चौथी योजना के आंकड़े बन रहे हैं। पिछले १५ साल में तीन योजनाओं में अरबों रुपये खर्च हुए हैं। इससे देश में दौलत बढ़ी है, लेकिन कहना पड़ता है कि जो सबसे नीचे का तबका है, वह ऊपर नहीं उठ सका। गांव-गांव में जो दीन, परित्यक्त लोग हैं, उनकी ओर ध्यान नहीं दिया जा सका। अब तो भारत पर सेना रखने का ही प्रसंग आया है, उस हालत में नीचे के तबके की ओर ध्यान देने के लिए कम गुंजाइश होगी, ऐसा कहना पड़ता है। ऐसे औसत आमदनी तो बढ़ी है लेकिन औसत का एक बड़ा इन्द्रजाल है।

हम नागपुर जेल में थे। तब जेल में राजनैतिक कैदी थे और दूसरे गुनहगार भी। राजनीतिक कैदियों का वजन वहां गिर रहा था। उन्होंने उसकी शिकायत की। वहां हर १५ दिन के बाद सब कैदियों का वजन लिया जाता था। जब सरकार के पास शिकायत गई कि राजनीतिक कैदियों का वजन घट रहा है, तब सरकार ने तहकीकात के लिए कमेटी मुकर्रर की, और पता चला कि बारह सौ कैदियों का मिलकर ६ सौ पौंड वजन बढ़ा है। मतलब यह है कि हर कैदी का औसत आधा पौंड वजन बढ़ा। लेकिन शिकायत की गई थी कि सौ-सवा सौ कैदियों का वजन घट रहा है। तहकीकात के बाद कमेटी ने कहा कि उस शिकायत में सार नहीं है, क्योंकि जेल का औसत वजन आधा पौंड बढ़ा है। इसका नाम है औसत। बात तो सही थी। जिनका घटा था, उनका घटा ही था। उनकी शिकायत भी ठीक थी और औसत भी ठीक था। उसी तरह आज हिन्दुस्तान की औसत आमदनी तो बढ़ी है, लेकिन नीचे तबके को मदद नहीं पहुंची है।

शास्त्र ने कहा है: 'आर्त भूतान् प्रति उत्तमा शक्तिः योज्या:'—अपनी जो उत्तम-से-उत्तम शक्ति होती है, उस का दुखितों के लिए इस्तेमाल होना चाहिए। अपनी उत्तम शक्ति का उपयोग आर्तजनों के लिए होना चाहिए, लेकिन भारत में सबसे गिरा हुआ तबका उठाने की कोशिश नहीं की।

फिर अन्न-धान्य में देश को स्वावलम्बी होना चाहिए था, लेकिन वह कोशिश भी १८ साल में नहीं हुई। अन्न-धान्य में भारत स्वावलम्बी नहीं है। और, नीचे का

जो तबका है, उसके बारे में भी हमने कुछ नहीं सोचा। लेकिन अब इसपर टीका करने में सार नहीं। अब उसके लिए जनता की ओर से मिली-जुली कोशिश हो, तो हम सुखी होंगे।

पुराने जमाने में ऐसा था। अच्छा राजा आया, तो लोग सुखी होते थे और खराब राजा आया, तो लोग दुःखी होते थे। लोग बेचारे पशुओं के समान थे। पशुओं को रखनेवाला अगर उनको अच्छी तरह रखता है, तो पशु सुखी है, नहीं तो दुःखी है। बैलों को अपनी कर्त्तव्य बुद्धि नहीं है। मालिक जैसा व्यवहार करेगा वैसा वे रहेंगे। 'राजा कालस्य कारणम्' ऐसा तब बोला जाता था। अगर यही बात हमको फिर से करनी है, भारत का नसीब दिल्ली के हाथ में सौंपना है, तो आजादी का कोई मान नहीं। इसलिए हमको गांव-गांव में ग्राम-स्वराज्य की स्थापना करनी है और यह काम जल्द-से-जल्द करना है। देरी करोगे, तो धोखा है।

यह विज्ञान का जमाना है। आज के पांच साल पुराने पचास साल के समान हैं। पुराने पचास सालों में जो काम नहीं होता था, वह आज पांच सालों में हो जाता है। पुराने जमाने में दिल्ली के बादशाह का हुकुम आसाम के सरदार तक पहुंचने में महीनों लग जाते थे। आज केरल में गवर्नर का रूल पांच मिनट में हो गया। इसलिए, यह काम जल्दी होना चाहिए।

हमको समझना चाहिए कि यह लोकतंत्र है। लोकतंत्र में लोक प्रधान होने चाहिए, राजा प्रधान नहीं। दिल्ली प्रधान नहीं होने चाहिए, देहात प्रधान होने चाहिए। सुभाषचन्द्र बोस ने कहा था, 'चलो दिल्ली।' वह जमाना अब चला गया। अब भारत को आजादी मिल गई। अब जो दिल्ली जाता है, वापस नहीं लौटता है। दिल्ली में है क्या? यमुना के साथ शराब की नदी बह रही है। जैसे सुदामा को भ्रम हुआ था। वह द्वारका से अपनी नगरी में वापस आया, तो उसकी नगरी स्वर्ण की हो गई थी। उसने सोचा कि शायद वह गलती से वापस द्वारिका ही आ गया है। इतने में उसकी पत्नी बाहर आई और वह समझ गया कि वह ठीक अपनी नगरी में ही आया था। आज ठीक वही हालत दिल्ली की हो गई है। पेरिस-लंदन के लोग दिल्ली में आते हैं तो उनको लगता है कि वापस पेरिस-लंदन में ही आ गये। उनको वहां भारत दर्शन नहीं होता है, पेरिस-लंदन का ही दर्शन होता अ हम समझते हैं कि वह दिल्ली हम सबका उद्ध करेगी। लेकिन यह बात अच्छी तरह से समझ चाहिए कि अगर हमको अपना उद्धार करना है, तो दिल्ली नहीं करेगी। उसके लिए गांव-गांव में ग्राम-स्वरा की स्थापना करनी होगी।

लेकिन यह कहने के लिए कोई आता नहीं। जो आ हैं, वे जनता को कहते हैं कि तुम हमको वोट दो, तुम्हारा उद्धार करेंगे। तुमको स्वर्ग में ले जायंगे। औ अगर तुम दूसरी पार्टी को वोट दोगे, तो वे तुम्हें नरक ले जायंगे। हर कोई यही कहता है। कोई ऐसा नहीं कह कि तुम्हारा उद्धार तुम्हारे हाथ में है। अर्थात् वे समझ हैं कि जनता भेड़ है और वे भेड़ों के गडरिया हैं।

अब १८ साल के बाद हमारी सरकार जग गई है अब तालीम का ढांचा कैसा होना चाहिए, इसके बारे सोचने के लिए सरकार ने एक कमेटी मुकर्रर की है। कमेटी सोचेगी, उसकी रिपोर्ट तैयार होगी, तबतक साल चले जायंगे। और तबतक वही पुरानी तालीम चल रहेगी। इसका मतलब यह है कि पूरी एक पीढ़ी पुरा तालीम में गई। भारत आजाद बना, लेकिन आज भारत में वही पुरानी तालीम बीस साल तक चली। बीस साल तक तालीम का ढांचा क्या होना चाहिए, तय नहीं हुआ।

अन्न-उत्पादन की हालत को आप देखते हैं। अमरी को हम गालियां भी देते हैं और उससे अन्न भी मंगवा हैं। दोनों साथ-साथ चलता है। फिर यह भी कहते हैं अन्न बाहर से नहीं मंगवाना चाहिए और अब कह रहे कि १९७१-७२ तक हमको स्वावलम्बी बनना ही चाहिए और हम स्वावलम्बी बनेंगे। हिसाब भी ठीक किया है नहीं, मालूम नहीं। क्योंकि ७२ तक जनसंख्या भी च कोटि बढ़ेगी। योजना आयोग वाले योजना करते हैं, उ इस का खयाल नहीं करते। फिर कहते हैं कि हमारा ल पूरा नहीं हुआ, क्योंकि जन-संख्या बढ़ी है। मैं पूछ चाहता हूं कि क्या जन-संख्या अचानक बढ़ी है? योज

करते समय यह आपको ध्यान में रखना पड़ेगा।

फिर कहते हैं कि अन्न-धान्य की हालत बहुत ज्यादा खराब नहीं। केवल १० प्रतिशत अनाज कम है। अब इस के माने क्या है ? हिन्दुस्तान में ४८ करोड़ जन-संख्या है। उसका १० प्रतिशत यानि ४ करोड़ ८० लाख लोग। इतने लोगों को फाका करना होगा। विहार वालों को अच्छी तरह समझाया जा सकता है, क्योंकि विहार की जन-संख्या करीब ५ करोड़ है। अगर पूरा बिहार एक साल फाका करेगा, तो पूरे देश को साल भर खाने को मिलेगा। बिलकुल आसान चीज है। ज्यादा नहीं सिर्फ एक साल। अगर बिहार वाले गोतम-बुद्ध और महावीर का नाम लेकर केवल एक साल फाका करें, तो देश को खाने को मिलेगा। बहुत ज्यादा खतरनाक नहीं। अब हमारी समझ में नहीं आता कि दस प्रतिशत को बहुत ज्यादा खतरनाक नहीं मानते, तो खतरनाक किसको मानेंगे ? क्या ५१ प्रतिशत कमी रही, तो खतरनाक मानेंगे। क्योंकि वह 'मेजर' हो गया। और, ४९ प्रतिशत कमी रही, तो वह खतरनाक नहीं, क्योंकि वह 'माइनर' हो गया। आज देश में अनाज की यह हालत है।

आज तीसरी बात राष्ट्र-रक्षण की है। जब चीन ने धक्का दिया, तब हम उस बारे में सावधान हो गए। उसके पूर्व बिलकुल गाफिल रहे। अंग्रेजी में एडमन वर्ट की किताब है 'इम्पीचमैंट आफ वारेन हैस्टिंग्स'। वारेन हैस्टिंग्स पर कुछ चार्जिज लगाये गए और उसकी इम्पीचमैंट हुई। तो मैं पूछूंगा कि सरकार की इम्पीचमैंट की जाय और ये तीन चार्जिज लगाये जायं। अनाज उत्पादन में गड़बड़ नम्बर एक, तालीम का ढांचा तय नहीं किया और १८ साल तक ऐसे ही तालीम दी गई नम्बर दो, और डिफेंस के बारे में असावधानी रखी नम्बर तीन, ये तीनों चार्जिज लगा दें और चौथा मैं अपनी जेब में रखता हूं कि सबसे नीचे के वर्ग की ओर ध्यान नहीं दिया, ये चार चार्जिज हैं लेकिन तीन चार्जिज लगाये जायं तो क्या होगा ?

लेकिन यह सरकार आपकी चुनी हुई है। अगर आप उनपर चार्जिज लगायेंगे, तो ये कहेंगे कि आपने ही तो हमें चुनकर भेजा है, आप हमें टैक्स दे रहे हैं, आपके प्रतिनिधि यहां बैठे हैं, और हम जो करते हैं आपकी सम्मति से करते हैं। फिर हम कहेंगे कि ठीक है, अब हम समझ गये हैं। हम खुद अपना काम करेंगे। मैं कहता हूं लोग समझते नहीं, बहुत बड़े-बड़े लोग नहीं समझते कि लाखों गांव ग्रामदान हो जाय, तो सरकार का रंग बदल जायगा। वे पूछते हैं कि कैसे बदलेगा ? तो, मैं कहता हूं कि जहां गांव-गांव ग्रामदान हुआ है, वहां गांवों की ओर से मनुष्य खड़ा किया जायगा। सर्वानुमति से खड़ा किया जायगा और वह ऊपर जायगा। इस तरह सरकार गांवों में चुने हुए लोगों की होगी और सरकार पर गांव का असर होगा। लेकिन इसके लिए गांव-गांव ग्रामदान होना चाहिए, प्रखंडदान होना चाहिये और प्रखंड-के-प्रखंड अखंड दान होना चाहिए। तब आपकी शिकायतों का निराकरण हो सकता है। अगर शक्ति पैदा होती है, तो टिक सकते हैं, नहीं तो आप रामभरोसे हैं।

रामभरोसे भी क्या कहा जाय, दिल्ली-भरोसे हैं। अगर गणतंत्र की दृष्टि से देखा जाय, तो दिल्ली आपके आधार पर है। लेकिन आप समझते हैं कि आप दिल्ली के आधार से हैं। लेकिन हमको सिद्ध करना है कि दिल्ली आपके आधार से है। इसलिए हर बात में 'चलो दिल्ली' छोड़ देना है और 'चलो देहात' करना है। अगर ग्रामदान में व्यापक आंदोलन करने में मालिक, मजदूर और महाजन, ये तीनों मकार एक हो जाते हैं, तो यह होगा। और आप देखेंगे कि अगले आम चुनाव के पहले भारत का रूप बदल जाता है। लेकिन अगर आपको वह प्रेरणा हो, जो बाबा को है, तो यह होगा। भगवान वह प्रेरणा आपको दे।

लोकतंत्रीय परम्परा के प्रतीक

डा० राधाकृष्णन

(स्वर्गीय प्रधानमन्त्री लालबहादुर शास्त्री को श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए रामलीला मैदान में आयोजित सार्वजनिक शोक-सभा में राष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन ने जो उद्‌गार प्रकट किये, वह हम यहां दे रहे हैं।)

हम लोग आज यहां अपने स्वर्गीय प्रधान मन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री के आकस्मिक और असामयिक निधन पर शोक प्रकट करने के लिए इकट्ठा हुए हैं। इस दुख की घड़ी में विदेशों से जो प्रतिनिधि हमें सांत्वना देने के लिए यहां आये हैं, हम उनके आभारी हैं।

श्री लालबहादुर शास्त्री भारतीय लोकतन्त्र की दृढ़ता के ज्वलंत उदाहरण थे। उनका जन्म किसी प्रभावशाली या धनी परिवार में नहीं हुआ था। उन्हें जन्म से, प्रभावशाली स्थिति या धन के लाभ प्राप्त नहीं थे, फिर भी उन्होंने अपनी मामूली स्थिति से उन्नति कर देश की सरकार के सर्वोच्च पद पर काम किया। यह उनकी चारित्रिक शक्ति और ईमानदारी से सम्भव हुआ। इन्हींके बल पर वे उन्नति कर प्रधान मन्त्री के उच्च पद पर पहुंचे। यदि लोकतंत्रीय परम्परा, हमारी चेतना, हमारे मन और हमारे हृदय में इतनी गहराई से न पैठी होती तो यह बात सम्भव नहीं थी। इसके अलावा श्री लालबहादुर शास्त्री किसी भी नाजायज या अन्यायपूर्ण बात को सहन नहीं करते थे और न ही वह लोकतंत्र को इस प्रकार चलने देने को तैयार थे, जिससे लोगों को गरीबी का जीवन बिताना पड़े।

हमने अपने देशवासियों के रहन-सहन को ऊंचा करने के लिए हर सम्भव कोशिश की, इसका अभिप्राय यह है कि हमने अपने लोकतंत्र को समाजवादी लोकतंत्र बनाया। यदि आर्थिक और सामाजिक असमानता के रहते राजनीतिक समानता हो भी जाय तो उसका कोई अर्थ नहीं। यदि राजनीतिक समानता को महत्वपूर्ण या उपयोगी बनाना है तो हमें आर्थिक समानता भी लानी होगी। अवसर की समानता और सामाजिक समानता भी आवश्यक हैं।

श्री लालबहादुर ताशकन्द गए। भौगोलिक दृष्टि से भारत एक विशिष्ट स्थान पर स्थित है और उसको केवल प्राचीन धर्मग्रन्थों की ही विरासत नहीं मिली, बल्कि हमारे आधुनिक नेताओं—महात्मा गांधी और जवाहरलाल नेहरू—से भी स्वस्थ परम्पराएं मिलीं। यही कारण है कि श्री लालबहादुर शास्त्री शान्ति को सर्वोपरि महत्व देते थे और जब लड़ाई शुरू हो गई तो उन्हें बहुत कष्ट और आघात पहुंचा। ताशकन्द में इस लड़ाई के घावों पर मरहम लगा। ताशकन्द घोषणा क्या है? मेरे मित्र श्री कोसीगिन ने इस घोषणा का मसौदा तैयार कराने में प्रमुख और प्रशंसनीय हिस्सा लिया। यह घोषणा कोई कानूनी दस्तावेज, कोई राजनीतिक समझौता या नैतिक उपदेश नहीं है। यह तो हृदय-परिवर्तन की पुकार है। हमने सदा कहा है कि राष्ट्रीय या अंतर्राष्ट्रीय कैसे भी विवादों के निपटारे में शक्ति का प्रयोग नहीं होना चाहिए। हर स्थिति में हम इस आदर्श का पालन करना चाहते हैं। हमें बाध्य हो बल-प्रयोग करना पड़ा। हमें इस बात का खेद रहा कि हमें बाध्य हो यह कार्य करना पड़ा। हमको इस दुविधा में डाल दिया गया था। अतः श्री लालबहादुर शास्त्री ने ताशकन्द वार्ता में सबसे अधिक जोर इस बात पर दिया कि झगड़ों के निपटारे में बलप्रयोग किसी भी स्थिति में नहीं होना चाहिए। शुरू से अन्त तक वह इसी बात पर जोर देते रहे और अन्ततः उन्होंने इस बात को मनवा लिया। यदि आप इस घोषणा पर गहराई से विचार करेंगे,

(शेष पृष्ठ ६५ पर)

अमरकीर्ति शास्त्रीजी

काका सा० कालेलकर

भारतरत्न श्री लालबहादुर शास्त्री भारत की और मानवता की उत्तम सेवा करके अमर हो गये ! गांधीजी और जवाहरलालजी की परम्परा जैसी की वैसी उज्ज्वल रखने में और दुनिया में भारत की प्रतिष्ठा कायम रखने में उन्हें जो सफलता मिली उसके कारण भारत का राष्ट्र उनके प्रति कृतज्ञ रहेगा ही। और दुनिया का इतिहास भी गांधी-नेहरू के साथ शास्त्री का नाम भी अवश्यमेव जोड़ देगा।

जवाहरलालजी के बाद जब शास्त्रीजी का सर्वानुमति से चुनाव हुआ तब कई लोगों ने कहा, "जिसके नाम का तनिक भी विरोध न हो सके ऐसे तो लालबहादुर ही हैं। लेकिन ये छोटे वामनमूर्ति भारत की जटिल और चिंताग्रस्त परिस्थिति को कैसे संभालेंगे इसका अन्दाज हो नहीं सकता। लालबहादुरजी अपनी पढ़ाई पूरी करने के पहले भी राष्ट्र-सेवा में जुट गये थे। बचपन से कठिनाइयों का सामना उनको करना पड़ा तो भी उन्होंने अपने दिल को खट्टा होने नहीं दिया। जहां भी कठिनाई उत्पन्न हुई लालबहादुर शास्त्री दोनों पक्षों को संभालकर बीच का रास्ता निकालते ही थे। इसलिए शुरू से लोग उन्हें 'समझौता-कुशल' के रूप में ही पहचानते थे। जो भी सेवा सामने आई कुशलता-पूर्वक और परिश्रमपूर्वक करते गये। प्रतिष्ठा और अधिकार के पीछे वे कभी नहीं पड़े। लेकिन ऐसे परिश्रमी निष्ठावान राष्ट्रसेवक की सेवा से देश अपने को वंचित कैसे रख सकता था ? एक के पीछे एक अधिकाधिक महत्त्व के काम उनके सामने आते गये और उत्तरदायित्व जैसा बढ़ता गया, शास्त्रीजी अपनी योग्यता में चढ़ते ही गये।

जब मैंने राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार के क्षेत्र में प्रवेश किया और हिन्दी साहित्य सम्मेलन के साथ मेरा संबंध बढ़ा तब मुझे बार-बार इलाहाबाद प्रयाग जाना पड़ता था। और मैं अक्सर श्रद्धेय टंडनजी के वहां ठहरता था। लालबहादुरजी को मैंने टंडनजी के यहां कई बार देखा था, लेकिन हमारी कभी विशेष बातें नहीं हुई। युक्त प्रदेश के सार्वजनिक जीवन से और स्वराज्य के आन्दोलन से ये वामनमूर्ति पूरी-पूरी ओतप्रोत हैं। और इनके बिना लोगों का काम नहीं चलता था। मुझे इतना ही याद है कि एक दफे मैंने उनसे कहा था, गंगा और यमुना भिन्न-रंगी स्रोतों के संगम के नजदीक आप रहते हैं; आपमें समन्वय की कुशलता होनी ही चाहिए। मैंने जो कहा, लालबहादुरजी के काम को पहचानकर नहीं, किन्तु प्रयाग-राज्य के माहात्म्यको ध्यान में लाकर कहा था। आज जब शास्त्रीजी के जीवन का सम्पूर्ण चित्र मन में लाता हूं तब विश्वास होता है कि उस दिन मैंने जो यूंही कहा था वह शास्त्रीजी के लिए पूरा-पूरा लागू होता है। मेरा चिन्तन कहता है कि समन्वय-कुशल वे ही होते हैं, जिनमें अहंकार नहीं होता और जो सिद्धान्त के कैफ को भी दूर रख सकते हैं याने जो लोग अहंकार को छोड़कर, स्वार्थ और एकांगिताको छोड़कर समग्र जीवन के उपासक होते हैं।

जब शास्त्रीजी राज्यसभा के सदस्य थे तब उन्हींके मुंह से मैंने सुना था। (किसीने उनके नरम स्वभाव की टिप्पणी की होगी तब जवाब में उन्होंने कहा था।) मैं वाणी में नरम हूं इसलिए आप यह न समझें कि राष्ट्रकार्य चलाने में और राष्ट्रनीति का अमल करने में मैं ढीला हूं। मैं दृढ़ता के साथ काम भी कर सकता हूं और लोगों से काम ले भी सकता हूं।

राज्यसभा के किसी सदस्य के छेड़ने पर उन्होंने अपनी ओर से जो सफाई दी वही उनका सच्चा चरित्र चित्रण था।

राष्ट्र नेता के साथ काम करते कैसी निष्ठा से सहयोग देना चाहिए इसका आदर्श शास्त्रीजी ने देश के सामने रखा।

जवाहरलालजी को सहायता करने में और उन्हें निश्चिन्त बनाने में शास्त्रीजी ने अपनी पूरी शक्ति लगा दी थी। वे कम बोलते थे। जिद नहीं करते थे और हरएक के दृष्टिबिन्दु के प्रति सहानुभूति रखते थे, इसलिए सार्वजनिक जीवन में उनकी किसीसे शत्रुता नहीं हुई। यही कारण था कि राष्ट्र ने उन्हींको जवाहरलालजी की गद्दी पर बिठाया।

जबसे शास्त्रीजी भारत के प्रधानमंत्री बने तब से उनके सामने कठिनाइयों का तांता लगा था। जवाहरलालजी की नीति निष्ठापूर्वक उन्होंने चलाई, लेकिन मिजाज खोने का जवाहरलालजी का स्वभाव उन्होंने नहीं अपनाया। जवाहरलालजी मिजाज खोने जितने तेज-मिजाज थे, लेकिन राष्ट्रनीति चलाते उनकी उदारता उन्हें नरम भी बनाती थी। जवाहरलालजी में यह जो कमी थी उसका अनुकरण शास्त्रीजी ने नहीं किया।

जब पाकिस्तान ने प्रथम कच्छ के रण में और बाद में काश्मीर के प्रदेश में आक्रमण शुरू किया तब अय्यूबखां ने ख्वाब में भी नहीं सोचा होगा कि शास्त्रीजी उन्हें सबक सिखाने के लिए अपनी फौजें लाहौर और रावलपिण्डी तक भेज देंगे। लड़ना कोई बच्चों का खेल नहीं है। जब पाकिस्तान ने आक्रमण करने की ठानी तब शास्त्रीजी ने भी उस रणमत्त सेनापति को सबक सिखाने की ठानी।

राष्ट्रसंघ अगर बीच में नहीं पड़ता तो पाकिस्तान की फौज की बुरी हालत हो जाती। लेकिन शास्त्रीजी हृदय से शान्तिवादी थे और कभी भी पाकिस्तान के दुश्मन नहीं थे। राष्ट्रसंघ की बात उन्होंने तुरन्त मान ली और पूरी विजय हाथ में आने की तैयारी थी फिर भी युद्धविराम उन्होंने कुबूल किया। उसके बाद पाकिस्तान ने बन्दरघुड़की दिखाने की अपनी नीति बराबर चलाई, लेकिन उन्होंने देखा कि स्थितप्रज्ञशास्त्री न नरम होते हैं न गरम। पाकिस्तान ने कुछ भी नहीं पाया, उसने बहुत कुछ खोया, लेकिन उसे उसकी कुछ परवाह नहीं थी।

ताशकन्द प्रकरण में भी शास्त्रीजी ने अपनी शुद्ध भूमिका शुरू से स्पष्ट की थी। भारत का पक्ष न्याय का है इतना विश्वास सब राष्ट्रों को हो गया था। अब अपने-अपने देश की नीति कैसी चलानी इसका निर्णय तो उस देश के नेता अपने-अपने स्वार्थ के अनुसार करते रहेंगे। यह बात अलग है।

रूस की नीति भी हम समझ सकते हैं, आत्मरक्षा के लिए वहां के नेताओं ने प्रारंभ में कैसी भी नीति चलाई हो, आत्मशक्ति का अनुभव और विश्वास होते ही रूस ने दुनिया के साथ दोस्ती रखने की नीति चलाई है। शस्त्र-बल पर उसका पूरा विश्वास है, लेकिन रूस जानता है कि तत्त्वप्रचार के लिए शस्त्र-बल की आवश्यकता नहीं है।

चीन-जैसे पड़ोसी राष्ट्र की रूस ने छूटे हाथ मदद की। चीन में प्रथम बादशाह का राज्य था। उसकी नीति सड़ी हुई थी। प्रजा ने बार-बार बलवा किया लेकिन हर दफे जनता को हारना पड़ा। ऐसी स्थिति में दुनिया की आठ सत्ताओं ने इस विशालकाय साम्राज्य को जीते जी काटकर खाने का मनसूबा किया। जंगल का कानून ही है कि जब हाथी के जैसा कोई बड़ा जानवर भी जरा-जर्जरित होकर मरने पड़ता है तब लोमड़ी, गीध जैसे प्राणी उसके जीते जी उसे काट खाने को तैयार हो जाते हैं। कौए भी उसकी आंख पर अपनी चोंच आजमाते हैं। चीन की ऐसी ही स्थिति थी। च्यांङकाइशेक ने अपने राष्ट्र को बचाने की भरसक कोशिश की, उस समय साम्यवादी चीन के युवक नेता च्यांङ-काइशेक की कदर करते थे। शुरू में उसकी मदद भी की। लेकिन जब देखा कि च्यांङ काइशेक के हाथों गरीब प्रजा सिर ऊंचा नहीं कर सकेगी तब उन्होंने साम्यवादी सरकार की स्थापना की। उस समय रूस ने उदारता से चीन की जितनी मदद की उतनी मदद दूसरा कोई राष्ट्र नहीं कर सकता था। चीन और रूस के बीच सरहद के सवाल जब-जब उठे रूस ने समझौते का तरीका चलाया। लेकिन चीन में साम्राज्यवाद घुस गया। चीन की लोक-संख्या अपरम्पार है। साम्राज्य-विस्तार के लिए करोड़ों लोगों को बलिदान में खतम करने की उसकी तैयारी है। संकट के समय मदद करनेवाले रूस की भी मुरव्वत साम्राज्यवादी चीन ने नहीं रखी। इस कलिकाल में क्या नहीं हो सकता? चीन की और पाकिस्तान की भी दोस्ती हो गई!

अब इस सारे वर्तमान इतिहास को दोहराने की आवश्यकता नहीं। रूस ने भारत और पाकिस्तान के बीच समझौता कराने की जो कोशिशें की वह सचमुच सराहने लायक थीं।

(शेष पृष्ठ ५८ पर)

शांति का उपासक

विष्णु प्रभाकर

(आरम्भिक संगीत के बाद शोकभरा संगीत उठता रहता है। उसीके बीच में एक उदास, सन्तप्त पुरुष स्वर उठता है ।)

पुरुष स्वर--सूर्य प्रकाश-पुंज है। सूर्य का अर्थ ही प्रकाश है। उसके प्रकट होते ही विश्व प्रकाशित हो उठता है। लेकिन उस दिन का सूर्य अपना धर्म खो बैठा था। ११ तारीख की सवेरे उसके उगते-न-उगते चारों ओर अन्धकार छा गया। वह अन्धकार जो वेदना से भरा था, जो सबको सन्तप्त और पीड़ित करनेवाला था। रात सारा देश, सारा विश्व सुख की सांस लेकर सोया था। गद्‌गद् होकर उसने भारत के प्रधानमन्त्री स्वर्गीय लालबहादुर शास्त्री को प्रणाम किया था। उनकी सूझबूझ, उनके विवेक पर उसे गर्व हुआ था। लेकिन सूर्य के उदय होते-न-होते वह हत-प्रभ रह गया। किसीको विश्वास नहीं हुआ। सबने यही कहा, यह जरूर किसी सिरफिरे की फैलाई हुई अफवाह है। ऐसा नहीं हो सकता। ऐसा कैसे हो सकता है? लेकिन इस दुनिया में क्या नहीं हो सकता। यह अति नाटकीय अविश्व-सनीय मालूम होनेवाली खबर भी सच निकली। संकट-हर चतुर्थी के डूबते चांद की बेला में मेरे मित्र ने रुंधे कंठ से जो समाचार मुझे दिया था, भोर होते-होते वह प्रामा-णिक समाचार का दर्जा पा गया। फिर दुखद से दुखदतर होते जाते मन से फिर फिर यही सुनता रहा, वातावरण में यही गूंजता रहा 'शास्त्री जी अब नहीं रहे। (संगीत)

रात अचानक आंख खुली। मन डूबा-डूबा लगा था। सोच भी न सका कि यह किसी दुर्घटना का प्रतीक है। बेचैनी से करवटें बदलता रहा कि द्वार पर आहट हुई। हड़बड़ाकर उठा। पुकारा, कौन है?

आगन्तुक—मैं हूं। शरत। दरवाजा खोलो।

पुरुष स्वर—शरत! क्या है? तुम्हारा स्वर क्यों कांप रहा है?

शरत—तुमने सुना?

पुरुष स्वर—क्या?

शरत—(रुंधा कण्ठ) शास्त्रीजी नहीं रहे।

पुरुष स्वर—कौनसे शास्त्रीजी?

शरत—प्रधानमन्त्री। लालबहादुर शास्त्री!

पुरुष स्वर— क्या...संगीत, नहीं, नहीं खबर गलत है। रात की तो....।

शरत—हां, रात को ही दो बजकर दो मिनट पर हृदय की गति रुक जाने के कारण यह लीला समाप्त हो गई। ११ बजे के बाद वह लेटे थे। सोये अभी दो घण्टे भी न हुए थे कि खांसी उठी। फिर सबकुछ किया गया। लेकिन नाड़ी डूबती चली गई। दिल की धड़कनें मन्दतर होती गईं और...(संगीत तीव्र होता है)

पुरुष स्वर—मैं उस क्षण विश्वास नहीं कर सका था। इस क्षण भी नहीं कर पा रहा। कैसा है नियति का यह चक्र। उस छोटे से दीखनेवाले आदमी ने दुनिया के सबसे बड़े जनतन्त्र की बागडोर सफलतापूर्वक संभाली। उसकी छोटी-सी काया ने थके-हारे भारत का अल्पकाल में ही कायाकल्प कर दिखाया। उन्हीं लालबहादुर शास्त्री का ताशकन्द में दक्षिण-पूर्व एशिया की शान्ति और समृद्धि के लिए विश्व को शान्ति का मार्ग दिखाने के लिए एक महत्व-पूर्ण समझौता सम्पन्न करने के बाद, सफलता के शिखर पर पहुंचने के बाद सहसा देहान्त हो गया। ताशकन्द जाने से पूर्व उन्होंने कहा था, (रिकार्ड किया हुआ वक्तव्य)

पुरुष स्वर—वह आशा लेकर गये थे। और वह आशा पूर्ण हुई। घृणा के समुद्र को उन्होंने स्नेह के सागर में बदल दिया। उस छोटे-से शरीर में वह कैसी शक्ति थी

जो इस दुष्कर कार्य को पूर्ण कर सकी। वह क्षणिक विश्वास नहीं था। युद्ध-काल में जो उन्होंने दृढ़ता दिखाई थी, हथियारों का जवाब हथियारों से दिया था, उसे देखकर हम शायद यह भूल गये थे कि मूलतः वह शान्ति के ही उपासक थे। वह शान्ति जो गांधीजी की अहिंसा पर आधारित थी, जो नेहरूजी के पंचशील और सह-अस्तित्व से प्रेरणा लेती थी। वह शान्ति आत्म-गौरव पर टिकी हुई थी, कायरता और दुर्बलता पर नहीं। उस शान्ति में उनका अदम्य विश्वास था। इसीलिए ताशकन्द सम्मेलन में ४ जनवरी को भाषण देते हुए उन्होंने कहा था :

स्वर—लड़ाई से समस्याएं सुलझती नहीं हैं और पैदा होती हैं। इससे सुलह समझौते में बाधा पड़ती है। शान्ति के वातावरण में आपस के मतभेद दूर किये जा सकते हैं। इसलिए एक-दूसरे से लड़ने की बजाय आइये, हम गरीबी, बीमारी और अभाव से लड़ें। दोनों देशों के मामूली लोग यही चाहते हैं कि उनको शान्ति से तरक्की का मौका मिले। वे लड़ाई-झगड़ा नहीं चाहते। उनको जरूरत गोला बारूद और अस्त्र-शस्त्र की नहीं, खाना, कपड़ा और मक्खन की है।

पुरुष स्वर—और उसी दिन क्यों, १० दिसम्बर, १९६५ को संसद में भाषण देते हुए वे पूरे विश्वास के साथ बोले थे :

स्वर—भारत का शान्ति और अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना में अडिग विश्वास है। हम सभी से विशेषतया अपने पड़ौसियों से मित्रता चाहते हैं। हम अपनी शक्ति को अपने देश की आर्थिक अवस्था को सुधारने और अपने लोगों के जीवन-स्तर को ऊंचा उठाने के बड़े काम में लगाना चाहते हैं। जो धन आज रक्षा के काम में खर्च होता है, हम उसे गरीबी से लड़ने में खर्च करना चाहते हैं।

पुरुष स्वर—जिस व्यक्ति ने युद्ध के समय सफल नेतृत्व करते हुए हमें विजय दिलाई। उसका यह विश्वास क्या एक दिन में पैदा हो गया था? नहीं। वह सदा ही शान्ति, समन्वय और सद्भावना के प्रतीक रहे हैं। जीवन के प्रारम्भ से रहे हैं। उनके एक बालबन्धु ने कहा था :

स्वर—हम लोगों के सामने बालकाल्य में जब भी टेढ़े प्रश्न उठते थे, हम आपस में कहते थे, 'चलो लालबहादुरजी से पूछ लें कि क्या करना चाहिए। ऐसे समय में लालबहादुरजी की बुद्धि काम देती थी।

पुरुष स्वर—बड़े होने पर राजनैतिक क्षेत्र में आकर अनेक विवादों को उन्होंने जिस कुशलता और सफलता से सुलझाया उसका इतिहास बहुत पुराना नहीं है। राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन के शब्दों में उनकी सफलता का कारण यह था कि उनकी मानवता के पीछे चट्टान की-सी दृढ़ता विद्यमान थी। नेहरूजी के शब्दों में : वह अत्यन्त ईमानदार, दृढ़ संकल्प और शुद्ध आचरणवाले महान परिश्रमी, ऊंचे आदर्शों में पूरी आस्था रखनेवाले और निरन्तर सजग व्यक्ति थे। इसीलिए नेहरूजी ने कहा था तुमको मेरा काम करना होगा। और उन्होंने किया। प्रधान मन्त्री बनने के चार माह के भीतर ही तटस्थ सम्मेलन में उन्होंने शान्ति के लिए ५-सूत्री कार्यक्रम प्रस्तुत किया और ताशकन्द का शान्ति का सन्धि-पत्र नेहरू और गांधी के आदर्शों का ही तो व्यावहारिक रूप है। जो दो देश कुछ दिन पहले एक-दूसरे के रक्त के प्यासे थे, उन्होंने ही यह घोषणा की :

घोषणा—(१) संयुक्त राष्ट्र-संघ के घोषणा-पत्र के अनुसार आपसी विवादों को हल करने के लिए बल का प्रयोग नहीं करेंगे। और विवादों को शान्तिपूर्ण तरीकों से हल करेंगे।

(२) दोनों देश युद्ध-विराम का पूरी तरह पालन करेंगे और २५ फरवरी तक सभी सशस्त्र लोगों को पांच अगस्त की रेखा तक लौटा लेंगे।

(३) दोनों देशों के संबन्ध एक-दूसरे के आन्तरिक मामलों में हस्ताक्षेप न करने के सिद्धान्त पर आधरित होंगे।

(४) दोनों देश एक दूसरे के विरोध में किये जाने वाले प्रचार को रोकेंगे और ऐसे प्रचार को प्रोत्साहन देंगे जिसमें दोनों देशों के मध्य मैत्रीपूर्ण सम्बंधों के विकास में सहायता मिले।

(५) दोनो देशों के राजनयिक सम्बंध सामान्य रूप से पुनः चालू होंगे तथा इस बारे में दोनों सरकारें वियना सम्मेलन के नियमों का पालन करेंगी।

(६) आर्थिक, व्यापारिक और यातायात सम्बन्धी संबंध सामान्य किये जायेंगे तथा वर्तमान समझौतों को बनाये रखने के लिए कदम उठायेंगे।

(७) युद्धबन्दियों की वापसी के लिए अपने-अपने अधिकारियों को तुरन्त आदेश दिये जायंगे।

(८) शरणार्थियों, निष्क्रान्तों और गैर कानूनी रूप से प्रवेश करनेवालों की समस्या पर वार्ता जारी रखेंगे, निष्क्रमण रोकने के लिए उचित वातावरण तैयार करेंगे तथा युद्ध में छीनी गई सम्पत्ति की वापसी के बारे में बातचीत करेंगे।

(९) दोनों देश उच्चस्तरीय तथा अन्य स्तरों पर बातचीत जारी रखेंगे और संयुक्त समितियों की स्थापना की अनिवार्यता को मानेंगे।

पुरुष स्वर—शान्ति के इस ऐतिहासिक सन्धि-पत्र का क्या परिणाम होगा इसकी चिंता इस क्षण हमें नहीं करनी है। हमें तो यही विश्वास सुख देनेवाला है कि शान्ति की कामना सबके मन में है। और कामना जब बलवती हो उठती है तो पूर्ण होकर ही रहती है। प्रधान मन्त्री शास्त्री इसी बलवती कामना के प्रतिरूप थे। अपने डेढ़ वर्ष के निर्देशन काल में वह राष्ट्र की युद्ध की लपटों के पार एक नये संकल्प और आत्मविश्वास के क्षितिज तक ले आयं, लेकिन हम उनकी सेवाओं से ठीक उसी समय वंचित हो गये जब उन्हें बधाई देने का अवसर आया था। इस व्यक्ति ने, जो अतिशय साधारण दिखाई देता था, विश्व के राजनयिक मंच पर भारत को एक नई प्रतिष्ठा दिलाई। एक-से-एक असाधारण और उत्तेजक परिस्थितियों में राजनीति को ठोस यथार्थता की धरती पर खड़े रखा। पं० जवाहरलाल नेहरू ने उनकी इस असाधारणता को देखते हुए बार-बार उनको ऐसे ही काम सौंपे थे। जब भी कोई जटिल समस्या खड़ी हो जाती, तो शास्त्रीजी अपने शान्त स्वभाव और अनुपम सूझबूझ से बड़े अच्छे ढंग से उसे सुलझाने में कामयाब हो जाते।

स्वर १—सबसे पहले उनका यह गुण तब प्रकट हुआ जब असम में असमियों और बंगालियों में भाषा के प्रश्न को लेकर वैमनस्य पैदा हो गया। वे तुरंत वहां पहुंचे और एक ऐसा हल खोज निकाला, जो दोनों को स्वीकार्य था।

स्वर २—और जब कश्मीर में पवित्र बाल की चोरी को लेकर बवंडर उमड़ उठा था तब यही छोटा-सा इन्सान उस झंझावात को लीलने वहां पहुंचा था। उस मामले को उन्होंने जिस ढंग से सुलझाया उसे क्या कोई कभी भूल सकेगा।

स्वर ३—और क्या कोई भूल सकेगा उस स्थिति को जब किन्हीं गलतफहमियों के कारण हमारे प्रिय पड़ोसी देश नेपाल और भारत के सम्बन्ध दुर्भावनाओं के काले बादलों से घिरे आये थे। तब इसी लघुमानव ने इन्द्र के वज्र के समान अपनी सूझबूझ से उन बादलों को उड़ा दिया था और दोनों के फिर दृढ़ तथा स्नेहमयी मित्रता के चिरबन्धन में बांध दिया था।

स्वर ४—और नेपाल ही क्यों, लंका और भारत के बीच 'लंका में भारतीयों की समस्या' को लेकर जो विवाद चल रहा था उसे भी तो इसी शांत-साधारण पर दृढ़ संकल्प व्यक्ति ने सुलझाया था।

(संगीत)

पुरुष स्वर—कोई अन्त नहीं है ऐसी घटनाओं का। देश में केरल हो या विदेश में वर्मा, सब कहीं उनकी स्फटिक के समान सद्भावना और सच्चाई ने विरोधी का हृदय जीत लिया था, तभी तो नेहरू का उनमें पूर्ण विश्वास था, तभी उनके प्रधान मन्त्री चुने जाने पर विश्व ने उनकी प्रशंसा की थी :—

अमेरिका—हमारे और श्री शास्त्री के सम्बन्ध अच्छे हैं। उनके निर्वाचन पर बधाई देते हैं।

ब्रिटेन—शास्त्री का रूप भारतीय है। उनका जीवन दल की गतिविधियों में पला है। वामपंथी और दक्षिण-पंथी विचारधाराओं के बीच ठीक वह मध्य में खड़े हैं। इसलिए सबको स्वीकार्य हैं. . .शास्त्री की नियुक्ति पर लोकतान्त्रिक विश्व में सन्तोष, सराहना और आशा का संचार हुआ है।

रूस—शास्त्री के निर्वाचन से यह बात स्पष्ट हो गई है कि भविष्य में नेहरू की महान नीतियों का ही पालन होता रहेगा।

पुरुष स्वर—यह विश्वास शायद ही कभी इतना

सच हुआ होगा जितना लालबहादुर शास्त्री के सम्बन्ध में हुआ। नेहरूजी और शास्त्रीजी के विचार तथा कार्य पद्धति में बहुत अन्तर दिखाई देता है, लेकिन एक अद्भुत समानता भी थी। नेहरूजी के समान काले और उजले रंगों में से आंख मूंदकर किसी एक का साथ दे देना उन्हें भी नहीं जंचता था। अतिवादी दृष्टिकोणों के सामने आने पर वह भी दोनों से भागकर तीसरे रंग की खोज करने लगते थे। तभी तो वह कहीं-न-कहीं से समन्वय का मार्ग खोज लेते थे। (संगीत)

और महात्मा गांधी की तरह उन्होंने यह भी तो सिद्ध कर दिखाया था कि अहिंसा के भीतर फौलाद की दृढ़ता सम्भव है। तभी तो युद्ध और शान्ति सब कहीं वह समान रूप से विजय पाते थे और अन्ततः मनुष्य की सुख समृद्धि में ही उनका विश्वास था। यही शान्ति की राह है, यही वह राह है जिसके लिए विश्व आज तड़प रहा है। वह राह दिखाकर वह चुपचाप चले गये और हमपर यह भार छोड़ गये कि हम उस राह से मुंह न मोड़ें। गांधीजी ने अपने प्राणों के रक्त से हिन्दु-मुस्लिम वैमनस्य को धोया था। तभी इस युद्ध में एक स्थान पर भी साम्प्रदायिक दंगा नहीं हुआ। तभी लालबहादुर शास्त्री ने प्राणों के सीमेण्ट से उस राह को पक्का कर दिया कि कहीं हम ठोकर न खा जायं। (संगीत)

आओ हम प्रतिज्ञा करें कि पूरी सचाई के साथ शान्ति के उस संधि-पत्र का सम्मान करेंगे। विश्व को यह कहने का अवसर नहीं देंगे कि जिस सन्धि-पत्र पर प्रधानमन्त्री लालबहादुर शास्त्री ने अपने रक्त से हस्ताक्षर किये थे उसे उनके ही देशवासियों ने झुठलाया। हम दुखी हैं पर पागल नहीं। हमारा विश्वास है कि :

है शान्ति में सुख अपार।
हो क्षमामयी यह धरा हमें, विस्तृत अम्बर भी रहे शांत॥
सागर का यह अस्थिर जल भी हमको हो मंगलमय प्रशांत॥
सब कठिन क्रूर विपरीत हमें, अब शांत रूप में हो उदार॥
है एक शांति में क्षेम सार।

(समाप्ति सूचक गम्भीर संगीत)

●

(पृष्ठ ५४ का शेष)

शास्त्रीजी ने अमेरिका के साथ बिलकुल बिगड़ने नहीं दिया, लेकिन जहां अमरीकी नीति उन्हें पसन्द नहीं आई मानवता के हित के लिए उन्होंने अपना अभिप्राय साफ-साफ जाहिर किया। उस वक्त भारत के स्वार्थ का विचार करके खामोश रहना आसान था। लेकिन शास्त्रीजी ने संकुचित ख्याल नहीं रखा। रूस के प्रयत्न की कदर करके वह ताशकन्द जाने के लिए तैयार हुए। रूस ने भी अपनी सन्धिकारी नीति की पराकाष्ठा की और भारत और पाकिस्तान के बीच अच्छा-सा समझौता कराया।

अब देखना है कि मानव-जाति का इतिहास कौन-से नये पन्ने खोलता है! भारत की दृढ़ता और भारत की शान्तिनिष्ठा शास्त्रीजी के द्वारा पूरी-पूरी प्रगट हुई। रूस और अमेरिका इन दोनों परस्पर-विरोधी राष्ट्रों के नेताओं से शास्त्रीजी साधुवाद हासिल कर सके, इससे बड़ी धन्यता कौन-सी हो सकती है?

भारत की अन्दरूनी राज्यनीति में भी उन्होंने सबको संभालते हुए बताया कि राष्ट्र का काम राष्ट्र की समग्र शक्ति से चलेगा। सब व्यक्तियों की कदर करते हुए उन्होंने बताया कि किसी भी व्यक्ति की सेवा के बिना राष्ट्र का काम रुकनेवाला नहीं है। भारत की जनता जिस किसीके हाथ में अधिकार सौंपेगी उसे बुद्धिबल और हृदयबल देगी ही। शास्त्रीजी के बाद इसी श्रद्धा और विश्वास के बल पर भारत का राज्य चलेगा। शास्त्रीजी का जीवन धन्य हो गया!

●

सेवाव्रती बा

लक्ष्मी देवदास गांधी

आज मैं आप लोगों से प्रातः स्मरणीय पूज्य कस्तूरबा के बारे में कुछ बातें कहना चाहती हूं, विशेषकर उन लोगों से, जो कि पू० बा को केवल नाम से जानते हैं और उनके बारे में कुछ अधिक जानने के लिए इच्छुक हैं।

'बा' छोटी कद की थीं। सुन्दर थीं। बहुत ही फुर्तीली तथा धर्म-परायण थीं। हमेशा, हर परिस्थिति में, सोमवार और एकादशी व्रत करती थीं। बच्चों जैसे सरल स्वभाव की थीं।

पुराने जमाने की होने पर भी बा पूज्य बापूजी के परिवर्तनशील विचारों को खूब समझती थीं। प्रारंभ में दक्षिण अफ्रीका में, उसके बाद भारत में, बापूजी की हरेक प्रवृत्ति में उन्होंने योग दिया, बढ़ावा दिया और उनकी अनुयायी रहीं।

बा अधिक पढ़ी-लिखी नहीं थीं, फिर भी अपने कामों के बीच थोड़ा समय अध्ययन के लिए अवश्य निकाल लेती थीं। रोज के समाचार स्वयं पढ़कर या पढ़वाकर जान लेती थीं। गीताजी के श्लोकों का शुद्ध उच्चारण के साथ सीखने का बा खूब प्रयत्न करती थीं

बा ने कभी अंग्रेजी पढ़ना-लिखना नहीं सीखा, किन्तु पाश्चात्य लोगों के साथ उनका काफी संपर्क रहा। इसलिए बोल-चाल की अंग्रेजी अच्छी तरह समझ लेती थीं। अपने ढंग से बोल भी लेती थीं। विदेश से आश्रम में जो अतिथि आते थे, उनकी आदतों और आवश्यकताओं को अच्छी तरह समझकर बड़ी निपुणता और सरलता के साथ उन लोगों की देखभाल कर लेती थीं।

बाहर के हों या अपने देश के, बा अतिथि-सेवा बड़ी लगन के साथ करतीं। जब कोई विदा होता था तो उसके रास्ते के लिए कुछ नाश्ता अपने हाथों से बनाकर दिये बिना नहीं रहती थीं।

सफाई तो बा से ही सीखनी चाहिए थी। उनके पास एक साथ तीन या अधिक-से-अधिक चार जोड़े कपड़े से ज्यादा नहीं होते थे। उन्हें बहुत ही ढंग के साथ पहनती थीं। रसोई बनाते समय भी उनके कपड़े जरा भी मैले नहीं होते थे। बा कभी बगैर किनारे की साड़ी नहीं पहनती थीं। इसका भी ध्यान रखती थीं कि माथे की बिन्दी हमेशा ठीक लगी हो।

बहुत पहले की बात है। हम सब लंका की यात्रा में थे। बापूजी से छुट्टी लेकर बा शहर देखने गईं। मुझे भी साथ ले गईं। सुन्दर उद्यान देखे। शहर के अन्य मुख्य स्थानों पर घूमे। वहां पर एक बड़ा म्यूजियम था। वह भी देखा। दोपहर के बारह बजे के करीब अपने निवास-स्थान पर लौट आये और बापूजी को खाना दिया। खाते-खाते बापूजी ने पूछा, 'कहां-कहां हो आईं?' बा ने उत्तर दिया 'म्यूजिक।' बापूजी ने कुछ आश्चर्य के साथ पूछा, 'इस दोपहर के समय कौन-सा गाने का प्रोग्राम था?' बा ने मुझको इशारा किया कि बता दो, कहां-कहां गये थे।

मैंने बापूजी को बताया कि हम म्यूजियम देख आये। सब हँसे। बा भी खूब हँसी।

उसी प्रवास में एक रोज बा ने अपनी पार्टी के एक भाई से कहा, 'यहां पर सीताजी अवश्य होंगी। पता तो करो, कहां पर हैं।' जिससे कहा गया, वह सोच में पड़ गया। विनीत भाव से उसने बा से कहा, 'बा, सीता माता इस प्रदेश में हजारों वर्ष पहले थीं। बाद में श्री रामचंद्र उन्हें यहां से अयोध्या ले गये।' बा हँस पड़ीं। बोलीं, 'भाईसाहब, यह तो मैं भी जानती हूं। मेरे कहने का मतलब यह था कि यहां पर सीता-माता का कोई मन्दिर अवश्य होगा। यदि हो तो मेरी इच्छा है, दर्शन करने जाऊं।'

(शेष पृष्ठ ६१ पर)

साधना की मूर्ति

गिरिजा 'सुधा'

कल एक व्यक्ति ने भूल से बा को मेरी मां समझ लिया। यह भूल मेरे और उसके बीच न केवल क्षम्य है, बल्कि तारीफ की बात है। बहुत वर्षों से बा हम दोनों की सलाह से मेरी पत्नी नहीं रह गई है। चालीस साल हुए मैं बिना मां-बाप का हो गया और तीस वर्षों से वह मेरी मां का काम कर रही है। वह मेरी मां, सेविका और रसोइया सब कुछ रही है। हमनें परस्पर यह समझौता कर लिया है कि सभी यश-सम्मान तो मुझे मिले और सभी प्रकार की मेहनत-मशक्कत उसे करनी पड़े।

बापू के ये शब्द त्याग और तपस्या से परिपूर्ण जीवन के लिए एक अद्वितीय अभिनन्दन हैं।

सच तो यह है कि बा को यदि गांधी-वाद की जननी कहा जाय तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। क्योंकि बा ने 'गांधीवाद' को पोषित करने के लिए बड़ा त्याग किया था। इस त्याग-तपस्या की मूर्ति ने बापू पर से अपने पत्नीत्व के अधिकार को हटाकर जनता-जनार्दन की बहुविधि सेवा के लिए समर्पित कर दिया था। उस युग की नारी के लिए यह एक असमान्य बात थी।

'बा' साधना की प्रत्यक्ष मूर्ति थीं। उन्होंने आजीवन राष्ट्र के कण-कण में त्याग, कर्म और सात्विक प्रेम की ज्योति जागृत की थी। बापू के हर कार्य को उसने सहज रूप में स्वीकार किया था और अपने आपको उसके अनुरूप ढाला था। बापू के कार्यक्रमों की वह प्रत्यक्ष पूरक थीं। तभी तो बापू ने उनसे विछोह हो जाने पर अपना विषाद व्यक्त करते हुए कहा था :

"बा का जाना एक कल्पना-सा लगता है। मैं इसके लिए तैयार था, मगर जब वह सचमुच चली गई तो मुझे कल्पना से अधिक एक नई बात लगी। मैं अब सोचता हूं कि बा के बिना मैं अपने जीवन को ठीक-ठीक बैठा ही नहीं सकता हूं।"

वे एक सेवापरायण एवं निर्भीक महिला थीं। अफ्रीका के सत्याग्रह के समय उनके अन्तर में बसी निर्भीक सेवा परायणता के दर्शन होते हैं। एक दिन उन्होंने पूज्य बापू से स्पष्ट शब्दों में कहा था, "तुम मुझसे इस बात की चर्चा नहीं करते, इसका मुझे दुख है। मुझमें ऐसी क्या कमी है कि मैं जेल नहीं जा सकती। मेरे बच्चे सह सकें, आप सब सह सके, और मैं ही न सह सकूं, ऐसा आप सोचते कैसे हैं? मुझे इस लड़ाई में शामिल होना ही होगा।

साधना की मूर्ति बा के असीम मनोबल का परिचय इस धारणा से सहज ही मिलता है। नारी सुलभ आभूषणों का त्यागकर इस सेवामूर्ति ने क्षमा, त्याग, बलिदान और जन-जागरण को अपनाया था। यही कारण है कि देश को एक महान विभूति मिल सकी। यदि उनका सक्रिय सहयोग नहीं मिला होता तो संभव है, बापू की स्थिति कुछ और ही होती।

बा भारतीय संस्कृति के अनुरूप सचमुच ही एक पतिपरायण स्त्री थीं। जो कार्य बापू को विशेष प्रिय थे, उन सभी में उनका सक्रिय सहयोग रहा करता था। वह अक्सर कहा करती थीं, 'मैं बापू की मदद पढ़ने-लिखने और राजनीतिक कामों में नहीं कर सकती तो क्या हुआ, मैं सूत कातकर तो उनके काम को आगे बढ़ा सकती हूं।'

वह नित्यप्रति चार-पांच सौ तार सूत कातती थीं। हरिजनोद्वार के सिलसिले में भी उन्होंने डटकर काम किया, जबकि वह प्रारम्भ से ही कट्टर वैष्णव धर्मी संस्कारों में पली थीं।

जो नारी इतनी त्याग-तपस्यामयी हो, उसके सुखी दाम्पत्य जीवन के बारे में शंका निरर्थक ही होगी? बा का तो पूरा जीवन ही एक खुली पुस्तक के समान है,

जिसकी एक-एक पंक्ति पढ़ी जा सकती है। भारतीय नारी के लिए तो उसका जीवन एक अदम्य प्रेरणा का स्रोत है।

ऐसी दृढ़ निष्ठा ने ही बा के बारे में बापू ने यथार्थ ही कहा था, "वह हमेशा से बहुत दृढ़ इच्छा-शक्तिवाली स्त्री थीं जिनको अपनी नवविवाहित दशा में मैं भूल से हठीली माना करता था। लेकिन अपनी दृढ़ इच्छा-शक्ति के कारण वह अनजाने ही अहिंसक असहयोग की कला के 'आचरण में मेरी गुरू बन गईं।'

७ मार्च १८६९ को पोरबन्दर के सुप्रसिद्ध व्यापारी श्री गोकुलदास के घर कस्तूरबा का जन्म हुआ था। पारिवारिक वैष्णव संस्कारों का उनपर पर्याप्त प्रभाव रहा। १८८१ में अल्प आयु में ही उनका विवाह बापू के साथ हो गया था। छोटी उम्र में विवाह होने के कारण ही शायद उनमें पारस्परिक आत्मीयता का प्रादुर्भाव अधिक हुआ था। भारतीय स्त्री का तो वैसे ही पति के साथ सहज और स्वाभाविक लगाव होता है और जब वह बचपन से ही किसी एक व्यक्ति को हर क्षण साथी के रूप में देखती-परखती है तब उसके हृदय का प्रेमांकुर और भी दृढ़तर होता जाता है।

अधिक निकटता कभी-कभी अरुचि को जन्म देती है, क्योंकि तब हम व्यक्ति की कमजोरियों को देखते हैं। इस प्रकार उनके गुण धीरे-धीरे समाप्त प्रायः हो जाते हैं। किन्तु बा ने बापू के सद्गुणों को ही देखना सीखा था, उनकी कतिपय मानवीय दुर्बलताओं की ओर उनका ध्यान कभी नहीं गया था। यही कारण है कि वह एक सफल गृहिणी का उत्तरदायित्व निभाती रहकर भी 'राष्ट्रमाता' के महत्वपूर्ण पद की निर्वाहिका बन सकीं।

●

(पृष्ठ ५९ का शेष)

दक्षिण अफ्रीका में और उसके बाद भारत में सत्याग्रह-आंदोलन करते हुए बा कई बार जेल गईं। कारावास का वातावरण उनके लिए कभी अनुकूल नहीं रहा। जब-जब जेल गईं, काफी बीमार रहीं। वह चाहतीं तो संभव था कि सरकार उन्हें रिहा कर देती, किंतु बा ने कभी ऐसा सोचा भी नहीं। जब हजारों भाईबहन जेल की कोठरियों में बंद थे तो अपने लिए किसी खास रियायत की इच्छा वह कदापि नहीं कर सकती थीं।

बा जब बापूजी के संग आख़िरी बार जेल गईं तो उनके साथ श्री महादेव देसाई भी गये। वर्षों से महादेव भाई बापूजी के सेक्रेटरी थे। बा-बापूजी उन्हें अपना लड़का ही मानते थे। कारावास के एक सप्ताह के अन्त में अचानक उनकी मृत्यु हो गई। जेल में ही उनकी दाह-क्रिया हुई। बा को इसका बड़ा आघात पहुंचा। जेल में भी बा अपने पूजापाठ, अध्ययन, बापूजी के लिए खाना बनाना आदि कामों में व्यस्त रहती थीं। उनके साथ जो भाई-बहन थे, प्यारेलालजी, मीरा-बहन, श्री सुशीला नैयर मनु गांधी, इनसे भी मदद लेती थीं। उनका बराबर स्वास्थ्य बिगड़ता गया। कुछ महीनों में एकदम चारपाई पर पड़ गईं। अन्त में शिवरात्रि के पुण्य-दिवस पर उन्होंने प्राण छोड़ दिये। आखिर तक होश में थीं। भगवान का नाम लेती रहीं। मित्रों को और स्वजनों को, सबको वहां पर उस समय आने की अनुमति अंग्रेज सरकार ने दे दी थी। साठ से अधिक वर्ष की जीवन-संगिनी को बापूजी ने उस दिन खोया।

महादेवभाई देसाई और बा की समाधियां आगाखां महल में एक-दूसरे के पास हैं—दृढ़ संकल्प और वेदना के प्रतीक-रूप में। जो कोई वहां जाता है, प्रेरणा पाकर ही आता है।

बा हमेशा सबका भला चाहती थीं। आज उनके मुक्ति-दिवस पर हम प्रभु से प्रार्थना करें कि हमारे देश में सब सुखी रहें, सेवा-परायण बनें, स्वार्थ को त्यागें, और आपस में सहिष्णुता और स्नेह बढ़ावें।

●

अन्न-समस्या और उसकी चुनौती

सुरेश राम

हम सबका बड़ा दुर्भाग्य है कि स्वराज्य प्राप्ति के १८ साल बाद भी अनाज-जैसी अनिवार्य चीज में देश अभीतक स्वावलम्बी नहीं है। हाल में लोक-सभा में खाद्यमंत्री ने जाहिर किया है कि विदेश से गल्ला मंगाये बिना अभी कोई चारा नहीं है। आज देश की खाद्य-स्थिति बहुत ही चिंताजनक है। राजस्थान के बहुत बड़े हिस्से में अकाल की जैसी सूरत है। महाराष्ट्र, बंगाल, बिहार आदि प्रान्तों में भी भीषण स्थिति है। हमें डर है कि अगर ठीक से इस प्रश्न पर विचार नहीं किया गया और उसका समाधानकारक हल नहीं निकाला गया तो एक बड़े पैमाने पर देश में दुर्भिक्ष फैल जायगा।

इस तथ्य को आज स्वीकार करना होगा कि पिछले १८ साल में अनाज के मामले में भारत सरकार क्या, प्रान्तीय सरकारें क्या, और हमसब बहुत गाफिल रहे हैं। सरकारी क्षेत्रों में यह कहा जाता था कि अगर इंगलैंड पक्का माल बनाकर बाहर के गल्ले पर अपनी गुजर कर सकता है तो भारत क्यों नहीं कर सकता? शायद इसी का नतीजा है कि स्वतन्त्र भारत की औद्योगिक नीति कायम की गई और उसकी घोषणा भी हुई। लेकिन अभीतक खाद्य या कृषि के बारे में कोई नीति तय नहीं पाई है। और कैसी लज्जा की बात है अन्न के आयात में भारत के २६३४ करोड़ रुपया विदेशी मुद्रा में खर्च कर चुका है। १९५६ में कुल आयात का ५१.४ प्रतिशत गल्ले का था और अब यह संख्या ८० के आसपास पहुंच गई है।

संतोष का विषय है कि अब इस बारे में एक चेतना पैदा हुई है। सभी क्षेत्रों से अन्न स्वावलम्बन की आवाज उठ रही है। वैसे तो १९५१ में ही इसकी तरफ आचार्य विनोबाजी ने सरकार और देश का ध्यान दिलाया था। पंडित नेहरू ने दो साल में अनाज की दृष्टि से स्वावलम्बी होने का मंत्र दिया था। मगर राष्ट्रीय प्लानिंग कमीशन उसको साकार रूप नहीं दे सका। इसकी विनोबाजी को बड़ी वेदना हुई थी और जब उसकी जानकारी पंडित नेहरू को मिली तो उन्होंने तार देकर उनको बुलाया। विनोबाजी ११ सितम्बर, १९५१ को अपने आश्रम से पैदल निकल पड़े और १३ नवम्बर को दिल्ली पहुंचे। ११ दिन तक वे वहां रहे और प्लानिंग कमीशन से मुलाकात की। उन्होंनें तीव्रता के साथ अपना विचार रखा और कहा कि अनाज-जैसी चीजों में देश को स्वावलम्बी होना ही चाहिए। उनकी बात को प्लानिंग कमीशन ने सुनी-अनसुनी एक कर दिया। लेकिन खैर! अब इस तरफ प्लानिंग कमीशन चिंतित मालूम पड़ रहा है।

प्रधान मंत्री ने राष्ट्र को एक नया नारा दिया... "जय जवान जय किसान।" जब पाकिस्तान से लड़ाई होती हो और चीन से भी उसी तरह की आशंका हो तो ऐसी हालत में देश का सेना पर आधार रखना स्वाभाविक है। आज इसी वजह से चारों तरफ मिलिटरी की तूती बोल रही है और जय-जयकार हो रहा है। लेकिन श्री लालबहादुरजी ने केवल 'जय जवान' न कहकर उसके साथ 'जय किसान' का भी उद्बोध किया। स्पष्ट है कि सेना मोर्चे पर तभी सफलतापूर्वक लड़ सकती है जब उसको खाने के लिए खेतों में यथेष्ट अनाज का उत्पादन होता हो। बिना अन्न के कोई कितने दिन किसका सामना कर सकता है। इसलिए जितना जवान का महत्व है उतना ही किसान का है। खुशी की बात है कि अब यह महसूस किया जा रहा है कि अनाज-उत्पादन को सुरक्षा की कोटि में रखा जाय और उसी तरह से उसको बढ़ाया जाय।

लेकिन असलियत यह है कि अनाज का उत्पादन बढ़

नहीं रहा है। हमारा मतलब प्रति व्यक्ति उत्पादन से है। जिस परिमाण में देश की जनसंख्या बढ़ती है उसी हिसाब से अन्न की उत्पादन वृद्धि नहीं हो रही है। इसके लिए तरह-तरह की कोशिशें जरूर की जा रही हैं। मगर वह कारगर साबित नहीं होतीं। इसपर हमें महर्षि टालस्टाय की एक कहानी याद आ जाती है। उन्होंने लिखा है कि एक घोड़ागाड़ी कहीं दलदल में फंस गई थी। गाड़ी पर काफी बोझ था। मालिक घोड़े को हांकने की बहुत कोशिश करता रहा। उसमें सामान को भी गाड़ी में इधर-से-उधर हटाया। लेकिन एक काम जो उसको करना चाहिए था वह नहीं किया। वह यह कि गाड़ी से उतरकर पहियों को दलदल से निकालता। सिर्फ घोड़े को चाबुक मारने या गाड़ी के सामान की जगह बदलने से काम नहीं चल सकता। इसी तरह आज हमारे अनाज-उत्पादन की गाड़ी दलदल में फंस गई है। उसको उसमें से निकालना होगा।

अनाज-उत्पादन एक ऐसी चीज है जो केवल खाद, बीज या पानी पर निर्भर नहीं करती। ये चीजें भी चाहिए लेकिन साथ-ही-साथ कुछ और बातों की तरफ भी ध्यान देना होगा। विनोबाजी के शब्दों में अनाज की पैदावार के लिए तीन बातों का संयोग जरूरी है।... जड़ संयोग, चेतन संयोग और बुद्धि संयोग। जड़ संयोग से मतलब है खाद, बीज, पानी और हल आदि की व्यवस्था करना। यह काम ज्यादातर सरकार को करने का है। वह इसे कर रही है और आगे भी ज्यादा कुशलता से करेगी।

दूसरी चीज है चेतन संयोग। जाहिर है कि अनाज खेत पर पैदा होता है। लेकिन खेत पर जो मेहनत करता है उसको आज वह खेत नसीब नहीं है। खेत किसी का है, मेहनत कोई दूसरा करता है। अगर किसी टैक्सी ड्राइवर के हाथ में उस्तरा दे दिया जाय और नाई के हाथ में टैक्सी का स्टेयरिंग थमा दिया जाय तो वह जो हालत होगी वही आज हमारी खेती की है। यह किसी से छिपा नहीं है कि अंग्रेजी राज्य और अंग्रेजी शिक्षा के कारण अपने देश में शरीर परिश्रम को नीची निगाह से देखा जाता है और मजदूर को ज्यादातर गया-बीता समझते हैं। उधर मजदूर के मन में मालिक के प्रति ईर्ष्या भरी रहती है। मजदूर चाहता है कि कम-से-कम काम करूं और ज्यादा-से-ज्यादा पैसा वसूल करूं। मालिक चाहता है कि मैं ज्यादा-से-ज्यादा काम ले लूं और कम-से-कम पैसा दूं। नतीजा यह है कि हमारे खेतों में कम-से-कम उत्पादन होता है और देश की ज्यादा-से-ज्यादा हानि होती है। साथ-ही-साथ गांव में महाजन होता है जो रुपया उधार देता है और जमीन रेहन रखवाता है। सूद-दर-सूद चढ़ता जाता है।। उसे काश्तकार चुका नहीं पाता और इसलिए कुछ अरसे के बाद जमीन से हाथ धो बैठता है। जब इस तरह का चक्र समाज में चल रहा है तो अनाज का बढ़ना ही ताज्जुब होगा।

तीसरी चीज है बुद्धि-संयोग। अनाज के बारे में हमें ईमानदारी से निश्चय करना होगा कि हम अनाज को सर्वोपरि प्राथमिकता देंगे। आज ऐसा नहीं है। विदेशी मुद्रा या डालर के मोह में दूसरी चीजों को ज्यादा प्रोत्साहन दिया जा रहा है। सच तो यह है कि जैसे विनोबाजी कहा करते हैं, अनाज के ६ शत्रु हैं। इनमें दो सात्विक हैं—मूंगफली और गन्ना, दो राजसिक हैं—पटसन और कपास, और दो तामसिक हैं—तम्बाकू और चाय। कौन नहीं जानता कि आज देश की सबसे बेहतरीन जमीन पर तम्बाकू पैदा की जाती है। बिहार में मुजफ्फरपुर जिला, उत्तर प्रदेश में सहारनपुर, गुजरात में खेड़ा, कर्नाटक में धारवाड़, आंध्र में गुंटूर—हमारी सर्वश्रेष्ठ जमीन तम्बाकू में फंसी हुई है। इसके क्या माने हैं? तम्बाकू बोनेवाला कास्तकार अपने बच्चे से ज्यादा तम्बाकू के पौधे की चिंता करता है। उसका मानना है कि तम्बाकू से आमदनी होती है लेकिन बच्चे पर तो उल्टे खर्च होता है। आज यह मानस बहुत जोरों से काम कर रहा है और इसीसे पैसेवाली फसलों को बढ़ावा मिलता है। इस मामले में नीति बिलकुल साफ करनी होगी और चुन-चुनकर तम्बाकू को छांटकर उसकी जगह गल्ला बोना होगा। चाय का भी उपयोग जीवन के लिए उतना जरूरी नहीं है। यद्यपि इसका रिवाज काफी बढ़ गया है। लेकिन क्यों न हम अपने राष्ट्र के नाम पर सारी चाय विदेश भेजें कि जिससे सरकार को विदेशी मुद्रा मिले?

जहांतक पटसन और कपास की बात है इन दोनों की

आवश्यकता भी है और उपयोगिता भी। यद्यपि पटसन की मांग अब विदेशों में कम होती जा रही है। फिर भी उसकी खेती जानबूझ कर बढ़वाई गई है। इस बारे में भी नीति निर्धारित करनी होगी कि कितना पटसन बोया जाय और कितना उसकी जगह गल्ला हो। मूंगफली और गन्ने की महत्ता से कोई इनकार नहीं कर सकता। लेकिन गन्ने की काश्त बढ़ाकर उससे चीनी तैयार करना और फिर चीनी विदेश भेजकर बाहर से गल्ला मंगाना बहुत महंगा सौदा है। समझ-बूझ के साथ इसपर विचार होना चाहिए कि देश को कितनी चीनी और गुड़ की जरूरत है और उसके लिए कितना रकबा ईख बोने की जरूरत है। इसी तरह मूंगफली का उपयोग वारनिस के तेल आदि में भी संयम करना पड़ेगा। इन सब बातों पर बहुत गंभीरता से विचार करने का समय आ गया है और उनकी रोशनी में सरकार को एक सुदृढ़ नीति का निश्चय करना होगा।

इसीके साथ-साथ एक-और भी सवाल है। यह कि आज चावल की जो मिलें हैं उनमें चावल का चौदह प्रतिशत सत्व निकल जाता है। दूसरे शब्दों में चौदह प्रतिशत चावल जला दिया जाता है। जिस देश में अनाज की कमी हो वहां अन्न को इस तरह से जलाना या बर्बाद करना देश-द्रोह है। लेकिन इसकी परवाह किये बिना चावल की मीलें बढ़ रही हैं। इस तरफ भी ध्यान देना जरूरी है और लगाम लगानी होगी। अबतक की जो अनाज की नीति है वह बड़े उद्योगों की रोशनी में रखकर मानो की गई है। इसमें अब परिवर्तन की जरूरत है और अनाज को बुनियादी चीज मानकर आगे के लिए तय करना होगा। यह सब बुद्धि-संयोग में आता है।

जड़-संयोग भी हो जाय और बुद्धि-संयोग भी हो जाय। लेकिन समस्या है चेतन-संयोग की। किसान, मजदूर और महाजन को कैसे एक-दूसरे के नजदीक लाया जाय और इनके आपस के सम्बन्ध ज्यादा निकट के हों ताकि तीनों को ही उत्साह आये। आज तीनों एक दूसरे का शोषण करना चाहते हैं और उसका नतीजा देश को भुगतना पड़ रहा है। यही सबसे बड़ी चुनौती आज हमारे सामने है। सरकार की तरफ से भिन्न-भिन्न प्रांतों में भूमि-सुधार संबन्धी बहुत-से कानून बनाये गए। यह भी कहा गया कि किसान और सरकार के बीच की जो दीवारें हैं वे भी खत्म कर दी गईं, लेकिन विदेशी तटस्थ विशेषज्ञ भी यही कहते हैं कि भारत में भूमिसुधार जैसे होने चाहिए थे वैसे नहीं हुए। और इस मामले में हमारा देश जापान और फारमूसा तक से पीछे है।

इस चेतन-संयोग का एकमात्र उपाय ग्रामदान है। ग्रामदान में चार बातें हैं—(१) जमीन का बीसवां हिस्सा भूमिहीन को देना, (२) बाकी जमीन की मालकियत ग्रामसभा के सुपुर्द करना (जिसमें खेती और विरासत का हक मालिक का बदस्तूर बना रहेगा, (३) गांव में हर परिवार से बालिग स्त्री-पुरुष को लेकर ग्रामसभा बनाना, इसके सब काम सर्वसम्मति से होंगे, और (४) गाव में ग्रामकोष खोलना, जिसमें हर जमीन वाला हर साल अपनी पैदावार का ४० वां हिस्सा देगा, और हर मजदूर या नौकरी पेशा अपनी तनख्वाह का तीसवां हिस्सा देता रहेगा। कहने की जरूरत नहीं कि ग्रामदान के परिणाम स्वरूप मालिक, मजदूर और महाजन के बीच सदभावना पैदा होगी, एक दूसरे के लिए दिल की गुंजाइश बढ़गी और तीनों का संयोग हो सकेगा। चेतन-संयोग सिद्ध करने के लिए ग्रामदान से बेहतर कोई रास्ता नहीं है। पिछले तीन महीने से विनोबाजी बिहार में घूम रहे हैं और इस अरसे में वहां लगभग तीन हजार ग्रामदान हो चुके हैं। देश के अन्य प्रांतों में भी लगभग आठ हजार ग्रामदान हुए हैं। लेकिन इस आंदोलन में जितना पुरुषार्थ लगना चाहिए वह नहीं लगा है। अधिकांश सार्वजनिक कार्यकर्त्ता अभी तक इससे थोड़ा दूर खड़े हैं और इसे अपना नहीं बल्कि विनोबाजी का आंदोलन समझ रहे हैं। और आश्चर्य होता है यह देखकर कि देश के विभिन्न क्षेत्रों में अन्न उत्पादन की बात की जाती है लेकिन ग्रामदान का नाम कोई नहीं लेता। हां, बिहार में जरूर बिहार सरकार ने दो अक्तूबर को ग्रामदान आर्डिनेन्स जारी किया और अब विधान सभा के खुलने पर सर्वसम्मति से ग्रामदान बिल भी पास हो गया। जैसा विनोबाजी ने बिहार से मांग की है, सारा बिहार अगर ग्रामदान में आता है तो यहां की भूमि-समस्या हल होगी, उत्पादन बढ़ेगा और

अहिंसक क्रांति की कुंजी भी देश के हाथ लगेगी ।

हमारी दृष्टि से चेतन-संयोग का सर्वोत्तम और सबसे सुगम मार्ग ग्रामदान है। लेकिन हमारा इस सम्बन्ध में कोई आग्रह नहीं है। चेतन-संयोग सम्पन्न करने का अगर कोई दूसरा रास्ता निकल सकता है और वह ग्रामदान की अपेक्षा ज्यादा कारगर हो तो उसको स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं होगी। लेकिन यह समझ लेना चाहिए कि बिना चेतन-संयोग के जड़-संयोग और बुद्धि-संयोग के सारे प्रयत्न निरर्थक सिद्ध होनेवाले हैं। ८ सितम्बर, १९५७ को मैसूर राज्य में येलवाल नामक बस्ती में एक सर्वदलीय परिषद हुई थी, जिसमें राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद, पं० जवाहरलाल नेहरू, पं० गोविंदवल्लभ पंत, श्री ढेबरभाई, श्री ई० एम० एस० नम्बूदरीपाद और विभिन्न पक्षों के नेताओं ने भाग लिया था। दो दिन की गम्भीर चर्चा के बाद वे इस निर्णय पर पहुंचे कि ग्रामदान आध्यात्मिक और भौतिक उन्नति का उत्तम उपाय है और अपने संयुक्त वक्तव्य में नेताओं ने देश को आवाहन किया था कि उत्साह के साथ ग्रामदान के काम को उठा लें।

आज फिर समय आ गया है कि इस बारे में बिलकुल स्पष्ट मत होना चाहिए। हम ग्रामदान भी न करें और चेतन-संयोग के लिए दूसरा कोई कदम भी न उठायें, और खाद, बीज आदि या यान्त्रिक खेती की कोशिश करते रहें तो अन्न-उत्पादन में कोई भी सार्थक वृद्धि नहीं हो पायगी। बिना कोई देर किये इस बारे में दृढ़ निश्चय किया जाय और अगर यह महसूस हो कि सचमुच ग्रामदान से चेतन-संयोग सफलतापूर्वक बनेगा तो फिर ईमानदारी के साथ इसको पूरा करना सबका कर्त्तव्य हो जाता है। हमारा मानना है कि यह ऐसा काम है कि अगर सब पक्ष के लोग अपने दलगत भेदभाव को भूलकर इसमें लग जायं और उसके साथ पंचायतें, रचनात्मक संस्थाओं के कार्यकर्त्ता भी सहयोग दें तो एक महीने के अन्दर ग्रामदान का वातावरण बन सकता है और एक निश्चित तारीख भी तय की जा सकती है। जिस दिन देश के साढ़े पांच लाख गांवों में से कुल-के-कुल ग्रामदान हो सकते हैं। अब तक जो सफलता ग्रामदान को मिली है, उससे उसकी क्रांतिकारी संभावनाओं की झलक साफ-साफ पता चल जाती है।

आज देश बड़े संकट की हालत में है। अमरीका के कुल अनाज-उत्पादन का चौदह प्रतिशत भारत में आये और भारत देश-विदेश के सामने अनाज के लिए हाथ फैलाये यह हमको शोभा नहीं देता। आज भारत की अन्न की स्थिति हमारे पुरुषार्थ को, हमारे आदर्शों को, और हमारी संस्कृति तथा हमारे सारे जीवन को एक चुनौती है। ग्रामदान उसके हल करने का रास्ता दिखला रहा है। क्या देश जाग जायगा और जल्दी से अपने को अन्न में स्वावलम्बी बना लेगा, क्या फिर किसी विदेशी आक्रमण या आंतरिक विस्फोट की आवश्यकता है और तब इस काम को करेगा ? इस दिशा में देरी करना बहुत घातक सिद्ध होगा।

●

(पृष्ठ ५२ का शेष)

तो पायेंगे कि यह सबसे अधिक हृदय-परिवर्तन पर जोर देता है।

यदि आज के संसार में अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों को सुलझाने में बलप्रयोग को ही हम एकमात्र रास्ता मान लें, तो हमारे सामने सम्पूर्ण विनाश या परिवर्तन दो ही विकल्प रह जाते हैं। ताशकन्द की घोषणा में यही बात ध्वनित हुई है। यह केवल हमारे लिए ही एक सलाह नहीं है, बल्कि संसार के उन सब देशों के लिए सलाह है, जो यह जानते हुए कि हथियारबंदी का अन्तिम परिणाम मानव-सभ्यता का विनाश होगा, यह कार्य कर रहे हैं।

ताशकन्द-घोषणा ने हमारा आह्वान किया है कि हम सब मामलों पर एक नई भावना से विचार करें। यदि हम बदलते नहीं तो अनेक अन्य जातियों की तरह हमारा भी नाश हो जायगा। अतः ताशकन्द घोषणा हमें बताती है कि जहां तक सम्भव हो बलप्रयोग से बचो और इसे पूरी तरह समाप्त करने के लिए प्रयत्नशील रहो। और यदि हम ऐसा करेंगे, तो संसार में स्थायी शान्ति कायम होगी।

हमें श्री लालबहादुर शास्त्री के जीवन से यही सबक मिलता है कि हम चाहे जो भी काम करें, उसे निस्स्वार्थ भाव से करें और संसार के सब लोगों की एकता, सद्भाव और मित्रता के लिए प्रयत्नशील रहें।

●

अमरीका का नीग्रो आन्दोलन

सतीशकुमार

भारत से अमेरिका की धरती पर पहुंचे हुए एक यात्री के लिए अमेरिका के नीग्रो आन्दोलन को समझने का आकर्षण बहुत महत्त्व रखता है। अपनी विश्व पदयात्रा के दौरान में जब मैं अमेरिका पहुंचा तब मेरे लिए भी यह जिज्ञासा काफी तीव्र थी कि मैं जल्दी-से-जल्दी किसी ऐसे नीग्रो-नेता के सम्पर्क में जाऊं, जो मुझे समानाधिकार के इस आन्दोलन का सही-सही परिचय दे सके। जिन दो नीग्रो-नेताओं के नाम मेरे लिए चिर परिचित थे उनमें एक थे, डा० मार्टिन लूथर किंग और दूसरे थे श्री बायार्ट रस्टिन। क्योंकि श्री किंग दक्षिण के किसी राज्य में रहते थे, इसलिए उनसे शीघ्र मिल पाने की उम्मीद नहीं थी पर रस्टिन तो न्यूयार्क में ही थे, इसलिए उनसे मिलकर नीग्रो-आन्दोलन को समझने की मेरी उत्कंठा बड़ी तीव्र हो गई।

अमेरिका के श्वेतांग समाज में अपनी क्रांतिमूलक-जीवन प्रक्रिया के कारण जिन दो व्यक्तियों ने आदर तथा यश प्राप्त किया है, उनमें एक हैं डा० मार्टिन लूथर किंग तथा दूसरे हैं बायार्ट रस्टिन। श्री रस्टिन को अपने जीवन में जो एकमात्र सिद्धि हासिल हुई है, उसका नाम है—शोषण, दमन और अन्याय को हटा देने के संघर्ष में दृढ़ निष्ठा। उनकी इस सिद्धि के बारे में मैंने कई बार सुना और पढ़ा था।

२७ नवम्बर, १९६३ की संध्या में जब हमने अमेरिका की धरती पर पहला कदम रखा, तभी से मैं नीग्रो-आन्दोलन के बारे में कुछ-न-कुछ प्रतिदिन सुनता और पढ़ता रहा। जब भी मैं अपनी मेजबान सुश्री बेवर्ली से कहता कि मुझे श्री रस्टिन से मिलना है तो बेवर्ली कहती, "ही इज़ वेरी बिज़ी मेन।" वे बहुत ही व्यस्त आदमी हैं। इसी तरह न्यूयार्क के ब्रुकलिन, ग्रीनविच-विलेज और मानहैट्टन की सड़कों पर हमने सप्ताह भर पूरा कर दिया।

५ दिसम्बर, १९६३ की बात है। मैं बेवर्ली के घर पर ही था। प्रभाकर अंग्रेजी टाइपराइटर के साथ कसरत कर रहे थे। बेवर्ली का भाई रात की डयूटी के कारण थककर सो रहा था। इतने में टेलीफोन की घंटी बजी।

"हलो।" मैंने कहा।

"बेवर्ली बोल रही हूं।" आवाज आई।

"कहो, बेवर्ली, मैं सतीश।"

"अच्छा सतीश, आज कहीं गये नहीं? अरे क्या ग्रीनविच विलेज के बीटनिकों को देखने भी नहीं गये?"

"तुम्हारे ही टेलीफोन की तो प्रतीक्षा कर रहा था। यदि चला गया होता तो तुम्हें फोन पर कैसे मिलता?" मैंने कहा।

"देखो, शाम को तुम, प्रभाकर और जेरी (बेवर्ली का भाई) मेरे दफ्तर में चले आना। वहां से हम एक चीनी रेस्तरां में खाना खाने चलेंगे और उसके बाद ....।" बेवर्ली रुक-सी गई।

"उसके बाद क्या?" मैंने उत्सुक होकर पूछा।

"उसके बाद डियर सतीश, यू विल मीट रस्टिन टुनाइट।" (प्यारे सतीश, तुम आज रात रस्टिन से मिलोगे।)

"ओह बेवर्ली, तुम कितनी मधुर हो।" मैंने पुलकित होकर कहा और फोन रख दिया।

दोपहर बाद हम 'सब वे' (भू-गर्भ रेलें) में सवार हुए। न्यूयार्क शहर के नीचे चलनेवाली ये रेलें बहुत पुराने किस्म की हैं, पर बड़ी शीघ्र गति से चलती हैं। न्यूयार्क जैसे धनी शहर में यह देखकर मुझे आश्चर्य हुआ कि 'सब वे' में यात्रा करते समय कुछ भिखमंगे हमसे पैसे मांग रहे थे। दफ्तरों के प्रारम्भ होने और छूटने के समय में आप इन रेलों में चले जायं तो कयामत ही आ जाती है। इतनी अपार भीड़ होती है कि बेचारे यात्री पिस उठते हैं। वैसे मास्को, पेरिस या लन्दन की भूगर्भ रेलें अर्ध रात्रि के बाद बन्द हो जाया

करती हैं, परन्तु यहां की रेलें २४ घंटे दौड़ती रहती हैं। २५ सेंट का एक पीतल का टोकन बना हुआ रहता है। लन्दन की तरह अलग-अलग स्टेशनों के लिए अलग-अलग टिकिट खरीदने की जरूरत नहीं। भले ही आपको थोड़ी ही दूर जाना हो या फिर शहर के एकदम उस पार। आपको २५ सेंट ही देने पड़ेंगे। आटोमेटिक द्वार के छेद में यह टोकन डालिए, द्वार खुलेगा और आपको स्टेशन के अन्दर लेकर फिर बन्द हो जायगा। जब पीछे आनेवाला यात्री फिर टोकन डालेगा, तभी वह फिर खुलेगा। मास्को में यह टोकन ५ कोपक का, यानी न्यूयार्क से काफी सस्ता है।

करीब ५० मिनिट की रेल यात्रा करके हम बेवर्ली के दफ्तर गये और वहां से चीनी रेस्तरां में भोजन किया। बेवर्ली बोली, "आज आप केवल रस्टिन से ही नहीं, बल्कि और भी कुछ विशिष्ट शांतिवादियों से भेंट करेंगे। हमारे देश के एक प्रमुख शांतिवादी कार्यकर्ता श्री रोबर्ट गिलमोर ने आपको व उन सबको अपने घर पर आमंत्रित किया है। रेस्तरां से हम वहीं पर जा रहे हैं।"

हम लोगों ने रेस्तरां से उठकर रोबर्ट के घर की तरफ प्रस्थान किया। हलकी-हलकी बर्फ पड़ने लगी थी। मैंने अपने रूसी कोट के कालर ऊपर उठाकर कान ढक लिये। सड़क के दोनों तरफ कारों की कतारें थीं और फुटपाथ पर पड़ी हुई बर्फ हमारे जूतों के दबाव से चरमरा उठती थी। एक बार तो मेरा पैर बर्फ से ऐसा फिसला कि अगर बेवर्ली ने मेरा हाथ थाम न लिया होता तो मैं बुरी तरह गिर पड़ता।

"रूस की बरफ में चलने के बाद भी इस बरफ पर फिसलते हो?" बेवर्ली ने मुझ पर व्यंग्य किया और फिर उसने अपना हाथ मेरे हाथ में डालकर चलते हुए कहा, "अब मैं तुम्हें नहीं फिसलने दूंगी।"

"धन्यवाद।" मैंने कहा।

"यह लो, रोबर्ट का घर आ गया।" बेवर्ली ने कहा। हमने दरवाजे पर की घंटी बजाई। रोबर्ट की एक महिला मित्र ने द्वार खोला। हम अन्दर आ गये। मैंने अपना ओवर कोट उतारकर टांग दिया। फिर मैंने बेवर्ली का कोट भी उतारा। हम ड्राइंग रूम में आकर हीटर के पास बैठ गए। थोड़ी ही देर में हमारे मेजबान श्री रोबर्ट ने कमरे में प्रवेश किया और बेवर्ली ने उनसे हमारा परिचय कराया। उनके पीछे ही अमेरिका के सुप्रसिद्ध शांतिवादी ए० जे० मस्ते और होमर जेक भी आये। पर बायार्ट रस्टिन कहां हैं? यह उत्सुकता मेरे मन में थी। इन दोनों महाशयों से तो मैं पहले भी मिल चुका था। पर बायार्ट को मैंने अबतक देखा भी नहीं था। अमेरिका की सुप्रसिद्ध पत्रिका 'लाइफ' के मुखपृष्ठ पर एक बार मैंने उनका फोटो देखा था और एक बार न्यूयार्क टाइम्स में भी उनका फोटो मैं देख चुका था। इसलिए उनको मैं तुरन्त ही पहचान लूंगा, इस बात का मुझे भरोसा था।

मैं इसी उधेड़-बुन में था कि एक और व्यक्ति कमरे में आया। उसने घुटनों तक का लम्बा काला कोट पहन रखा था। उसके बाल घुंघराले तथा अधपके थे। उसके हाथ में सिगरेट थी। बाद में मुझे बेवर्ली ने बताया कि वह अनवरत सिगरेट पीते रहने के कारण अपने मित्रों में 'चेन स्मोकर' के नाम से पहचाने जाते हैं। ये ही थे, बायार्ट रस्टिन।

"हलो रस्टिन।" एक साथ कई स्वर गूंज उठे। प्रभाकर उनसे एक बार भारत में मिल चुके थे। इसलिए उस पूरी गोष्ठी में मैं ही एक अपरिचित था रस्टिन के लिए।

श्री रस्टिन ने मुझे बाहों में भरते हुए कहा, "तो आप हैं—सतीश और वह मेरे ही साथ सोफे पर बैठ गए। रस्टिन की वार्ता-कुशलता प्रारम्भ हुई—आलिंगन के साथ और आगे बढ़ी मदिरा के प्याले के साथ। रस्टिन ने पूछा, "तुम पीओगे न?" और फिर बोले, "तुम भारतीयों की यह बात मुझे बिलकुल समझ में नहीं आती कि तुम लोग मदिरा से, सिगरेट से और सेक्स से इतनी घृणा क्यों करते हो? अच्छा, सिगरेट तो पिओगे न?"

इस बार मुझे अच्छा अवसर मिल गया था। सिगरेट के पेकिट पर लिखा था, "इसमें जहर है। इससे केंसर और केंसर पैदा करनेवाली चीजों से अतिथि का स्वागत किया जाता है?" इसपर रस्टिन ने एक ठहाका लगाया, "यह सब हमारी सरकार की कारगुजारी है। किसी सिरफिरे वैज्ञानिक ने कह दिया कि सिगरेट से केंसर होने का भी खतरा रहता है तो अब सरकार ने सिगरेट बनानेवाले कारखानों को यह आदेश दे दिया है कि ऐसा लिखे बिना सिगरेट कारखाने के बाहर न जाय और न बिके।" रस्टिन के इस विश्लेषण में

सिगरेट से मेरी जान बची।

मैं अमेरिका के एक बहुत प्रसिद्ध नेता के पास बैठा हूं, इस बात का मुझे कतई अहसास नहीं हो रहा था, क्योंकि रस्टिन की सादगी में अहंभाव और बनावट विलीन हो चुकी थी। ५३ वर्ष के इस अविवाहित नीग्रो के साथ वार्तालाप करते हुए कभी-कभी मुझे लगता था कि मैं किसी मनचले युवक के साथ रंगरेलियां कर रहा हूं, पर कभी-कभी उनकी गंभीर भाव-भंगिमा और बातें मुझे किसी दार्शनिक का स्मरण करा देती थीं। जब वह नीग्रो अधिकारों के आन्दोलन की बात कहते थे तो मुझे किसी जोशीले क्रांतिकारी की याद हो आती थी। रस्टिन का असली रूप कौन-सा है, यह तय कर पाना मेरे लिए कठिन हो रहा था। शायद इन सब रूपों का मिश्रण ही बायार्ड रस्टिन हैं।

श्री रस्टिन में नीग्रो आन्दोलन के प्रदर्शनों को संगठित करने की अद्‌भुत क्षमता है। अगस्त १९६३ में नीग्रो अधिकारों के लिए वाशिंगटन में जो ऐतिहासिक प्रदर्शन हुआ था उसके संयोजक बायार्ड रस्टिन ही थे। उनकी क्षमता का कमाल तब सारी दुनिया ने देखा, जब उन्होंने अमेरिका के कोने-कोने से दो लाख प्रदर्शनकारियों को वाशिंगटन में इकट्ठा कर लिया और उस विशाल जुलूस का सफलता के साथ संचालन किया। उस महान आयोजन के प्रवक्ता अगर मार्टिन लूथर किंग थे, तो आयोजक थे बायार्ड रस्टिन।

"नीग्रो आन्दोलन अब किस दिशा में आगे जायगा?" मैंने सिगरेट और मदिरा से श्री रस्टिन का ध्यान हटाते हुए सवाल किया।

"यह ही सवाल तो हमारे सामने भी है। केवल हजारों लोगों का प्रदर्शन हो जाय, बसों और स्कूलों का बहिष्कार हो जाय, पिकिटिंग और धरने चलते रहें इतना ही पर्याप्त नहीं। नीग्रो क्रांति जब तक हमारे देश की समग्र क्रांति का आधार नहीं बनेगी, तब तक नीग्रो लोगों को उनके वास्तविक अधिकार प्राप्त नहीं होंगे। हालांकि ये प्रदर्शन और सत्याग्रह चलते रहेंगे, पर जबतक आर्थिक क्रांति के लिए कोई पक्की योजना न बने और श्वेतांग समाज के हृदय को हम न बदल दें, तब तक केवल सरकारी कानूनों के बदल जाने मात्र से हम अपने लक्ष्य तक नहीं पहुंच सकेंगे।"

"लेकिन उस मंजिल तक पहुंचने के लिए कार्यकर्ताओं की एक बड़ी जमात होनी चाहिए। आपको इस प्रकार के शिक्षित कार्यकर्ता कैसे मिलते?" मैंने सवाल किया।

"हमने उसके लिए भी रास्ता बनाया है।" श्री रस्टिन ने कहा, "हम लोग समय-समय पर फ्रीडम-स्कूल चलाते हैं। इन स्कूलों में विद्यार्थियों व युवकों को दो-तीन महीने तक रहने का अवसर मिलता है। हम इस दौरान में अहिंसक प्रक्रिया के द्वारा समाज-परिवर्तन कैसे संभव है, इसका समुचित प्रशिक्षण देते हैं। साथ-साथ नीग्रो बस्तियों में भी ये विद्यार्थी जाते हैं और समस्याओं का प्रत्यक्ष अध्ययन करते हैं। हम लोग अपने फ्रीडम स्कूलों में मनोवैज्ञानिक विधि के साथ अहिंसा का पाठ अपने कार्यकर्ताओं को सिखाते हैं। अहिंसात्मक आन्दोलन के तौर-तरीकों पर अनुसंधान कार्य भी हम लोग कराते हैं।"

श्री रस्टिन का यह विश्लेषण सुनकर तो मैं दंग रह गया। जहां हम गांधी का और अहिंसा का बहुत नाम लेते हैं, उस भारत में भी अहिंसा का पाठ सिखाने के लिए शायद ही कहीं कोई स्कूल या अनुसंधानशाला चलती हो।

मैंने पूछा, "आखिर अमेरिका में आर्थिक क्रांति कैसे होगी?"

रस्टिन ने कहा, "यह तब होगी जब हम अपने आन्दोलन को काली चमड़ी वालों का आन्दोलन मात्र न बनाकर आर्थिक क्षेत्र में दमित और शोषित लोगों का आन्दोलन बनायेंगे। सवाल यह नहीं है कि काली चमड़ीवालों को गोरी चमड़ीवाले उनके अधिकार कब देते हैं, बल्कि सवाल यह है कि ये बड़े-बड़े महलोंवाले छोटे-छोटे मजदूरों तथा नौकरी-पेशा लोगों को उनकी मेहनत का वास्तविक लाभ देते हैं या नहीं? अगर नीग्रो आन्दोलन अपनी दिशा को इस तरह बदल लेगा तो वह एक नई क्रांति का सूत्रपात होगा। ऐसी परिस्थिति में सारे मजदूर-यूनियन संगठित हो सकेंगे। नीग्रो और श्वेतांग मजदूर अपने गले पर पड़े हुए शोषण के जुए के खिलाफ संघर्ष कर सकेंगे।" रस्टिन के दोनों हाथ, आंखें, चेहरा और मुंह सबने एक-साथ मिलकर इस बात पर जोर दिया। मुझे याद आया, 'न्यूयार्क टाइम्स' में पढ़ा हुआ एक वाक्य कि श्री रस्टिन १९३८ से १९४१ तक यंग कम्युनिस्ट लीग के सदस्य थे। इसलिए सहज ही यह

पूछ बैठा, "क्या आप अमेरिका में वर्ग-संघर्ष पैदा करना चाहते हैं ?"

रस्टिन बोले, "हां, अहिंसक वर्ग संघर्ष।" और वह हँस पड़े। उधर दूसरे सभी लोग वार्ता-विमर्श में लगे थे।

'हां, मैं एक अहिंसक समाजवादी हूं। अमेरिका की वालस्ट्रीट पर खड़ी अर्थ-व्यवस्था को तोड़ने के लिए हम अहिंसक संघर्ष पर आधारिक समाजवादी आन्दोलन चलाना चाहते हैं। नीग्रो अधिकारों का आन्दोलन उसी व्यापक सामाजिक क्रांति का एक चरण है। इसी तरह पेंटागोन की ताकतों का विरोध करना हमारा दूसरा चरण है। आज अमेरिका अपने बजट का ६० प्रतिशत पेंटागोन का यानी सेनावाद को दृढ़ बनाने के लिए शस्त्रास्त्रों पर खर्च कर रहा है। हमने अमेरिका की इस शस्त्र-प्रतियोगिता के विरुद्ध जबर्दस्त आन्दोलन छेड़ रखा है।"

"आप अमेरिका के इस सेनावाद विरोधी आन्दोलन में कब से हैं ?"

"दूसरे महायुद्ध के वक्त से ही।" रस्टिन ने बताया। उस समय अमरीकी सरकार ने देश के प्रत्येक युवक के लिए सैनिक शिक्षा को अनिवार्य कर दिया था। मैंने उसका विरोध किया और सैनिक शिक्षा में भरती होने से मैंने इन्कार कर दिया। परिणामस्वरूप मुझे केन्द्रीय कारागार में २८ महीने तक सज़ा भुगतनी पड़ी।"

श्री रस्टिन की इस कहानी ने मुझे बेहद प्रभावित किया। मुझे मालूम हुआ कि वह एक क्वेकर हैं, एक शांतिवादी हैं, समाजवादी हैं और हैं अमरीकी नीतियों के प्रति विद्रोही। इस जेल यात्रा के बाद उनका सारा जीवन नीग्रो अधिकार आन्दोलन में ही बीता है।

"रंगभेद के विरुद्ध बगावत करने की यह सशक्त भावना आपमें आखिर उत्पन्न कैसे हुई ?" मैंने श्री रस्टिन से पूछा तो वह बोले, "यह भावना तो बचपन से ही मुझमें होने लगी थी। जब मैं अपने नगर वेस्ट चेस्टर के हाई स्कूल फुटबाल-टीम के एक सदस्य की हैसियत से मेडिया नगर में गया हुआ था तो हम कुछ साथी एक रेस्तरां में खाने के लिए गये। वह रेस्तरां केवल श्वेतांगों के लिए था। इसलिए वहां पर अन्य श्वेतांग मित्रों को तो खाने-पीने का सामान दिया गया परन्तु मुझे अंगूठा बता दिया गया। इस घटना ने मेरी चेतना को एड़ी से चोटी तक झकझोर दिया। मैं वहीं बहुत देर तक बैठा रहा और इस भेदभाव पर सोचता रहा। लेकिन होटल मालिकों ने मेरी उपस्थिति को भी बर्दाश्त नहीं किया। मैं वहां से जबर्दस्ती निकाल दिया गया। उसी क्षण से मेरे दिल में भेदभाव का यह तेज और नुकीला कांटा चुभ गया और मैंने फैसला किया कि अब मैं इस रंगभेद को मिटाकर दम लूंगा। बचपन का वह फैसला अब तक मेरे साथ है।"

श्री रस्टिन के जीवन की पूरी कहानी सचमुच उनके उपर्युक्त फैसले के साथ जुड़ी हुई है। उन्होंने १९४७ में सबसे पहले नीग्रो अधिकारों के लिए आयोजित प्रदर्शन में हिस्सा लिया और २२ दिन जेल की हवा खाई। फिर तो यह प्रदर्शनों का आयोजन और संचालन उनके जीवन का एक अनिवार्य अंग ही बन गया। वे १९५५ से १९६० तक नीग्रो आन्दोलन के विश्व-विश्रुत नेता डा० मार्टिन लूथर किंग के सलाहकार के रूप में उनके साथ रहे और अनेक बार वाशिंगटन में राष्ट्रपति भवन के सामने जुलूसों तथा प्रदर्शनों का नेतृत्व किया।

ऐसी ही दिलचस्प बातों में दो घंटे बीत गये। श्री रस्टिन की बातों से अमेरिका के नीग्रो आन्दोलन की एक झलक मिली। अमेरिका का नीग्रो अब अंगड़ाई लेकर जाग रहा है। वह रंग की उत्कृष्टता के बंधनों को तोड़ने के लिए कटिबद्ध है। रंगभेद को भी समाप्त करना चाहता है और इस प्रकार यह नीग्रो आन्दोलन अमेरिका में सम्पूर्ण सामाजिक क्रांति का एक बुनियादी पत्थर है, यह प्रभाव लेकर मैं रोबर्ट गिलमोर के घर से वापस लौटा।

●

सेवा और विनय की मूर्ति

शोभालाल गुप्त

अपने लम्बे सार्वजनिक जीवन के दौरान बहुत लोगों से सम्पर्क आया। कुछ के साथ साथ यह सम्पर्क काफी प्रगाढ़ हुआ और ध्येय की समानता के कारण सह-यात्री बन गए। कुछ समय जीवन-यात्रा साथ-साथ चली और परिस्थितियों ने उस यात्रा में व्यवधान पैदा कर दिया। दुनिया में, जैसा कि अक्सर होता है, मिलकर बिछुड़ गए। किन्तु जिस भावना ने, जिस ध्येय ने, हमको एक जगह मिलाया था, वह नष्ट नहीं हुए और इसलिए भले ही प्रत्यक्ष साथ छूट गया हो, अपनेपन की कड़ी कभी नहीं टूटी और यह देखकर आनन्द ही हुआ कि हम भिन्न क्षेत्र में ही सही, समान ध्येय के लिए काम कर रहे हैं।

भाई श्री गौरीशंकरजी उपाध्याय का स्मरण आता है, तो ये पंक्तियां अपने-आप लिखी जा रही हैं। आज से लगभग तीस वर्ष पहले की बात है, जब उनसे प्रथम परिचय हुआ था। हम लोगों ने गांधीजी के आदर्शों और रीति-नीति के अनुसार राजस्थान की रियासतों में सार्वजनिक काम करने के लिए अजमेर में 'राजस्थान सेवक मंडल' नाम की एक संस्था का गठन किया था। हम इस संस्था के अन्तर्गत सेवा-भावी सार्वजनिक कार्यकर्ताओं का संग्रह करना चाहते थे। ताकि उनके द्वारा राजस्थान की विभिन्न रियासतों में सेवा-कार्यों की शुरूआत की जा सके। हमें ऐसे साथियों की तलाश थी, जो अपना सारा जीवन लोक-सेवा और लोक-कल्याण के लिए समर्पित कर दें, अपनी इस खोज के सिलसिले में भाई श्री गौरीशंकरजी से परिचय हुआ जो आगे चलकर गहरा हुआ और हम एक संस्था में साथी के रूप में जुड़ गए।

हम अजमेर से सात मील दूर एक गांव में एक आश्रम चलाते थे। गांव का नाम था नारेली और आश्रम को सेवा-आश्रम का नाम दिया था। आश्रम का जीवन गांधीजी के साबरमती सत्याग्रह आश्रम के ढंग पर चलता था। राजस्थान हरिजन-सेवक-संघ का मुख्य कार्यालय भी यहीं ले आया गया था। और यह स्थान कार्यकर्ताओं के प्रशिक्षण का अच्छा खासा केन्द्र बन गया था। आश्रम में कार्यकर्ताओं का जमघट लगा रहता था जो राजस्थान की विभिन्न रियासतों से यहां आते थे। भाई श्री गौरीशंकरजी ने बांसवाड़ा में सार्वजनिक सेवा की शुरूआत की थी। उनसे पत्र-व्यवहार हुआ और हम लोगों ने उन्हें कुछ समय के लिए सेवा-आश्रम नारेली में बुला लिया।

भाई श्री गौरीशंकरजी का स्मरण होता है तो सेवा और विनय की एक मूर्ति आंखों के सामने खड़ी हो जाती है। आश्रम की कोई प्रवृत्ति ऐसी नहीं थी, जिसमें वह उत्साह से भाग नहीं लेते थे और मुझे याद नहीं पड़ता कि किसी आश्रम-वासी के साथ उनका कभी कोई झगड़ा हुआ हो। वह मस्त जीव थे। अपने काम से काम रखते थे और सबके साथ हँसकर मीठी वाणी बोलते थे। संगीत के प्रेमी थे और हारमोनियम खूब बजा लेते थे। प्रायः सायं की सामूहिक प्रार्थना में भजन बोलने में और धुन लगाने में वह आगे रहते थे। उन्हें आयुर्वेद का भी ज्ञान था और इसलिए हमने आश्रम के औषधालय का काम उनके सुपुर्द कर दिया था। आसपास के गांवों के जो स्त्री-पुरुष बीमार पड़ने पर आश्रम में आते थे, उनको बड़े प्रेम से दवा देते और पथ्य बताते थे।

आश्रम में खाना पकाने, बर्तन मांजने, चक्की चलाने, पानी भरने, झाड़ू लगाने यहां तक कि पाखाना सफाई करने का काम भी हम सब मिलकर करते थे। गांव की सफाई का काम भी हमने अपने हाथों में लिया था और बारी-बारी से अलग-अलग मुहल्लों की सफाई करते थे। इन सब कामों में भाई श्री गौरीशंकरजी पूरा रस लेते थे। गांधीजी ने कहा था कि शारीरिक श्रम मनुष्य के लिए अनिवार्य है और कोई काम छोटा-बड़ा नहीं है। मनुष्य को हर काम सलीके से

करना चाहिए। हम लोग आश्रम में इस कथन पर अमल करने का प्रयत्न करते थे। आश्रम में जाति-पाति का कोई भेद नहीं था। आश्रम में ब्राह्मण और भंगी सभी भाई-भाई की तरह रहते थे। साथ ही खाते-पीते और उठते-बैठते भी थे। भाई श्री गौरीशंकरजी राजस्थान के सामाजिक दृष्टि से एक पिछड़े हुए भाग से आये थे, किन्तु जाति-पांति के संकीर्ण विचारों से उन्होंने अपने को ऊंचा उठा लिया और आश्रम-जीवन में पूरी तरह घुलमिल गए। शीघ्र ही हम लोगों ने अनुभव किया कि भाई गौरीशंकरजी में वे सब गुण पर्याप्त मात्रा में हैं, जो गांधीवादी रीति-नीति को माननेवाले कार्यकर्ताओं में होने चाहिए। हम लोगों ने उनसे राजस्थान सेवक मंडल का सदस्य बन जाने का अनुरोध किया और उन्होंने हमारे इस अनुरोध को खुशी-खुशी स्वीकार कर लिया। हम लोग इस प्रकार लोक-सेवकों के एक पारिवारिक सूत्र में आबद्ध हो गए।

हम लोगों ने बागड़ को अपना एक विशिष्ट सेवा-क्षेत्र चुना। इसमें डूंगरपुर और बांसवाड़ा रियासतों का समावेश होता था। इस क्षेत्र में भील बहुत बड़ी तादाद में रहते थे। गांधीजी ने हमें सिखाया था कि हमें दरिद्र नारायण की उपासना करनी चाहिए। राजस्थान के भील दरिद्र नारायण की साक्षात मूर्ति हैं। वह सदियों शोषित और उत्पीड़ित रहा। नंगा और भूखा वह रहा। हम लोगों ने सोचा कि यदि हमारी सेवा और उपासना का सबसे अधिक अधिकारी कोई हो सकता है तो वह राजस्थान का भील ही हो सकता है। सबसे पहले इस क्षेत्र के मध्य में मैंने पड़ाव डाला। फिर भाई श्री माणिक्य लालजी वर्मा भी यहां आ गए और सेवा-कार्य की सुदृढ़ नींव पड़ी। जब सेवा-आश्रम नारेली में भाई श्री गौरीशंकरजी का प्रशिक्षणकाल समाप्त हुआ, तो यह स्वाभाविक ही था कि वह अपने क्षेत्र में लौटते। वह डूंगरपुर में आकर जम गए और अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक इस क्षेत्र के लोगों की निष्ठापूर्वक सेवा करते रहे।

भाई श्री गौरीशंकरजी ने अपनी अनन्य सेवा से क्षेत्र के लोगों का प्रेम और विश्वास सम्पादन किया और काफी हद तक लोकप्रिय हुए। शुरू में वह रचनात्मक कामों में लगे रहे, किन्तु बाद में उन्होंने राजनीति में भी भाग लिया। रियासत में उत्तरदायी शासन के लिए जो आन्दोलन हुआ, उसमें वह कूदे। जेल की यंत्रणाएं भी सहन कीं, और निरंकुशता के विरुद्ध अहिंसक लड़ाई में अगली पंक्ति में रहे। जमाने की हवा उनके पक्ष में थी और अन्त में उनकी जीत हुई। जिन महारावल साहब ने उन्हें जेल में डाला, उन्होंने ही उन्हें अपना मुख्य मंत्री बनाया। किन्तु शीघ्र ही डूंगरपुर रियासत राजस्थान की बड़ी इकाई में विलीन हो गई और भाई श्री गौरीशंकरजी मंत्री की कुर्सी को छोड़कर पुनः जनसेवक बन गए। जन-सेवक के रूप में उन्होंने अपने सार्वजनिक जीवन की शुरूआत की और जन-सेवक के रूप में ही उनके जीवन का अन्त हुआ। वर्षों वह जिला परिषद् के प्रमुख रहे और पंचायती राज के प्रयोग को सफल बनाने में अपना योग दिया। इस हैसियत से उन्होंने अपने क्षेत्र की जो सेवाएं कीं, उन्हें बहुत समय तक याद रखा जायगा।

यद्यपि भाई श्री गौरीशंकरजी का और हमारा साथ छूट गया था, किन्तु उनकी गतिविधियों में हमारी दिलचस्पी बराबर बनी रही। हमारे लिए यह सन्तोष और आनन्द का विषय था कि वह निष्ठा के साथ सेवा-कार्यों में तल्लीन हैं और उनकी प्रतिष्ठा और लोकप्रियता में सतत वृद्धि हो रही है। मैं यह विश्वास करता हूं कि विनम्रता, सादगी, अहंकारशून्यता और सेवा-परायणता के जिन गुणों का मैंने शुरू में उनके भीतर दर्शन किया था, उनकी उन्होंने अन्त तक रक्षा की होगी। हम अगर आज उन्हें याद करते हैं तो उनके इन्हीं गुणों के लिए; और एक सार्वजनिक कार्यकर्ता के लिए इन गुणों की आज भी उतनी ही जरूरत है जितनी पहले कभी थी। भाई श्री गौरी शंकरजी ने जब सार्वजनिक क्षेत्र में प्रवेश किया था, तब कोई प्रलोभन सामने नहीं था। एक कांटेभरे रास्ते को चुनने का सवाल सामने था और सोच समझ कर, केवल कर्तव्य-भावना से प्रेरित होकर उन्होंने यह मार्ग चुना और आखिर तक अविचल भाव से उस पर चलते रहे। यह उनकी जीवन साधना थी और उससे हम बहुत कुछ सीख सकते हैं।

जब यह सुना कि भाई श्री गौरीशंकरजी का निधन हो गया तो दिल को एक धक्का-सा लगा। घटना बिल्कुल आकस्मिक थी और आघात लगना स्वाभाविक था। वह

(शेष पृष्ठ ७५ पर)

वासन्ती वर्षगांठ

जगदीशचन्द्र शर्मा

लो, वासन्ती वर्षगांठ पर गर्वित है गणतंत्र हमारा;
खिली वनस्पति, जनजीवन में बही विकासोन्मुख श्रम-धारा।

हँसी कोंपलें, किसलय किलके, वृन्त-वृन्त वैभव से फूला;
क्यों मन ही मन पतझर मानो हुआ जा रहा आग बबूला ?
आया है ऋतुराज, दे रहा है सबको सुखदायी निधियां;
मुक्त-हृदय से बता रहा है नई सफलताओं की विधियां।

मानों उजड़ी हुई सृष्टि ने पाया है फिर सृजन-सहारा;
लो, वासन्ती वर्षगांठ पर गर्वित है गणतंत्र हमारा।

वेश-धर्म-भाषा-प्रदेश की है भारत भर में विभिन्नता;
राष्ट्र-एकता के निमित्त है इन सबमें व्यापक अभिन्नता;
ज्यों विभिन्न फूलों-पौधों से लदा हुआ रहता निकुंज है;
इस विभिन्नता में अभिन्नता ही निकुंज का शक्ति-पुंज है।

महक उठी वन राजि, तोड़ कर मानों आज दमन की कारा;
लो, वासन्ती वर्षगांठ पर गर्वित है गणतंत्र हमारा।

अब कोई भी क्रूर शक्ति नूतन विकास को छल न सकेगी;
महावेदना भी फूलों के अट्टहास को दल न सकेगी।
इस दिग्व्यापी नये सृजन को क्या विध्वंस चुनौती देगा ?
यह सक्षम है नया सृजन, हर विपदा का अस्तित्व हरेगा।

यों वसन्त-सूरज ने मानों महाध्वंस-तम को ललकारा;
लो, वासन्ती वर्षगांठ पर गर्वित है गणतंत्र हमारा।

आज हमारा स्वाभिमान भी लेता है नूतन अंगड़ाई;
ऊर्जस्वित हो उठी हमारे भारत की अजेय तरुणाई;
विश्व-हर्ष के संवर्धन में हम भरपूर योग देते हैं;
सर्वोदय का, निर्भयता का जग में विस्तारण करते हैं !

लो, जय ने स्वातन्त्र्य जन्य शुभ नैसर्गिक उल्लास उभारा;
लो, वासन्ती वर्षगांठ पर गर्वित है गणतंत्र हमारा।

एक पुरातन कवि की अनूठी कल्पना

अगरचंद नाहटा

भक्ति भारतीय साधना पद्धति का एक प्रमुख अंग है। भगवान के साथ अनुरक्ति या प्रेम ही भक्ति है। भक्त भक्ति के द्वारा भगवान के समीप पहुंचता है। भक्तों की रक्षा भगवान करते रहते हैं। इस कथन के साथ यह भी कहा जाता है कि भगवान भक्तों के वश में है अर्थात् भक्त और भगवान दोनों का अपनी-अपनी दृष्टि से महत्व है। भगवान को पुजानेवाले भक्त ही होते हैं और भक्तों का योग-क्षेम भगवान ही वहन करते हैं। अतः दोनों का पारस्परिक घनिष्ट संबंध है।

भगवान के प्रति भक्तों का दास्य और सख्य भाव तो प्रसिद्ध है। दीनतापूर्वक भगवान से भक्त इहलौकिक और पारलौकिक सुखों की मांग और दुःखों के परिहार की प्रार्थना करते हैं। कहीं-कहीं भक्त अपने को भगवान का सखा भी मान लेते हैं। पर राजस्थानी ग्रामीण साहित्य में एक ऐसा विलक्षण गीत मिला है, जिसमें भक्त जाट ने भगवान से प्रतिस्पर्धा करते हुए जबरदस्त टक्कर ली है। उसने अल्हड़पन या मस्ती में आकर भगवान कृष्ण से स्पष्ट कह दिया है कि हे बनवारी! मैं तुम्हारे आश्रित नहीं हूं। तुम्हारे पास बड़ी-बड़ी चीजें होंगी तो छोटी-छोटी चीजें मेरे पास भी हैं।

भक्त का स्वावलम्बन और आत्म-सम्मान इस गीत में टपक रहा है। वैसे गीतकार ने चाहे विनोद में ही कहा हो, पर उसकी बात अवश्य ही अनूठी है। इसलिए इस गीत का लोक-साहित्य में विशेष महत्व है। हम जानते हैं कि बड़े-बड़े विद्वानों को भी मात देनेवाले कई लोक-कवि हुए हैं, उनकी गहरी सूझ-बूझ की दाद सभी को देनी होगी। जो भाव कल्पना बड़े-बड़े विद्वानों के हृदय और मस्तिष्क में नहीं आई, वह इन साधारण अपठित लोक गीतकार द्वारा अभिव्यक्त हुई देखकर बड़ा आश्चर्य होता है। लोक-गीतों में ऐसी-ऐसी अनोखी कल्पनाएं मिलती हैं, जैसी शायद ही कभी किसी शिक्षित व विद्वान् व्यक्ति के मस्तिष्क में उठी हो। आगे हम वह गीत दे रहे हैं। खोज करने पर ऐसी और भी रचनाएं मिलने की सम्भावना है। गीतकार की मस्ती बहुत ही सराहनीय और ध्यान देने योग्य है।

बनवारी हो लाल, कोन्यां था रे सारे
गिरधारी हो लाल, कोन्यां था रे सारे।

ऐ महल-मालिया था रे
थारी बरोबरी म्हे करां, स कोई, टूटी टपरी म्हांरे ॥बन०॥

ऐ कामधेनवां था रे
थारी बरोबरी म्हे करां, स कोई, भैंस-पाडड़ी म्हां रे ॥वन०॥

ऐ हाथी घोड़ा था रे
था री बरोबरी म्हें करां, स कोई, ऊंट-सांडणी म्हां रे ॥बन०॥

ऐ भाला बरछी था रे
था री बरोबरी म्हे करां, स कोई, जेली-गंडासो म्हां रे ॥बन०॥

ओ रतनागर सागर था रे
था री बरोबरी म्हें करां, स कोई, ढाब भरचा है म्हां रे।।बन०॥

ऐ तोकस तकिया था रे
था री बरोबरी म्हे करां, स कोई, फाटी गुदड़ी म्हां रे ॥बन०॥

आ राधा राणी था रे
था री बरोबरी म्हे करां, स कोई, एक जाटणी म्हा रे।

हे बनवारी, हम तुम्हारे आसरे नहीं। तुम्हारे ये महल हैं तो हम भी तुम्हारी बराबरी करते हैं—हमारे भी टूटी टपरी है।

तुम्हारे कामधेनु है तो हमारे भी भैंस—पाडी। तुम्हारे हाथी-घोड़े हैं तो हमारे ऊंट-ऊंटनी है, तुम्हारे पास भाला-बर्छी है तो हमारे पास जई-गंडासी है। हम तुम्हारे बराबर हैं—हे गिरधारी, हम तुम्हारे आसरे नहीं!

तुम्हारे रत्नाकर सागर हैं तो हमारे तालतलाई भरे हैं। तुम्हारे पास तोकस-तकिये हैं तो हमारे पास भी फटी-गुदड़ी है। तुम्हारे राधारानी है तो हमारे घर में भी जाटनी है। हम तुम्हारी बराबरी करते हैं। हे बनवारी, हम तुम्हारे सहारे नहीं।

तेलगू-साहित्य का मुकुटमणि विश्वनाथ सत्यनारायण

अवनींद्रकुमार विद्यालंकार

तेलगू साहित्य के सिद्धहस्त सर्वतोमुखी प्रतिभा के लेखक श्री विश्वनाथ सत्यनारायण आंध्र प्रदेश के ही नहीं, अपितु समस्त भारत के गौरव हैं। आंध्र के इस साहित्य-मनीषी ने १० सितम्बर १९६५ को अपनी आयु के ७० वर्ष पूरे किये।

आधुनिक तेलगू साहित्य में उनके तुल्य या उनका समकक्ष और कोई दूसरा आंध्र साहित्यिक नहीं है। लोकप्रियता में भी नहीं। कहानी, नाटक, उपन्यास, टीका, समीक्षा, कविता आदि साहित्य के विभिन्न अंगों और क्षेत्रों में उनकी निर्बाध गति है। उनकी साहित्य-मर्मज्ञता बेजोड़ है।

श्री सत्यनारायण का जन्म कृष्णा जिले के मदमूर गांव में हुआ। आपके पिता का नाम शेषाद्रि और माता का नाम पर्वतम्मा था। परिवार संपन्न नहीं था। परन्तु वह विद्या-व्यसनी था। अंग्रेजी पढ़ने के लिए आपको मछलीपट्टनम् भेजा गया। आपका विवाह अल्पायु में, ग्यारह वर्ष की अवस्था में ही कर दिया गया था।

शिक्षा अभी समाप्त नहीं हुई थी। आप बी० ए० में अध्ययन कर रहे थे कि महात्मा गांधी ने असहयोग का शंखनाद किया। उनके कानों में भी वह ध्वनि पहुंची। बस कालेज छोड़ दिया। असहयोगी हो गए। कांग्रेस का झण्डा उठाया, गांवों की ओर चल पड़े।

गांधीजी की गिरफ्तारी के बाद आन्दोलन थम गया। आंधी शान्त हो गई। अब उन्होंने एक स्कूल में मास्टरी प्रारम्भ की। शिक्षक होने पर उन्होंने पुनः अध्ययन प्रारंभ कर दिया। एम० ए० हो गए। इसके साथ ही उनका भाग्य जागा।

विजयवाड़ा के एक कालेज में प्रोफेसर हो गए। उनकी कीर्ति बढ़ रही थी। शीघ्र ही वह करीमगंज के एक कालेज के प्रिन्सिपल नियुक्त किये गए।

साहित्यिक जगत में उनका नाम बराबर ऊंचा चढ़ता जा रहा था। आंध्र विश्वविद्यालय ने उनको 'कला प्रपूर्ण' की सम्मानपूर्ण उपाधि से विभूषित किया। वह कुछ समय आंध्र विधान सभा के सदस्य रहे। इस समय वह आंध्र साहित्य अकादमी के सदस्य हैं।

विश्वनाथ सत्यनारायण साधु-स्वभाव के हैं। अत्यन्त मधुर भाषी हैं। भवभूति की यह उक्ति उन पर पूर्णतः चरितार्थ होती है :

"वज्रादपि कठोराणि, मृदूनि कुसुमादपि।"

उनके लिखित ग्रंथों से पाठक के मन पर उनके विचारों की अमिट छाप पड़ती है। उनका रचित काव्य 'रामायण कल्पवृक्षम्' आन्ध्र साहित्य का एक अनमोल रत्न है। इस काव्य की रचना करके कवि धन्य हो गया है। आंध्र देश भी धन्य हो गया है। कवि ने इसमें श्री राम की कथा ललित मधुर पदावली में सुन्दर ढंग और आकर्षक प्रभावी रूप से कही है। राम-कथा कहनेवाले काव्यों में "रामायण कल्पवृक्षम्" का स्थान अत्युच्च है। यह काव्य कल्पवृक्ष सिद्ध हुआ।

कवि सत्यनारायण ने अनेक खंड काव्य भी लिखे हैं। वर्णन प्रधान, शतक गेय कथा, मुक्तक आदि सब प्रकार की काव्य रचना में वह पारंगत हैं।

प्राचीन तेलगू साहित्य में प्रचलित एक छंद का नाम 'अध्याक्करा' है। आधुनिक कवि इसी छंद में रचना नहीं करते। यह कार्य सरल नहीं है। किन्तु महाकवि विश्वनाथ सत्यनारायण इस छन्द में भी रचना करने में सिद्धहस्त हैं। इस अध्याक्करा छन्द में 'विश्वनाथ अध्याक्करलू' नामक एक काव्य रचा है। इस प्राचीन छन्द को पुनरुज्जीवित करने के अतिरिक्त आपने दसों देवताओं पर दस शतक

लिखे हैं। आंध्र पर उनको बहुत गर्व है। आंध्र के गौरवपूर्ण इतिहास का परिचय कराने के उद्देश्य से 'आंध्र प्रशस्ति' आदि नामों से उन्होंने अनेक लघु काव्य और खंड काव्य रचे हैं। आंध्र के पुनर्जागरण का श्रेय मुख्यतः महाकवि श्री सत्यनारायण को हैं।

आधुनिक सामाजिक और पारिवारिक समस्याओं की ओर से कवि ने आंखें नहीं मूंदी हैं। सास-बहू के संबंधों पर करुण-रसपूर्ण काव्य लिखा है। इस काव्य का नाम है : 'किन्नेर सानी पाटल'। यह चित्रण अत्यन्त करुण है। 'ऋतु-संहार' उनका एक अन्य काव्य है। इसमें आंध्र प्रदेश की छओं ऋतुओं का हृदयग्राही भावपूर्ण वर्णन है। महाकवि अपनी प्रादेशिक सीमाओं से यहां भी ऊंचा उठ नहीं सका। इन और अन्य आपके काव्यों में आपकी सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति और गहरी अनुभूति का परिचय मिलता है।

उनके रचित नाटकों में 'नर्तनशाला' और 'अनारकली' अत्यन्त लोकप्रिय हुए हैं। विश्वनाथ सत्यनारायण प्रथित-यश उपन्यासकार हैं। तेलगू उपन्यास-साहित्य के वह मुकुटमणि माने जाते हैं। उनका 'बेमियउमूलू' (हजार फण) नामक उपन्यास अत्यधिक प्रसिद्ध है।

विश्वनाथ सत्यनारायण से एक बार किसी मित्र ने पूछा, "इतनी विशाल मात्रा में आपने साहित्य क्यों लिखा है?"

महाकवि ने उत्तर दिया, "अपनी व्यथा को प्रकट करने के लिए।"

मित्र ने पुनः पूछा, "आपको क्या व्यथा है?"

कवि मनीषी ने उत्तर दिया, "पाश्चात्य लेखकों ने भारतीय इतिहास को विकृत कर दिया है। यही मेरी व्यथा है।" महाकवि कितने उत्कट राष्ट्रवादी और भारत-भक्त हैं, यह इससे प्रकट है।

इस ख्यातिप्राप्त लेखक की मान्यता है कि भारतीय पुराणों में वर्णित भारतीय इतिहास ठीक है। यह सिद्ध करके आंध्र जनता को बताने के लिए उन्होंने 'पुराणे वरे ग्रन्थमाला' नामक ग्रन्थमाला के अन्तर्गत बारह उपन्यास हाल ही में प्रकाशित किये हैं। इन उपन्यासों का अन्य भारतीय भाषाओं में यदि अनुवाद प्रकाशित हुआ तो प्राचीन इतिहास के वास्तविक और यथार्थ रूप का सत्य-दर्शन और ज्ञान आन्ध्र जनता के समान शेष जनता भी पा सकेगी।

उनकी लिखी कहानियों में 'माकली किले में क्षमा', 'भिखारी', 'प्रतीक्षा' आदि का आंध्र प्रदेश में बहुत प्रचलन है।

लेखक ने अभी अपनी लेखनी को विराम नहीं दिया है। ७१ वर्ष की आयु में भी वह इतना काम करते और लिखते-पढ़ते हैं कि उसे देखकर आश्चर्य होता है। उत्साही व पुरुषार्थी युवक का यौवन भी इसके सामने लजा जाता है। उनकी लेखनी अजस्र चालू है। वह 'अकुतोभय' मार्मिक टीकाकार है। आंध्र महाभारतकर्ता नन्नय्या, महाकवि पडन्ना और भवभूति के प्रति उनके मन में अत्यधिक श्रद्धा और आदर है। इन तीनों को महाकवि सिद्ध करने के अनेक बार इन्होंने भाषण दिये हैं। वह मधुरभाषी वक्ता हैं, परन्तु पाश्चात्य लेखकों की आलोचना करते हुए उनका रोष जाग उठता है। उस समय उनके भाषण में कठोर शब्द भी सुनाई देते हैं।

शकुन्तला नाटक की उन्होंने 'अभिज्ञानता' नाम से एक टीका लिखी है। विद्वान आलोचकों का मत है कि भारतीय टीका ग्रन्थों में यह सर्वोच्च स्थान पायेगा। आंध्र जनता के हृदय पर पिछले पचास साल से इस महाकवि की मधुर ललित वाणी का राज्य स्थापित है।

(पृष्ठ ७१ का शेष)

उम्र में मुझसे छोटे थे, किन्तु शायद भगवान के प्यारे थे, इसीलिए पहले बुला लिये गए। इसे विधि की विडम्बना ही कहना चाहिए कि उम्र में बड़े बैठे रहते हैं और छोटे कूच कर जाते हैं। किन्तु इसमें भी कोई ईश्वरीय विधान होगा, जिसे हम साधारण मनुष्य नहीं समझ पाते। यह दुःख का विषय है कि पुराने कार्यकर्ता चले जा रहे हैं, किन्तु उनके रिक्त स्थानों की पूर्ति नहीं हो रही है।

भाई श्री गौरीशंकरजी की याद ही अब शेष रह गई है। उन्होंने साहित्यिक अभिरुचि पाई थी। साथ-साथ वह कवि भी थे और उन्होंने अपनी रचनाओं द्वारा बहुतों को उद्बोधन दिया। उन्होंने अपनी साधना द्वारा अपने जीवन का विकास किया। बागड़ क्षेत्र के लोग यदि उनकी स्मृति को सुरक्षित न रखेंगे तो यह एक कृतघ्नता ही होगी। वह अपना कर्तव्य पूरा कर गए और अब जो पीछे रह गए हैं उन्हें अपना कर्तव्य पूरा करना चाहिए। हम सोचते थे कि हमारे सम्बन्धों का टूटा हुआ धागा फिर जुड़ जाय, किन्तु विधाता ने वह अवसर नहीं आने दिया।

आनंद की दिशा

आचार्य रजनीश

यह क्या हो गया है ? मनुष्य को यह क्या हो गया है ? मैं आश्चर्य में हूं कि इतनी आत्मविपन्नता, इतनी अर्थहीनता और इतनी घनी ऊब के बावजूद भी हम कैसे जी रहे हैं ?

मैं मनुष्य की आत्मा को खोजता हूं तो केवल अंधकार ही हाथ आता है। और, मैं मनुष्य के जीवन में झांकता हूं तो सिवा मृत्यु के और कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता है।

जीवन है, लेकिन जीने का भाव नहीं। जीवन है, लेकिन एक बोझ की भांति वह सौंदर्य, समृद्धि और शांति नहीं है। और आनंद न हो, आलोक न हो तो निश्चय ही जीवन नाममात्र को ही जीवन रह जाता है।

क्या हम जीवन को जीना ही तो नहीं भूल गये हैं ?

पशु और पक्षी और पौधे भी हमसे ज्यादा सघनता और समृद्धि और संगीत में जीते हुए मालूम होते हैं। लेकिन शायद कोई कहे कि मनुष्य की समृद्धि तो दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती जा रही है, फिर भी आप यह क्या कह रहे हैं ? उत्तर में मैं कहूंगा। "परमात्मा मनुष्य को उसकी तथाकथित समृद्धि से बचाये। वह समृद्धि नहीं, बस केवल दरिद्रता और दीनता को भुलाने का उपाय है। यह समृद्धि और शक्ति और प्राप्ति सब स्वयं से पलायन है।"

मैं, समृद्धि के वस्त्रों को उतारकर, जब मनुष्य को देखता हूं तो उसकी आंतरिक दरिद्रता को देखकर हृदय बहुत विषाद से भर जाता है। क्या इस दरिद्रता को छिपाने और विस्मरण करने को ही हम समृद्धि को नहीं ओढ़े हुए हैं ?

जो थोड़ा-सा भी विचार करेगा, वह सहज ही इस सत्य से परिचित हो जायगा। आत्महीनता से पीड़ित व्यक्ति पद को खोजते हैं, और आत्मदरिद्रता से ग्रसित धन और संपदा को। भीतर जो है उससे पलायन करने को उसके विपरीत ही हम बाहर स्वयं को निर्मित करने लगते हैं। अहंकारी विनीत बन जाते हैं और अतिकामी ब्रह्मचर्य और साधुता में स्वयं को भुला लेना चाहते हैं।

मनुष्य जो भीतर होता है, साधारणतः ठीक उसके विपरीत ही, वह बाहर स्वयं को प्रगट करता है। इसलिए ही दरिद्र संपदा को खोजते हैं और जो संपदाशाली हैं, वे दरिद्रता को वरण कर लेते हैं ! क्या आपने दरिद्रों को सम्राट् बने और सम्राटों को दरिद्र होते नहीं देखा है ?

इसलिए, यह न कहें कि मनुष्य की समृद्धि बढ़ गई है—वस्तुओं की समृद्धि तो बढ़ी है पर मनुष्य-समृद्ध नहीं, और भी दरिद्र हो गया है। और स्मरण रखें कि बाह्य समृद्धि को बढ़ाने की पागल दौड़ में वह निरंतर और भी दरिद्र ही होता जावेगा। क्योंकि, इस दौड़ में वह यह भूलता ही जा रहा है कि एक और प्रकार की समृद्धि भी है जो कि बाहर नहीं स्वयं के भीतर ही उपलब्ध की जाती है। वस्तुओं का बढ़ता जाना ही एकमात्र विकास नहीं है एक और विकास भी है जिसमें कि स्वयं मनुष्य भी बढ़ता है। और निश्चय ही वही विकास वास्तविक है जिसमें कि मानवीय चेतना ऊर्ध्वगमन करती है और प्रगाढतर सौन्दर्य, संगीत और सत्य को उपलब्ध करती है।

मैं आपसे ही पूछना चाहता हूं कि क्या आप वस्तुओं के संग्रह से ही संतुष्ट होना चाहते हैं या कि चेतना के विकास की भी प्यास आपके भीतर है ?

जो मात्र वस्तुओं में संतुष्टि को खोजता है वह अंततः असंतोष के और कुछ भी नहीं पाता है, क्योंकि वस्तुएं तो केवल सुविधा ही दे सकती हैं। और निश्चय ही सुविधा और संतोष में बहुत भेद है। सुविधा कष्ट का अभाव है। संतोष आनंद की उपलब्धि है।

आपका हृदय क्या चाहता है ? आपके प्राणों की प्यास क्या है ? आपकी श्वासों की तलाश क्या है ? और क्या कभी आपने अपने आपसे ये प्रश्न पूछे हैं ? यदि नहीं, तो मुझे पूछने दें। यदि आप मुझसे पूछें तो मैं कहूंगा : "उसे पाना चाहता हूं जिसे पाकर फिर कुछ और पाने को नहीं रह जाता है।" क्या मेरा ही उत्तर आपकी अंतरात्माओं में भी नहीं उठता है !

यह मैं आपसे ही नहीं पूछ रहा हूं। और भी हजारों लोगों से पूछता हूं और पाता हूं कि सभी मानव-हृदय समान हैं और उनकी आत्यंतिक चाह भी समान ही है।

आत्मा आनंद चाहती है, पूर्ण आनंद, क्योंकि तभी सभी चाहों का विश्राम आ सकता है। जहां चाह है, वहां दुख है, क्योंकि वहां अभाव है।

आत्मा सब अभावों का अभाव चाहती है। अभाव का पूर्ण अभाव ही आनंद है। और वही स्वतंत्रता भी है, मुक्ति भी, क्योंकि जहां कोई भी अभाव है वहीं बंधन है, सीमा है और परतंत्रता है। अभाव जहां नहीं है, वहीं परममुक्ति में प्रवेश है।

आनंद मोक्ष है और मुक्ति आनंद है। और निश्चय ही जो परम आकांक्षा है, वह बीज रूप में प्रत्येक में प्रसुप्त होनी ही चाहिए। क्योंकि, जिस बीज में वृक्ष न छिपा हो, उसमें अंकुर भी नहीं आ सकता है। हमारी जो चरम कामना है, वही हमारा आत्यंतिक स्वरूप भी है। क्योंकि स्वरूप ही अपने पूर्ण विकास में आनंद और स्वतंत्रता में परिणत हो सकता है। स्वरूप ही सत्य है और उसकी पूर्ण उपलब्धि ही संतोष बनती है।

स्वरूप की संपदा को जो नहीं खोजता है, वह विपदाओं को ही संपदाएं समझता रहता है। निश्चय ही बाहर की कोई भी उपलब्धि अभावों का अभाव नहीं ला सकती है क्योंकि बाहर की कोई भी संपत्ति भीतर के अभाव को कैसे भर सकेगी ? अभाव आंतरिक है, तो बाहर की किसी भी विजय से उसका भराव नहीं होता है। इसलिए बाहर सब पाकर भी कुछ भी पाया-सा प्रतीत नहीं होता है और बाहर सब होकर भी व्यक्ति भीतर रिक्त ही बना रहता है।

बुद्ध ने कहा, है "तृष्णा दुष्पूर है।"

कैसा आश्चर्य है कि चाहे हम कुछ भी पा लें फिर भी जो पाने को शेष प्रतीत होता है, वह उतना ही रहता है जितना कि पाने के पूर्व था। इसलिए ही सम्राटों और भिखारियों का अभाव समान ही होता है। उस तल पर उनमें कोई भी भेदनहीं है।

फिर, बाह्य संपत्ति की दिशा में जो मिला हुआ भी मालूम होता है, उसकी भी कोई सुरक्षा नहीं है, क्योंकि किसी भी क्षण वह छिन सकता या नष्ट हो सकता है। अंततः मृत्यु तो उसे छीन ही लेती है। और जो छीना जा सकता है, उसे हमारे अंतर्हृदय कभी भी अपना न मान पाते हों तो आश्चर्य ही क्या ? इसलिए ही संपत्ति सुरक्षा नहीं देती है। हालांकि हम उसे सुरक्षा के लिए ही खोजते हैं ! उल्टे हमें ही उसकी सुरक्षा करनी होती है !

यह ठीक से समझ लें कि बाह्य संपत्ति, सुविधाओं और शक्तियों से न अभाव मिटता है, न असुरक्षा मिटती है, न भय मिटता है। उनके मिथ्या आश्वासन में ज्यादा-से-ज्यादा व्यक्ति उन्हें भूला भर रह सकता है। इसलिए ही संपत्ति को मद कहा है। उसकी मादकता में जीवन की वास्तविक स्थिति के दर्शन नहीं हो पाते हैं। और अभाव का इस भांति विस्मरण अभाव से भी बुरा है क्योंकि उसके कारण अभाव को मिटाने की वास्तविक दिशा में दृष्टि नहीं उठ पाती है।

जीवन में जो अभाव है, वह किसी वस्तु, शक्ति या संपदा के न होने के कारण नहीं है, क्योंकि उस सबके मिल जाने पर भी उसे मिटते नहीं देखा जाता है, जिनके पास सब कुछ है, क्या उनकी दरिद्रता से आप परिचित नहीं हैं ? आपके पास जो कुछ है क्या उससे जरा भी आपकी दरिद्रता और दीनता मिटी है ?

मित्र, संपत्ति में और संपत्ति के होने के भ्रम में बहुत भेद है। बाहर की संपत्ति, शक्ति, सुरक्षा सभी उस वास्तविक संपत्ति की छायायें भर हैं जो कि भीतर है।

अभावों का मूल कारण बाहर की किसी उपलब्धि का होना नहीं, वरन् स्वयं की दृष्टि का बाहर होना है। इसीलिए जो अभाव कुछ भी पाकर नहीं मिटते हैं, वे ही दृष्टि के भीतर मुड़ने पर पाये ही नहीं जाते हैं।

आत्मा का स्वरूप ही आनंद है। वह उसका कोई

गुण नहीं, वरन् उसका स्वरूप ही है। आत्मा का आनंद से कोई संबंध नहीं है, वस्तुतः आत्मा ही आनंद है। वे दोनों एक ही सत्य के नाम हैं। सत्ता की दृष्टि से जो आत्मा है, अनुभूति की दृष्टि से वही आनंद है।

लेकिन उस आनंद को आत्मा मत समझ लेना जिसे साधारणतः 'आनंद' कहा जाता है! वह 'आनंद' आनंद नहीं है, क्योंकि आनंद के मिलते ही फिर आनंद की सब खोज बंद हो जाती है। जिसके मिलने से खोज और बढ़ती है, जिसके पाने से तृष्णा और प्रबल होती है, जिसे पाकर जिसके खोने का भय पीड़ित करता है, जानना कि वह आनंद का मिथ्या आभास है, आनंद नहीं। निश्चय ही वह जल, जल नहीं है जिसे पीने से प्यास और बढ़ जाती हो! क्राइस्ट का वचन है—'आओ, मैं उस कुएं का पानी तुम्हें दूं, जिसे पीने से प्यास सदा को मिट जाती है।'

हम सुख को ही आनंद समझ लेते हैं, जबकि सुख आनंद का आभास मात्र है, छाया और परछाई है। इस आभास और इस भ्रम में ही अधिक लोग जीवन को गंवा देते हैं और अंततः अतृप्ति और असंतोष के और कुछ भी उन्हें हाथ नहीं लगता है। निश्चय ही यदि कोई मनुष्य झील के पानी में चांद के प्रतिबिम्ब को देख उसे खोजने निकल पड़े तो अंततः वह क्या पा सकेगा? वस्तुतः तो उसकी खोज उसे जितना ज्यादा झील की गहराई में डुबोयेगी उतना ही ज्यादा वह वास्तविक चांद से दूर निकलता जायेगा! सुख की खोज में ऐसे ही व्यक्ति आनंद से दूर निकल जाता है। सुख को खोजते-खोजते जो मिलता है, वह सुख नहीं, दुख ही होता है। क्या जो मैं कह रहा हूं उसकी सच्चाई आपको दिखाई नहीं पड़ती है? क्या आपका स्वयं का जीवन-अनुभव इस सत्य की गवाही नहीं है कि सुख की खोज अंततः दुख के तट पर ले आती है? यही स्वाभाविक भी है क्योंकि कोई भी परछाई या प्रतिबिम्ब केवल अपने बाह्य रूप में ही मूल के समान होता है, वस्तुतः नहीं। वस्तुतः तो जो उसमें दिखाई पड़ता है, उससे बिल्कुल भिन्न ही उसमें पाया जाता है। प्रत्येक सुख आनंद का आश्वासन और आकर्षण देता है क्योंकि वह आनंद की छाया है। लेकिन उसके पीछे जाने पर कुछ भी नहीं मिलता है, सिवाय असफलता, विषाद और दुख के। क्योंकि आपकी छाया को पकड़कर भी मैं आपको कैसे पा सकता हूं? और फिर यदि आपकी छाया को पकड़ भी लूं तो भी मेरी मुट्ठी में क्या कुछ हो सकता है?

यह भी स्मरण दिला दूं कि प्रतिबिम्ब सदा ही विरोधी दिशा में बनते हैं। मैं एक दपण के सामने खड़ा हो जाऊं तो दर्पण में जहां मैं दिखाई पड़ रहा हूं वह ठीक उस जगह से विपरीत है जहां कि मैं हूं! ऐसा ही सुख भी है। वह अपने में मूलतः दुख है क्योंकि वह आनंद का प्रतिबिम्ब है। आनंद तो भीतर है। इसीलिए सुख बाहर मालूम होता है! आनंद आनंद है, इसीलिए सुख वस्तुतः दुख है।

मैं जो कह रहा हूं उसे, किसी भी सुख का पीछा करो और जान लो, प्रत्येक सुख अनिवार्यतः अंत में दुख में परिणत हो जाता है। और जो अंत में जैसा है, वह वस्तुतः आरंभ में ही वैसा होता है। हमारे पास आंखें गहरी नहीं होती हैं, इसीलिए जिसके दर्शन प्रारंभ में होने थे, उनके दर्शन अंत में हो पाते हैं। यह असंभव है कि जो अंत में प्रगट हो, वह आरंभ से ही उपस्थित न रहा हो। अंत तो आरंभ का ही विकास है। आरंभ में जो अप्रगट था, वही अंत में प्रगट हो जाता है। पर न केवल हमारी आंखें उथला देखती हैं वरन् अधिकांशतः तो वे देखती ही नहीं हैं। क्योंकि, हम अक्सर उन्हीं रास्तों पर बार-बार चले जाते हैं, जिनपर बहुत बार पूर्व में जाकर भी दुख, पीड़ा और अवसाद को झेल चुके होते हैं! जहां दुख के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं पाया, उसी ओर फिर-फिर जाते हैं। क्यों? क्योंकि शायद उसके अतिरिक्त और कोई मार्ग हमें दिखाई ही नहीं पड़ता है। इसलिए ही मैंने कहा कि हम न केवल धुंधला और उथला देखते हैं, हम देखते ही नहीं हैं। बहुत कम लोग हैं जो जीवन में आंखों का उपयोग करते हों! आंखें सबके पास हैं लेकिन आंखों के होते हुए भी अधिकांश अंधे बने रहते हैं। जिसने स्वयं के भीतर नहीं देखा है, उसने अभी अपनी आंखों का उपयोग ही नहीं किया है। केवल वही कह सकता है कि 'मैं आंख वाला हूं,' जिसने स्वयं को देखा है क्योंकि जो स्वयं को ही नहीं देखता है, वह और क्या देखेगा? मित्र, आंखों की शुरूआत स्वयं को देखने से होती है और जो स्वयं को देखता है, दूसरे देखते हैं कि उसके चरण सुख की दिशा में नहीं जा रहे हैं! वह व्यक्ति आनंद की दिशा में चलना प्रारंभ कर देता है। सुख की दिशा स्वयं से संसार की ओर है। आनंद की दिशा संसार से स्वयं की ओर है।

कसौटी पर

सर्व सेवा संघ, राजघाट, वाराणसी के प्रकाशन

इस समय हमारे देश में भूदान-ग्रामदान-आंदोलन काफी तीव्रता से चल रहा है। सारे देश में लगभग १३ हजार गांवों ने भूमि पर से व्यक्तिगत स्वामित्व को समाप्त करके एक नई समाज-रचना की ओर कदम बढ़ाया है। लोकतांत्रिक शांतिपूर्ण समाजवादी समाज-रचना का ही नाम 'सर्वोदय' है और यह समाजवादी अथवा सर्वोदय समाज गैर सरकारी तौर पर जनता की अपनी शक्ति के सहारे विकसित हो रहा है। ग्रामदान-आंदोलन के इस विचार को समझानेवाली दो पुस्तकें 'सुलभ ग्रामदान' तथा 'गांव का विद्रोह' पहले ही निकल चुकी हैं। हाल ही में 'सर्व सेवा संघ' ने ग्रामदान से संबंधित चार पुस्तकें और प्रकाशित की हैं।

१. ग्रामदान-प्रश्नोत्तरी २. जमाने की चुनौती और ग्रामदान ३. तमिलनाड के ग्रामदान और ४. आंध्र के ग्रामदान।

हमारा देश सन् १९४७ में आजाद हुआ। स्व-शासन आया, पर 'स्व-शासन' से 'स्व-राज्य' पा लिया, ऐसा नहीं कहा जा सकता। गांधीजी ने 'स्व-राज्य' का जो सपना देखा था, वह उन्होंने अपनी पुस्तक 'हिन्द स्वराज्य' में प्रस्तुत किया है। वास्तविक 'स्व-राज्य' के लिए हमें अभी भारी प्रयत्न करना है। उसके लिए आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक क्रांति अनिवार्य है। ग्रामदान उसी क्रांति की यात्रा का पहला कदम है।

ग्रामदान के विचार को सरल ढंग से समझाने के लिए विनोबाजी द्वारा लिखित 'ग्रामदान-प्रश्नोत्तरी' अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसमें विनोबा ने ग्रामदान के संबंध में उठने वाले ४३ ऐसे प्रश्नों का उत्तर दिया है, जिन्हें लोग अक्सर पूछा करते हैं। ग्रामदान का स्वरूप और उद्देश्य, ग्रामदान के बाद का निर्माण-कार्य, ग्राम-सभा का संचालन, ग्रामदान में विवाह, कर्ज एवं अन्य सामाजिक परम्पराओं में प्रगतिशील व्यवस्था आदि प्रश्नों पर विनोबा के विचार पठनीय और मननीय हैं। पृष्ठ ५६, मूल्य ५० पैसे।

'जमाने की चुनौती और ग्रामदान' पुस्तक में श्री धीरेन्द्र मजूमदार ने सुरक्षा, राष्ट्रीय विकास और लोकशाही को मजबूत रखने के लिए ग्रामदान कैसे सहायक हो सकता है, यह बड़े सुन्दर ढंग से समझाया है। पुस्तक आकार में छोटी है, पर उसकी प्रेरणा बड़ी ही व्यापक है। हमारे देश का बुद्धिजीवी वर्ग ग्रामदान आंदोलन की उपेक्षा नहीं कर सकता। यह पुस्तक बुद्धिजीवियों के लिए विशेष रूप से उपयोगी है। पृष्ठ ३२, मूल्य २५ पैसे।

'तमिलनाद के ग्रामदान' और **'आंध्र के ग्रामदान'** पुस्तकों में श्री वसंत व्यास ने बहुत-सी जिज्ञासाओं का समाधान किया है। अक्सर लोग कहते हैं कि ग्रामदान तो प्राप्त कर लिया जाता है, पर बाद में उस गांव को उसी दशा में छोड़ दिया जाता है। वहां कुछ होता तो है नहीं। ऐसे ग्रामदानों से फायदा ही क्या? कुछ लोग यह भी कहते हैं कि देश में इतने ग्रामदान हुए हैं। क्या कहीं कोई ऐसा संगठन बना है, जिनको नमूने के तौर पर देखा जा सके? सरकारी नेता और अफसर कहते हैं कि ग्रामदान से क्या होनेवाला है! हमारे विकास-खण्डों में जो काम हो रहा है, वह बड़े महत्व का है। विनोबाजी ने हजारों गांवों का ग्रामदान कराया, क्या वहां किसी परिवर्तन अथवा प्रगति के दर्शन होते हैं?

इस तरह के अनेक प्रश्नों का उत्तर गुजरात के निष्ठावान युवक और सर्वोदय आंदोलन के भ्रमण-शील कार्यकर्ता श्री व्यास की इन दो पुस्तकों में मिलेगा। ग्रामदान के बाद उन गांवों में क्या हुआ है, इसकी तलाश में घूमनेवाले इस नौजवान ने बड़ी सरल एवं सुबोध भाषा में जो झांकी उपस्थित की है, वह समाधान-कारक तो है ही, स्वयं इस

क्रांति की यात्रा के पड़ावों को देखने की प्रेरणा देने वाली भी है। पुस्तकों का मूल्य क्रमशः दो रुपया और एक रुपया है।

ये चारों ही प्रकाशन रचनात्मक क्षेत्र में काम करने वालों को तो अवश्य पढ़ने चाहिए, यों इन्हें जो भी पढ़ेगा, उसे लाभ ही होगा।

दिल्ली-पेकिंग—लेखक : जवाहिरलाल जैन; पृष्ठ : ९६; मूल्य १ रु०

पाठकों को स्मरण होगा कि १ मार्च १९६३ से एक यात्रीदल भारत और चीन के बीच मैत्री स्थापित करने की भावना से प्रेरित होकर गांधीजी की समाधि से पैदल रवाना हुआ था। इस दल में भारत के ही नहीं, अन्य देशों के भी कुछ शान्तिवादी थे। यद्यपि इस यात्री-दल को भारत की सीमा से बाहर, दूसरे देशों में जाने की अनुमति नहीं मिली, तथापि इस यात्री-दल ने वास्तव में बड़े महत्त्व का कार्य किया। रास्ते भर उसके सदस्य प्रेम और शान्ति का संदेश देते गये।

प्रस्तुत पुस्तक के लेखक इस यात्री-दल के एक सदस्य थे। अतः उन्होंने जो विवरण प्रस्तुत किये हैं, वे बड़े ही रोचक हैं और ऐसी यात्राओं के पावन उद्देश्य पर सुन्दर ढंग से प्रकाश डालते हैं।

द्वीपों के पार—लेखक : सतीश कुमार; पृष्ठ : १११; मूल्य १ रु०

लेखक ने अपने एक साथी के साथ दिल्ली से मास्को तथा वाशिंगटन तक की आठ हजार मील की पैदल यात्रा की थी। इस यात्रा में उन्होंने पंद्रह शान्तिवादियों, राजनीतिज्ञों, साहित्यकारों, वैज्ञानिकों तथा दार्शनिकों से भेंट की। इन्हीं भेंटों के विवरण इस पुस्तक में संगृहीत किये गए हैं। मार्टिन लूथर किंग, मस्ते, पर्ल बक, ऊ थांट, रिचर्ड ग्रेग, बर्ट्रेण्ड रसेल, माइकेल स्कॉट, म्यूरियल लेस्टर, लार्ड एटली आदि के शब्द-चित्र बड़े भावपूर्ण हैं। साथ ही उनके साथ की चर्चाएं अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं।

गांव का विद्रोह—लेखक : राममूर्त्ति; पृष्ठ : ११४; मूल्य १रु०

प्रस्तुत पुस्तक के लेखक 'नई तालीम' के सम्पादक और 'ग्राम-दान-आंदोलन' के चिंतक हैं। इस पुस्तक में उन्होंने बताया है कि ग्राम-दान के बाद "अन्याय, अभाव और अज्ञान से कैसे मुक्ति मिलेगी।" उन्होंने यह भी बताया कि ग्राम-स्वराज्य की उपलब्धि ग्राम-दान के द्वारा ही हो सकती है।

भारत गांवों का देश है। आजादी का वास्तविक ध्येय ग्राम-स्वराज्य की स्थापना से ही सिद्ध हो सकता है। यह पुस्तक उसी दिशा की प्रेरणा देती है।

—सव्यसाची

क्या व कैसे ?

श्रद्धांजलि

इस महीने की स्मृतियों के साथ ऐसे अनेक स्मरणीय नाम जुड़े हुए हैं, जिनका अभाव हमें आज भी विचलित कर देता है। जिनसे विछोह हुआ, उनमें सर्वश्री मोतीलाल नेहरू (६ फरवरी), जमनालाल बजाज (११ फरवरी), गोपालकृष्ण गोखले (१९ फरवरी), कस्तूरबा (२२ फरवरी), कमला नेहरू (२८ फरवरी) और राजेन्द्रप्रसाद (२८ फरवरी) के नाम विशेष रूप से आंखों के आगे आ जाते हैं। स्वतंत्र भारत की नींव की ये सब आधार-शिलाएं हैं। पं० मोतीलाल नेहरू, जिनका जीवन वैभव का अनुपम प्रतीक था, त्याग के मार्ग पर चले। उन्होंने न केवल भारतीय स्वाधीनता की बलिवेदी पर अपने को अर्पित किया, अपने सारे परिवार को ही निछावर कर दिया। यदि उन्होंने कुछ भी न किया होता और केवल जवाहरलाल नेहरू को ही दिया होता तो भी वह इतिहास की एक अमर विभूति के रूप में याद किये जाते। सेठ जमनालाल बजाज ने न केवल आर्थिक सहायता देकर गांधीजी की विधायक प्रवृत्तियों को बल प्रदान किया, अपितु स्वयं भी राजनीति को समृद्ध किया। श्री गोपालकृष्ण गोखले की महानता बेजोड़ थी। गांधीजी से पहले वह राजनीति में आये और आजादी के लिए ऐसी भूमिका बना गये, जिसने आगे चलकर भारत को परतंत्रता की बेड़ियों से मुक्त कराने में बड़ा भारी योग दिया। कस्तूरबा की सेवाओं को कौन नहीं जानता। गांधीजी की सहधर्मिणी के नाते वह जितनी बड़ी थीं, उससे कहीं ज्यादा बड़ी वह इसलिए थीं कि उन्होंने अपना समूचा जीवन सेवा के लिए समर्पित कर दिया। श्रीमती कमला नेहरू ने अपने जीवन के कम ही वसंत देखे, पर जितने वर्ष जीईं, अपनी सामर्थ्य से अधिक सेवा में लीन रहीं। देशरत्न राजेन्द्रबाबू के तो कहने ही क्या! आजादी की लड़ाई की पहली पंक्ति में रहे और देश के स्वतंत्र होने पर उसके नव-निर्माण में सक्रिय सहायता दी।

इन सब विभूतियों ने जो स्वप्न देखे, वे अभी पूरे नहीं हुए हैं और यही कारण है कि हमें इनका अभाव बेहद खटकता है।

हम इन सब विभूतियों को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि वह हमें देश-सेवा के कठिन मार्ग पर दृढ़तापूर्वक चलने की क्षमता प्रदान करें।

अन्न-समस्या के लिए संगठित प्रयास

देश में अन्न का संकट वैसे काफी दिनों से चल रहा है, लेकिन इधर अचानक अकाल की-सी स्थिति उत्पन्न हो गई और अमरीका ने इस आपत्काल में पर्याप्त सहायता कर दी। संकट टल गया, यह संतोष की बात है, लेकिन इसके साथ ही एक प्रश्न भी खड़ा हो जाता है। आखिर हमलोग कबतक इस तरह अपना काम चलाते रहेंगे? लगभग ३ प्रतिशत से अन्न की कमी का आरंभ हुआ था और अब यह कमी कई गुनी बढ़ गई है। एक कृषि-प्रधान देश के लिए यह हालत किसी भी तरह अच्छी नहीं कही जा सकती। हमारा परावलम्बन बराबर बढ़ता जा रहा है। सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि अन्न को लेकर यदि हम सोचते हैं तो मुख्य रूप से बाहर से व्यवस्था करने की। यदि हमने स्वावलम्बन की बात पहले से सोची होती तो मौजूदा परेशानी का सामना हर्गिज न करना पड़ता।

हमारे दिवंगत प्रधान मंत्री श्री लालबहादुर शास्त्री ने एक नारा दिया—'जय जवान, जय किसान!' उससे पहले भी 'अधिक अन्न उपजाओ' का नारा दिया गया था। लाखों-करोड़ों रुपया 'अधिक अन्न उपजाओ' के नारे को देशव्यापी बनाने पर खर्च हुआ, कुछ मंत्रियों तथा उच्च अधिकारियों ने अपनी कोठियों की 'लॉनों' पर ट्रैक्टर या हल चलवाये, लेकिन परिणाम क्या निकला? कुछ नहीं, उल्टे अभाव और बढ़ा।

सच बात यह है कि नारों से कोई सवाल हल नहीं होता। अन्न की समस्या तब सुलझेगी जबकि उत्पादन बढ़ेगा और

उत्पादन तब बढ़ेगा, जबकि किसान उस दिशा में तत्पर होगा ।

आज गांवों के लिए शहरों में योजनाएं बनती हैं, और उन्हें बनाते हैं वे लोग, जिन्हें गांवों का कोई अनुभव नहीं है। इसमें कोई संदेह नहीं कि योजनाएं सरकारी दफ्तरों में ही बनेंगी, लेकिन यह भी उतना ही निर्विवाद है कि वे सफल तब होंगी, जबकि उनके पीछे गांवों की वास्तविक दृष्टि और साधनों का सही अंदाज रहेगा। परती जमीन का उपयोग हो, अच्छा खाद और बीज सुलभ हों, सिंचाई का समुचित प्रबंध हो तो कोई कारण नहीं कि अन्न का उत्पादन बढ़े नहीं। डेनमार्क-जैसे छोटे देश ने अपने यहां के रेगिस्तान के एक बहुत बड़े भाग को लहलहाते खेतों के रूप में परिणत कर दिया। कोई वजह नहीं कि हम भी अपने यहां की बेकार पड़ी भूमि को काम के योग्य न बना सकें।

सबसे बड़ा दुर्भाग्य यह है कि हमारे कोटि-कोटि देशवासी यह मान बैठे हैं कि उन्हें अन्न दिलवाने की जिम्मेदारी सरकार की है। इसलिए वह इस मामले में सरकार का मुंह ताकते हैं। यदि सैंतालीस करोड़ व्यक्ति यह भावना रखें कि बाहर से आनेवाले अन्न को वे प्रोत्साहन नहीं देंगे तो यह समस्या अपने आप सुलझ जायगी।

इस समस्या को जटिल बनाने में एक और वर्ग का हाथ है और वह वर्ग है छोटे-बड़े व्यापारियों का। राशन के चालू होने से पहले बाजार में काफ़ी गेहूं था। राशन के आते ही वह गेहूं गायब हो गया। कहां गया ? कोई नहीं जानता। सरकार हैरान है, जनता परेशान है।

जरूरी है कि सब तत्व मिलकर इस मसले को सुलझाने में मदद करें। सरकार, जनता और व्यापारी, सभी अपनी दृष्टि बदलें और पारस्परिक सहयोग से काम करें तब यह नाव पार लगेगी। समय का और युग का और उनसे भी बढ़कर राष्ट्र के स्वाभिमान का तकाजा है कि अब इस अभियान में संगठित प्रयास हो।

—य०

इन्दिराजी सफल हों

जब पंडितजी गये और शास्त्रीजी आये तब भी लोगों को उनकी सफलता के बारे में तरह-तरह की शंकाएं थीं, परंतु शास्त्रीजी के १८ महीने के कार्यकाल ने सिद्ध कर दिया कि वे सब निर्मूल थीं। इतना ही नहीं, सब मानते हैं कि उन्होंने पंडितजी की कीर्ति पर चार चांद लगा दिये। इसी तरह अब भी, इन्दिराजी के समय भी, उससे अधिक शंकाएं और चिन्ताएं लोगों के मन में हैं। शास्त्रीजी तो फिर भी एक-मत से चुनकर आये थे, इन्दिराजी लड़कर आई हैं। यह भी इन्दिराजी के पक्ष में घाटे की बात कही जाती है। इन्दिराजी के आगे-पीछे दो लौह-पुरुष हैं और दोनों में बनती नहीं है, एक श्री कामराज, दूसरे श्री मोरारजी-भाई। इन्दिराजी की सफलता इस बात में हमें मालूम होती है कि वे दोनों का सहयोग किस प्रकार ले सकती हैं। कामराजजी ने अभी तो सहयोग ही नहीं दिया, खुद इन्दिराजी को आगे लाये हैं। पर आगे जाकर क्या होगा, यह देखना है। मोरारजीभाई ने कहा है कि सहयोग दूंगा, पर आत्म-सम्मान के साथ। आत्म-सम्मान खोकर तो मनुष्य कहीं कुछ भी नहीं कर सकता, पर आत्म-सम्मान को सहयोग की शर्त नहीं बनाना चाहिए। यह इन्दिराजी के देखने की बात है कि मोरारजीभाई के सम्मान की रक्षा किस प्रकार करके उनका सहयोग ले लें। नन्दाजी के और मोरारजीभाई के भी तनाव की बड़ी चर्चा रहती थी, परन्तु नन्दाजी ने उन्हें एक बड़े कमीशन का अध्यक्ष बनाकर सहयोग ले ही लिया न ? यहां तो मोरारजीभाई का झगड़ा इन्दिराजी से नहीं, कामराजजी से बताया जाता है। ऐसी दशा में इन्दिराजी कुछ दृढ़ता से और मोरारजीभाई कुछ सौजन्य से काम लें तो यह समस्या इतनी कठिन नहीं रह जायेगी। देखना यह है कि इन्दिराजी इसमें कामराजजी की कितनी सहमति और किस खूबी से प्राप्त कर सकती हैं।

अब रही बात समस्याओं की, संधि-वार्ताओं की। बड़ी समस्याएं तीन हैं। १—पाकिस्तान या ताशकंद समझौता और चीन की धमकियां, २—खाद्यान्न समस्या ३—भ्रष्टाचार, जिनसे उन्हें जूझना है। ताशकंद-समझौता उन्हें आसान पड़ जायगा। शास्त्रीजी ने अपने प्राण ताशकंद में गंवाकर भगवान की मुहर उस पर लगवा दी है। फिर भी इसमें कुशलता और दृढ़ता दोनों की जरूरत होगी।

चीन की समस्या भी आगे-पीछे इन्दिराजी को हाथ में लेनी होगी। पड़ोसियों से संबंध अच्छा रखने, शांतिपूर्वक उनके साथ रहने, आदि के बारे में विदेशी शक्तियों की

प्रेरणा की और दबाव की आवश्यकता क्यों होनी चाहिए ? जो बात सही और अच्छी है उसमें पहल हमें ही क्यों नहीं करनी चाहिए ? ताशकंद में कुछ खोया तो हमने, कुछ दबे तो हम—समझौते में ऐसा करना जरूरी हो जाता है, और श्रेय मिला कोसीजिन—रूस को—यह श्रेय चीन के बारे में हमें ही क्यों न लेना चाहिए ? इसमें तो बाल के बराबर ही बात अड़ रही है। सही बात पर अड़ने से प्रतिष्ठा बढ़ती है, गलत या थोथी बात पर अड़ने से प्रतिष्ठा और शक्ति भी घटती है। जो हो, हमारे कहने का मतलब यह है कि इसमें भी इन्दिराजी को आगे-पीछे पड़ना ही पड़ेगा।

इन दोनों से बड़ी और जटिल समस्या है खाद्यान्न की। हमारी राय में इसीपर उनकी सफलता बहुत अधिक निर्भर करेगी।

भ्रष्टाचार की समस्या भी उतनी ही विकट है। नन्दाजी ने बुनियाद डाल दी है, ठीक काम हुआ भी है, परन्तु बहुत कुछ करना है। सरकारी तौर पर भी बहुत किया जा सकता है। गैर सरकारी तौर पर भी किये बिना सरकारी तौर-तरीके बहुत आगे नहीं ले जा सकते। इसके लिए संयुक्त सदाचार समिति, जिसमें कई भारतीय प्रतिष्ठित संस्थाओं और संगठनों के प्रतिनिधि हैं, बनाई गई है। उसे इन्दिराजी की ओर से सहयोग और बढ़ावा मिलना चाहिए।

शास्त्रीजी ने विरोधी पक्षों का भी अच्छा सहयोग प्राप्त कर लिया था। खुद पंडितजी भी इसमें इतने सफल नहीं हो पाये थे। इन्दिराजी की परीक्षा इसमें भी होनेवाली है। यह परम्परा पुष्ट होनी चाहिए कि तमाम अखिल भारतीय और मानवीय प्रश्नों पर सब दलों का सहयोग-परामर्श प्राप्त होता रहे। विभिन्न दलों का महत्व चुनाव के समय और समस्याओं पर अपने-अपने दृष्टिकोणों से प्रकाश डालने या आलोचना करने के समय है। निर्णय हो जाने पर, उसे सफल बनाने में सभी दलों का सहयोग वांछनीय है। यही जनतंत्र का हार्द है। इसमें शास्त्रीजी की परम्परा पर इन्दिराजी को चलना चाहिए।

अनुभव और सम्पर्क की कमी इन्दिराजी के पास नहीं है। उन्हें बापू और जवाहरलालजी की शिक्षाएं मिली हैं। शास्त्रीजी ने मार्ग बहुत-कुछ सरल बना दिया है। उनके स्वभाव में दृढ़ता और मधुरता दोनों हैं। कांग्रेस के अध्यक्ष-पद की जिम्मेदारी वे एक बार ले चुकी हैं। इन सब अनुकूलताओं को देखते हुए उन्हें इस महान् जिम्मेदारी में सफल होना ही चाहिए। हमारी भी भगवान् से प्रार्थना है कि वे सफल हों।

चारित्र्य आवश्यक

श्रीमती इन्दिराजी का चुनाव बहुमत से हुआ। एकमत से होता तो बहुत बढ़िया बात रहती। उन्हें सारे दल का समर्थन प्राप्त होने का विश्वास सदैव रहता। अब परम्परा के कारण, अनुशासन की वजह से, अल्पमत का सहयोग उन्हें मिलेगा। फिर भी प्रजातन्त्र की पद्धति है बहुमत को मान्य करने की। इस दृष्टि से ठीक ही है, किन्तु इसमें अल्पमत वालों को यह शिकायत भी रही कि दबाव से बहुमत बनाया गया। कुछ मुख्य मंत्रियों ने संगठित होकर अपने प्रभाव का उपयोग किया। कुछ को टिकट न देने की धमकियां भी दी गई, ऐसा कहा जाता है। ये सब बातें अब तक राज्यों के चुनाव में तो होती रही हैं—हालांकि अवांछनीय हैं; परन्तु केन्द्र अबतक अछूता रहा। अब यह बीमारी केन्द्र में भी यदि घुसने लगी है तो बहुत चिन्ता से सोचने की बात है। प्रजातंत्र की सफलता हमारे उच्च चारित्र्य पर निर्भर करती है। उच्च चारित्र्य से ही हम जनता में प्रतिष्ठा और सम्मान पा सकते हैं और वही हमारा सच्चा बल है। येन-केन-प्रकारेण 'वोट' प्राप्त भी कर लिये तो वे एक हद से आगे हमें जनता के हृदय में प्रतिष्ठित नहीं कर सकते। अतः कांग्रेस उच्च कमान को इस विषय में बहुत सतर्क और सावधान रहने की जरूरत है और यदि इन्दिराजी के चुनाव में ऐसा-कुछ हुआ हो तो उसका उचित परिमार्जन होकर आगे के लिए ऐसा न होने देने का दृढ़ संकल्प होना चाहिए।

कांग्रेस संगठन की शिथिलता

राजस्थान के मुख्य मंत्री कांग्रेस के प्रधान मंत्री (सचिव) बनकर दिल्ली आ रहे हैं। इससे निःस्संदेह उनकी शक्ति, अनुभव, योग्यता का भी विकास होगा और संगठन को भी बल मिलेगा। अलबत्ते राजस्थान में उनकी कमी बहुत खटकेगी; परंतु हमें विश्वास रखना चाहिए कि वहांके नेता स्थिति को खूबी के साथ संभाल लेंगे, और फिर सुखाड़ियाजी का सहयोग तो उन्हें हर अवस्था में मिलता ही रहेगा।

सुखाड़ियाजी के लिए यह काम नया नहीं होगा; परन्तु जटिल अवश्य है, खासकर चुनाव का वर्ष और कांग्रेस-संगठन के मामलों पर शिथिल होने के कारण। परंतु हमें विश्वास होता है कि वे दिल्ली के नेताओं के सहयोग से काम कर ले जायंगे।

प्रशासन और कांग्रेस-संगठन में भी नैतिक मूल्यों की अवहेलना बढ़ती जाती है। इसपर सुखाड़ियाजी का ध्यान होगा ही। राष्ट्र का चारित्र्य यदि गिरता जाता है तो उत्तम-से-उत्तम विधान और रीति-नीति भी कामयाब नहीं हो सकती। उन्हें कड़ाई से इस प्रवृत्ति पर रोक लगानी होगी और ऐसी रीति-नीति अपनानी होगी, जिससे इनको बढ़ावा न मिले। व्यक्तियों के चुनाव में हमें पहला नंबर ईमानदारी को, दूसरा योग्यता को, तीसरा संगठन-शक्ति को देना चाहिए। तीनों जिसमें हों उसे सर्वप्रथम, प्रथम दो हों, उनको द्वितीय नंबर मिलना चाहिए। ईमानदारी सब में अनिवार्य शर्त्त रखनी चाहिए।

बहुत कम ऐसे व्यक्ति होते हैं जो अपने से बढ़कर व्यक्तियों का संग्रह अपने आस-पास करने में उत्साह रखते हों। स्व० श्री जमनालालजी में यह अद्भुत गुण और शक्ति थी। भगवान् करें, हम, इस नई जिम्मेदारी को लेते समय, सुखाड़ियाजी से जमनालालजी का उदाहरण फिर से पेश करने की आशा रखें। हम हृदय से उनकी सफलता चाहते हैं।

पुनश्च——यह टिप्पणी लिखने के बाद निश्चय हुआ है कि अगले आम चुनावों तक सुखाड़िया ही राजस्थान के मुख्यमंत्री रहेंगे।

श्री मोरारजी की हार

श्री मोरारजीभाई ने बड़े साहस और दृढ़ता के साथ अकेले हाथों प्रधान मंत्री पद के लिए श्रीमती इन्दिराजी का मुकाबला किया। यद्यपि हारे, तथापि १६९ मत प्राप्त कर लिये। नैतिक समर्थन की दृष्टि से इस हार का भी बड़ा मूल्य है। इस चुनाव में सिद्धांत और नीति का कोई प्रश्न नहीं था—न हो सकता था। दोनों कांग्रेसी नेता थे—रुचियां-स्वभाव, बाज-बाज बातों पर आग्रह में भेद हो सकता था; पर क्या इसके लिए चुनाव जरूरी था? क्या एकमत से इस महान् पद का निर्वाचन नहीं हो सकता था? हमारी राय में इसके लिए हार्दिक प्रयत्न नहीं हुआ और ऐसी छाप पड़ी, मानों यह द्वन्द्व श्री कामराज और मोरारजीभाई के बीच था। दूसरे लोग तो इधर-उधर सहकारी मात्र हो गये। कुछ-न-कुछ व्यक्तिगत तनाव ही इस चुनाव के मूल में है——ऐसी निश्चित छाप मन पर पड़ती है। यदि वह सही है तो चोटी के ऐसे नेताओं में ऐसी कमी का रहना देश के हित में सिद्ध नहीं हो सकता। साथियों और सहकर्मियों का भी फर्ज हो जाता है कि वे अपने नेताओं की कमियों को, अपने सहयोग से, बढ़ाने की जिम्मेदारी न लें।

अब श्रीमती इन्दिराजी का कर्त्तव्य स्पष्ट है कि वे ऐसी स्थितियां पैदा करें, जिनमें श्री मोरारजीभाई का अधिक-से-अधिक हार्दिक सहयोग प्राप्त हो। श्री मोरारजीभाई को उचित है कि वे हर तरह इन्दिराजी के हाथ मजबूत करें। इसमें गांधीजी का उदाहरण उन्हें अच्छी सहायता दे सकता है। जब गांधीजी देखते कि हवा मेरे माफिक नहीं है तो, जिनके माफिक होती, उन्हें काम करने देते और खुद सिमिट कर अपने अनगिनत कार्यों में लग जाते। वे विश्वास रखते थे कि इन्हें मेरे सहयोग की आवश्यकता होगी ही—और समय आने पर वे फिर पूरे बल और वेग के साथ आगे आ जाते। यह तो वास्तव में ही खुशी की बात है कि इस चुनाव के फलस्वरूप इन्दिराजी और मोरारजीभाई में कोई मन-मुटाव नहीं दिखाई देता, चुनाव के बीच भी दोनों में कोई कटुता नहीं दिखाई दी। अच्छा होता कि मोरारजीभाई सहयोग देने में 'आत्मसम्मान' की बजाय 'सिद्धांत और रीति-नीति के अनुकूल' जैसे शब्दों में अपनी शर्त्त रखते। कोई भी काम मनुष्य सम्मान को खोकर नहीं कर सकता।

सम्मान की रक्षा करना जितना हमारा कर्त्तव्य है उतना ही सहयोग लेनेवालों की भी जिम्मेदारी है। हर हार और जीत अपनी शिक्षा हमारे लिए छोड़ जाती है। यदि इसमें दोनों दूसरों की कमियां न देखकर, अपनी कमी और गलती की तरफ निगाह डाल सकें तो अच्छा हो। लोगों की आम राय यह मालूम होती है कि श्री कामराज और श्री मोरारजी दोनों अपने-अपने आग्रह में कुछ कमी कर सकें तो गंगा-जमना का अच्छा संगम हो सकता है। सिद्धांत का आग्रह तो आवश्यक है; परन्तु रुचियों का आग्रह, एक हद से आगे जाने पर दुराग्रह की गिनती में आ जाता है। हम तो भगवान

से यही प्रार्थना करते हैं कि जिस प्रकार मन में कोई कटुता नहीं है, उसी प्रकार व्यवहार में भी हमें परस्पर एकता और सहयोग के दर्शन हों।

पुनश्च—

यदि अपने मंत्रिमंडल में तत्काल मोरारजीभाई का सहयोग लेना इन्दिराजी के लिए कठिन हो तो, कम-से-कम उन्हें उन मूल्यों और कार्यक्रमों पर तो जोर देना ही चाहिए, जिन्हें मोरारजीभाई महत्वपूर्ण मानते हैं—जैसे प्रशासनिक कार्यों में शुद्धता से काम लेना, नशा-निषेध, खादी-ग्रामोद्योग, सादगी, आदि। इससे मोरारजीभाई और उनके सहयोगियों-साथियों को यह संतोष तो रहेगा कि चाहे वे स्वयं सत्ता में नहीं हैं, पर उनके मूल्यों को तो कार्यान्वित किया जा रहा है और यह भी कम बात न होगी।

—ह० उ०

दो और सपूत गये

श्री लालबहादुर शास्त्री का जिस दिन निधन हुआ, उसी दिन देश के एक और बड़े नेता काका न. वि. गाडगिल चले गये। हाल ही में माउण्ट ब्लैंक पर विमान-दुर्घटना में विज्ञानवेत्ता भाभा का निधन हो गया। काका गाडगिल की बहुमुखी सेवाओं को कौन नहीं जानता। उन्होंने राजनीति में अपना विशेष योग दिया। आजादी से पहले कई बार जेल गये और आजादी के बाद केन्द्र में मंत्री रहे। अनंतर पंजाब के राज्यपाल के पद की जिम्मेदारी उठाई। एक महान् राजनेता के साथ-साथ वह उच्चकोटि के साहित्यकार भी थे। उनकी कई पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। अपने अनुभवों को उन्होंने इतनी रोचक कहानियों का रूप दिया है कि पाठक उन्हें एक सांस में पढ़ जाते हैं।

श्री भाभा ने विज्ञान के क्षेत्र में जो कुछ दिया है, उसका बड़ा भारी मूल्य है। देश की आणविक प्रगति का श्रेय मुख्यतः उन्हींको है।

यह हमारा वास्तव में बड़ा दुर्भाग्य है कि इन वर्षों में बहुत-से महापुरुष उठ गये हैं और अब उठते जा रहे हैं। सबसे अधिक हैरानी की बात यह है कि उनका स्थान खाली रह जाता है। स्वतंत्र भारत के लिए यह स्थिति बहुत ही शोचनीय है।

हम इन दिवंगत सपूतों को श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं और आशा करते हैं कि इनके जीवन से हम भारतवासी देश-प्रेम और कर्त्तव्यपालन की प्रेरणा प्राप्त करेंगे।

कोई भी देश छोटा हो या बड़ा, यों ही नहीं बन जाता। उसके लिए नागरिकों का त्याग तथा बलिदान अपेक्षित होता है।

—य०

'मंडल' की ओर से

'मंडल' का अभिनव प्रकाशन

गांधी शत-संवत्सरी के उपलक्ष्य में जिस ग्रंथ के प्रकाशन की हमने घोषणा की थी, 'गांधी : व्यक्तित्व, विचार और प्रभाव' वह तैयार हो गया है। उसमें ६१२ पृष्ठ की सामग्री है, जो पांच खण्डों में विभाजित है। पहले खण्ड में अनेक भारतीय तथा विदेशी राजनेताओं, विद्वानों, चिन्तकों, समाज-सेवियों तथा रचनात्मक व्यक्तियों के गांधीजी-विषयक संस्मरण हैं। ये संस्मरण गांधीजी के व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालते हैं। रोचक इतने हैं कि बिना पूरे पढ़े छोड़ना असंभव है।

दूसरे खंड में गांधीजी के विचार हैं। इस खंड की सामग्री का आरंभ उस पहले पत्र से आरंभ होता है, जो गांधीजी ने बैरिस्टरी पढ़ने के लिए लंदन जाने पर अपने बड़े भाई को लिखा था। उसके बाद लगभग ढाई सौ पृष्ठों में सन् १९१५ तक के समय के चुने हुए पत्र, लेख, वक्तव्य आदि दिये गए हैं, जो गांधीजी के लगभग २५ वर्षों के जीवन के विकास पर प्रकाश डालते हैं। दक्षिण अफ्रीका के संघर्ष की कहानी भी एक प्रकार से इस खण्ड में आ जाती है।

तीसरे खण्ड में विभिन्न व्यक्तियों ने सारगर्भित लेखों में बताया है कि गांधीजी के विचारों, वृत्तियों तथा सिद्धांतों का विभिन्न क्षेत्रों में कितना गहरा असर हुआ। ये सारी रचनाएं बताती हैं कि गांधीजी के वे मूल सिद्धांत और आदर्श क्या थे, जिन्होंने अपने देश को ही नहीं, सारे संसार को प्रभावित किया।

चौथे खण्ड में गांधीजी के जन्म से लेकर सन् १९१५ में दक्षिण अफ्रीका से लौटने तक की प्रमुख घटनाओं की तालिका दी गई है। इस तालिका को देखकर लगभग पचास वर्ष का उनका जीवन एक साथ आंखों के सामने आ जाता है।

एक और खण्ड है चित्रों का, जो पहले खण्ड के बाद आता है। इस खण्ड में गांधीजी के प्रारंभिक जीवन से लेकर अंतिम समय तक के चुने हुए चित्र दिये गए हैं। इस चित्रावली में ऊपर एक बड़ा चित्र दिया गया है। वह चित्र जिस घटना से संबंधित है, उसी घटना से सम्बद्ध नीचे दो-तीन छोटे-छोटे चित्र दिये गए हैं।

इस प्रकार यह ग्रंथ अत्यन्त उपयोगीएवं संग्रहणीय बन गया है।

पहले संस्करण की अधिकांश प्रतियों के पेशगी आर्डर प्राप्त हो चुके हैं। २०) के मूल्य वाली पुस्तकें समाप्त हो गई हैं।

पाठकों से हमारा अनुरोध है कि वे अपनी २५) के मूल्य वाली प्रति या प्रतियां तत्काल मंगा लें। देर होने पर संभव है कि अगले संस्करण के लिए प्रतीक्षा करनी पड़े।

—मंत्री

सूचना

'जीवन-साहित्य' के 'नेहरू-स्मृति अंक' की थोड़ी ही प्रतियां शेष हैं। जिन्हें चाहिए, वे कृपया शीघ्र मंगा लें। मूल्य रु० २-२५
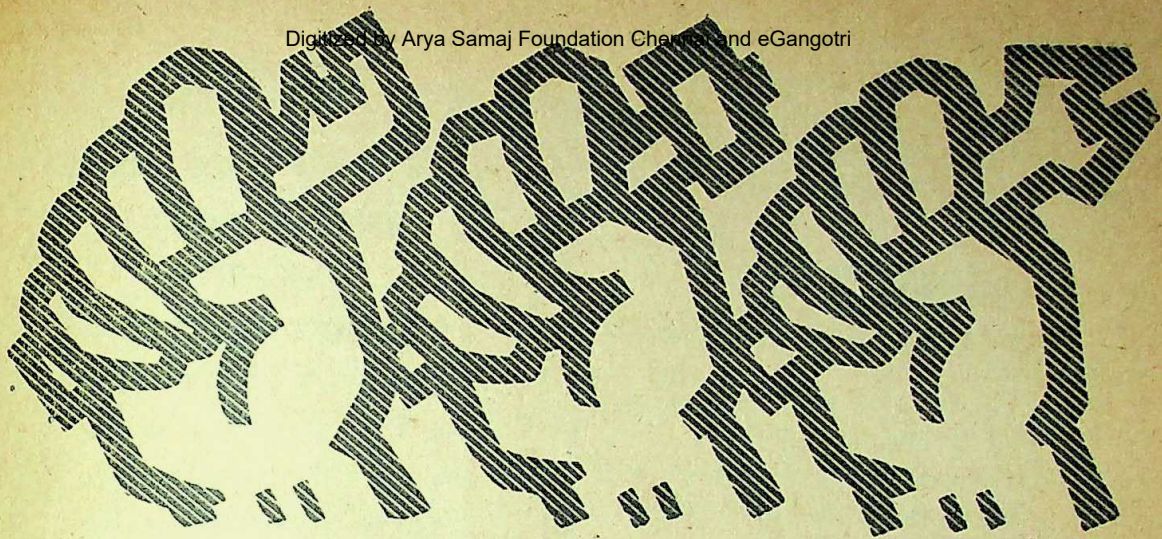
हिन्दुस्तान को अपने कारखानों में काम करने वालों पर गर्व है। वे दिन रात देश के विकास और सुरक्षा के लिए जरूरी सामान तैयार कर रहे हैं। वे समझते हैं कि लड़ाई भले ही बन्द हो गयी हो, हमारी आज़ादी को अब भी खतरा हो सकता है। हमारे कारखानों के कर्मचारी देश की सेवा में जुटे हुए हैं। सोचिये! आप देश के लिए क्या कर रहे हैं?

एक महान देश हमारा
एक महान राष्ट्र

डीए ६५/एफ८

नवीन प्रकाशन

१९६५

पुस्तक	लेखक	मूल्य
नेहरू-व्यक्तित्व-विचार		२५.००
महात्मा गांधी (जीवनी)	बी० आर० नंदा	५.००
विनोबा के विचार : भाग -३		१.५०
रचनात्मक राजनीति (राजनीति)	सं० रामकृष्ण बजाज	४.००
पत्र-व्यवहार (भाग ५)	सं० रामकृष्ण बजाज	५.००
सहकारिता (ग्रामोपयोगी)	जवाहरलाल नेहरू	२.००
शिक्षा का विकास (शिक्षा)	भगवानप्रसाद	३.००
सामुदायिक विकास और पंचायती राज	जवाहरलाल नेहरू	२.५०
अहिंसा की कहानी	यशपाल जैन	१.७५
लड़खड़ाती दुनिया	जवाहरलाल नेहरू	३.००
भारत-सावित्री (खण्ड २)	वासुदेवशरण अग्रवाल	५.००
ज्वालामुखी	अनंतगोपाल शेवड़े	३.५०
तंदुरुस्त रहने के उपाय (स्वास्थ्य)	धर्मचंद सरावगी	१.२५
विनोबा की बोध-कथाएं (कथाएं)		१.५०
पुरंदरदास (जीवनी)		१.५०
मेरा वकालती जीवन (संस्मरण)	ग० वा० मावलंकर	४.००
जिन्दगी दांव पर (उपन्यास)	स्टीफन ज्विग	३.००
जमना-गंगा के नैहर में (यात्रा)	विष्णु प्रभाकर	४.५०
मास्टर महिम (उपन्यास)	मनोज वसु	४.००
राष्ट्र-निर्माण-माला	(पूरे सेट का मूल्य)	२०.००
लोकतंत्र का लक्ष्य	इन्द्रचन्द्र शास्त्री	४.००
जैनधर्म का प्राण	सुखलाल संघवी	२.००
पंजाब-केसरी लाला लाजपतराय	मुकुटबिहारी वर्मा	१.००
हारजीत का भेद	आनंद कुमार	२.००
कुछ शब्द : कुछ रेखाएं	विष्णु प्रभाकर	३.५०
हमारे संस्कार-सूत्र	लक्ष्मीराम शास्त्री	३.००
कुछ देखा, कुछ सुना	घनश्यामदास बिड़ला	३.५०
जमनालालजी	घनश्यामदास बिड़ला	१.५०
पड़ोसी देशों में	यशपाल जैन	६.००
संस्कृति के परिव्राजक	संकलन	२०.००
गांधीजी और उनके सपने	वियोगी हरि	१.००
नीली झील	संपा० विष्णु प्रभाकर	३.५०
आकाशदानी दे पानी	गोविन्द चातक	२.५०
मेरे हृदयदेव	हरिभाऊ उपाध्याय	३.००
मानवता के दीये	झवेरचंद मेघाणी	४.५०
रेंगनेवाले जीव	सुरेशसिंह	२.५०
नाश का विनाश	बा० भ० बोरकर	३.००
परमसखा मृत्यु	काका कालेलकर	२.२५

मण्डल के सम्पूर्ण साहित्य के लिए एक कार्ड लिखकर नया सूचीपत्र मंगा लीजिये :

सस्ता साहित्य मण्डल

एन. ७७ कनॉट सर्कस, नई दिल्ली

शाखा : जीरो रोड, इलाहाबाद

मार्तण्ड उपाध्याय, मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल नई दिल्ली द्वारा न्यु इंडिया प्रेस, नई दिल्ली में छपवाकर प्रकाशित।

मार्च, १९६६ [अंक ३

जीवन साहित्य

गणेशशंकर विद्यार्थी

गणेशशंकर विद्यार्थी की मृत्यु हम सबकी श्रद्धा के योग्य थी। उनका रक्त वह सीमेंट है, जो दोनों जातियों (हिन्दू-मुसलमान) को जोड़ेगा। कोई समझौता हमारे हितों को नहीं जोड़ेगा, पर जैसी वीरता गणेशशंकर विद्यार्थी ने बताई है, आखिरकार वह अवश्य ही पाषाण-से-पाषाण हृदयों को पिघलावेगी और पिघला कर एक करेगी।

...आप मरने का पाठ सीखलें तो सब खैर-ही-खैर है।

—मो० क० गांधी

संपादक
हरिभाऊ उपाध्याय
यशपाल जैन

एक प्रति
चालीस पैसे

जीवन साहित्य

मार्च, १९६६

विषय-सूची

ग्राहकों से

जिन सदस्यों का वार्षिक शुल्क समाप्त हो गया है उन्हें **'जीवन-साहित्य'** की वी० पी० भेजी जा रही है। उनसे अनुरोध है, वह वी० पी० अवश्य छुड़ाने की कृपा करें।

—व्यवस्थापक

उत्तरप्रदेश, राजस्थान, मध्यप्रदेश, हिमाचलप्रदेश, दिल्ली, बिहार एवं पंजाब की राज्य-सरकारों द्वारा
कालेजों, लाइब्रेरियों तथा उत्तर प्रदेश और मध्यप्रदेश की ग्राम-पंचायतों के लिए स्वीकृत

जीवन साहित्य

● वर्ष २७ : अंक ३ ● मार्च, १९६६

क्रांति का रास्ता

विनोबा

हर गांव यह निश्चय कर ले कि हमारा गांव एक परिवार है। बिहार में बड़े-बड़े परिवार होते हैं। इसलिए यहां सामूहिक परिवार की भावना है ही। उसीको जरा फैलाना है। जीरादेई गांव की जनसंख्या एक हजार है। तो एक हजार तक परिवार फैल सकता है। इसका मतलब यह नहीं कि सब रसोई इकट्ठी करें। लेकिन सबकी आर्थिक, सामाजिक योजना एक साथ सोचें और करें। गरीबों की चिन्ता करें। बच्चों, बूढ़ों, बीमारों, बेवाओं, बेकारों की चिन्ता करें। इस प्रकार एक-एक गांव ग्रामदान होता है, तो एक-एक बड़ा परिवार बनता है और फिर गांव की कई समस्याएं हल हो जाती हैं। ऐसे इस जिले में सारे गांव ग्रामदान में आ जायं तो राजेन्द्रबाबू का यह उत्तम स्मारक होगा। इसके लिए सेवक चाहिए। ये पीले साफेवाले सेवक हो सकते हैं। प्रत्येक परिवार सेवा के लिए एक-एक मनुष्य दे और उसका खर्च स्वयं वहन करे। हर परिवार से एक मनुष्य मिलेगा तो तीन लाख लोग होंगे। लेकिन हम उतनी मांग नहीं कर रहे। हम सिर्फ एक हजार लोगों की मांग करते हैं। ऐसा आयोजन हुआ तो हर जिले से सहज ही हजार सेवक खड़े होंगे। और फौरन क्रान्ति का काम होगा।

●

लोक-नेता

बी० गोपाल रेड्डी

स्वर्गीय श्री लालबहादुर शास्त्री के दाह-संस्कार के तुरन्त बाद दिल्ली के रामलीला मैदान में उन्हें दी गई श्रद्धांजलियां पूर्व और पश्चिम दोनों के नेताओं में उनकी लोकप्रियता का अलौकिक प्रमाण रही हैं। इस श्रद्धांजलि में रूस और अमरीका दोनों, ब्रिटेन, पश्चिम जर्मनी फ्रांस, जापान तथा संयुक्त अरब गणराज्य का प्रतिनिधित्व वहां के महान व्यक्तियों ने किया। उन्होंने उस सरल व्यक्ति के प्रति अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित की, जो कि अपने १८ माह के अल्प प्रधान मंत्रित्व काल में महानता की चोटी पर पहुंच गया था।

उन्हें निकट रूप में जानने का प्रथम अवसर मुझे उनके उत्तर प्रदेश के गृह एवं परिवहन मंत्रिकाल के दौरान प्राप्त हुआ, जबकि मैं वहां की यातायात-व्यवस्था का अध्ययन करने गया था। तत्पश्चात केन्द्र में १९५२ में विभिन्न मंत्रालयों की भूमिकाओं ने उन्हें एक कुशल प्रशासक एवं प्रौढ़तापूर्ण राजनयिक बनाने में मदद दी। हालांकि उन्होंने स्वयं कभी किसी पद की लालसा नहीं की, पर कठिन-से-कठिन दायित्वों से बचने की भी कोशिश नहीं की। हां, वह चमक-दमक के व्यक्तित्व से ग्रस्त कभी नहीं हुए। वह चाहे प्रधान मंत्री रहे या मंत्री या कोई मंत्री नहीं—पर वह एक मूक एवं विनयी कार्यकर्त्ता सदा रहे।

उनका अनुशासन एक सैनिक की तरह था। प्रधान मंत्री बनने से पूर्व उन्होंने कभी भी सेनापति की भूमिका ग्रहण नहीं की थी, पर जब वे सर्वसम्मति से कांग्रेस संसदीय दल के नेता निर्वाचित हुए तो उनके समक्ष एक महान अवसर आया। उन्हें एक के बाद एक अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, किन्तु उन्होंने प्रत्येक का सामना बहादुरी व दिलेरी से किया और इन चुनौतियों का सामना करते हुए ही शास्त्रीजी का व्यक्तित्व उभर कर सामने आया। चाहे प्रतापसिंह कैरों की हत्या का मामला रहा हो या उड़ीसा मंत्रिमंडल का विवाद या खाद्य स्थिति या वित्तीय संकट अथवा काश्मीर की समस्या या भारत-पाक-संघर्ष—सभी अवसरों पर उन्होंने धैर्य के साथ काबू पाया और जन-भावना को प्रतिबिम्बित करते समय या समस्याओं का मुकाबला करने में उन्होंने अपनी ओर से किसी भी दुर्बलता का परिचय नहीं दिया। एक प्रकार से इन संकटों ने उनकी सहायता की और अंततः वे देश की कोटि-कोटि जनता के प्रिय पर महान व्यक्तित्व के रूप में प्रतिष्ठापित हो गये।

कांग्रेस कार्यकारिणी समिति तथा साधारण सभा की बैठकों में मैंने उनको निकट से देखा और पाया कि वह धैर्य के आगार हैं। वह अपनी ही सरल मुस्कानभरी रीति से कार्य को बिना किसी शिकायत का मौका दिये हुए चतुरतापूर्वक निपटाते रहे। वह सदस्यों को पूरी छूट देते, उनके विचारों को धैर्य से सुनते तथा जहां तक संभव होता उसे क्रियान्वित करने का प्रयत्न करते। वह समस्याओं के हल में गांधीवादी पद्धति तथा नेहरूजी के आधुनिक दृष्टि कोण का तालमेल बैठाने का यत्न करते थे।

उन्हें शांतिनिकेतन में विश्व-भारती के कुलपति के रूप में भी देखने का अवसर प्राप्त हुआ, जहां उन्होंने रवीन्द्र की इस महान संस्था के प्राध्यापक और कार्यकर्त्ताओं में अपने-आपको पूर्णतः आत्मसात कर लिया था। उनकी सरलता तथा विनम्रता ने सभी राज्यों की जनता का हृदय जीत लिया था। अपने संक्षिप्त प्रधान मंत्रिकाल, में विशेषकर भारत-पाक युद्ध के अवसर पर वह जनता के और भी निकट आये। इस मध्य अभूतपूर्व जन-समूह उनके दर्शन करने तथा उन्हें सुनने के लिए एकत्रित होता। अन्ततः उन्होंने सिद्ध कर

दिया था कि वह जनता का पूर्ण विश्वास पाने में सफल हो गये हैं।

अपने आचरण एवं व्यवहार में वह शत प्रतिशत एक शांति पुरुष थे। वह कभी भी कठोर वचन नहीं बोलते। अपने सहयोगियों की भावनाओं को भी कभी भी आघात नहीं पहुंचाते। उनका सम्पूर्ण व्यक्तित्व शांति के माधुर्य स्रोत से आप्लावित था।

मातृभूमि के सम्मान एवं अखंडता की रक्षा के लिए अपनी सेना को युद्ध-विराम-रेखा या अन्तर्राष्ट्रीय रेखा पार करने की आज्ञा देने में वह किंचित भी नहीं हिचकिचाए। ऐसा करते वक्त वह दुःखी थे, पर राष्ट्रीय हित को देखते हुए उन्हें ऐसा करना पड़ा। उन्होंने जनता की भावनाओं को ही साकार किया और अपनी सभी जन-सभाओं में उन्हें स्पष्ट रूप से प्रतिध्वनित किया। भारतीय सेना को उसका खोया हुआ गौरव पुनः प्राप्त हुआ और विपुल हर्ष के मध्य उन्होंने एक राज्य से दूसरे राज्य का दौरा किया। उनके यश का चरमबिन्दु १० जनवरी को प्राप्त हुआ जब कि निराशाभरी कठिन स्थिति परिवर्तित हो गई। पर राष्ट्रपति अयूब खां को शांति के समझौते पर हस्ताक्षर करने के लिए राजी करवाकर उन्होंने अपने शांतिमिशन में महान सफलता प्राप्त की। उन्होंने अयूब खां को यह मानने के लिए तैयार करवा लिया कि शस्त्र और सेनाएं किसी समस्या का हल नहीं होती। उनसे तनाव और घृणा में वृद्धि ही होती है, जबकि पारस्परिक वार्ता तथा समझौते प्रत्येक को प्रसन्न बनाते हैं। आज भारत तथा पाकिस्तान की जनता इसलिए प्रसन्न है कि दोनों देश तात्कालिक समस्याओं को सुलझाने में सफल हो गये हैं तथा बाकी समस्याओं पर विचार-विमर्श करने के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ हैं। तनाव में बहुत-कुछ कमी आ गई है तथा यदि ताशकंद-समझौते को क्रियान्वित किया गया तो भारतीय उप-महाद्वीप के ६० करोड़ व्यक्ति सामान्य व्यापारिक स्थिति कायम करने, सांस्कृतिक आदान-प्रदान तथा संचार एवं कूटनीतिक सम्बन्धों की दिशा में एक नया अध्याय प्रारम्भ करेंगे। भारत और पाकिस्तान के मध्य चाहे जो भी मतभेद हों, पर हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि हम एक ही परिवार के हैं, कुछ ही समय पूर्व विभक्त हुए थे तथा हमने अपने पूर्वजों से एक समान विरासत प्राप्त की है।

प्रायः हम देखते हैं कि जो व्यक्ति महान कार्य करते हैं, उसका फल चखने का अवसर उन्हें नहीं मिलता। गांधीजी ने देश की स्वतन्त्रता के लिए कार्य किया तथा सत्य एवं अहिंसा के लिए जनता को बीहड़ पथ से गुजरने को तैयार किया। उनके नेतृत्व में जिन लोगों ने कार्य किया उन्हें अतुलनीय बलिदान करने पड़े, पर जिस दिन भारत में स्वतंत्रता का सूर्योदय हुआ वह एक प्रसन्न व्यक्ति नहीं थे। अपनी जनता की प्रसन्नता में भाग लेने के लिए भारत की राजधानी में उस दिन उप-स्थित नहीं थे। वह दुःख से पीड़ित थे तथा स्वराज्य को सुदृढ़ रूप में देखने तथा उसके लिए कुछ करने के पूर्व ही छः मास के अन्दर में वह हमें छोड़कर चले गये। उनके भाग्य में परिश्रम करना तथा दुःख उठाना था पर उसका फल भोगना नहीं लिखा था। उसी तरह शास्त्रीजी ने संघर्ष किया और इसके बाद शांति-समझौता प्राप्त किया और उसे क्रियान्वित करने की भी आशा करते थे। पर शोक! समझौते की स्याही भी नहीं सूखने पाई थी कि वह चल बसे। किन्तु वह मृत हों या जीवित, ताशकंद में उन्होंने जो कुछ उपलब्ध किया है, उससे निश्चय ही भारत-पाक सम्बन्धों में एक नया अध्याय प्रारम्भ होगा। साथ ही इससे शांतिपूर्ण वार्तालापों एवं समझौतों में ही एक नया युग प्रारम्भ हुआ है। मेरी दृष्टि में ताशकंद-समझौते की तरह किसी भी समस्या के हल में ऐसी वार्ताओं की सफलता कारगर हो सकती है। जो हो, इस समझौते से शास्त्री जी का यश अपनी परा-काष्ठा पर पहुंच गया। सिद्ध है कि अनिवार्यतः वह एक शांतिप्रिय व्यक्ति थे तथा शांति के लिए ही वह जिये और मरे। वह एक सुकार्य के लिए मरे। यही कारण है कि उनकी अविश्वसनीय व आकस्मिक मृत्यु से सम्पूर्ण मानवता शोकाकुल हो गई है।

मैं उस विनम्र भारतीय के प्रति बारम्बार अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं जो मात्र अपनी चरित्र-शक्ति के बल पर एक उच्चतम पद पर पहुंच सका।

जन्म-दिन का संकल्प

काका सा० कालेलकर

[१ दिसम्बर १९६५ को आचार्य काकासाहब कालेलकर को उनकी ८१वीं वर्षगाँठ पर राष्ट्रपति भवन में एक विशेष समारोह में राष्ट्रपति डा. सर्वपल्ली राधाकृष्णन् ने 'सस्ता साहित्य मण्डल', नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित 'संस्कृति के परिव्राजक' नामक ग्रन्थ अर्पित करके उनका अभिनन्दन किया था। उस प्रसंग पर आभार व्यक्त करते हुए काका साहब ने जो प्रवचन दिया था, उसके थोड़े कुछ अंश नीचे दिये जाते हैं। --सम्पादक]

स्नेह और सत्कार के स्वीकार करते समय हृदय भर आता है। ऐसे समय कुछ बोलने का सूझता ही नहीं, तो भी इन अस्सी वर्षों में मेरे जीवन में और देश की परिस्थिति में जो परिवर्तन हुए, उसके विचार मन में आये बिना नहीं रहते।

भारतीय संस्कृति में प्राचीन काल से तीन अलग-अलग धाराएं समान्तर चलीं, किन्तु उनका समन्वय नहीं हो सका। इसलिए इस राष्ट्र को अनेक बार हारना पड़ा।

एक धारा थी क्षात्र तेज की। भारत के लोग शौर्य-वीर्य में कभी कम नहीं थे। लेकिन देश की रक्षा के लिए लड़ने का ठेका हमने एक ही वर्ण को दिय। और उन्होंने क्षात्र धर्म का ऐसा विकास किया कि राजा लोग आपस में बहादुरी से लड़ते रहे। समूचे राष्ट्र की रक्षा के लिए एकत्र योजना और परस्पर सहयोग वे न कर सके।

दूसरी धारा थी राजनीति की। इसमें राज की शक्ति बढ़ाने की बात थी जरूर, किन्तु प्रजा को राजनैतिक दृष्टि और सच्ची शिक्षा न मिल सकी और परिस्थिति के अनुसार विचार में परिवर्तन भी नहीं हुए, नहीं तो हम पठान और मुगलों के सामने, पोर्तुगीज और अंग्रेजों के सामने हार कैसे सकते?

तीसरी धारा थी संत संस्कृति की। संतों ने धार्मिक जीवन समाजव्यापी बनाया। राष्ट्र का चारित्र्य तो ऊंचा उठाया, लेकिन वे रहे परलोक-परायण। पारलौकिक उन्नति के लिए जरूरी चारित्र्य तो उन्होंने प्रजा-व्यापी बनाया, खूब मजबूत किया, किन्तु ऐहिक जीवन के उत्कर्ष के बारे में वे ज्यादातर उदासीन ही रहे।

मैं मानता हूं कि धर्म और अध्यात्म, राजनीति और क्षात्र तेज तीनों का कार्यकारी समन्वय गांधीजी ने ही सबसे पहले करके दिखाया। क्षात्र तेज को अध्यात्म की मदद देकर उन्होंने सत्याग्रह को जन्म दिया, जो मानव-जाति के लिए उनका अवतार-कार्य था। इसका विकास उत्तरोतर होता रहेगा।

राजनीति में गांधीजी ने अध्यात्म को लाकर सत्य और अहिंसा की प्रतिष्ठा बढ़ाई और उसके हाथ में सत्याग्रह का आत्मिक शस्त्र अथवा अस्त्र दे दिया और सत्याग्रह की व्यवहार्यता और सफलता पर दुनिया का विश्वास बैठे, उतने प्रयोग करके दिखाये।

इससे भी बढ़कर राष्ट्र-निर्माण के द्वारा प्रजा की सात्त्विक शक्ति और तेजस्विता बढ़ाने का रचनात्मक कार्य-क्रम भी बतलाया।

संत संस्कृति के सत्याग्रह का स्वरूप राष्ट्रव्यापी कैसे बनाया जाय, इसका तरीका बताकर अपना महात्मा-पद सिद्ध किया।

मैंने महात्माजी के बारे में शुरू से थोड़ा कुछ पढ़ा ही था, लेकिन उनके दर्शन किये विश्वकवि रवीन्द्रनाथ के शांतिनिकेतन में। आठ दिन की गहरी चर्चा के बाद मेरे मन का वह द्वैत दूर हो गया, जो मुझे राजनीति और अध्यात्म के बीच दीख पड़ता था। गांधीजी से हुई चर्चा के फलस्वरूप मैं उन्हीं का हो गया। लेकिन उनके पास

अकेला नहीं गया। मेरे मित्र आचार्य कृपलानी, जो यहां बैठे हैं, उन दिनों मुजफ्फरपुर (बिहार) में प्रोफेसर का काम करते थे। उनको मैंने तार देकर बुलाया कि, "एक अजीब और जिंदा प्राणी मैंने यहां देख लिया है। तुम भी आकर उसे पहचान लो।" महात्माजी जब बिहार गये तब कृपलानी के यहां ठहरे, जिसके कारण उन्हें अपनी नौकरी छोड़नी पड़ी और देश-सेवा के लिए वह मुक्त हो गये।

मेरे दूसरे साथी स्वामी आनन्द और हमारे राष्ट्रमत के नेता और लोकमान्य तिलक के दाहिने हाथ श्री गंगाधरराव देशपांडे भी मेरे कहने से गांधीजी के निकट आए और गंगाधरराव ने पूना में जाकर लोकमान्य के स्थान पर घोषित किया कि गांधीजी का मार्ग उन्होंने पसन्द किया है।

गांधीजी ने देखते-देखते अपनी हृदय की शक्ति से और समन्वय-वृत्ति से भारतीय जनता को अपना लिया और जनता ने गांधीजी को अपना लिया। भारत के अनेक पक्षों और दलों के नेताओं को भी गांधीजी ने अपनी प्रेम-शक्ति से अपना लिया और केवल राष्ट्रीय एकता और सत्याग्रह संकल्प के जोरों स्वराज्य का उदय हम देख सके।

गांधीजी ने हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई, पारसी, यहूदी सब धर्मों के प्रति एकसा आदर रखकर भावनात्मक एकता की नींव मजबूत की। वही काम हमें अब आगे बढ़ाना—चलाना है अगर कोई यहां आक्रमण करे तो उसको ठीक करना ही पड़ेगा। लेकिन हमारी नीति विश्वशांति, सर्व-धर्म-समन्वय और सर्वोदय की ही रहेगी।

यही समन्वय की नीति भाषा के सवाल पर भी लागू होती है और चूंकि आज का सत्कार-समारंभ हिन्दी-सेवकों की ओर से हो रहा है, उन्हें एक नई बात कहनी चाहिए।

"गांधीजी की हिन्दी-सेवा, संस्कृति और रक्षा-भावनात्मक एकता से ही प्रेरित हुई थी। हिन्दी को अमर राष्ट्रभाषा बनाना है तो पंजाब और बंगाल, काश्मीर और केरल सब प्रांत के लोग जिसे अपना सके और सब का जीवन जिसके द्वारा व्यक्त और विकसित हो सके, ऐसे रूप की वह भाषा होनी चाहिए। उत्तर भारत का ख्याल करके उन्होंने सुझाया कि हिन्दू और मुसलमानों को अलग-अलग नहीं रहने देना चाहिए। एकत्र लाना है तो हिन्दी-उर्दू का समन्वय किये बिना चारा नहीं। अगर द्वैत कायम रहा तो भावनात्मक एकता में कमजोरी रहेगी, जो स्वराज्य पाने में बाधक होगी।

आज हमें स्वराज्य मिल चुका है। देश के बटवारे के कारण वह खण्डित हुआ है सही, लेकिन स्वराज्य मिल चुका। अब हिन्दी और अंग्रेजी का झगड़ा हमारे लोगों के बीच ही चल रहा है जिसमें अंग्रेज कोई नहीं है। हमारे ही देश के लोगों के बीच यह तनाजा है। इसमें भी समन्वय-वृत्ति से रास्ता निकालना होगा। इसके लिए भारत के ही इतिहास की ओर हम देखें।

जब पठान और मुगल आये तब तो उन्होंने यहां फारसी (परशियन) और अरबी भाषा के द्वारा राज्य चलाया, लेकिन जब विदेशी राज्य कुछ हदतक स्वदेशी बनने लगा और प्रजा जीवन का महत्त्व बढ़ा तब जनता की भाषा राजभाषा बनी, लेकिन उसे अरबी, फारसी शब्दों का काफी बोझा उठाना पड़ा। अरबी-फारसी की जगह प्रजा की भाषा ने उर्दू का जामा पहनकर राज-व्यवस्था चलाने का भार उठाया। हमें भूलना नहीं चाहिए कि उर्दू भारत की ही एक स्वदेशी भाषा है, जो भारत के बाहर नहीं चलती।

हिन्दी-हिन्दुस्तानी की चर्चा मुझे नहीं करनी है। मैं कहूंगा कि जिस तरह उस जमाने में हमने अपनी प्रजा-कीय भाषा में अरबी-फारसी के शब्द आने दिये, उसी तरह अब हमें अपनी राष्ट्र-भाषा हिन्दी में बहुत-से अंग्रेजी के शब्द लेने होंगे। परिस्थितिवश हमें ऐसा करना ही पड़ेगा। अगर मैं किसी मुसलमान के साथ बातचीत करना चाहूं और मुझे उर्दू के जरूरी शब्द नहीं आते और सुननेवाले की समझ में मेरे संस्कृत से आये हुए शब्द नहीं आते तो मुझे अपनी हिन्दी में अंग्रेजी शब्द लाने पढ़ेंगे। मुसलमान की भी यही हालत होगी। अगर अंग्रेंजी भाषा को हटाकर उसका स्थान हिन्दी को देना है तो हमारी हिन्दी में अंग्रेजी के काफी शब्द लेने पड़ेंगे।

(शेष पृष्ठ ९७ पर)

विजय की घड़ी

रंगनाथ रामचन्द्र दिवाकर

ताशकंद-वार्ता के दौरान लोगों के मस्तिष्कों को यह बात निरन्तर उत्तेजित किये रही कि इस ताशकंद-वार्ता के परिणाम क्या होंगे ? पर मेरा विचार है कि शेष विश्व भले न जनता हो, किंतु भारत और पाकिस्तान निस्सन्देह यह जानते थे कि दोनों देशों के नेताओं के मध्य क्या कुछ होगा । यदि हम सावधानी और सतर्कतापूर्वक अपने कानों को उस वार्ता स्थल की ओर लगा सकते और ध्यानपूर्वक यह सुन सकते कि स्व० प्रधान मंत्री श्री शास्त्री तथा राष्ट्रपति अयूब खां के मध्य ताशकंद में क्या वार्ता हुई तो मेरे विचार में हममें से प्रत्येक ने ऐसा ही निर्णय लिया होता ।

पर इस दौरान हमारे हृदय उन्हीं अनुकूल तथा विपरीत समाचारों तथा सूचनाओं से भरे हुए रहे हैं, जो संवाद पत्रों तथा संवाद समितियों द्वारा प्रचारित एवं प्रसारित किये गए थे । कछ समाचार पत्रों के अनुसार तो वार्ता में विघ्न पड़े और भंग तक हो गई थी । ऐसे मौके पर उन तत्त्वों की बन आई, जो मध्यस्थ अथवा एक ऐतिहासिक वार्ता संयोजक के रूप में रूस की वर्चस्व-वृद्धि से द्वेष करते थे । ऐसे देश भारत तथा पाकिस्तान को मित्र बनते फूटी आंखों भी देखना नहीं चाहते थे ।

इन सब बातों पर विचार करते हुए यह बात कुछ कम चमत्कारपूर्ण नहीं प्रतीत होती कि ताशकंद-घोषणा से इन दोनों पड़ौसी देशों के मध्य सभी प्रकार से शक्ति-प्रयोग का अन्त हो गया और सीमाओं पर गोलाबारी रुक गई । दोनों ही देश अपनी-अपनी सेनाओं को ५ अगस्त १९६५ की पूर्वस्थिति पर वापस ले जाने को सहमत हो गये । उक्त घोषणा की अन्य धाराएं यद्यपि सामान्य और नियमित जैसी ही प्रतीत होती हैं, किन्तु उनके क्रियान्वित होने पर ही दोनों देशों की उद्देश्य-संबंधी पवित्रता और ईमानदारो प्रमाणित होगी । यह समझौता सोवियत राजनयज्ञ कोसीजिन तथा पाकिस्तान के ताना-शाह अयूब खां के सहयोग से ही सम्पन्न हुआ व इसके लिये स्वर्गीय प्रधान मंत्री श्री शास्त्री द्वारा अति प्रशंसनीय और सर्वश्रेष्ठ कार्य किया गया ।

श्री शास्त्री के स्वर्गवास पर राष्ट्रपति अयूब के मुख से जो एक महत्वपूर्ण बात निकली वह यह है कि "देशों के मध्य युद्ध सदा राष्ट्राध्यक्षों द्वारा ही शुरू किये जाते हैं, अथवा लड़े जाते हैं, किंतु उन्होंने शास्त्रीजी को युद्ध करने वाला नहीं पाया ।" यह श्री शास्त्री की शांति-प्रियता का ही ठोस प्रमाण है––उन शास्त्रीजी की, जिन्होंने भारत तथा पाकिस्तान के मध्य मैत्री भाव के लिए अपने जीवन तक की बाजी लगा दी ।

दोनों देशों के मध्य घोषणा पर हस्ताक्षर होने के बाद श्री शास्त्रीजी ने कहा, "अच्छा ही हो गया।" अयूब खां ने चटपट उत्तर देते हुए कहा, "खुदा अच्छा ही करेगा" अब यह देखना है कि कहां तक भारत तथा पाकिस्तान की करोड़ों जोशीली जनता, जिसे दुर्भाग्य से अब लोग "दो राष्ट्र" कहते हैं, किंतु वास्तव में जो एक ही देश हैं, युग और अवसर की पुकार के अनुसार कार्य करेगी ? क्या वह दोनों देशों के बड़े नेताओं की उस भावना के स्तर को कायम रखेगी, जिससे कि उन्होंने महत्वपूर्ण वार्ता करके एक शिखर-समझौता किया है ।

इस घोषणा पर हस्ताक्षर करने की बेला वास्तव में श्री शास्त्रीजी के लिए विजय की शुभ घड़ी थी । यही उनको गौरव के चरमोत्कर्ष तक पहुंचाने की मंजिल में पूर्णविराम सिद्ध हुई । हां, वह इस सफलता को स्वयं न देख सके । वह ताशकंद-घोषणा पर हस्ताक्षर करने के बाद जब पूर्णतया विश्राम कर रहे थे तभी मृत्यु का देवता

उनकी ओर बड़ी क्रूर दृष्टि से देख रहा था और उसने एक ही प्रहार में उनको हमसे छीन भी लिया।

शास्त्रीजी ने अपने सर्वथा अकल्पित और अप्रत्याशित जीवन में अनेक साहस और शौर्यपूर्ण कार्य किये। उन्होंने एक दरिद्र छात्र के जीवन से धीरे-धीरे बढ़कर सबसे बड़े लोकतंत्र की सर्वोच्च मंजिल प्रधान मंत्री की पदवी तक प्राप्त कर ली। कुछ लोगों के लिए यह जानना शायद सदा एक कठिन पहेली बना रहेगा कि उनकी इस अप्रतिम शक्ति तथा महान उत्तरदायित्व के शिखर तक पहुंच जाने का रहस्य क्या है। उनकी लंबी जीवन-यात्रा का प्रारंभ छात्रावस्था की गरीबी से हुआ, बाद में वह जेल के दरवाजों व कांग्रेस कार्यालय की खिड़कियों से निकलकर विधान मंडलों तथा संसद के प्रशस्त मार्गों पर दौड़ लगाते हुए पहले छोटे और बाद में उच्चतम पदों तक जा पहुंचे। वह मंत्रिमंडल के सदस्य भी बने और अन्त में विश्व के एक विशाल गणराज्य के प्रधान मंत्री बन गये।

जब वह प्रधान मंत्री बने तब बहुत कम लोग यह विश्वास कर पाते थे कि इस छोटे-से नागरिक की काया में अदृश्य महाप्राण छिपा है। पर यह सत्य था कि इस छोटी-सी हस्ती में एक असाधारण शक्तिशाली व्यक्तित्व सोया हुआ था। कुछ ही सप्ताहों में उसका स्वरूप सामने आ गया। शीघ्र ही उन्हें व्यक्तित्वहीन माननेवाले विदेशी पत्र-प्रतिनिधियों ने यह लिखना प्रारंभ कर दिया कि श्री शास्त्री के चरित्र में बड़ी दृढ़ता है। भारत को स्वयं भी यह दृष्टिगोचर होने लगा कि उनकी नीति निर्धारण में ग्रामों के नवनिर्माण की दिशा भी निहित हैं जबकि वह पहले से ही औद्योगीकरण की ओर उन्मुख थे। उनके परीक्षा की वास्तविक घड़ी तो उस समय आई जब भारत-पाक-सम्बन्ध तेजी से बिगड़ने लगे। पाकिस्तान ने स्वयं को अति शक्तिशाली और हमारे प्रधान मंत्री की प्रत्यक्ष दृढ़ता को भी दुर्बलता समझते हुए भारत पर प्रबल आक्रमण करके सुरक्षात्मक युद्ध के लिए बाध्य ही कर दिया। पिछले कुछ वर्षों में राष्ट्र यह विश्वास करने को बाध्य होने लगा था कि हमारी कांग्रेसी सरकार विरोध-पत्र भेजने के कार्य में ही कुशल और विशेषज्ञ है और स्वभावतः भारतीय जनता यह मानने लगी थी कि सरकार विदेशी आक्रांताओं का जवाब देने में हिचकिचाती और घबराती है। पर जब श्री शास्त्री ने एकबारगी पाकिस्तान से किसी भी मूल्य पर युद्ध करने का आह्वान किया तो भारतीय सिपाही के अन्दर सदा से सोये शौर्य, साहस और वीरत्व में जागृत की हिलोरें आ गईं। प्रत्येक भारतीय कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक यह अनुभव करने लगा कि हमारे देश में भी एक ऐसा प्रधान मंत्री है जो शांति-मार्ग का पथिक होने के साथ ही भारत की पवित्र सीमाओं की सुरक्षा के लिए राष्ट्र के आत्मसम्मान और गौरव को अक्षुण्ण रखने के लिए अति संवेदनशील एवं सतर्क है। उसने यह प्रमाणित भी कर दिया कि जहां वह मातृभूमि की निष्ठा, प्रेम, तथा अहिंसा-पूर्ण संग्रामों में देश के लिए बड़ी-से-बड़ी सेवा और बलिदानों की भावना से परिपूर्ण है वहां भारतीय राष्ट्र की अपार सैन्य शक्ति को भी जीत की बाजी पर लगा देने में वीर और दृढ़निश्चयी हैं।

शस्त्रों का उपयोग और संचालन करके युद्ध का वातावरण उत्पन्न कर देना तो बड़ा ही सरल काम है, क्योंकि मनुष्य कभी-कभी उत्तेजना चाहता है। युद्ध के उत्तेजनापूर्ण वातावरण में मनुष्य अपनी बड़ी-से-बड़ी गलतियों को भी भूल जाता है। किंतु हम यह न भूलें कि श्री शास्त्री ने अपनी शक्ति का प्रदर्शन युद्ध लड़ने से भी अधिक शांति स्थापना में किया। उन्होंने संयुक्त राष्ट्र संघ के महामंत्री ऊथांत की शांति-संबंधी अपील का समुचित उत्तर दिया। वह इसीका अनुसरण करते हुए ताशकंद तक जा पहुंचे, जहां उन्होंने शांति संधि पर अपने रक्त से ही मुहर लगा दी।

यदि हम राष्ट्र को प्राप्त उनके जीवन और शक्ति का विश्लेषण करें तो ज्ञात होगा कि वह विश्वास के पुंज थे। उनका शांति में, चरित्र में, अपनी जनता में तथा मनुष्य की गम्भीरतम भावना की अन्तिम विजय में पूर्ण विश्वास था। इसी भावना को प्रेम और स्नेह कहा जाता है। उनमें शांति और समृद्धि की स्थायी चाह थी। उनके जीवन ने यह प्रमाणित कर दिया कि किस प्रकार से लोकतंत्र में एक अनाथ बालक को भी अपने देश में उच्चतम स्थान तक पहुंचने का सुअवसर मिलता है। उनके शानदार जीवन का ज्वलंत उदाहरण हमको लोतंत्रीय पद्धति में, शांति में, प्रेम में तथा मैत्री भावना के विकास के सतत प्रयास में विश्वास दृढ़ करा सकता है। और भगवान की कृपा ऐसा ही कराये। ●

काकासाहब : कुछ स्मृतियां

विट्ठल गाडगिल

[स्व० श्री० न० वि० गाडगिल के पुत्र श्री विट्ठल गाडगिल ने, जो स्वयं एक सुपरिचित लेखक हैं, इस लेख में देश के मूर्धन्य राजनैतिक विचारक एवं साहित्यकार गाडगिल सा० की कुछ स्मृतियाँ प्रस्तुत की हैं ।—संपादक]

यद्यपि मैंने काकासाहब को एक व्यक्ति रूप में अत्यन्त निकटता से देखा है, फिर भी पिता पुत्र के संबंध को भूलकर एकदम तटस्थ व्यक्ति के रूप में उनके बारे में लिख पाने में मैं अपने-आपको समर्थ नहीं पाता हूं। अनेक महान व्यक्तियों के पुत्रों द्वारा लिखे गए चरित्रों को पढ़कर मैंने पाया है कि इस दिशा में कदाचित ही कोई सफल हुए हैं। चर्चिल-सरीखे लेखक ने जब अपने पिता का चरित्र लिखने में आत्मविश्वास का अभाव पाया तो मेरी क्या गिनती है।

वैसे यह तथ्य है कि काकासाहब के सार्वजनिक जीवन की व्यस्तता के कारण पुत्र रूप में उनसे मेरा संपर्क कम ही रहा है। मैं १९४० से उनको समझने-जानने लगा था। वह प्रायः जेलों में रहते और जब जेल में न होते तो दिल्ली रहते। पूना के घर को छोड़कर हमारे दिल्ली या अन्य निवासों की स्थिति धर्मशाला जैसी रहती जहां विरोधी पक्ष के हों या अन्य के, सभीको शरण मिलती थी। वल्लभभाई पटेल तो हमारे दिल्ली के घर को 'महाराष्ट्र गेस्ट हाउस' कहते थे। स्थिति सीमा से बाहर चली जाने पर मैं कभी-कभी शिकायत करता तो उत्तर मिलता, "अरे हमारा घर तो पंढरपुर है। लोग ही तो हमारा वैभव हैं।"

काकासाहब में दो व्यसन जबर्दस्त थे। एक चाय का और दूसरा समाचार-पत्र का। चाय की प्याऊ हमारे घर अखंड रूप से चालू रहती। अतिथियों का आवागमन बढ़ने का तात्पर्य होता पैसों की परेशानी और मां इस पर शिकायत करती। पर काकासाहब ने ये व्यसन कभी नहीं छोड़े। अखबार न मिलने पर वह बेचैन हो उठते। मेरे व्यापारी विचार से चाय और अखबारों पर होने वाले खर्च से कई होटल और रद्दी की दुकानें चल सकती थीं।

मेरी दृष्टि से काकासाहब में सबसे आकर्षक गुण उसका जीवन्त आशावाद और विनोदवृत्ति थे। संकट अनेक आये, परन्तु "अब क्या करूं" यह सोचते बैठे हुए मैंने उन्हें कभी नहीं देखा और न कभी इस बारे में शिकायत-शिकवा करते पाया। जेल में भेंट के लिये जाने पर वह प्रत्येक बार कहते, "अगले माह भेंट के लिए आने की जरूरत नहीं। कारण मैं तबतक घर आने वाला हूं।" वह यह सब विनोद में कहते, क्योंकि उसके बाद एक या दो महीने अपितु दो-दो वर्ष बीत जाते उन्हें जेल में।

घर के बारे में वह बहुत ही कम ध्यान देते थे। उनके लड़के किधर हैं, इस बारे में उनको स्वयं जानकारी नहीं होती थी। जब मैं मैट्रिक में था उन्होंने मुझे रघुवंश व कादम्बरी पढ़ाने का निश्चय किया, पर शिमला-सम्मेलन आदि-आदि की भागदौड़ में जल्द ही उनका और (मेरा भी) उत्साह शांत हो गया।

हम लोग पुस्तकों पर कितना ही खर्च करते, पर वह कभी न बोलते। परन्तु लड़कों के कपड़ों और खाने का लाड़ कभी नहीं कर पाये। उनकी सादगी की कल्पना अति की थी। अपने राज्यपाल-काल के दौरान वह एक महत्वपूर्ण समारोह में अपना फटा कोट पहनकर जाने लगे। मैंने मजाक उड़ाया तो वह नाराज होने की बजाय मजाक में ही बोले, "सौन्दर्य होगा तो इन्हीं कपड़ों में दीख जायगा।" मंत्री और राज्यपाल होने पर उन्होंने इस बात का ध्यान रखा कि अन्य मंत्रियों या राज्यपालों की तरह उनके

लड़के भी फैशन परस्त न हो जायं।

कपड़ों की ही तरह खाने पर भी उनका ध्यान न था। क्या खाना बनता है क्या नहीं, इस बारे में वह निरपेक्ष थे। वह कहा करते, "दस वर्ष जेल का अन्न खा कर मेरी रुचि मर चुकी है। शांति से न बैठकर उतावलेपन में रहते। खाने में जल्दी, चलने में जल्दी और सर्वत्र यही स्थिति रहती। टिकट रिजर्व होने पर भी कम-से-कम आध घंटे पूर्व वह स्टेशन पहुंच जाते।

साहित्यकार के रूप में वे विनोदी छटा लाने के नाते प्रसिद्ध रहे हैं। यही स्थिति घर पर रहती। सदा हंसमुख और जीवन्त। पर ज्ञान और आयु का झूठा अभिमान उनमें न था। नवीन-नवीन विनोदी शब्दों का उद्घाटन करते रहते। हम दो भाई और छः बहनों को वे 'गाडगिल-प्रजा-परिषद' के नाम से पुकारते। पूछते, "क्या वैदिक आहार किया है ?" स्कूल की प्रगति-पुस्तक पर पिता का पेशा क्या लिखूं, एक दिन यह पूछने पर बोले, "बेकार नेता।" मेरे कालेज पढ़ने के समय एक बार मेरी एक बहिन ने शिकायत की कि मैं उसे सिनेमा साथ नहीं ले जाता। काकासाहब बोले, "आज कल दूसरों की बहिनों को ले जाता होगा।" उनके विनोद सदा ही प्रथम श्रेणी के नहीं होते थे, पर इन विनोदों से घर का वातावरण सदा प्रसन्नता व आनन्द से भरपूर रहता।

घर में अनुशासन का तो प्रश्न ही नहीं था। एकदम लोकतंत्री वातावरण था। मेरी एक बहन ने संयुक्त महाराष्ट्र के लिए सत्याग्रह किया। मैं कांग्रेस-विरोधी प्रचार करता। पर कभी कोई शिकायत उन्होंने नहीं की।

वह नित्य ओंकारेश्वर के मन्दिर अवश्य जाते थे। ज्योतिषियों को हाथ दिखाते थे। पंचांग नियमित रूप से देखते थे। सोने के पूर्व ज्ञानेश्वरी, दासबोध पढ़ते थे। रामकृष्ण परमहंस पर उनकी श्रद्धा अपरंपार थी।

राजनीति में वे जुझारू नेता के रूप में प्रसिद्ध थे। फिर भी निजी जीवन में वह अत्यन्त कोमलवृत्ति के व भावना-प्रधान थे। जब मैं इंगलैंड गया तो एक सप्ताह बाद ही बेचैन हो उठे। मेरे मैट्रिक पास करने के अनन्तर से वह मुझे पुत्र नहीं, मित्र मानने लगे थे। पैसा, प्रदर्शन, मानमर्यादा, उन्हें कभी प्रिय नहीं रहे। स्पष्ट-वक्ता होने के नाते उन्होंने मंत्रिपद छोड़ दिया। राज्यपाल-पद भी त्याग दिया। अब पूना विश्वविद्यालय का कुलपति-पद छोड़ने का भी संकल्प कर रहे थे। पैसे का संग्रह उन्होंने कभी नहीं किया। उनका मानना था कि जनता का वह विश्वास ही उनका धन है कि अन्य मंत्रियों के विपरीत उन्होंने पैसा नहीं बटोरा है। काकासाहब सर्वगुण-सम्पन्न थे अथवा युगपुरुष थे, यह मैं नहीं कहता। उनकी तरह पुनर्जन्म में भी मेरा विश्वास नहीं है। फिर भी मेरी प्रार्थना यही है कि पुनः जन्म लेने पर मैं उन्हीं काकासाहब का पुत्र बनूं।

●

(पृष्ठ ९३ का शेष)

भारत की पढ़ाई जिनके हाथों चलती है, उन प्रोफेसरों को, अध्यापकों को, आचार्यों को और प्राचार्यों को अंग्रेजी की ही आदत है। वे तो हिंदी बोलते हुए बीच-बीच में अंग्रेजी शब्द लायेंगे ही। काफी समय तक हमें यह बरदाश्त करना ही होगा। इसीको मैं हिन्दुस्तानी वृत्ति और हिन्दुस्तानी शैली कहूंगा। अब प्रजा राज्य है, अंग्रेजों का नहीं। देश के राज्यकर्ता भी देशी ही लोग हैं, इस वास्ते हमारी राष्ट्रीय हिन्दी में अंग्रेजी शब्दों की भरमार तो नहीं होगी, लेकिन अंग्रेजी शब्द लेने जरूर पड़ेंगे। जिससे कोई हानि नहीं होगी। जहां-जहां संघर्ष बढ़ता है वहां-वहां कुछ-न-कुछ समझौता करना ही पड़ता है और समन्वय का रास्ता ढूंढ़ना पड़ता है।

मैं देखता हूं कि अब अगर देश की भावनात्मक एकता मजबूत करना है तो समन्वय का तरीका हर क्षेत्र में ढूंढना होगा। संघर्ष और तनाजा शुरू होने के पहले ही उसका हल ढूंढकर समन्वय का रास्ता लेना पड़ेगा। आज के शुभ दिन मैं संकल्प करता हूं कि जो कुछ थोड़ा आयुष्य बाकी रहा होगा, इसी समन्वय-कार्य में व्यतीत करूंगा।

यहां इकट्ठे हुए सब सज्जनों को मैं कृतज्ञता-पूर्वक धन्यवाद देता हूं।

●

जीवन और साधना[1]

गोविन्ददास

इस सृष्टि में सभी कुछ परिवर्तनशील है। कविवर सुमित्रानन्दन पंत ने अपनी एक कविता में लिखा है—

"पल-पल परिवर्तित प्रकृति वेश"

उन्होंने यह विचार किसी भी प्रसंग में व्यक्त किये हों, पर हर क्षण ही नहीं, अपितु हर फल सबकुछ परिवर्तित होता जाता है। जड़ या चेतन जिस रूप में उत्पन्न होता है उस रूप में वह नहीं रहता और उसका उत्पत्ति वाला रूप भी सदा परिवर्तित होता रहता है।

हजरत मूसा के सम्बन्ध में एक कहानी है कि राजा को हजरत मूसा का एक चित्र भेंट किया गया। राजा के दरबार में मुखाकृति-विज्ञान को जाननेवाले कुछ विशेषज्ञ थे। राजा ने वह चित्र इन विशेषज्ञों को अध्ययन के लिए दिया। उन्होंने उसे देखकर कहा—"यह किसी बहुत बुरे व्यक्ति का चित्र है। वह व्यक्ति अत्यंत क्रोधी है, अत्यन्त कामी और अत्यन्त क्रूर।" राजा आश्चर्यचकित रह गया, क्योंकि वह हजरत मूसा को भली भांति जानता था और उसके अनुसार मूसा से अधिक पवित्र और सरल व्यक्ति खोजना कठिन था।

वह मूसा के दर्शन के लिए गया, उनके चरणों में सिर रखकर उसने अपने विशेषज्ञों की बात कही और बोला, "निश्चय ही मुखाकृति-विज्ञान कोई विज्ञान नहीं है। अतः यह अच्छा ही हुआ कि उसके प्रसंग को लेकर मेरी आंखें खुल गईं" हजरत मूसा राजा की यह बात सुनकर हँसने लगे और बोले—"तुम्हारे विशेषज्ञ ठीक कहते हैं, जो-जो बातें उन्हें मेरे चित्र में दिखाई दीं, वे सब मुझमें कभी थीं। बीमारियां तो चली गईं, किंतु उनके चिह्न चेहरे पर रह गए हैं।"

यह कहानी इस तथ्य की गवाही है कि प्रकृति के परिवर्तनशील नियमों के अनुसार मनुष्य भी जैसा अपनेको पाता है उससे भिन्न हो सकता है। विष को भी अमृत में परिवर्तित करने के उपाय हैं। वे ही शक्तियां जो अशुभ प्रतीत होती हैं, शुभ जीवन के आधार भी बन जाती हैं। लोहा स्वर्ण में परिवर्तित करने का एक कीमिया है, वह हो चाहे न हो, किन्तु पुराने समय के लोग लोहे को सोनें में बदलने का रसायन खोजते थे। पारस पत्थर की खोज भी शायद उतनी ही पुरानी है जितना मनुष्य। अलकेमी या पारस पत्थर की खोज प्रतीक खोजें हैं। उनके भीतर हम मनुष्य में परिवर्तन के ही मार्ग खोजते रहे हैं। मनुष्य में ऐसा बहुत-कुछ है, जिसे लोहा कहा जा सकता है। उस सबको स्वर्ण में परिवर्तित किया जा सकता है और यह हो सकता है साधना से।

मनुष्य के प्रकृत रूप में यदि हम प्रवेश करें तो वहां लोहे के सदृश्य ही बहुत कुछ उपलब्ध होगा। केवल वासनाएं ही पकड़ में आवेंगी। काम, क्रोध, लोभ, मोह और मद के ही दर्शन होंगे। निष्कर्ष यही निकलेगा कि मनुष्य भी एक प्रकार का पशु है। डार्विन ने मनुष्य की देह के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकाला कि उसकी उत्पत्ति पशुओं से हुई है। फ्रायड ने उसके मन के अध्ययन से यह निष्पत्ति दी कि वह निपट पशु ही है डार्विन तथा फ्रायड ने मनुष्य की महिमा के सारे स्वप्न छीन लिये। इस सृष्टि की सर्वश्रेष्ठ रचना को उन्होंने कोई विशेषता नहीं दी और शेष प्रकृति के साथ समान तट पर मानव को भी खड़ा कर दिया। आधुनिक काल की यह सबसे बड़ी मौलिक खोज कही जाती है। यह तथाकथित मौलिक और महान खोज ही मानवीय चेतना के विकास की मृत्यु बन गई। इस खोज के आघात ने

---

१. आचार्य रजनीश से हुई चर्चा के आधार पर

मनुष्य को हतप्रभ कर दिया। प्रकृति का परिवर्तन नियम देखते हुए भी वह जहां था और जैसा था वैसा ही खड़ा रह गया। स्वयं के ऊपर उठ सकना मनुष्य को असम्भव दिखाई पड़ने लगा। वासनाओं और जन्मजात प्रवृत्तियों के अतिक्रमण का कोई प्रश्न ही नहीं रहा। उनमें ही जीता है और उनमें ही मर जाता है, यही उसका विश्वास हो गया। उनके वृत्त में घूमने-लेने का नाम ही जीवन है, यह उसे भासने लगा। वासना-वृत्तियां वृत्ताकर होती हैं। इसीलिए उनको वृत्तियां कहते हैं। उनमें कोल्हू के बैल की भांति घूमते रहिये। घूमना तो बहुत होगा, किन्तु पहुंचेंगे कहीं नहीं। इस निरर्थक वृत्ताकर परिभ्रमण को तोड़ने का नाम साधना है। काम की वृत्ति के अतिक्रमण से ब्रह्मचर्य उपलब्ध होता है। क्रोध की वृत्ति के अतिक्रमण से शांति और क्षमा उपलब्ध होती है। लोभ की वृत्ति के अतिक्रमण से अपरिग्रह उपलब्ध होता है। मोह की वृत्ति के अतिक्रमण से चेतना उपलब्ध होती है और मद की वृत्ति के अतिक्रमण से अमूर्च्छा अहंशून्यता उपलब्ध होती है। साधना मनुष्य के भीतर उसकी शक्तियों के अशुभ की ओर के प्रवाह से शुभ की ओर परिवर्तन है। शक्तियां न तो शुभ हैं न अशुभ हैं। शक्तियाँ तो सदा तटस्थ होती हैं। उन्हें हम किस दिशा में संलग्न करते हैं, उससे ही उनका शुभ या अशुभ होना विर्णीत होता है। काम, क्रोध, लोभ, मोह मद आदि से जो शक्तियां प्रकट होती हैं, वही उनके प्रकट होने का अकेला मार्ग नहीं हैं। उन्हीं शक्तियों का मार्ग-परिवर्तन तो ठीक उनके विपरीत मार्गों से भी अभिव्यक्त हो सकता है। प्रकृति-जगत में तो हम पदार्थ की शक्तियों का ऐसा परिवर्तन सीख गए हैं। मनुष्य की अन्तस् शक्तियों के सम्बन्ध में न मालूम क्यों हम हठाग्रही हैं और जिस अनुसंधान का परिचय विज्ञान ने हमें दिया है, उसका ही परिचय धर्म के सम्बन्ध में हम नहीं दे पा रहे हैं। इसका मूल कारण शायद यह है कि पदार्थों की शक्तियों का परिवर्तन वृत्तियों के भोग के लिए सहयोगी है, जबकि स्वयं वृत्तियों की शक्तियों का परिवर्तन तपश्चर्या मांगता है। इन्द्रियों के जो सुख हैं वे प्रारंभ में सुख और अन्त में दुःख ही जाते हैं। आत्मा का जो आनन्द है वह आरम्भ में दुःख जैसा भासता है, किन्तु अन्त में आनन्द में परिणत हो आता है। भगवान श्री कृष्ण ने भगवद्गीता के अठारहवें अध्याय में जो उपसंहार किया है, उसमें सात्विक, राजस् और तामस सुखों का सुन्दर वर्णन है। सात्विक सुखों के समन्वय में वह कहते हैं—

यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम्।
तत्सुखं सात्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम्॥

अर्थात वह सुख प्रथम साधना के आरम्भ-काल में यद्यपि विषय के सदृश्य भासता है, परन्तु परिणाम में अमृत के तुल्य है। इसलिए जो भगवत्-विषयक बुद्धि के प्रसाद से उत्पन्न हुआ सुख है, वह सात्विक कहा गया है।

रजोगुणी सुख के लिए भगवान कहते हैं—

विषयेन्द्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम्।
परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम्॥

अर्थात् जो सुख विषय और इन्द्रियों के संयोग से होता है वह यद्यपि भोग-काल में अमृत के सदृश्य भासता है, परन्तु परिणाम में विष के सदृश है। इसलिए वह सुख राजस कहा गया है।

तमोगुणी सुख के लिए भगवान ने कहा है—

यदग्रे चानुबन्धे च सुखं मोहनमात्मनः।
निद्रालस्यप्रमादोत्थं तत्तामसमुदाहृतम्।

अर्थात् जो सुख-भोग-काल में और परिणाम के बाद भी आत्मा को मोहन वाला है, वह निद्रा, आलस्य और प्रमाद से उत्पन्न हुआ सुख तामस कहा गया है।

सात्त्विक सुख जो प्रारम्भ में दुःख भासता है, उसका स्वीकार करना ही तप है। इस दुःख की स्वीकृति से बचने के लिए ही जो विवेक, जो खोज, जो श्रम हम पदार्थों की शक्तियों के लिए दिखा पा रहे हैं उसका ही आत्म शक्तियों की दिशा में अभाव मालूम पड़ता है। फिर आलस्यवश प्रमाद के वशीभूत हो शुभ की ओर हमारा जो विकास नहीं हो रहा है, उसकी आत्मग्लानि से बचने को हम यह सिद्ध करने में संलग्न हो गए हैं कि मनुष्य यथार्थ में पशु है और पशुता से ऊपर उठने का उसके

(शेष पृष्ठ १०६ पर)

क्षमा वीरस्य भूषणम्

अज्ञात

यूनान में एक बहुत बड़े विचारक हुए हैं। उनका नाम था 'सुकरात'। वह अपने विचारों में इतने डूबे रहते थे कि अक्सर उन्हें घर पहुंचने में देरी हो जाती थी। उनकी पत्नी राह देखती-देखती थक जाती थी। पर वह अपनी आदत को नहीं बदल पाये। एक दिन की बात है—वह अपनी मित्र-मण्डली में बैठे रहने के कारण बहुत देरी से घर आये। उनकी पत्नी झगड़ालू तो थी ही और फिर देरी के कारण वह बहुत झल्ला भी गई थी। अतः घर आते ही उसने सुकरात को खरी-खोटी सुनानी शुरू कर दी। सुकरात चुपचाप उसकी झिड़कियां सुनता रहा और रोटी खाता रहा। जब वह रोटी खा चुका तो उसने क्षमा के भाव से अपनी पत्नी की ओर देखा। इससे उसका गुस्सा और भी तेज हो गया। वह जोर-जोर से बोलने लगी। सुकरात ने देखा कि उसका गुस्सा शांत नहीं हो रहा है तो वह घर से बाहर जाने लगा। उसकी पत्नी अपनी हार पर और भी झल्लाई। अतः वह अपने वश में नहीं रह सकी और पास ही रसोई पर सफेदी करने के लिए पड़े हुए चूने के घोल को उसपर उंडेल दिया। सुकरात ने हँसकर कहा—मैंने सुना था, पहले बादल गरजते हैं और फिर बरसते हैं। अतः जब तुम गरज रही थी तो मैंने देखा अब बरसोगी भी। पर चलो इतने में ही काम चल गया। बिजली तो नहीं गिरी। यह सुनते उसकी पत्नी एक दम शांत और अपने कृत्य पर पछताने लगी।

इसीलिए जवाहरलाल नेहरू ने कहा था—क्षमा के बिना जीवन रेगिस्तान है। कमजोरियां किसमें नहीं होतीं ? गलती कौन नहीं करता ? पर आदमी की सबसे बड़ी खूबी यही है कि वह दूसरों की कमजोरी पर—दूसरों की गलती पर गुस्सा न करे। बल्कि गलती करने-वाले को अपनी गलती समझने का और आगे उसे न दुहराने का मौका दे। असल में गुस्सा उसको अधिक आता है जो कमजोर होता है।"

ज्यादातर लोग गुस्सा इसलिए करते हैं कि उन्हें दूसरों की गलती नहीं सुहाती। पर देखा जाय तो गलती को सुधारने का सही तरीका गुस्सा करना नहीं है। इससे तो उल्टी गलती बढ़ती है। गलती प्रेम से सुधर सकती है।

एक बार स्वामी विवाकानन्द रेल में जा रहे थे। दो अंग्रेज भी उसी डिब्बे में बैठे थे। दोनों अंग्रेजों को साधुओं से बड़ी घृणा थी। इसलिए वे रास्ते-भर साधुओं की निन्दा करते रहे। उन्होंने समझा, साधु पढ़े-लिखे नहीं होते। वे अंग्रेजी नहीं समझ सकते। इसलिए वे अंग्रेजी में बातें करते रहे। उन्होंने जी भरकर साधुओं की, खासकर विवेकानन्द की बुराई की। आखिर उन्हें एक स्टेशन के पास प्यास लगी। उन्होंने अंग्रेजी में एक दूसरे से इसकी चर्चा की। स्वामीजी चुपचाप उनकी बातें सुनते रहे। जब स्टेशन पर आए तो वह दरवाजे पर खड़े हुए और पानी पिलानेवाले आदमी को पुकारा। जब वह पास आया तो उन्होंने अंग्रेजों की ओर संकेत करके उन्हें पानी पिलाने को कहा। अंग्रेज यह देखकर बड़े लज्जित हुए। उन्हें जब यह पता चला कि यह विवेकानन्द ही हैं तब तो वे और भी अधिक लज्जित हुए। उन्होंने सोचा—यह महात्मा कितने उदार हैं? हमने इन्हें इतनी गालियां दीं, पर ये बिल्कुल नाराज नहीं हुए। इतना ही नहीं, बल्कि हमारे लिए पानी की भी व्यवस्था कर दी। फिर तो वे लोग अपनी गलती पर बहुत ही पछताये।

जब हम गुस्सा करते हैं तो सामनेवाले आदमी का मिजाज तेज हो जाता है। इससे झगड़ा बढ़ता है। इसी-लिए किसी ने कहा है—

आवत गाली एक है, जाबत होत अनेक।
जो मुड़कर जाये नहीं, तो रहे एक की एक ॥

अगर कोई कटु या अप्रिय वचन कहे तो हमें बदले में कटु वचन नहीं कहना चाहिए। गुस्सा एक प्रकार का कीचड़ है। उसमें पत्थर फेंकने से कीचड़ ही उछलेगा।

कैसी भी परिस्थिति हो, हमें उसे हँसकर टाल देना चाहिए। यदि हम यह कला सीख जाय तो अप्रिय परिस्थिति भी हमारे लिए प्रिय बन सकती है और यह कोई असम्भव बात भी नहीं है। कोई भी आदमी यदि इसका प्रयोग करे तो थोड़े ही दिनों में उसे बड़ी शांति मिल सकती है। गुस्सेबाज आदमी अपने-आपमें ही असन्तुष्ट रहता है। वैज्ञानिकों ने भी इस विषय में बहुत खोज की है। उनका कहना है कि गुस्सा करने से हमारे खून में उबाल आता है। एक प्रकार का विष हमारी नाड़ियों में प्रवाहित हो जाता है। उससे हमारे स्नायु दुर्बल हो जाते हैं। इसलिए जो आदमी अपना विकास करना चाहता है, उसे गुस्सा नहीं करना चाहिए।

कुछ लोग गुस्से के बुरे नतीजे को जानते हैं और उसे छोड़ना भी चाहते हैं। पर मौका आने पर अपने आपको वश में नहीं रख पाते। इसीलिए ज्ञानी जनों ने क्रोध को चंडाल कहा है।

एक गांव में एक तपस्वी रहते थे। उनकी तपस्या के प्रभाव से एक देवता भी उनकी सेवा किया करता था। एक बार उन्होंने एक महीने की तपस्या की। महीना पूरा हुआ तो वह भिक्षा के लिए निकले। रास्ते में उन्हें एक धोबी मिला। रास्ता संकरा था और धोबी के पास कपड़ों का गट्ठर था। ज्यों ही तपस्वी उसके पास से गुजरे कि धोबी टकरा गया। धोबी आगे को चलने लगा। पर तपस्वी का पारा गर्म हो गया। उन्होंने कहा—तुम देखकर नहीं चलते? धोबी ने कहा—तुम भी तो देखकर नहीं चलते। इस प्रकार बात बढ़ते-बढ़ते बहुत बढ़ गई। आखिर धोबी ने उसे जमीन पर गिरा दिया और स्वयं उसकी छाती पर बैठ गया। तपस्वी की खूब मरम्मत हुई। जब वह भिक्षा लेकर अपनी जगह पर आए तो देवता हाथ जोड़कर उनके सामने खड़ा हो गया। तपस्वी ने उसे देखकर कहा—देव! तुम इतनी देर कहां चले गए थे?

देव—महाराज! मैं तो यहीं पास में खड़ा एक धोबी और एक चंडाल की लड़ाई देख रहा था।

तपस्वी—अरे वह चंडाल कहां था? वह तो मैं ही था।

देव—नहीं, महाराज! आप नहीं हो सकते। आप होते तो मैं उसी क्षण आपकी सहायता करता।

तपस्वी—तुम कैसी बातें करते हो? वह तो मैं ही था, मैं ही!

देव—महाराज! उस समय आप अपने वश में नहीं थे। चंडाल आपके घर कर गया था। इसलिए आप गुस्से में आ गये। अब आपको कोई पीटकर तो देखे? मैं उसको ऐसा मजा चखाऊं कि वह कई दिन तक याद करे। पर उस समय तो आप धोबी से भी गये बीते हो गये थे। मैं तो भलों की ही मदद करता हूं, चंडालों की नहीं। यह सुनकर तपस्वी बड़े शर्मिन्दा हुए। बोले—तुम सच कहते हो। वास्तव में मनुष्य चंडाल नहीं होता उसका गुस्सा ही चंडाल होता है।

गुस्से से बचने का पहला उपाय तो यह है कि हम हर समय अपने स्नायुओं को ढीला रखें—प्रसन्न, हँसमुख रहें। ज्यादा मिर्च-मसाले या उत्तेजित पदार्थ न खायें। दूसरा उपाय है यदि गुस्से का मौका आये तो चुप रहें। नाक बन्द कर थोड़ी देर के लिए सांस रोक लें। इससे हम उत्तेजना से बच जायंगे। हमारा मन शांत रहेगा। गुस्सा न करना कमजोरी की निशानी नहीं है, वीरता का हथियार कहा गया है।

कबीर और गांधी

बाबूराव जोशी

है मोरे चित्त पुण्य तीर्थे जागो रे धीरे,
ए भारतेर महा मानवेर सागर तीरे ।

कवि गुरु रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने इन पंक्तियों में कहा है कि भारत महा मानवता का पारावार है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि भारत अनेक जातियों और अनेक वंशों के मनुष्यों की मिलन-भूमि है। इन विभिन्न जातियों और वंशों के कारण भारतीय संस्कृति ने एक ऐसे मधु का रूप धारण कर लिया है जो अनेक संस्कृतियों के योग से बना हुआ है। किन्तु अनेक फूलों के रस से जमा किये हुए इस मधु की सबसे बड़ी विशेषता है कि इसमें कोई भी एक फूल सबसे ऊपर नहीं बोलता। सामासिकता, उदारता, सहिष्णुता और एकता उसके प्रमुख तत्व हैं। श्री रामधारीसिंह 'दिनकर' के शब्दों में "आर्य परिवार की सभी भाषाओं ने एक ही घाट का पानी पिया है, जो व्यास और वाल्मीकि का घाट है। उन्होंने विचारों के उस एक ही भण्डार से प्रेरणा ली है, जो वेदों और उपनिषदों का भण्डार है और उनके भीतर सुरों एवं नरों के उस एक ही चरित्र का यशोगान है जो ब्रह्मा, विष्णु और महेश अथवा राम, कृष्ण, बुद्ध और महावीर का चरित्र है।" कबीर और गांधी इस एकता, सहिष्णुता, सामासिकता और उदारता की प्राचीन परम्परा की ही दो प्रसिद्ध कड़ियां हैं।

यद्यपि कबीर और गांधी के समय में लगभग ५०० वर्षों का अन्तर था और दोनों के व्यक्तित्व एवं परिस्थितियां उन्हें अलग-अलग मार्गों पर चलने के लिए बाध्य कर रही थीं, तथापि दोनों के मुख में सत्य की एक ही परिभाषा थी। दार्शनिक विचारधारा, अध्यात्मिक साधना, अहिंसा, सत्य, समता आदि अनेक बातों में उनके विचार एक दूसरे से मिलते-जुलते थे। दोनों की प्रेरणा आध्यात्मिक थी। अन्तर इतना ही था कि कबीर ने उसका प्रयोग समाज में सुधार करने के लिए, वर्ग-भेद मिटाने के लिए और हिंसा को रोकने के लिए किया, गांधीजी ने देश को स्वतन्त्र एवं आत्मनिर्भर बनाने के लिए। दोनों की कथनी और करनी में साम्य था और दोनों ही सरल जीवन, सत्यानिष्ठा और कर्मठता पर समान रूप से बल देते थे।

कबीर और गांधी दोनों ही सत्य के साधक थे। सत्य की गवेषणा तो आग्रह के बिना संभव नहीं होती। उसके आग्रह में अदम्यता की भावना रहती है। दुराग्रह भला कैसे इस अदम्यता को पा सकता है? सत्याग्रह वस्तुतः एक साधना-मार्ग है। उसके बिना सत्य की प्राप्ति नहीं हो सकती। गांधीजी कहा करते थे कि सत्याग्रह का अर्थ है सत्यबल। वह उसे प्रेमबल या आत्मबल के नाम से भी पुकारते थे। कबीर इसीको प्रेमपथ कहते थे। गांधीजी ने आत्मकथा की प्रस्तावना में लिखा था—"सत्याग्रह का मार्ग सरल नहीं है। वह तलवार की धार के समान दुर्गम है। 'मंगल प्रभात' में भी उन्होंने लिखा था—"वह तो सिर का सौदा है, मरकर जीने का मन्त्र है।" कबीर का प्रेम पथ भी इतना ही दुर्गम था। वह कहते थे—

कबिरा यह घर प्रेम का, खाला का घर नांहि।
सीस उतारे हाथि करि सो पैठे घर मांहि ॥
प्रेम न खेती नीपजे, प्रेम न हाट बिकाय।
राजा परजा जिह रुचे, सिर दे सो ले जाय ॥

गांधीजी के अनुसार सत्याग्रही का प्रमुख गुण है विनयशीलता। उनके अनुसार विनयशील बने बिना सत्य की झलक मिल ही नहीं सकती। उन्होंने आत्मकथा की प्रस्तावना में लिखा था—"सत्य के शोधक को दीनता परम प्रिय होती है। उसे एक रजकण से भी नीचे रहना

पड़ता है। सारी दुनिया रजकरण को पैरोंतले रौंदती है, पर सत्य का पुजारी तो जबतक इतना छोटा नहीं बन जाता कि रजकरण भी उसे कुचल सके, तबतक स्वतन्त्र सत्य की झलक भी होना दुर्लभ है। यह बात वशिष्ठ-विश्वामित्र के आख्यान में अच्छी तरह बताई गई है। ईसाई धर्म और इस्लाम भी इसी बात को साबित करते हैं।" सत्याग्रही होने के कारण कबीर भी विनयशीलता को साधक का प्रथम कोटि का गुण मानते थे। उन्होंने सत्य के शोधकों से कहा था --

रोड़ा ह्वै रहो बाट का, तजि पाखण्ड अभिमान।
ऐसा जो जन छे रहे ताहि मिले भगवान।।

सत्याग्रही का दूसरा प्रमुख गुण है सत्य में पूर्ण आस्था और उसके लिए आत्मसमर्पण की भावना। जैसे जैसे सत्य पर भरोसा बैठता जाता है, वैसे-वैसे आत्म-समर्पण की भावना बढ़ती जाती है। आत्म-समर्पण से निश्चिन्तता प्राप्त होती है। लोभ इस दिशा में बाधक होता है, क्योंकि वह आस्था को डिगाता है। गांधीजी ने आत्मकथा में लिखा था—"हम जो आंटे मारते हैं वह सेर बाजरी या मुट्ठी-भर धान के लिए नहीं, पर खट्टे मीठे स्वाद के लिए। ठंड से बचने के लिए जैसे तैसे कपड़ों के लिए नहीं, बल्कि रेशम किम-खाब के लिए। अगर हम इस लोभ को छोड़ दें तो हमें अपने और कुटुम्ब के भरण-पोषण की चिन्ता कम रह जायगी।"

कबीर में यह आस्था किसी प्रकार कम नहीं थी। वे भी गांधीजी की ही तरह आत्म-समर्पण की भावना से ओत-प्रोत थे। वह कहते थे कि जिसने दांत दिये हैं वह चबाने को भी देगा। जो सांप बिच्छू, भेड़िया आदि डरावने जीव-जन्तुओं को भूखा नहीं रखता, वह मनुष्य जाति को कैसे भुलाएगा?—

च्यन्ता न करि अचन्त्य रहु, सांई है सम्रथ्य।
पसुपंखेरू जीव जन्तु तिनकी गांठ किसा ग्रंथ।।

सत्य पर दृढ़ आस्था रखकर या यूं कहिये कि अपने हरि से स्नेह जोड़कर कबीर अपनेको सारे संशयों से मुक्त अनुभव करते थे। वह उस स्थिति में पहुंचते थे जहां पहुंचकर काम, क्रोध, लोभ आदि दुर्प्रवृत्तियों का डटकर मुकाबला किया जा सकता है। उन्होंने कहा था—

कबीर मेरे संसा को नहीं, हरि संग लागा हेत।
काम क्रोध सू जूझणा, चौड़े भाइया खेत।।

कबीर और गांधी के राम भी लगभग एक जैसे ही थे। दोनों ही उसके अभिधान के सम्बन्ध में कोई आग्रह लेकर नहीं चलते। सभी धर्मों और सम्प्रदायों में प्रयुक्त होनेवाले परोक्ष सत्ता वाचक शब्दों जैसे राम, रहीम, कृष्ण, करीम, गोविन्द, अल्लाह, रघुपति आदि का उन्होंने स्वतन्त्रतापूर्वक प्रयोग किया। किन्तु दोनों को राम शब्द बड़ा प्रिय था। नाम को लेकर प्रायः झगड़े खड़े होते रहते हैं। अतः दोनों ही इस सम्बन्ध में बड़े सचेत रहे। सभी प्रचलित अभिधानों को स्वीकार कर मानो उन्होंने विविध सम्प्रदायों और धर्मों द्वारा डाला हुआ कृत्रिम आवरण उठाकर एकता का मार्ग प्रशस्त कर दिया। कबीर ने कहा था—

कबीर यह तो एक है परदा दिया भेख।
भरम करम सब दूरि करि, सबही माहि अलेख।।

इधर गांधीजी की प्रार्थना सभा में तो प्रतिदिन ये पंक्तियां गाई जाती थीं—

रघुपति राघव राजा राम, पतित पावन सीता राम।
ईश्वर अल्ला तेरे नाम, सबको सम्मति दे भगवान।।

कबीर ने कभी राम को अवतारी नहीं माना। उनके अनुसार दुनिया में पैदा होने और मरने वाला तो माया है। उन्होंने कहा था—

सन्तो आवै जाय सो माया।
है प्रतिपाल, काल नहि बाके, ना कछु गया न आया।।
दस अवतार ईसुरी माया, कर्त्ता के निज पूजा।
कहै कबीर सुनो भोई साधो उपजै खपे सो दूजा।।

उनका राम न तो दशरथ के घर जन्मा न उसने लंका के राजा रावण को सताया। वह न तो देवकी की कोख से पैदा हुआ न यशोदा ने उसे गोद में खिलाया—

ना दशरथ घर औतरि आवा, ना लंका का राव सतावा।
द्वेवे कूख न औतरि अस्वा ना जसबै ले गोद खिलावा।।

गांधीजी के राम भी लगभग ऐसे ही थे। उन्होंने एक बार कहा था—ईश्वर निश्चय ही एक है, वह अगम, अगोचर और मानव-जाति के बहुजन समाज के लिए

अज्ञात है। वह सर्वव्यापी है, वह अजन्मा है। उसके न माता है, न पिता, न सन्तान। फिर भी वह माता, पिता या सन्तान के रूप में पूजा ग्रहण करता है।" अपनी 'धर्मपथ' नामक पुस्तक में उन्होंने भी कबीर की ही भांति अवतारवाद का खण्डन करते हुए लिखा था—"हमें जिन राम के गुण गाने हैं, वह राम वाल्मीकि के राम नहीं हैं, वह तुलसी रामायण के राम नहीं और न गिरधर दास के राम हैं। वह दशरथ के कुंवर या सीतापति राम नहीं हैं। वह तो देहधारी ही नहीं है। जो हमारे हृदय में बसते हैं, वह देहदारी हो ही नहीं सकते।"

हिन्दू-मुसलमान के बीच की खाई को देखकर दोनों ही समान रूप से दुःखी रहे। दोनों ने ही लोगों का जबरदस्त विरोध सहन करके भी अपने-अपने ढंग से इस खाई को पाटने का प्रयत्न किया। कबीर ने मुल्ला-मौलवियों और पंडितों के विरोध को सहकर बाह्याचारों का खंडन किया और धर्म के मूल तत्वों की एकता पर बार-बार बल दिया। उन्होंने साफ-साफ शब्दों में कहा कि हिन्दू मुसलमान दोनों को बनानेवाला एक ही है। फिर दोनों में कोई अन्तर कैसे हो सकता है—

कहै कबीर एक राम जपहु रे, हिन्दू तुरक न कोई।
हिन्दू तुरक का कर्ता एकै ता गति लखी न जाई॥

उसे चाहे अल्लाह कहिये, चाहे राम, चाहे करीम कहिये, चाहे केशव, वह दो हो ही नहीं सकता—

राम खुदाय शक्ति शिव एकै, कछु धौ काहि निबेरा।
दुई जगदीस कहाँते आया कहु कंवने भरमाया॥
अल्ला राम करीमा केसो हरि हजरत नाम धराया।

गांधीजी की नोआखाली-यात्रा, कलकत्ता और दिल्ली के आमरण अनशन और अन्त में सम्प्रदायवादियों की गोली का शिकार बनना एकता और सहिष्णुता के इतिहास में स्वर्ण अक्षरों में लिखी जानेवाली घटनाएं हैं। वह तो प्रतिदिन राम को रहीम और कृष्ण को करीम कहकर सबको सम्मति प्रदान करने की प्रार्थना किया करते थे। सम्प्रदायवादियों से उन्होंने एक दिन स्पष्ट शब्दों में कहा था—"प्रार्थना प्रारम्भ करने के बाद मैं रुकने वाला नहीं हूं। चाहे कत्ल ही क्यों न हो जाऊं और आप देखेंगे जब मेरी आखिरी सांस छूटती होगी तब भी मेरे मुख से राम रहीम कृष्ण-करीम का जाप चलता होगा।" इसी प्रकार कबीर ने एकता सहिष्णुता और उदारता की जो बात छन्द के माध्यम से कहीं उसीको गांधीजी ने अपने प्रवचनों में कहा। इसे देखकर दादूदयाल की निम्न पंक्तियां याद आ जाती हैं—

जो पहुँचे ते कहि गये तिनकी एकै बात।
सबै सयाने एक मति, तिनकी एकै जात॥

हमारा भारत विचारों, मतों और संस्कृतियों की विविधता के लिए प्रसिद्ध है, किन्तु कबीर और गांधी जैसे अनेक सन्त-महात्मा इस बात के प्रमाण हैं कि इस अनेकता और विभिन्नता के मूल में एकता और समन्वय की धारा अविछिन्न रूप से प्रवाहित है। एकता और समन्वय भारतीय संस्कृति की माला के उस सूत्र की तरह हैं जो अनेक मतों, धर्मों, जातियों और संस्कृतियों के सुमनों को अपने में पिरोए हुए हैं। माला के सूत्रों की भांति यह एकता और सहिष्णुता भी ऊपर-ऊपर से देखने पर दिखाई नहीं देती। किन्तु वस्तुतः वही हमारा सच्चा उत्तराधिकार है। ऐसा लगता है, मानो विश्व की एकता को संभव बनाने के लिए ही भारत भूमि में एकता, समन्वय और सहिष्णुता के प्रयोग हुए और कबीर एवं गांधी की महान परम्परा उस विश्व-मानवता एवं विश्व-संस्कृति का ही मार्ग बता रही है, जिसकी हमें ही नहीं, आज सारी मानवता को बड़ी आवश्यकता है।

जब गांधीजी के लिए मेरठ-जेल का द्वार खोला गया

विश्वम्भरसहाय प्रेमी

बीते युग की अनेक बातें ऐसी हैं, जिनको स्मरण करने से भारत के राजनैतिक इतिहास के सुनहले पृष्ठ खुलते हैं यहां हम एक ऐसी ही घटना का उल्लेख करना चाहते हैं, जो हमारे राष्ट्रीय संग्राम के बीते युग का स्मरण कराती है।

दिसम्बर १६२६ की बात है। मेरठ-जेल में उन दिनों मेरठ षड़यंत्र अभियोग के बन्दी रहते थे। उनमें भारत-भर के ख्यातिप्राप्त वे नेता सम्मलित थे, जो महात्मा गांधी की अहिंसा और असहयोग कीं नीति में विश्वास नहीं रखते थे। इनमें से कुछ व्यक्ति मजदूर संगठनों का नेतृत्व करने वाले थे और कुछ कम्यूनिस्ट विचारधारा को लिये हुए देश में क्रांति करना चाहते थे। इनमें सर्वश्री पी० स्प्रैट, ब्रेडले, इचिन्सन, स० अ० डांगे, जोगलेकर, नेम्बीयर, झाटवाला तथा शिवनाथ बनर्जी देशी-विदेशी प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति भी थे। मेरठ के पं० गौरीशंकर भी इनमें सम्मिलित थे। ऐसा समझना चाहिए कि यह दल उग्र क्रांतिकारी विचारधारा का पोषक था। ये लोग बंगाल, पंजाब, उत्तर प्रदेश, बंबई आदि अनेक प्रांतों का प्रतिनिधित्व करते थे।

इन दिनों मेरठ नगर में महात्मा गांधी का कार्यक्रम भी रखा गया। कांग्रेस-कार्य तथा खादी-प्रचार के लिए समूचे देश से उन दिनों धन-संग्रह किया जा रहा था। गांधीजी के दर्शनों के लिए जिले-भर से हजारों नर-नारी आये। एक विशाल सभा आयोजित की गई। लगभग ३० हजार रुपया उन्हें भेंट किया गया था। इस भेंट में मेरठ कालिज के विद्यार्थियों ने भी योग दिया था। कालिज में उस समय कर्नल टी० एफ० ओडोनल प्रिंसिपल थे। उनकी गांधीजी के प्रति बड़ी श्रद्धा थी। गांधीजी को कालिज के विद्यार्थियों की ओर से चांदी की एक तश्तरी में लगभग एक हजार रुपए भेंट किये गए थे।

गांधीजी ने चांदी की तश्तरी नीलाम कर दी। नीलाम बोलनेवालों में श्री जे० के० कौगिल भी थे। यह उन दिनों मेरठ के ज्वाइन्ट मैजिस्ट्रेट थे। अंग्रेजी अफसर ने गांधीजी की भेंट के नीलाम में बोली लगाना अपने लिए गौरव की बात समझी। बिना हिचकिचाहट मुस्कराते हुए श्री कौगिल ने ६० रुपया देकर गांधीजी के हाथ से वह तश्तरी प्राप्त की थी।

श्रीं कौगिल ने अपनी तश्तरी फिर नीलाम की और वह ३०० रुपये में बिकी। उन्होंने वह रुपया महात्मा गांधी को भेंट किया। गांधीजी ने मुस्कराते हुए कहा, "आप मुझसे चतुर व्यापारी रहे।" श्री कौगिल गांधीजी के प्रति बड़ी भक्ति रखते थे। प्रातःकाल जब वह उनसे मिलने गये तो गांधीजी घूमने चल दिये थे। श्री कौगिल ने एक मील की दूरी पर पहुंचकर गांधीजी से भेंट की।

गांधीजी के कार्यक्रम में मेरठ-जेल जाकर मेरठ षड़यंत्र अभियोग के बन्दियों से भेंट करना सम्मिलित था। कहा जाता है कि उस समय इस बात की आशंका थी कि न जाने क्रांतिकारी विचारधारा वाले ये लोग महात्मा गांधी के प्रति कोई विरोधी भावना व्यक्त न कर दें, परन्तु महात्मा गांधी के उदारतापूर्वक इन सबसे भेंट करनी ही थी।

उन दिनों के जेल सुपरिन्टेन्डेन्ट कर्नल रहमान ने सरकार की विशेष आज्ञा से महात्मा गांधी का जेल में जाकर बंदियों से भेंट करना स्वीकार कर लिया। गांधीजी निश्चित समय पर जेल के द्वार पर पहुंच गए। जेलर ने जेल का प्रथम मुख्य द्वार पूरा खुलवाकर महात्मा गांधी का सत्कार किया। उसके उपरांत भीतर का दूसरा द्वार भी पूरा खोल दिया गया। गांधीजी मेरठ जेल

की १४ नम्बर की बैरक में ले जाये गए। बंदियों ने उनके आतिथ्य में अनेक वस्तुएं प्रस्तुत कीं। एक बंदी ने किशमिश भेंट की। गांधीजी ने इन क्रांतिकारियों के साथ काफी देर तक वार्तालाप किया। पहले कुछ लोगों ने भेंट करने से भी इन्कार कर दिया था, परन्तु जब उन्होंने गांधीजी को आत्मीयता के साथ अपने मध्य बैठा देखा तो वे बड़े प्रभावित हुए।

उस दिन मेरठ जेल में एक नवीन उत्साह उत्पन्न हो गया। जेल-प्रबन्धकों ने यद्यपि गांधीजी की भेंट को पूर्णतया गुप्त रखा था, परन्तु जेल में उनकी भेंट गुप्त न रह सकी। ज्योंही गांधाजी जेल की १४ नम्बर बैरक में घुसे और उसका प्रवेश-द्वार बंद किया गया, त्योंही वहां के कर्मचारियों ने अन्य बैरकों तक भी गांधीजी के जेल में आने की बात पहुंचा दी।

जेल के समीपवर्ती रहनेवाले कर्मचारियों के परिवार वालों ने गांधीजी के दर्शनों का पूरा लाभ उठाया। यद्यपि उस समय जेल के द्वार तक आने पर पूरी पाबंदी थी, परन्तु वहां से कुछ दूरी पर वे सब पंक्तिबद्ध खड़े हो गये थे।

गांधीजी भेंट करके वापस लौट गये। पूरी सावधानी के साथ उनको जेल में प्रविष्ट कराया गया था। और वैसी ही सावधानी के साथ वह जेल से बाहर गए थे। परन्तु सब सावधानी में भी एक असावधानी हो गई। वह असावधानी जेलर की थी। उसने जेल सुपरिन्टेन्डेन्ट की आज्ञा प्राप्त किये बिना जेल का मुख्य द्वार गांधीजी के लिए पूरा खोल दिया था। सुपरिन्टेन्डेन्ट जेल कर्नल रहमान चाहते थे कि गांधीजी साधारण व्यक्तियों की तरह द्वार की खिड़की से जेल में प्रवेश करते, परन्तु उन्होंने इस संबंध में जेलर को किसी प्रकार का कोई आदेश न दिया था। साथ ही जेलर ने भी उनसे कोई आदेश प्राप्त नहीं किया था।

कर्नल रहमान ने जेलर की साजिश समझी। उन्होंने गांधीजी के लिए पूरे फाटक खोलने का समाचार पाते ही जेलर को मुअत्तिल कर दिया। जेलर घबरा गया। रोटी का प्रश्न था। उस समय जेलर का पद भी एक बड़ा पद माना जाता था। वह अपनी जेल का एक प्रकार से राजा था। उसके द्वारा जेल का सारा कार्य सम्पादित होता था। परन्तु नियमों की पाबंदी कराना सुपरिन्टेन्डेंट जेल का काम था। सरकारी अस्पताल का सिविल सर्जन उन दिनों जेल सुपरिन्टेन्डेंट होता था। वह अस्पताल के कार्य से समय बचाकर जेल की व्यवस्था एवं उसका निरीक्षण करता था। देखा जाय तो जेल प्रबंध का समस्त उत्तरदायित्व उसीपर रहता था।

कर्नल रहमान ने अकेले जेलर को ही मुअत्तिल न किया, बल्कि उन्होंने कई वार्डर भी हटा दिये। सारे उत्तर प्रदेश में यह समाचार फैल गया कि मेरठ-जेल में महात्मा गांधी के प्रवेश ने हुकूमत में तलहका मचा दिया है, परन्तु उन दिनों बड़े अफसरों के सामने छोटे अफसरों की कौन सुनता था? राजनैतिक मामलों में तो किसी प्रकार की सुनवाई होती ही नहीं थी। कर्नल रहमान की आज्ञा अंतिम आज्ञा रही।

(पृष्ठ ९९ का शेष)

पास कोई उपाय नहीं है, न कोई सम्भावना है। डार्विन फ्रायड और मार्क्स के सदृश्य तत्त्ववेत्ताओं ने जब इस विषाक्त आत्मतुष्टि के लिए सहारा दे दिया हो, तब तो फिर पूछना ही क्या?

साधना का प्रारंभ इस सत्य की स्वीकृति से होता है कि मनुष्य जैसा है उससे श्रेष्ठ हो सकता है। वह अपूर्ण है उसके पूर्ण होने की सम्भावना है। वह अशुभ है, किन्तु शुभ होने के बीज उसमें छिपे हैं। वह पशु है, लेकिन पशु ही सदा बने रहने को आबद्ध नहीं है। उसकी पशुता दिव्यता में परिणत हो सकती है। उसके भीतर का कीचड़ कमल बन सकता है इस सत्य की स्वीकृति मात्र भी मनुष्य के भीतर चेतना के आरोहण का प्रारम्भ बन जाती है। जीवन उपलब्ध नहीं है, मात्र उसकी संभावना उपलब्ध है। उस सम्भावना को सत्य में परिणत करना हमारे हाथों में है और उसे खो देना भी। जो उस सम्भावना को वास्तविक बना लेते हैं और स्वयं के भीतर प्रच्छन्न सारी शक्तियों को जागृत कर सत्य, शिव और सुन्दर की ओर प्रवाहित कर देते हैं केवल वे ही जीवन की कृतार्थता और धन्यता को अनुभव कर पाते हैं।

मानव-जीवन में आध्यात्मिक पुनरुत्थान का महत्व

गौरीशङ्कर द्विवेदी 'शङ्कर'

संसार में मानव-जीवन प्राप्त कर लेना एक महत्वपूर्ण घटना है। उसको प्राप्त कर लेने के पश्चात जो मानव सांसारिक संघर्ष झेलकर उसको सब प्रकार सफल बनाने में संलग्न रहते हैं वे ही लोक में प्रशंसा और परलोक में सद्‌गति पाते हैं।

जो मानव संसार में अपने कर्त्तव्यों को भली प्रकार पूरा करते हुए निष्काम-कर्म करते रहते हैं, सदाचारी बनकर दीन-दुखियों के दुख दूर करने में अपना योगदान देते हैं और भौतिक-संघर्षों को धैर्यपूर्वक पार कर जाते हैं, उनकी विवेक-बुद्धि स्वतः ही जागृत हो जाती है। सच तो यह है कि मानव-जीवन-रूपी पक्षी के दोनों ओर के दोनों पंखों में एक ओर का पंख कर्म हुआ करता है और दूसरी ओर का ज्ञान। जब दोनों ही पक्ष एक समान सबल और सक्रिय होते हैं तब ही मानव-जीव सफल और सक्रिय बन पाता है।

भारतीय-दार्शनिक-ग्रन्थों में कर्म और ज्ञान को एक दूसरे का सहयोगी माना गया है। कर्मों को करते हुए हृदय में यदि ज्ञान जागरूक रहे तब वह स्वतः मानव का पथ-प्रदर्शक बननर कल्याण-मार्ग में लगा देता है। हमारे आचार्यों ने इसीलिए युग-परम्परा से आध्यात्मिक विचार-धारा को विशेष महत्व दिया है। संसार में कुछ वर्षों से केवल अर्थ को ही अधिक महत्ता दी जाने लगी है, इसमें संशय नहीं कि उसका अपना एक विशिष्ट स्थान है किंतु वही सबकुछ नहीं है। संसार में जो मानव ज्ञान की उपेक्षा करके अर्थ-संग्रह में ही संलग्न रहते हैं, उनमें अनेकानेक विकार उत्पन्न हो जाते हैं, जिससे वे निस्सन्देह लालची, लोभी, दम्भी, स्वार्थी और अहंकारी बन जाते हैं, फलस्वरूप लोक में उनको अपयश मिलता है और परलोक भी नहीं बनता है।

मानव-जीवन की शशव, प्रौढ़, बृद्ध और अन्त में निधन अवस्था होती है, उसकी या उसकी किसी अवस्था की अखंड स्थायी सत्ता नहीं है। मानव की आयु के वर्ष, महीने, दिन, घंटे और पल घटते-घटते क्षीण होकर समाप्त हो जाते हैं। भिन्न-भिन्न देश के मानवों की रुचियां और प्रवृत्तियां भिन्न-भिन्न प्रकार की होती हैं इस विश्व-व्यापी विविधता को एकरूपता में अध्यात्म-ज्ञान ही बांध सकने में समर्थ होता है।

विश्व के विभिन्न धर्मावलम्बियों ने संसार-सागर को पार करने के लिए शाश्वत-शांति प्राप्त कर लेना ही श्रेयस्कर माना है। इसके उन्होंने भिन्न-भिन्न रूप और नाम माने हैं। इसको ही ईसाइयों ने सातवां स्वर्ग, मुसलमानों ने वहिश्त, बौद्धों ने निर्वाण, जैनियों ने कैवल्य-ज्ञान, सगुण उपासकों ने गोलोक, शिवलोक, दार्शनिकों ने मुक्ति और गीताकारों ने ब्रह्म-निर्वाण माना है, निष्कर्ष यह है कि अंतिम लक्ष्य सबका एकसा ही है।

भारतीय संस्कृति में भारतीय दर्शन की गहरी छाप मिलती है। प्रतिदिन नियमपूर्वक संध्योपासना में बचपन से ही संध्या-प्रातः हम सब श्रद्धापूर्वक प्रभु से प्रार्थना करते रहते हैं कि हे प्रभु ! दृढ़ता दीजिये, जिससे सभी प्राणी मुझे मित्र की दृष्टि से देखें और मैं भी सब प्राणियों को मित्र की दृष्टि से देखूं और हम सब प्राणी मित्र की दृष्टि से सबको देखें। यथा :—

> दृते इह मा मित्रस्य मा चक्षुषा,
> सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम ।
> मित्रस्याहं चक्षषा सर्वाणि भूतानि,
> समीक्षे मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ॥
> (य० अ० ३६ मं० १८)

प्रतिदिन की इस प्रार्थना की भावनाएं स्पष्ट हैं कि

हम प्राणिमात्र को मित्र मानकर स्नेह करें, विश्व के विशाल मानव समूह को अपने परिवार का ही व्यक्ति मानें, स्थायी विश्व-प्रेम और विश्व-शांति पूर्वक ये भावनाएं आध्यात्मिक-विचारधारा की ही देन हैं। इस भावना के फलस्वरूप ही भारतवर्ष **'वसुधैव कुटुम्बकम्' 'सर्वे भवन्तु सुखिनः'** और 'जीयो और जीने दो' के मूल मंत्रों को अपनाए हुए जीवित बना हुआ है। जबसे इन भावनाओं की उपेक्षा होने लगी तब से ही समाज में तृष्णा, व्यक्तिगत स्वार्थ, भ्रष्टाचार, आपा-धापी और अर्थ का दुष्प्रभाव बढ़ गया।

राष्ट्रपिता बापू ने एक पत्र में सार्वजनिक सेवा के क्षेत्र में कार्य करनेवालों को लक्ष्य करते हुए लिखा था—

> "सत्य और अहिंसा ने समाज में घर नहीं किया है, अभी ये युक्ति के रूप में स्वीकार किए गए हैं, यही कारण है कि सेवकों के ध्यान में भी यह बात स्पष्ट रूप से आई नहीं कि सामाजिक सत्य और अहिंसा का मूल तो व्यक्तिगत सत्य और अहिंसा है अर्थात आत्मशुद्धि है।"

जबतक मानव-मानव में सदाचारिता, उदारता, दानशीलता और अपरिग्रह की भावनाओं का फिर से उदय नहीं होता तबतक समाज की दशा नहीं सुधर सकती।

भारतीय-दर्शन में निष्काम-कर्म करना श्रेयस्कर माना गया है। निष्काम-कर्म का कर्त्ता कर्म-फल की इच्छा अथवा प्रत्युपकार की भावना नहीं रखता, इस कारण से ही उसे उसकी सिद्धि और असिद्धि में हर्ष-विषाद नहीं होता अतएव उसका उसके व्यवहार का अपनेआप समाज में सम्मान होने लगता है।

मानव के प्रवल शत्रु होते हैं उसके स्वयं के विकार जो कि तृष्णा, स्वार्थ, राग-द्वेष और अहंकार वश उसमें समय-समय पर उत्पन्न होते हैं। आध्यात्मिक विचारधारा का साधक प्रथम इन विकारों को शमन करने का यत्न करता है, उनपर विजय प्राप्त कर लेने के पश्चात अपने आप उनका निर्मल चरित्र ज्ञान की ओर बढ़ चलता है।

स्वभावतः मानव सर्वत्र शांति और आनंद का अभिलाषी रहता है। ज्ञान जागरूक होते ही उसका अपने प्रत्येक कर्म में आनंद की अनुभूति होने लगती है, और वही अनुभूति उसको उत्तरोत्तर आगे बढ़ने के लिए प्रोत्साहित करती रहती है। ऐसे साधक को अपनी असफलता पर दुख और निराशा नहीं होती, वे असफल होने पर दूने उत्साह से कार्य में संलग्न हो जाते हैं जिससे अन्त में सफलता मिलकर ही रहती है।

आध्यात्मिक चिंतन का साधक यह भली प्रकार जानता है कि उसकी अंतरात्मा की प्रमुख भावना आनंद मय है अतएव उसको सर्वत्र आनंद-ही-आनंद दृष्टिगोचर होता है।

हमारे आचार्यों ने माना है कि स्वभावतः प्रत्येक मानव में पांच भावनाएं विद्यमान रहती हैं। वे हैं ज्ञान, सौन्दर्य, प्रेम, कल्याण और निर्माण, इन भावनाओं को विकसित करने के लिए आध्यात्मिक ज्ञान अधिक सहायक होता है।

श्रीमद् भगवद्गीता तथा अन्य दार्शनिक ग्रंथों में इस विषय पर विस्तारपूर्वक उल्लेख किया गया है।

संसार में प्रत्येक मानव शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात कार्य-क्षेत्र में प्रवेश करके उत्तरोत्तर अपनी उन्नति करने में संलग्न रहता है। यदि प्रारंभ से ही उसकी विवेक-बुद्धि जागृत रहे तो वह अपने नित्य प्रति के किए गए कर्मों में विशेष तारतम्य उत्पन्न कर सकता है। सौंदर्य से तृप्ति का अनुभव कर सकता है, पारस्परिक प्रेम-भावनाओं को बढ़ा सकता है, प्राणि मात्र के कल्याण की कामना कर सकता है और जन-हित, भूत-हित एवं लोक-निर्माण हित समुचित भावनाओं को विकसित कर सकता है।

युग की यह आवश्यक मांग है कि जन-जन में आध्यात्मिक-पुनरुत्थान की भावनाओं को जाग्रत किया जाय।

हमारे पतन का मुख्य कारण ही यह है कि हम आध्यात्म ज्ञान को भूल गए हैं। विदेशी शासकों ने केवल हमारी स्वाधीनता का ही अपहरण नहीं किया था, वरन हम सबको अनेक प्रकार से अपनी उच्च संस्कृति से दूर करने का भी उनने भरसक यत्न किया, उसका ही दुष्परिणाम है कि जन-जन का अधःपतन हो गया। अब आवश्यकता है

(शेष पृष्ठ १२० पर)

श्रद्धा की तीन अवस्थाएं

इंद्रचंद्र शास्त्री

श्रद्धा का अर्थ है दूसरों के प्रति आदर भावना। इसका प्रारंभ गुणों से होता है। हम जिस व्यक्ति को गुणी मानते हैं, उसके प्रति श्रद्धा करते है। गुणों की व्याख्या दो प्रकार से की जाती है।

(१) आदर्श के रूप में,

(२) स्वार्थपूर्ति के आधार पर

आदर्श की कल्पना सर्वत्र एक-सी नहीं होती। प्राचीन संस्कार, सामाजिक वातावरण, शैक्षणिक स्तर तथा आध्यात्मिक चेतना के आधार पर उसके अनेक रूप हो जाते हैं। युद्धप्रिय जाति में पला बालक आदर्श की कल्पना रण-कौशल के आधार पर करेगा। व्यापारी का बालक धन-संपत्ति के आधार पर, विद्याजीवी ब्राह्मण का पुत्र विद्या के आधार पर। इसी प्रकार विभिन्न क्षेत्रों में, विभिन्न आदर्शों की कल्पना की जाती है। राजा या गृहस्थ के लिए वैभव आदर्श माना जाता है। संन्यासी के लिए उसीको बुरा समझा जाता है। वहां इसका स्थान यौगिक विभूतियां ले लेती हैं। जिस व्यक्ति का झुकाव सच्ची आध्यात्मिकता की ओर है, वह त्याग के आधार पर आदर्श की कल्पना करता है। इन सब भेदों के होते हुए भी इस अवस्था में गुणों के आधार पर व्यक्ति की पूजा की जाती है।

आदर्श की कल्पना का दूसरा आधार स्वार्थ-पूर्ति है। जो व्यक्ति हमारे उपयोग में आता है, हमें संकटों से बचाता है तथा आवश्यकता पड़ने पर सहायता करता है, हम उसके दोषों पर ध्यान नहीं देते। सर्वत्र उसका गुणगान करते रहते हैं। पुत्र अपने पिता को आदर्श मानता है। शिष्य अपने गुरु को। इसी प्रकार राजा और समय पर काम आनेवाले प्रतिष्ठित व्यक्ति को भी आदर्श मान लिया जाता है।

बहुत बार ऐसा भी होता है कि हम गुणों की स्वयं परीक्षा नहीं करते। जिस व्यक्ति को बहुत-से लोग प्रतिष्ठा देते हैं, हम भी उसे मानने लगते है। प्रायः साधारण जनता इसी मनोवृत्ति को लेकर चलती है। वह इस बात को देखती है कि किस व्यक्ति के कितने अनुयायी हैं। उसके पीछे राजा, राज्याधिकारी तथा संपन्न व्यक्तियों की कितनी संख्या है। उसका ढोल कितने जोर से बजता है।

द्वितीय अवस्था में श्रद्धेय की प्रतिष्ठा हमारे वैयक्तिक अहंकार के साथ जुड़ जाती है। उपास्य के गुण गाकर उपासक अपने अहंकार का पोषण करता है। इसके लिए सच्चे-झूठे की परवाह नहीं करता। जब अनुयायियों में प्रतिस्पर्द्धा छिड़ जाती है तो प्रत्येक वर्ग अपने उपास्य को दूसरे से ऊँचा सिद्ध करने का प्रयत्न करता है। उसके मन में उत्कृष्टता की जो धारणा होती है, तदनुसार उपास्य में आरोप करता है। पहलवानी को महत्व देनेवाला अपने उपास्य को पहलवान बताता है। संपत्ति-को महत्व देनेवाला संपत्ति-शाली। सौंदर्य को महत्व देनेवाला सर्वांगसुन्दर और ज्ञान को महत्व देनेवाला महाज्ञानी। जो वर्ग त्याग को महत्व देता है, वह उसे सर्वोच्च त्यागी बताता है। धर्म, कर्म, राजनीति आदि प्रत्येक क्षेत्र ने इसके लिए अपने-अपने सांचे तैयार कर रखे हैं और उन्हें उपास्य के साथ जोड़ दिया जाता है। फिर भी इतना अवश्य है कि इस अवस्था में ध्यान गुणों पर रहता है।

बहुत बार ऐसा भी होता है कि एक ही उपास्य पर परस्पर विरोधी गुणों का आरोप किया जाता है। उसे त्यागी कहा जाता है और वैभवशाली भी। जिस समय जिस बात की प्रतिस्पर्धा होती है उस समय उसी गुण

को महत्व दे दिया जाता है। परस्पर विरोध को दूर करने के लिए एक बात को स्वाभाविक कहा जाता है और दूसरी को योगविभूति अथवा उपासकों द्वारा की जाने-वाली भक्ति।

राजनीति में यह श्रद्धा सिंहासन और वंश-पूजा का रूप ले लेती है। गद्दी पर बैठनेवाले प्रत्येक व्यक्ति को आदर्श मान लिया जाता है और उसपर गुणों का आरोप किया जाता है। अनुजीवी वर्ग उसकी वेषभूषा, रहन-सहन, वार्त्तालाप, उठने-बैठने के प्रकार एवं व्यवहार का अनुकरण करता है। यदि वह नुकीली मूंछें रखता है तो दरबारी भी वैसी ही मूंछें रखना प्रारंभ कर देते हैं। उसके जीवन के साथ चमत्कारपूर्ण घटनाओं को जोड़ा जाता है।

प्रतिष्ठा का यह रूप धार्मिक परंपराओं पर भी छाया हुआ है। मुसलमानों की आगाखानी परंपरा में गद्दी पर बैठने वाले प्रत्येक आगाखां को मुहम्मद की संतान माना जाता है और इसी आधार पर उसे सर्वोच्च प्रतिष्ठा दी जाती है। वह अरबों की संपत्ति रखता है, अनेक विवाह करता है, घुड़दौड़ में दांव लगाता है। सारा जीवन विला-सिता में बिताता है। फिर भी धर्मगुरु के रूप में उसकी प्रतिष्ठा अक्षुण्ण है। हिन्दुओं में भी वल्लभ एवं अन्य संप्रदायों में धर्मगुरु का यही रूप है।

तृतीय अवस्था में व्यक्ति अपने-आपमें श्रद्धा का विषय बन जाता है। गुणों के कारण उसकी प्रतिष्ठा नहीं होती, किन्तु उसकी प्रत्येक बात को गुण मान लिया जाता है। उसका उठना-बैठना, हँसना-बोलना, खाना, पीना, खेलना, उपहास करना आदि प्रत्येक बात गुण बन जाती है और भक्त-गण अनुकरण करने लगता है। भक्तिवाद उसका ज्वलंत उदाहरण है। भगवान कृष्ण का हँसना, बोलना, क्रीड़ा करना, गोपियों के साथ विलास आदि प्रत्येक वस्तु को आदर्श मान लिया गया। राम मंज़ीफा या शतरंज खेलते हैं, उसे भी अनुकरणीय बताया गया। गीत गोविन्द में कृष्ण की विलासक्रीड़ाओं का नग्न चित्रण है। यदि उनका संबंध किसी साधारण व्यक्ति से होता तो ऐसे साहित्य को अश्लील कहा जाता। किन्तु राधा और कृष्ण का वर्णन होने के कारण उसे भक्ति-साहित्य का अनुपम रत्न मान लिया गया।

बहुत-सी परंपराओं में भगवान की उपासना पति या जार के रूप में की जाती है। वहां प्रत्येक भक्त अपनेको स्त्री मानता है और ऐसी चेष्टाएं करता है, जैसे स्त्री अपने पति या उपपति के सामने किया करती है। फलस्वरूप पुरुष भी साड़ी पहनते हैं, परस्पर संबोधन में स्त्रीलिंग का प्रयोग करते हैं और महीने में चार दिन रजस्वला होने का स्वांग भी रचते हैं। उनके परस्पर उपहास सौतिया डाह को प्रकट करते हैं। बताने की आवश्यकता नहीं है कि इस अवस्था में आदर्श को सर्वथा तिलांजलि दे दी जाती है। गुणों के आरोप की आवश्यकता भी नहीं रहती। नैतिकता ज्ञान, आध्यात्मिक योग्यता आदि का कोई मूल्य नहीं रहता।

स्वार्थपूर्त्ति, अहंकार तथा कामवासना मनुष्य की स्वा-भाविक वृत्तियां हैं। इनके लिए उसे दूसरे से सीखने की आवश्यकता नहीं है। धर्म का काम इनपर नियंत्रण करना है। वह मनुष्य को हिंसक, अहंकारी तथा कामुक होने से बचाता है। इसीलिए प्रारंभिक अवस्था में नहीं रुचता। किंतु जब धर्म दमन के स्थान पर इनका पोषण करने लगता है तो अनुयायियों की कमी नहीं रहती।

ईसा ने शत्रु को भी गले लगाने का उपदेश दिया। किंतु उस समय उन्हें अनुयायी नहीं मिले। इतना ही नहीं उन्हें फांसी पर लटका दिया गया। किन्तु जब क्रूसेड के नाम से धर्मयुद्ध प्रारंभ हुए और तलवार के बल पर दूसरों को ईसाई बनाने का अभियान चला तो अनुयायियों की बाढ़ आ गई। इस्लाम ने खुदा को रहीम कहकर रहम अर्थात् दया का उपदेश दिया। किन्तु वह गले न उतरा। इसके विपरीत जब उसने तलवार के बल पर दूसरों को मुसलमान बनाने का अभियान प्रारंभ किया तो चंगेज खां, कुबला खां, नादिरशाह आदि आततायी भी अपनेको सच्चा मुसलमान कहने लगे। स्वार्थ, कामवासना एवं अहंकार के उन्माद में उन्होंने लाखों व्यक्तियों को मौत के घाट उतार दिया और इसे धर्म की सेवा समझा।

शैतान अपने असली रूप में मानव-हृदय पर आक्रमण करते हुए कुछ हिचकिचाता है। इसके लिए वह धर्म का जामा पहन लेता है। फिर कोई झिझक नहीं रहती। भोग और मोक्ष दोनों में समन्वय हो जाता है। राजा ही धर्मगुरु बन जाता है। इसके लिए सिंहासन छोड़ने की आवश्यकता नहीं रहती। अंधकार को प्रकाश मान लिया जाता है और प्रकाश का नास्तिकता कहकर बहिष्कार होने लगता है। द्वितीय अवस्था में गुणों की ओर ध्यान रहता है। किन्तु तृतीय अवस्था में आलोक की वह किरण भी बुझ जाती है।

ब्रज के लोकगीतों में बालगीत

● सत्यप्रकाश गोस्वामी 'गिरीश'

लोकगीतों की परम्परा शाश्वत है। इनका चित्रण सरल, मार्मिक व कवित्वपूर्ण होता है। बालक की भावनाएं अछूती और कोमल होती हैं। खेल उनके जीवन का सुरुचिपूर्ण, महत्वपूर्ण और आवश्यक अंग होता है। बच्चों की दुनिया ही अलग होती है। मस्त बालक अपनी दुनिया में अपनी तरह रहते हैं। उनके खेलों में, पढ़ने में, ऋतुओं-मौसमों में उनके अलिखित गीत खूब सुनने को मिलते हैं। इन गीतों में सार्थकता भरी रहती है। कुछमें केवल मन-बहलाव की तुकबन्दी ही—पर सबमें बाल-सुलभ चपल भावना अवश्य रहती है। इन गीतों को बालक अपनी बाल-परंपरा से प्राप्त करते चले आये हैं। कुछेक गीत समय और वातावरण के अनुसार बनते-बिगड़ते चलते हैं।

'बनिया' सदा से किसानों का शोषक रहा है। गांव में दुकान जमाकर बैठ जाता है। सूदखोरी से बच्चों के मां-बापों की फसल को अपने यहां रखता है। बच्चों को भी बनिये से स्वाभाविक चिढ़ है। आषाढ़ में जब पानी नहीं बरसता और फसल बोने का समय निकल जाता है—ठीक उस समय जब बादल गरज-गरज कर रह जाते हैं, बच्चे टोलियों में गाते हैं :

"बरसो 'राम', बबै दुनिया,
खाय किसान, मरै बनिया।"

इसी तरह—

"मंगल बारी परै दिवारी,
खाय 'किसान' मरै व्यापारी।"

व्यापारी से तात्पर्य उसी सूदखोर महाजन से है। किसानों के माल को अपनी व्यापारिक कला से खींचनेवाला 'बनिया' बच्चों को फूटी आंख नहीं भाता—गा-गा कर कहते हैं—

"बनिया बनैटा गुड़ में चेंटा।
गुड़ न होय तो मेरोइ बेटा।"

बनिये की बात तो अलग रही। सेवक रूप में जो जातियां गांव में रहती हैं, उनको भी बच्चे टोलियों में गा-गाकर इसी तरह चिढ़ाते हैं।

तेली से—

"तेली-तेली तेल दै।
'काए को ?' सरसों कौ।
तेली मरिगौ पर्सों कौ।"

इसी तरह—

"नौआ रे नौआ !
तेरे मूड़ पै कौआ।"

'राम' ईश्वर है। 'राम की व्यापकता बच्चों के मन में पूरी तरह से भरी है। हर काम राम के इशारे पर ही होते हैं, यह बात बालक का मन समझता है। फिर जो अपना भला करे, वही राम है, चाहे वह बादल हो या हवा। इसीलिए उन्होंने बादलों को सम्बोधित करते हुए कहा था—"बरसो राम, बबै दुनिया।" बादलों को राम का रूप देकर यही बात बादलों से बालक फिर कहते हैं—

"बरसो 'राम' धड़ाके-से।
बुढ़िया मरिगई फाके-से।"

इस बालगीत में 'धड़ाके' की ध्वनि कितनी अर्थ-ध्वनित है! गरजना तो इतनी जोर का और बरसना पानी की एक बूंद भी नहीं। कहीं ऐसा ही मत कर बैठना—'गरजते सो बरसते नहीं'। बादल गरज रहे हैं, घुमड़ रहे हैं; इसीलिए बच्चे कहते हैं, "राम बरसो, धड़ाके से बरसो। जैसे गरज रहे हो वैसे ही जोड़-तोड़ से मूसलाधार बरसो। और हे राम! सुनो तो तुम्हारे न बरसने से (अनाज के न होने से) भूख के कारण बुढ़िया तो मर गई। हम तो तुम्हारे बालक

हैं। यह मौका (भूख से मरने का) अब न आने पाये।—बरसो, धड़ाके से बरसो।

हर ऋतु अपना असर बच्चों पर रखती है। आंधी आती है, धूल उड़ती है। बच्चों की टोलियां उस आंधी में ही शोर मचाती हुई निकल पड़ती हैं—

"आंधी आई मेउ आयौ, बड़ी बहू को जेठु आयौ।
चब्बे कूं चबैना लायो, मारिबेकू पैना लायौ।"

जबतक आंधी चलती है, इसी तरह गा-गा कर उस धूल भरे मौसम को बच्चे गुजार देते हैं।

जाड़ों में, गांव के बालकों को सूरज की धूप ही एक सहारा होती है। कभी-कभी वह सूरज भी जब बादलों की ओट में चला जाता है, बच्चे अपने गीतों की पुकार से उसे निकाल ही लेते हैं—

"सूज्ज-सूज्ज घाम निकार
अपनी डुकरियाए जाड़े मार।"

अब बच्चों के खेल के मैदान में आकर देखिये उनके खेल और सुनिये उनके गीत। अपने खेल का प्रारंभ कुशल सूत्र-धार की तरह वे करते हैं—

"चलौ बालकौ खेलिंग,
कूआ में ढकेलिंगे—
गुड़ की भेली फोरिंगे।"

इन बाल-गोपालों का शायद ही कोई खेल गीतों से अछूता हो। "अटकन बटकन" बालक-बालिकाओं दोनों का ही एक खेल है—प्रायः लड़कियां ही इसे खेलती हैं। अधिक-तर खेलों में बच्चों में लिंग-भेद होता ही नहीं है। हाथ को अंगुलियों के आधार पर उल्टा रखकर बच्चे बैठ जाते हैं। खेल का प्रधान बालक अपनी तर्जनी सब हाथों पर रखता जाता है। और इस तरह गाता जाता है—

"अटकन-बटकन दही चटाके,
मन फूले बंगाले—
तुरई को मांसु, मकोई कौ डंका
... ...
मामा लायौ सात कटोरी, एक कटोरी फूटी।
मामा की बऊ रूठी, काए बात पै रूठी?
दही-दूध पै रूठी।
दही दूध भौतेरो, खायबे कूं म्हौ टेढ़ौ।
बहू के भयौ लरिका, बिछाय दै रानी पलिका।"

गांव में हाथी आ जाने पर बच्चों में बड़ा शोर मच जाता है। पीछे-पीछे गाती हुई टोलियां भागती हैं—

"हाथी-हाथी, सूँड़ बिलाती,
तेरे घर में दिया न बाती।"

ऊंट और घोड़े को देखकर भी बच्चे चिल्लाकर गाते हैं—

"ऊंट को म्हौ कारौ, उटबरिया मेरौ सारौ"
"घोड़ी बारे घोड़ी बारे, तबल बजाय—
दाल-रोटी जब दूंगौ—पुंछ खुजाय"

इसी तरह नीलकंठ को देखकर भी बच्चे गाने लगते हैं—

"नीलकंठ पटवारी! तैंने हरी चिरैया चों मारी?
का करूं म्हाराज, मेरी खोपड़ी फोड़ारी।"

दशहरे पर नीलकंठ का दर्शन शुभ समझा जाता है। बच्चे जब भी नीलकंठ को देखते हैं, एक साथ चिल्लाकर गाते हैं।

कबड्डी खेलते समय, छोटे-छोटे गीत बनाकर, उन्हें गाकर बच्चे कबड्डी खेलते हैं—

"झुंझुना झौराती पाती, मारूं लात झुकाय दऊं हाथी।"
"कबड्डी तीन तारे, हनुमान ललकारे, बच्चा बीन-बीन मारे।"

"अंगा छै, अंगा छै, पानी में बबूला छै"

क्या इस अंतिम गीत में कबीर की अनुभूति से कुछ कम सचाई है—"पानी केरा बुदबुदा अस मानस की जाति....।" यही बात तो इस बालगीत में है—जिस तरह पानी में उठा हुआ बबूला (बुदबुदा) क्षय हो जाता है, उसी तरह यह मनुष्य अंग भी क्षय हो जायगा।

कबड्डी खेलने के ये गीत ब्रज में, अलग-अलग गांवों में अनेक रूपों में मिलते हैं। कोई एक रूप ब्रज में इन गीतों का कदाचित् नहीं है।

आपस में बच्चे एक दूसरे को चिढ़ाने के लिए हास-परिहास में कुछेक गीत गाते हैं। जब कोई बालक सिर मुंडाकर निकलता है, तो बच्चे उसे चिढ़ाकर गाते हैं—

"खुरमुंडी चांदि करब ढोबै,
लगै फदेरौ तब रोबै।"

इसी तरह—

"गंज खोपड़ी सिलबटना,
सरकार को रुपया टर्रकमा।"

आपस में बालक कहते हैं—

"राम-राम"
"तुम्हारी बऊ हमारे गाम"

मौसी (ब्रज भाषा में 'मौंसी'—मां की बहन) के रिश्ते में विनोदपूर्ण व्यवहार में यह बालगीत ब्रज में खूब प्रचलित है—

"मौसी-मौंसी ! कुत्तनु खौंसी,
आए मौंसा दै गये लात, बताय दै मौंसी परु की बात,
बात गयी कूआ में, मौंसी जुरि गयी जूआ में।"

आपस के विनोद में एक बालक दूसरे से कहलवाता है—"कुआं पै चक्कू" फिर स्वयं कहता है—"मैं तेरी कक्कू"

इसी तरह—

"कुआ पै चटनी"
"मेरी मां नटनी"
"कुआ पै परात"
तेरी आई बरात"

ब्रज की अनेक प्रचलित पहेलियों में भी बालगीत गाये जाते हैं—

"पीरो पोखरि पीरेइ अंडा, बेगि बता नइ देतूं डंडा।"
(हल—बेसन की कढ़ी और पकौड़ी)

दही-दूध की सम्पन्नता के लिए ब्रज प्रसिद्ध रहा है। उससे सम्बन्धित एक पहेली गीत देखिये—

"घोंटनु बीच कमर फन्दा, नाचतु आवै रमचन्दा"

मटके में दही घुटनों तक कीच है, रई में नैती (रस्सी) का लिपटना कमर का फन्दा है और दही बिलोते समय रई का चलना और शब्द करना रमचन्दा का नाच है।

रबी की लहलहाती खड़ी फसल को देखकर बच्चे प्रसन्न मन से गाते हैं—

'चकई के चकदम, गाड़ी बारे मुकदम,
चना चौधरी मटर गुलाम, ठाड़ी सरसों करै सलाम"।

कुछ गीत उस समय के देखिये जब बच्चे पढ़ने जाते हैं। इनको पढ़ानेवाला पंडित (अध्यापक) इन्हें अच्छा नहीं लगता, कारण वह इन्हें पीटता है। बच्चे इसे जीतेजी मरा चाहते हैं। रास्ते चलते कहते जाते हैं—

"पट्टी पै पट्टी, पट्टी पै नौंनु।
पंडिज्जी मरि गये, पढ़ावैगो कौनु ?"

पंडितजी न भी मरे हों तो उन्हें गुरु के नाते पहले पालागन (चरण स्पर्श) करते हैं और बाद में मारने की खुली चुनौती दे बैठते हैं—

"पंडिज्जी पंडिज्जी पालागें,
चलो बरी तर फाड़ा रें,
चलो ढाक तर सीलावें,
चलो पाट तर धोलावें।"

इस तरह पंडितजी को मारने के बाद पाठशाला में पहुंचते ही उनकी पट्टी भी गीत की सहायता से सूखती है—

"सूख-सूख पट्टी, चन्दन गट्टी,
आयौ राजा महल चुनायौ, महल के ऊपर झंडा—
झंडा गयौ टूट, पट्टी गयी सूख।"

स्कूल में डिप्टीसाहब के आने की सूचना भी वे गाकर देते हैं—

"आज की छुट्टी कल्ल की मार,
परसों आवें डुपटी साब।"

इस तरह ब्रज के बालकों की जीवनचर्या का प्रत्येक पहलू अलिखित गीतों से भरा है।

वैसे तो प्रतिदिन ही उठने से लेकर रात को सोने तक इनका प्रत्येक क्षण—भोजन, पाठशाला आदि में भी खेलने, और उछल-कूद तथा इन गीतों के गाने में बीतता है। पर इनके खेलों के कुछ विशेष पर्व भी होते हैं। टेसू, झांझी तथा चट्टा ऐसे ही विशेष खेल पर्व हैं। जो वर्ष में एक-एक बार क्वार तथा भादों में आते हैं। टेसू तथा झांझी क्वार में खेले जाने वाले एक ही पर्व के दो खेल हैं। टेसू बालकों तथा झांझी बालिकाओं का खेल है।

टेसू तथा झांझी क्वार की दशमी से शुरू होकर पूर्णमासी को समाप्त हो जाते हैं। टेसू तीन टांग का बांस की खपच्चियों का बना होता है। उसपर दीपक जलाकर रात्रि को घर-घर सामूहिक रूप से बच्चे ले जाते हैं और टेसू के गीत गाकर टेसू को भेंट लेते हैं। झांझी बहुत-से छेदों का मिट्टी का एक बर्त्तन होता है। उसमें भी दीपक जलाकर लड़कियां

घर-घर ले जाती हैं और गीत गाती हैं।

टेसू के कुछ गीत देखिये—

"इमली की जड़ में निकरी पतंग,
नौसे मोती नौसे रंग।[1]
एक रंग मैंने मांग लिया, चढ़ घोड़े सवार किया।
किया है भाई किया है, दिल्ली जाय पुकारा है ॥
दिल्ली का है काला चोर, मार सिकन्दर पहली चोट।
चोट गई चूल्हे की ओट, चूल्हौ मांगै सौ-सौ रोट ॥
एकु रोटु घटिगो, चूल्हो बेटा लटिगौ।
चूल्हे में मारो ढक्का, जाय परौ कलकत्ता ॥
फिरंगो मेरौ बच्चा, मैं बाकौ चच्चा।
फिरंगो बैठो आंगन में, दै सारे की टांगन में ॥"

उपर्युक्त गीत में कथात्मकता तो है, पर कथा में कोई सिर पैर खास नहीं है। इसी तरह टेसू के अन्य सभी गीतों में प्रबंधात्मकता तो मिलेगी, पर कथानक यों ही भिड़ाकर तैयार किया है। बल अधिकतर कथा पर नहीं गीत की तुक और सामूहिक लय पर दिया गया है।

"टेसूरा घंटार बजइयो, नौ नगरी नौ गाम बसइयो।
बसि गये तीतुर बसि गये मोर, पकरि चमरियाऐ
लै गय चोर ॥
चोरन के घर खेती, खाय चमरिया मौंटी।
मौंटी है के गई बजार, बजारते लाई धनियो ॥
पीछे परिगो बनियौ।"

एक गीत में टेसू राय की एक विचित्र गाय का वर्णन देखिये—

"टेसू की गैया कच पँदरिया, असी उला भुसु खाय।
बड़े ताल को पानी पीवै, हगन बटेसुर जाय।"

एक गीत और—

"पातरिया री पातरिया, तेरी पतरी तीर कमान।
तीर में झटोका मारौ, दिल्ली आसमान ॥
दिल्ली ते तौ गाइ आई, भैंसि आई, भैंसा चौं नहिं
आया[2] है?
आधी रात नगाड़ौ बाजौ, भैंसा रैंकतु आया है।
जंगी मोर में सांटा मारा[3], ताल-सा भिन्नाया[4] है।
ताल गई पेट में, बन्दूक गई रेत में ॥"

टेसू के अनेक गीत ब्रज में प्रचलित हैं, जो वहां के बच्चों द्वारा गाये जाते हैं। झांझी के भी इसी तरह कथात्मक गीत लड़कियों द्वारा गाये जाते हैं। झांझी के कुछ गीत देखिये—

"झांझी आई, झांझी आई; अंगन बुहारौ जी।
अंगन बुहारत दो मोतीरा पाये जी ॥

आगे इस गीत में यह क्रम है कि वे दोनों मोती सास को दिये। सास ने उन्हें फोड़ दिया। तदुपरांत फूटे हुए मोती उसने फिर अपनी मां के पास भेज दिये। फिर अपने स्वजन सम्बन्धियों का वर्णन किया है—

"तखरी कौ पौधा मेरौ मामा कहिए, म्हौ मटकनिया
मांई जी।
कारे-कारे देवर कहिए, कंजरिया दौरानी जी ॥"
सौने की लठिया भैया कहिए, कमल फूल भौजाईजी।"

भाभी को सबसे अच्छा माना है। एक अन्य गीत में मां और बेटी के वार्तालाप में भाभी का वर्णन देखिये—

"मा भाभी को मुँहड़ो कैसो ?
नाक चनासी, म्हौं बटुआ-सौ, घूँघट में मनलाई।
रौ खानी बहुत कमानी, जे जुग जीती आई।
मा रोटी कितनी खावै, ? पारेवरिया।
'बेटी चही की चही उड़ावै। पारेवरिया।'"

---

[1] डा० विश्वनाथ प्रसाद द्वारा सम्पादित 'भारतीय साहित्य' वर्ष : ५, अंक : ४ में—

"इमली की जड़ में निकसी पतंग,
नौसौ मोती नौ से जंग—
एक जंग मेरी टेड़क मेड़ी....." लिखा है। कुछ स्थानों पर इस तरह भी गाया जाता होगा। पर 'मोती' के साथ 'रंग' अधिक समीचीन है, 'जंग' नहीं। इन पंक्तियों के लेखक ने भी अपने बचपन में 'रंग' ही गाया है। प्रचलित भी यही अधिक है। अतः यह अधिक प्रामाणिक लगता है।

[2],[3],[4] आया है, मारा है आदि खड़ी बोली की क्रियाएं हैं। ग्रामीण बोल-चाल की भाषा में इस तरह खड़ी बोली की क्रियाओं का, शब्दों का सम्मिश्रण अत्यन्त सरल-स्वा- भाविक है। ग्राम गीतों में किसी न किसी तरह फिल्मगीत प्रवेश करने का प्रयास कर रहे हैं। पर उन्हें अलग से पहचाना जा सकताहै, घुले-मिले नहीं हैं।

एक फूहड़ का वर्णन झांझी गीत में इस तरह है—

"फूअर पीसे पीसनौ, मेरी रावरिया ।
जैसे गिरियारे[1] को रेतु, भली मेरी रावरिया ॥
.. .. ..
फूअर मांड़ै माड़नौ, मेरी रावरिया ।
जैसे भदों की कीच, भली मेरी रावरिया ॥"

एक गीत और देखिए—

"बाबाजी के चेली चेला भिच्छा मांगन आयेजी ।
भरि चुकटी मैंने भिच्छा डारी, चुंदरिया रंग लाये जी ॥
चुंदरिया की उरकन मुरकन, द्वै मोती मोए पायें जी ।
बे मोती मैंने सासुऐ दिखाए, सासु निपूती ने धरि पत्थर पै फोरेजी ।"

मोतियों का पाना, पहले सास को देना, और सास द्वारा फोड़ना, फिर मा को भेजना, यह क्रम दो गीतों में दो रूपों में यहां आया है। दोनों रूपों में भिन्न-भिन्न जगह यह गीत चलते हैं। और भी झांझी के ऐसे गीत हैं, जिनमें मातृत्व और भ्रातृत्व की छाप मिलती है।

भादों शुक्ल पक्ष की चौथ तथा कहीं-कहीं द्वादशी को चट्टे निकलते हैं। 'चट्टा चौथ' ही अधिक प्रचलित है। अलीगढ़ जिले के गांव, जो ब्रज के अन्तर्गत आते हैं, वहां 'इन्द्र द्वादशी' के रूप में भादों शुक्ल पक्षी द्वादशी को चट्टा निकलते हैं। चट्टा का सम्बन्ध चटशाला से है, जो पाठशाला का पर्याय है। चटशाला या पाठशाला से समस्त बच्चे अच्छे कपड़े पहनकर, अध्यापक के साथ हर बालक के घर जाते हैं। हाथ में एक-एक फीट तक के दो डंडे होते हैं, इन्हें चट्टा कहते हैं। चट्टा बजाकर बच्चे गीत गाते हैं। अध्यापक को दक्षिणा मिलती है और बच्चों को बताशे। 'चट्टा चौथ' या 'इन्द्र द्वादशी' के कुछ गीत देखिए—

"उठ-उठ री गोविन्द की मा, भीतर से तू बाहर आ ।
गड़े-गड़ाये रुपया ला, पंडिज्जी कूँ बागौ ला ॥
मिसरानी कूँ तीहर ला, चट्टनु कूँ बतासे ला ।
चट्टा दिंगे भौतु असीस, बेटा हुंगे नौसे तीस ।
इन बेटनु की भई सगाई, नाचैं इनकी चाची ताई ।
नांचि नूंचि के लैंइ बलैंयां, देर होति ऐ लाओ रुपैया ।"

1—डगर कच्चे रास्ते को कहते हैं। बैलगाड़ी, पैदल यात्री, घोड़े-खच्चर सभी इस पर होकर जाते हैं। ब्रज भाषा में इसे—डगरौ, दगरौ, गिरियारौ कहते हैं।

एक अन्य गीत—

"एक नाऊ की नाइन खोटी, एक चना में सोलै रोटी ।
नाऊ गया गूलर खान, पकरि लियें चींटे ने कान ॥
छोड़ि-छोड़ि मेरे जिजमान, अब ना आऊं गूलर खान ।
आयौ बसन्तक सुनौ सही, एक नाऊ की चौपई कही ॥"

एक गीत और—

"भाभी से देवर यौं कहै, तू ठाली बैठी चौं रहे ?
करो रसोई जल्द तैयार, भोजन करो मूंग की दार ॥
भाभी ने देवर ललकारे, चले सुपकते थप्पड़ मारे ।
जा भइया सूं करी पुकार, भैया बोले अरे गमार ॥
तू का जानैं भाभी की सार, एक लात तौ मो मैं दई ।
सरम के मारे कछु ना कई । आ भइया उठि बैठो प्यारे ।
हम तुम दोनों रहैंगे न्यारे ।
आयौ बसन्तक बजे नगाड़े, भाभी जीती देवर हारे ।

चट्टे आने पर बच्चे की मां कितनी प्रसन्न होती है, यह वर्णन इस गीत में देखिए—

"बड़ भागिन जो होबै नारि, चट्टा आवैं बाके द्वार ।
हँस मुसकाइ सबन ते बोलै,र हसी फूली आंगन डोलै ।
ऐसे चट्टा नित-नित आवैं, मन हमरे की कली खिलावैं ।

इधर एक बनिए को एक चुहिया ने परेशान कर रखा है—

...एक चूही ना मन में डरी ।
उछरि सेठ की धोती परी ॥
चूं चूं चूं धोती करे में, बनिया धोती पकरे फिरै ।
.. .. ..
आ यूं ही तू बाहर आ, घी शक्कर का भोगु लगा ।
जब चूही ने दांत दिखाए, सात पांच बनिए लुढ़काए ॥
आयो बसन्तक सुनि लेउ सही, बीर सेठ की चौपई कही ।

चट्टों के अनेक गीत ब्रज में बच्चों द्वारा गाये जाते हैं।

कसौटी पर

भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी के प्रकाशन

अन्धा चांद : लेखक मुनि रूपचन्द्र, पृष्ठ ७२, मूल्य रु० ३.००

प्रस्तुत पुस्तक आचार्य श्री तुलसी के अंतेवासी मुनि रूपचंद्रजी की ५८ कविताओं का संग्रह है। पुस्तक के नाम के संबंध में लेखक ने लिखा है, "चांद के साथ 'अंधा' विशेषण मैंने उसके स्वरूप-विश्लेषण की दृष्टि से रखा है और यही दृष्टि मेरी अधिकांश रचनाओं में प्रधानता लिये है। वैसे उधार लिये प्रकाश से प्रकाशित होने की अपेक्षा मुझे अंधापन अधिक पसंद भी है, क्योंकि वह सत्य है।

सरल-सुबोध भाषा में रची गई ये कविताएं विचार-प्रेरक एवं उद्बोधक हैं। प्रायः सभी कविताएं सुपाठ्य हैं और उनकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे किसी वर्ग-विशेष के लिए नहीं, सबके लिए हैं। आत्मार्थियों के लिए तो ये रचनाएं दिशा-दर्शक हैं। रचनाओं का संकलन कमलेश चतुर्वेदी ने किया है।

एक साहित्यिक की डायरी : लेखक : गजानन मुक्तिबोध, पृष्ठ ११६, मूल्य ढाई रुपये।

गजानन मुक्तिबोध हिन्दी के जाने-माने लेखक थे। वह छोटी उम्र में चले गये, लेकिन इन वर्षों में साहित्य को वह बहुत-कुछ दे गये। प्रस्तुत पुस्तक में दस निबंधात्मक प्रकरण हैं। शैली और विचार-तत्त्व दोनों की दृष्टि से ये सब प्रकरण पठनीय हैं। उनमें प्रश्न उठाये गए हैं और पाठकों को उन प्रश्नों पर सोचने के लिए प्रेरित कर दिया गया है। पुस्तक के परिचय में ठीक ही कहा गया है, "हिंदी में डायरी-विधा की यह पहली कृति है, जो फैंटेसी, मनोविश्लेषण, तर्क, कविता, आत्माख्यान के विविध स्तरों पर एक साथ चलती है।" पूरी पुस्तक बड़ी ही रोचक है और विचारों की गंभीरता होते हुए भी वह बोझिल नहीं बनी है।

प्रतिनिधि रचनाएं (भाग ४),
प्रतिनिधि संकलन (भाग ५) और
प्रतिनिधि संकलन (भाग ८)

भारतीय ज्ञानपीठ 'राष्ट्र भारती माला' का प्रकाशन वास्तव में बड़े सुन्दर और उपयोगी ढंग से कर रहा है। 'प्रतिनिधि रचनाएं' में पंजाबी के लेखक करतारसिंह दुग्गल की श्रेष्ठ रचनाएं दी गई हैं। नाटक, कहानियां, उपन्यास, कविताएं, संस्मरण, निबंध सबकी झांकी इस पुस्तक में मिलती है। वस्तुतः यह संग्रह ऐसा है, जो लेखक की साहित्यिक प्रतिभा को सम्पूर्ण रूप में प्रस्तुत कर देता है। रचनाएं अपने आपमें सुपाठ्य हैं, लेकिन उनसे लेखक को अधिक अच्छी तरह से जानने और विविध पहलुओं से उसे परखने में भी मदद मिलती है। पृष्ठ २८८, मूल्य चार रुपये।

प्रतिनिधि संकलन (भाग ५) पृष्ठ २८८, मूल्य रु० ४.००।

इस संग्रह में हिन्दी, बंगला, पंजाबी, तेलुगु, तमिल, मराठी, गुजराती, मलयालम तथा कन्नड़ का चुना हुआ एक-एक एकांकी दिया गया है। प्रत्येक एकांकी के आरम्भ में हर भाषा के एकांकी-साहित्य का संक्षिप्त परिचय देते हुए बताया गया है कि एकांकी नाटकों की वर्तमान स्थिति तथा प्रेरणाएं क्या हैं। संग्रह के नाटक सुपाठ्य हैं और उनमें से कई एक मंच पर भी खेलने के योग्य हैं।

प्रतिनिधि संकलन (भाग ८), पृष्ठ २३०, मूल्य रु० ४.००।

प्रस्तुत संग्रह सन् १९४० से १९६४ तक की आधुनिक मराठी कविता के अठारह प्रतिनिधि कवियों की चुनी हुई कविताओं का संग्रह है। इन कविताओं का हिन्दी रूपान्तर एवं संकलन श्री दिनकर सोनवलकर ने किया है। इसमें सर्वश्री आ. रा. देशपांडे अनिल, आरती प्रभु, इंदिरा संत, कुसुमाग्रज, ग. दि. माडगूलकर, दिलीप पुरुषोत्तम चित्रे, ना. घ. देशपांडे, पु. शि. रेगे, पद्मा, बा. म. बोरकर, मंगेश पाडगांवकर, मधुकर केचे, बाल सीताराम

मढेंकर, वा. रा. कांत, विन्दा करन्दीकर, वसन्त बापट, शरच्चन्द्र मुक्तिबोध, सदानंद रेगे की पांच-पांच कविताएं हैं। ये कविताएं रचनाकारों के कृतत्व की झांकी उपस्थित करती हैं, साथ ही मराठी लोक जीवन की मानवीय धाराओं का भी रसास्वादन कराती हैं ।

नाटक बहुरूपी : लेखक लक्ष्मीनारायण लाल, पृष्ठ २७८ मूल्य रु० ३.५०

डा० लक्ष्मीनारायणलाल समकालीन हिन्दी नाटकों के लेखन में अपनी विशेषता रखते हैं। इस संग्रह में लेखक के ग्यारह नाटक हैं। ये नाटक मर्मस्पर्शी हैं। इनमें व्यक्ति विशेष की अनुभूतियां होते हुए भी उनकी प्रेरणा व्यापक है। उनमें व्यक्ति नहीं, समाज बोलता है । अधिकांश नाटक मंच पर खेले जा सकते हैं।

हिन्दी गीति नाट्य : लेखक कृष्ण सिंहल, पृष्ठ १४४ मूल्य रु० ४.००

प्रस्तुत पुस्तक में लेखक ने हिन्दी गीति नाट्य का समीक्षात्मक विवेचन प्रस्तुत किया है। उस क्षेत्र की उपलब्धियों पर तो उन्होंने प्रकाश डाला ही है, साथ ही यह भी बताया है कि हिन्दी गीति नाट्य के वर्त्तमान भाव-बोध क्या हैं और हिन्दी की नवीन साहित्यिक विधा को उन्होंने क्या दिया है।

—सव्यसाची

धरती के गीत, हीरादेवी चतुर्वेदी, प्रकाशक : अलका प्रकाशन, ग्वालियर, पृष्ठ ८०, मूल्य रु० १.५०

आलोच्य गीत-संकलन में लेखिका के २५ गीत संकलित किये गए हैं। प्रायः सभी गीतों की भाषा प्रांजल, सरल और गेय गुणों से युक्त है। गीतों का आधार मुख्यतः समाज के नव-निर्माण की प्रेरणा प्रदान करना है।

गीतों का सृजन प्रौढ़ों के मानसिक स्तर का विशेष रूप से ध्यान में रखकर किया गया है। परिणाम-स्वरूप कविता में कल्पना की उड़ान नहीं, जीवन, श्रम, सृजन और निर्माण की यथार्थ भूमि है।

'नया इंसान नया भगवान', 'कायाकल्प देश का होगा', 'मेरा गांव बना अब गोकुल', 'नहीं हुआ कुछ जादू-टोना', आदि गीत उद्बोधक हैं। अधिकाधिक पाठकों तक पहुंचने के लिए इस संकलन का सस्ता संस्करण होना बहुत आवश्यक है। कागज, छपाई, सज्जा संतोषजनक है।

ठुकराए हुए लोग : लेखक शचीन्द्र उपाध्याय, पृष्ठ १३६, मूल्य रु० २.५०; प्रकाशक : सुविचार प्रकाशन, नई दिल्ली

राजस्थान के कथा-साहित्य-सृजकों में शचीन्द्र उपाध्याय अग्रणी हैं। प्रस्तुत उपन्यास उन्होंने हाड़ौती अंचल (कोटा डिवीजन) की पृष्ठभूमि पर पहली बार कलम उठाई है। सन् १९४२ की क्रांति की भूमि को उन्होंने अपनी रचना का आधार बनाया है। साथ ही यह भी दिखाया है कि स्वतन्त्र हो जाने पर मध्यम वर्गीय जनता को कितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है। वर्तमान विषमता के विरुद्ध उसने विद्रोह का स्वर भी ऊंचा किया है।

उपन्यास के नायक गोपाल के जीवन में क्रांति-आंदोलन के माध्यम से तथा बाद में बेकारी एवं महंगाई के कुचक्र में परेशानी के माध्यम से लेखक ने समाज का वास्तविक चित्रण प्रस्तुत करने में पर्याप्त सफलता पाई है। उनकी लेखनी प्रभावशाली है, भावों में प्रवाह है और विषय के प्रति सूझ-बूझ। इस सबसे उपन्यास का कथानक ही नहीं, प्रस्तुतीकरण भी मर्मस्पर्शी बन गया है ।

आशा है, उपन्यास-प्रेमियों को यह कृति पसन्द आवेगी, विशेष रूप से उन पाठकों को, जो कथा-उपन्यास-साहित्य में भी सात्विक रचनाएं चाहते हैं।

—दु० शं० त्रि०

क्या व कैसे ?

विधान-सभाओं के ये उपद्रव!

पिछले दिनों पश्चिमी बंगाल, उत्तर प्रदेश, राजस्थान आदि प्रदेशों की विधान-सभाओं में कुछ विधायकों ने जो उपद्रव किया है, वह किसी प्रकार भी शोभनीय नहीं है। पश्चिम बंगाल में तो वित्त मंत्री को अपना बजट तक पेश नहीं करने दिया और राजस्थान विधान-सभा में राज्यपाल महोदय को कुछ सदस्यों को सभा-भवन से बाहर निकलवा देने के लिए विवश होना पड़ा। यह स्थिति उन व्यक्तियों की है, जिन्हें जनता ने चुनकर भेजा है और जिनसे अपेक्षा की जाती है कि वे लोकतंत्र को मजबूती के साथ चलाने में सहायक हों! उपद्रवों के जो कारण अखबारों में आये हैं, वे ऐसे नहीं हैं, जिन्हें लेकर इस प्रकार के तूफान खड़े किये जायं। मतभेद की गुंजाइश हर जगह होती है, लेकिन उसे हंगामा मचाकर दूर नहीं किया जा सकता। हमारा देश अब स्वतंत्र हो गया है और उसे बनाने -बिगाड़ने की जिम्मेदारी किसी बाहरी सत्ता के ऊपर नहीं, स्वयं हमारे ऊपर है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि आज हमारा देश बड़े संकट से गुजर रहा है। अनेक कठिनाइयां सामने हैं और निकट भविष्य में उनका हल निकल आवेगा, ऐसा दिखाई नहीं देता, उल्टे लगता है कि आगे कठिनाइयां और बढ़ेंगी।

अपनी समस्याओं को सुलझाने का एक ही रास्ता है और वह यह कि हम उनपर गंभीरता से विचार करें और मिल-जुलकर उनका समाधान निकालें। लोकतंत्र में हर व्यक्ति को अपनी बात कहने का अधिकार होता है, यह सही है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि हम कदम-कदम पर तूफान खड़ा करें और वैधानिक मार्ग को छोड़कर हुल्लड़-बाजी का सहारा लें।

हम कई बार लिख चुके हैं कि बिना शिक्षण और अनुशासन के लोकतंत्र का कोई अर्थ ही नहीं है। जो जनता का प्रतिनिधित्व करते हैं, जिन्हें लोकतन्त्र का आधार माना जाता है, वे ही यदि बुद्धिमत्ता से काम नहीं लेंगे तो लोकतंत्र का भवन किसी भी दिन भूमिसात् हो जायगा। गांधीजी और नेहरूजी के स्वप्न धूल में मिल जायंगे।

लोग कहते हैं कि हमारा शासन और अधिकारी वर्ग इसी भाषा को जानता है। धीरे से कही गई बातों से उनके कानों पर जूं भी नहीं रेंगती। हम पूछते हैं कि अगर ऐसी हालत है तो क्यों न वे वैधानिक साधनों से सरकार को बदल दें। आखिर लोकतन्त्र में हर वयस्क व्यक्ति को मत देने का अधिकार है। वे क्यों न अपने उस शस्त्र का उपयोग करें?

हमारी निश्चित राय है कि लोकतन्त्र को टिकाने के लिए लोकशक्ति की नितांत आवश्यकता है। दुर्भाग्य से लोकशक्ति आज लुप्त हो रही है। जिस समय वह जाग जायगी, ये उपद्रव और हुड़दंग अपने-आप बंद हो जायंगे।

युग का तकाजा है कि हम लोकशक्ति को जाग्रत करें। कांग्रेस, सरकार और लोकनेता इस दिशा में प्रयत्न करेंगे, तब अनुकूल परिणाम निकलेगा।

हमारी शिक्षा और भाषा का आधार

चैकोस्लोवाकिया की राजधानी प्राग के चार्ल्स विद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष प्रो० ओडोवेन स्मेकल ने उस दिन बड़ी ही प्रांजल हिन्दी में दिल्ली के साहित्यकारों की एक गोष्ठी में भारतवासियों के अंग्रेजी-प्रेम की भर्त्सना की। उन्होंने कहा कि मैं दिल्ली विश्वविद्यालय में गया। वहां जिस स्थान पर मुझे जाना था, उस स्थान का जिस-जिस छात्र या छात्रा से पता पूछा, उसने अंग्रेजी में उत्तर दिया। दुःख की बात यह थी कि मैं अपनी बात हिन्दी में कहता था और जवाब मुझे अंग्रेजी में मिलता था। अंग्रेजी के इस मोह के साथ-साथ छात्रों के तौर-तरीकों से स्पष्ट था कि भारतीय विश्वविद्यालयों में अभी तक भारतीयता नहीं आ पाई है।

दूसरी बात उन्होंने यह कही कि इधर के नये साहित्यकार हिन्दी की रचनाओं में अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग

जान-बूझकर प्रचुर मात्रा में करते हैं। ऐसा करने में उन्हें गर्व-सा अनुभव होता है, जबकि होना चाहिए लज्जा का अनुभव। उन्होंने कहा, भाषा की अपनी शुद्धता और संस्कारिता होती है। उसमें अपनी शब्दावली विकसित होनी चाहिए। अपने देश का अनुभव सुनाते हुए उन्होंने कहा, हम लोग जिन शब्दों को चलाना चाहते हैं, उनपर पत्रों तथा रेडियो आदि की सहायता से जनता की राय लेते हैं। जिन शब्दों को लोकमत प्राप्त हो जाता है, उन्हें सारा देश काम में लाता है।

डा० स्मेकल हिन्दी और भारत के अनन्य प्रेमी हैं। उन्होंने अपनी पुत्री का नाम 'इन्दिरा' और पुत्र का 'अरुण' रखा है। वह तथा उनके अन्य सहयोगी अपने विश्वविद्यालय में हिन्दी पढ़ाते हैं, जहां पांच वर्ष का पाठ्यक्रम रखा गया है।

हमारे विश्वविद्यालय भारतीय बनें और हिन्दी का रूप परिष्कृत हो, इस बारे में उनका कथन विचारणीय है। प्रत्येक देश के विश्वविद्यालय वहां की सांस्कृतिक विशेषताओं का प्रतिबिम्ब होते हैं। भारत के विश्वविद्यालयों में भी भारतीय संस्कृति झलकनी चाहिए। इसी प्रकार हिन्दी का रूप भी परिष्कृत होना चाहिए।

एक तीसरी बात उन्होंने और कही। "इस देश में एक बड़ी भ्रांत धारणा यह पाई जाती है कि प्राविधिक, प्रौद्योगिक तथा वैज्ञानिक विषयों की शिक्षा केवल अंग्रेजी में ही संभव है और इसीलिए इस देश में अंग्रेजी भाषा का जारी रहना अनिवार्य है। मैं ऐसा नहीं समझता। यूरोप के एक-दो देशों को छोड़कर, अन्य किसी भी देश में अंग्रेजी भाषा का प्रचलन नहीं है। क्या वहां विज्ञान की उच्च शिक्षा की व्यवस्था नहीं है? मेरे विचार से अंग्रेजी को विदा करके भी भारत अपना काम मजे से चला जा सकता है।"

उनकी इस बात का हम पूर्णतया समर्थन करते हैं। यूरोप, दक्षिण-पूर्व एशिया, अफ्रीका आदि में घूमने का हमें अवसर मिला है। सच यह है कि दो-एक देशों के अतिरिक्त कहीं भी अंग्रेजी से काम नहीं चलता और प्रायः सभी देशों ने अपनी भाषा और अपने साहित्य का विकास किया है।

हमारी कठिनाई यह है कि जब हम भाषा के बारे में सोचते हैं तो राजनीति हमारे सामने रहती है। यही कारण है कि भाषा का प्रश्न अत्यन्त जटिल बन गया है और अठारह वर्ष के बाद भी हम उसे पूरी तरह नहीं सुलझा पाये हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि अंततोगत्वा हमारे देश की राजभाषा हिन्दी ही होगी, लेकिन हमारी वर्तमान नीति उसकी प्रगति को बहुत-कुछ अंशों में कुंठित कर देगी, जैसाकि उसने अबतक किया है। होना यह चाहिए था कि हिन्दी को सब प्रकार से प्रोत्साहन दिया जाता और उसमें ऐसा साहित्य तेजी से आता, जो देश के चरित्र को ऊंचा उठाता और देशवासियों को अपने कर्त्तव्य के पालन की प्रेरणा देता, पर हुआ कुछ और ही है।

अब भी यदि हम चेत जायं तो अच्छा है। बिना अपनी भाषा के देश को एकसूत्र में पिरोना असंभव है।

विभूतियों का विछोह

पिछले दिनों हमारे देश से अनेक विभूतियां लुप्त हो गई हैं। हमारे प्रधान मंत्री श्री लालबहादुर शास्त्री गये। अगले दिन काका गाडगिल भी चल बसे। उसके कुछ ही समय बाद प्रख्यात विज्ञानवेत्ता डा० भाभा हवाई जहाज की दुर्घटना के शिकार हो गये। और अब भारत के स्वाधीनता-संग्राम के महान सेनानी श्री विनायक दामोदर सावरकर चले गये। साथ ही हिन्दी के यशस्वी लेखक पं० वंशीधर विद्यालंकार तथा श्री उदयशंकर भट्ट भी।

सावरकरजी की सेवाओं को कौन नहीं जानता! वह भारत के उन सपूतों में से थे, जिन्हें आजादी की प्रेरणा ने चैन नहीं लेने दिया। उन्होंने भारत में काम किया और फिर विलायत में जाकर वहां स्वराज्य के लिए अनुकूल वातावरण तैयार किया। उनके जैसा साहसी, निर्भीक और कर्मठ नेता मुश्किल से मिलेगा।

उनकी लेखनी भी अत्यन्त शक्तिशाली थी। उन्होंने अपनी रचनाओं द्वारा देशवासियों में नया जोश पैदा किय और उन्हें आजादी की आग में कूद पड़ने के लिए प्रेरित किया।

श्री वंशीधर विद्यालंकार दीर्घकाल से दक्षिण भारत में हिन्दी की सेवा कर रहे थे। उनकी रचनाओं को पढ़कर पता चलता है कि वह हिन्दी के प्रचार एवं प्रसार के लिए कितनी उत्कट भावना रखते थे।

श्री उदयशंकर भट्ट को कौन हिन्दी-प्रेमी ऐसा है, जो नहीं जानता! उन्होंने काव्य, नाटक तथा उपन्यास आदि के द्वारा हिन्दी के भंडार को वर्षों तक समृद्ध किया। वस्तुतः

भट्टजी उस पीढ़ी के थे, जिसने साहित्यिक सेवा को साधना के रूप में अपनाया। उनकी प्रतिभा बहुमुखी थी। उन्होंने साहित्य के प्रायः सभी अंगों को परिपुष्ट किया।

भट्टजी की कृतियों के पीछे लोकहितकारी भावना है। उनकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे समय की सीमा में नहीं बंधी हैं। इसलिए उनकी आज जितनी उपयोगिता है, उतनी ही आगे भी रहेगी।

इन सब महारथियों का अपना-अपना स्थान था, जो आज रिक्त हो गया है, उसकी पूर्ति कदापि नहीं हो सकती।

हम इन्हें अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं। हमारी कामना है कि इनकी प्रेरणाएं हमारा सदा मार्ग-दर्शन करें और हमें बल द, जिससे हम देश के लिए अपनी सर्वोत्तम देन दे सकें।

विज्ञान और मानव

आखिर रूस का अंतरिक्ष यान मंगल पर पहुंच ही गया। इस दिशा में रूस और अमरीका दोनों के प्रयत्न बहुत दिनों से चल रहे थे। इस सफलता के लिए हम रूस को बधाई देते हैं और आशा करते हैं कि भविष्य में विज्ञान की प्रगति और अधिक तीव्रता से होगी।

मंगल से जो चित्र प्राप्त हुए हैं, उनसे छोटे-छोटे पत्थर, ज्वालामुखी आदि के वहां होने का पता लगता है। यह भी मालूम हुआ कि वहां जीवों का सर्वथा अभाव है। चित्रों का विश्लेषण हो रहा है। उससे आगे चलकर और भी बहुत-सी बातों का पता चलेगा।

विज्ञान की इस आश्चर्यजनक प्रगति से स्पष्ट है कि हमें छोटी-छोटी बातों से उठकर ऊपर आना चाहिए। इस ब्रह्माण्ड का निर्माण जिस किसीने भी किया हो, उसकी कल्पना बड़ी विराट है। जितना अबतक हम जान पाये हैं, उसी से हम चमत्कृत हैं। आगे हमें और भी विराटता के दर्शन होंगे। ऐसी सृष्टि में इंसान छोटा और ओछा बने, यह शोभा की बात नहीं है।

कहते हैं, इस धरा पर सर्वोत्तम प्राणी मनुष्य है। वह संसार के समस्त जीवधारियों में अपनी विशेषता रखता है। संसार की अबतक की प्रगति का श्रेय उसीको है। लेकिन आज जो क्लेश, अशांति और संघर्ष हो रहा है, उसका मूल कारण भी मनुष्य ही है। जिस प्रकार प्रकृति की रचना में किसी भी तत्व को ओछेपन का अवसर नहीं है, उसी प्रकार मानव की सृष्टि में पारस्परिक प्रेम तथा सहयोग सर्वोपरि होने चाहिए। वैयक्तिक, सामाजिक तथा राष्ट्रीय महत्वाकांक्षाएं रहें, लेकिन उनका प्रयोजन एक-दूसरे को अधिकाधिक सुखी बनाने का होना चाहिए।

कहने का तात्पर्य यह कि विज्ञान की प्रगति का पूरा लाभ हमें तब मिलेगा जबकि इंसान ऊपर उठेगा। विनोबाजी के शब्दों में विज्ञान और आध्यात्मिकता का समन्वय होना अत्यन्त आवश्यक है।

—य०

(पृष्ठ १०८ का शेष)

कि प्राचीन और अर्वाचीन ज्ञान का समन्वय करके ऐसा मार्ग निर्धारित किया जाय जिससे सर्वत्र आनंद ही आनंद का सागर लहरा उठे।

नवीन समाज व्यवस्था द्वारा ही राष्ट्र का सुदृढ़ नव-निर्माण संभव है, अतएव यह आवश्यक है कि समूचे देश में उक्त पांचों भावनाओं का विकास किया जाय, जिससे सुधरे हुए आचरण वाले मानव अपना, अपने समाज, राष्ट्र और विश्व के मानवों का कल्याण करने में अग्रसर हो उठें। राष्ट्रपिता बापू के रामराज्य का आधार उक्त प्रकार की समाज व्यवस्था ही थी। युग-पुरुष आचार्य विनोबा भावे की पद-यात्रा और अन्य कार्य-क्रम उक्त भावनाओं पर ही आधारित हैं।

आध्यात्मिक चिंतन के अनुसार कार्य करनेवाला साधक अपने आप अनेकानेक मानवीय गुणों से विभूषित हो जाता है और उसका ही शुभ परिमाण यह होता है कि वह अपनी अंतरात्मा में स्थित उस ब्रह्म का अनुभव कर लेता है जो अखिल विश्व के कण-कण और जन-जन में व्याप्त है। इस प्रकार वहस्वयं आनन्दित बनकर अपने चारों ओर आनन्द का सागर लहरा देता है, जिससे विश्व के मानवों का कल्याण और विश्वशांति संभव हो जाती है।

'मंडल' की ओर से

हमारे ये चार ग्रंथ

'मण्डल' ने पिछले ४१ वर्ष में पुस्तकें तो बहुत-सी निकाली हैं, लेकिन पिछले दो-तीन वर्षों में उसने चार ग्रंथ ऐसे दिये हैं, जिन्हें प्रत्येक घर में अवश्य रखना चाहिए।

पहला ग्रंथ है—**'राजेन्द्रबाबू : व्यक्तित्व-दर्शन'**। जैसा कि नाम से स्पष्ट है, इस ग्रंथ में अनेक लेखकों ने देश-रत्न डा० राजेन्द्रप्रसाद के व्यक्तित्व पर बड़े सुन्दर तथा मार्मिक रूप में प्रकाश डाला है। इन संस्मरणों को पढ़कर मालूम होता है कि राजेन्द्रबाबू का व्यक्तित्व कितना ऊंचा था और उनका जीवन कितने गुणों से विभूषित था। वह भारतीय संस्कृति के परम उपासक थे और भारत के लोकजीवन के सच्चे प्रतिनिधि थे।

दूसरा ग्रंथ है—**'नेहरू : व्यक्तित्व और विचार'**—इस ग्रंथ में भारत के महान लोकनेता पं० जवाहरलाल नेहरू के व्यक्तित्व-संबंधी संस्मरण तो हैं ही, उनके चुने हुए विचार-भी हैं। राजनेता, साहित्यकार, चिन्तक, समाज-सेवी, सभीने इसमें नेहरूजी के जीवन के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला है। उन्हें पढ़कर पता चलता है कि नेहरूजी कितने बड़े नेता थे और उन्होंने अपने देश की ही नहीं, सारे संसार की किस प्रकार सेवा की। उनके विचारों को पढ़कर तो ऐसा लगता है, मानों ज्ञान और प्रेरणा की उनके पास असीम निधि थी। राजनीति, संस्कृति, साहित्य, समाज, अर्थ, इतिहास, पुरातत्व, कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं है, जिसमें उन्होंने अपनी देन न दी हो।

तीसरा ग्रंथ है—**'संस्कृति के परिव्राजक'**—इस ग्रंथ में गांधी विचारधारा के प्रमुख व्याख्याता, स्वतंत्र चिंतक, यशस्वी लेखक आचार्य काका सा० कालेलकर से संबंधित संस्मरण, काका सा० के चुने हुए विचार, उनकी जीवनी आदि सामग्री दी गई है। गांधी-विचार-धारा, भारतीय संस्कृति, भारतीय लोक जीवन को काका सा० ने क्या दिया है, यह इस ग्रंथ से स्पष्ट हो जाता है। काका सा० के लेखों को पढ़कर मालूम होता है कि वह वास्तव में विश्वकोश हैं। उनका दृष्टिकोण मुख्यतः मानवीय है। इसलिए उनके संस्मरणों तथा उनकी रचनाओं से मानवीयता की बड़ी ही स्वस्थ धारा प्रवाहित होती है।

चौथा ग्रंथ है—**'गांधी-व्यक्तित्व, विचार और प्रभाव'**—इस ग्रंथ में युग-पुरुष महात्मा गांधी के संस्मरण हैं, चुने हुए विचार हैं और उनके विश्व-व्यापी प्रभाव पर सारगर्भित लेख हैं। इस ग्रंथ की रचनाएं बताती हैं कि हमारा देश ही नहीं, बल्कि सारा संसार गांधीजी का क्यों ऋणी है। उन्होंने जिन मूल्यों की प्रतिष्ठा की, वे किसी भी देश या काल की सीमा में आबद्ध नहीं हैं, वे सारे जगत और सब समय के लिए हैं। ग्रंथ की रचनाओं को पढ़कर एक युग का चित्र आंखों के सामने आ जाता है।

चारों ग्रंथ अनेक चित्रों से विभूषित हैं। सबकी छपाई सुन्दर, कागज बढ़िया और आवरण अत्यन्त सुरुचिपूर्ण है।

प्रत्येक देश-प्रेमी को इन ग्रंथों को पढ़ना चाहिए।

—मंत्री

सूचना

'जीवन-साहित्य' के 'नेहरू-स्मृति अंक' की थोड़ी ही प्रतियां शेष हैं। जिन्हें चाहिए, वे कृपया शीघ्र मंगा लें। मूल्य रु० २-२५
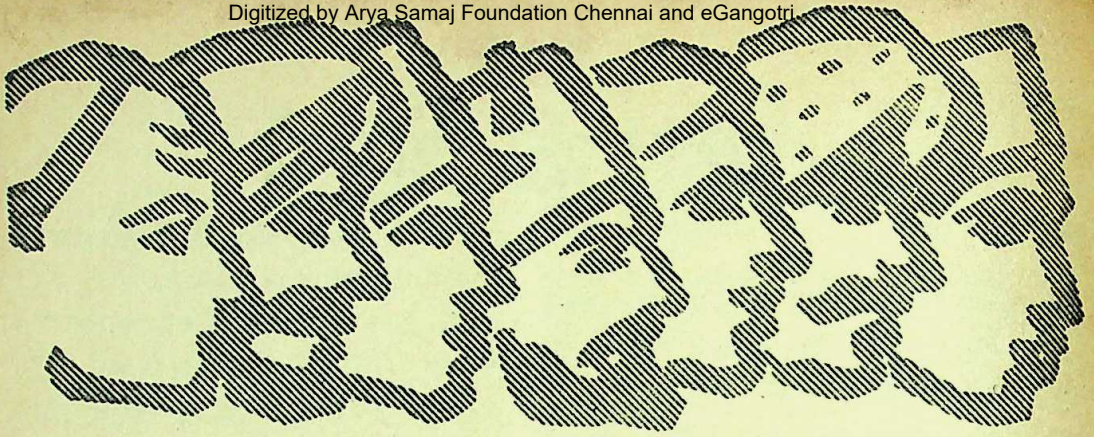
'जीवन-साहित्य' के स्वामित्व, तथा अन्य ब्यौरे के विषय में

१. प्रकाशन का स्थान	कनॉट सरकस, नई दिल्ली
२. प्रकाशन की अवधि	मासिक
३. मुद्रक का नाम	मार्तण्ड उपाध्याय
राष्ट्रीयता	भारतीय
पता	कनॉट सरकस, नई दिल्ली
४. प्रकाशक का नाम	मार्तण्ड उपाध्याय
राष्ट्रीयता	भारतीय
पता	सस्ता साहित्य मंडल, कनॉट सरकस, नई दिल्ली
५. सम्पादक का नाम	हरिभाऊ उपाध्याय यशपाल जैन
राष्ट्रीयता	भारतीय
पता	सस्ता साहित्य मंडल, कनॉट सरकस, नई दिल्ली
६. उन व्यक्तियों के नाम और पते जिनका पत्र पर स्वामित्व है तथा उन भागीदारों अथवा शेयर-होल्डरों के नाम और पते जो पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक शेयर रखते हैं।	'सस्ता साहित्य मंडल', नई दिल्ली

मैं, मार्तण्ड उपाध्याय, इसके द्वारा घोषित हूं कि ऊपर जो ब्यौरे दिये गए हैं, वे मेरी अधिक-से-अधिक जानकारी में और मेरे विश्वास में सही हैं।

(ह०) मार्तण्ड उपाध्याय
प्रकाशक

अब मेट्रिक प्रणाली में ही सोचिये

कपड़ा मीटरों में खरीदिये गजों में नहीं

अब भी अगर आप मेट्रिक नाप-तोल में नहीं सोचते और हर समय गजों को मीटरों में बदलते रहते हैं, तो आपको हर समय उलझन होती होगी। देश भर में अब मेट्रिक प्रणाली के बाट और पैमाने ही कानूनी माने जाते हैं। हर दुकानदार के लिये मेट्रिक के बाट और पैमाने रखना अब जरूरी हो गया है, जिनकी जांच भी की जा सकती है।

मेट्रिक प्रणाली को अपना कर अपनी और देश की मदद कीजिये

मेट्रिक बाट और पैमाने ही अब कानूनी हैं
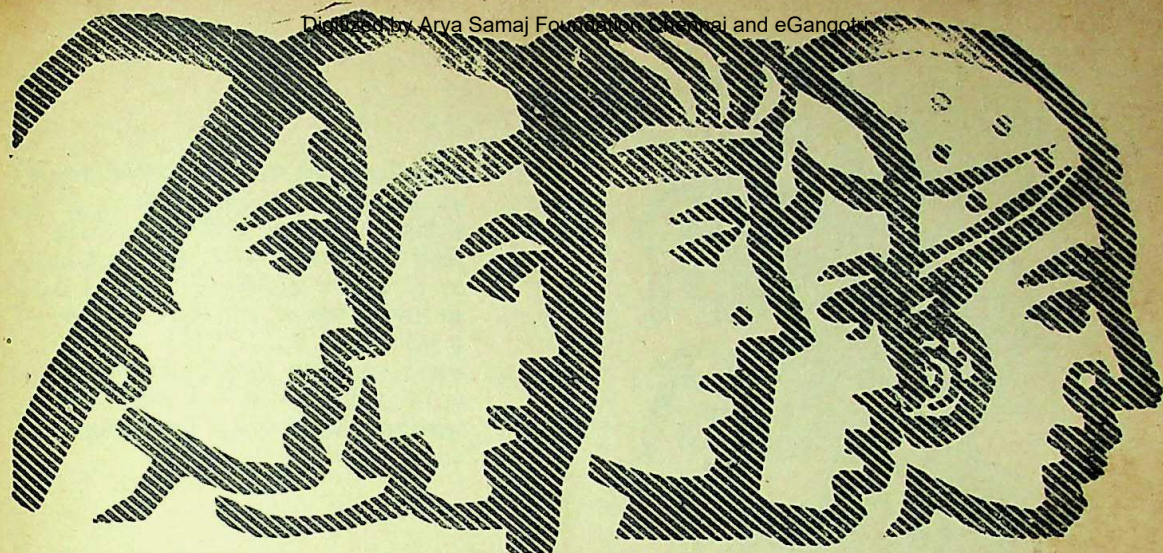
DA 65/616

हिन्दुस्तान को अपनी महिलाओं पर गर्व है। अपने पति को, भाई को, बच्चे को वह बिना किसी हिचक के देश की रक्षा के लिए न्योछावर करने को तैयार हैं। हर कठिनाई का मुस्कराहट के साथ सामना कर रही हैं। अनेक महिलाएं अस्पतालों में, खून के बैंकों में और दूसरी स्वयंसेवी संस्थाओं में काम करके अपना फ़र्ज़ अदा कर रही हैं। भारत की लाखों करोड़ों स्त्रियां देश की सेवा में जुटी हैं। सोचिये! आप देश के लिए क्या कर रही हैं?

एक महान देश हमारा
एक महान राष्ट्र

DA 65/F9

सुदर्शन है तो आदमी पर काम में वह किसी मशीन से कम नहीं। वह ६०० चिट्ठियां फी घंटे की रफ्तार से चिट्ठियों को छांटता है और मजाल है कोई चिट्ठी गलत खाने में गिरे। एक दिन में सुदर्शन ४,५०० चिट्ठियां छांट लेता है। यह एक जिम्मेदारी का काम है, जिसे वह मन लगाकर बड़ी होशियारी से पूरा करता है।

डाक व तार विभाग में सुदर्शन जैसे १५,००० आदमी हैं, जो हर साल डाक से ४०० करोड़ चीजों को उनकी जगह पहुँचाने के लिए बड़ी कुशलता से अपने काम में जुटे रहते हैं।

डाक व तार विभाग

DA 65/271

संस्कृति के परिव्राजक

गांधी विचारधारा के प्रमुख व्याख्याता, स्वतंत्र चिंतक तथा लेखक आचार्य काका सा०कालेलकर को उनकी अस्सीवीं वर्षगांठ के अवसर पर समर्पित ग्रंथ।

इसमें

विभिन्न राजनेताओं, विद्वानों तथा समाज-सेवियों के भावपूर्ण संस्मरण, काका सा० की जीवनी, अहिन्दी भाषी क्षेत्रों में हिन्दी-सेवा का विवरण तथा काका सा० के विचार दिये गए हैं और अनेक चित्र भी।

अभिमत

इस ग्रंथ के द्वारा जहां काका सा० कालेलकर के विचारों का प्रसार होने में सहायता मिलेगी, वहां साथ ही भारतीय संस्कृति को, उसके वास्तविक स्वरूप को, समझने में भी सरलता होगी। मुझे भरोसा है कि ग्रंथ खूब लोकप्रिय होगा।

—भक्तदर्शन।

यह बहुत महत्वपूर्ण कार्य हुआ है। यह तो स्वाध्याय का एक ग्रंथ ही बन गया है।

—बनारसीदास चतुर्वेदी।

ग्रंथ देखकर बहुत प्रसन्नता हुई।

—वासुदेवशरण अग्रवाल

हर दृष्टि से ग्रंथ सुरुचिपूर्ण और उपादेय है।

—बाबूराम सक्सेना

इस ग्रंथ में काकासाहब की 'काका साहबी' सुयोजित रीति' से पेश की गई है, गोया शब्दचित्रों का एक एल्बम मिल गया।

—इस्मालभाई नागौरी

आपने किताब अच्छी निकाली है। काकासाहब का चरित्र भी दिया है। यह अच्छा किया है, कागज बहुत अच्छा है।

—बालकोबा भावे

आपने यह सुन्दर ग्रंथ निकाला है।

—ए० वरफेल

बड़े आकार के ४.०० पृष्ठों के इस ग्रंथ की छपाई सुन्दर, काग़ज़ बढ़िया, आवरण सुरुचिपूर्ण।

मूल्य केवल बीस रुपये।

●

सस्ता साहित्य मण्डल

नई दिल्ली

गांधी : व्यक्तित्व, विचार और प्रभाव

गांधी शत-संवत्सरी के उपलक्ष्य में ३० जनवरी, १९६६ को प्रकाशित ग्रंथ ।

इस ग्रन्थ में

देश-विदेश के राजनेताओं, चिंतकों, विद्वानों तथा रचनात्मक कर्मिजनों के हृदयस्पर्शी संस्मरण, गांधीजी के चुने हुए विचार, गांधीजी के विश्वव्यापी प्रभाव पर विभिन्न लेखकों के सारगर्भित लेख, गांधीजी के जीवन की प्रमुख घटनाओं की तालिका तथा अनेक चित्र मिलेंगे ।

अभिमत

पुस्तक सुन्दर और उपयोगी है। आशा है, बहुत नारी और नर इससे लाभ उठावेंगे ।

—श्रीप्रकाश

पुस्तक की सामग्री अच्छी है और नवीन भी । महावीर त्यागी आदि के लेख बहुत उत्तम हैं । कई लेख पढ़कर हर्षाश्रु आ जाते हैं । पुस्तक का बाह्य तथा आंतर दोनों उत्कृष्ट हैं ।

—बेचरदास दोशी

लेखों का चयन और छपाई सुन्दर है ।

—जेठालाल जोशी

इस ग्रंथ का प्रकाशन करके मण्डल ने अपनी प्रतिष्ठा के अनुसार सत्साहित्य में वृद्धि की है। सामग्री के चयन में बड़ी सावधानी रखी गई है और परिश्रम किया गया है। बापू के व्यक्तित्व, विचार और उनके प्रभाव को जानने में इस ग्रंथ से बहुत सहायता मिलेगी ।

—रिषभदास रांका

इस ग्रन्थ का

सभी वर्गों और क्षेत्रों में हार्दिक स्वागत हुआ है ।

बड़े आकार के ६१२ पृष्ठ के इस ग्रंथ की छपाई सुन्दर, कागज़ बढ़िया तथा आवरण सुरुचिपूर्ण है ।

मूल्य केवल पच्चीस रुपये ।

अपनी प्रति या प्रतियां तत्काल मंगा लीजिये; बहुत थोड़ी प्रतियां बची हैं ।

सस्ता साहित्य मण्डल

नई दिल्ली

विंध्य प्रदेश में पाठक इस ग्रंथ की प्रति मध्यप्रदेश गांधी स्मारक निधि, गांधी स्मारक भवन, छतरपुर से प्राप्त करें ।

नवीन प्रकाशन

१९६५–६६

गांधी : व्यक्तित्व, विचार और प्रभाव २५.००
नेहरू-व्यक्तित्व-विचार २५.००
महात्मा गांधी (जीवनी) बी० आर० नंदा ५.००
विनोबा के विचार : भाग -३ १.५०
रचनात्मक राजनीति (राजनीति) सं० रामकृष्ण बजाज ४.००
पत्र-व्यवहार (भाग ५) सं० रामकृष्ण बजाज ५.००
सहकारिता (ग्रामोपयोगी) जवाहरलाल नेहरू २.००
शिक्षा का विकास (शिक्षा) भगवानप्रसाद ३.००
सामुदायिक विकास और पंचायती राज जवाहरलाल नेहरू २.५०
अहिंसा की कहानी यशपाल जैन १.७५
लड़खड़ाती दुनिया जवाहरलाल नेहरू ३.००
भारत-सावित्री (खण्ड २) वासुदेवशरण अग्रवाल ५.००
ज्वालामुखी अनंतगोपाल शेवड़े ३.५०
तंदुरुस्त रहने के उपाय (स्वास्थ्य) धर्मचंद सरावगी १.२५
विनोबा की बोध-कथाएं (कथाएं) १.५०
पुरंदरदास (जीवनी) १.५०
मेरा वकालती जीवन (संस्मरण) ग० वा० मावलंकर ४.००
जिन्दगी दांव पर (उपन्यास) स्टीफन ज्विग ३.००

जमना-गंगा के नैहर में (यात्रा) विष्णु प्रभाकर ४.५०
मास्टर महिम (उपन्यास) मनोज बसु ४.००
लोकतंत्र का लक्ष्य इन्द्रचन्द्र शास्त्री ४.००
जैनधर्म का प्राण सुखलाल संघवी २.००
पंजाब-केसरी लाला लाजपतराय मुकुटबिहारी वर्मा १.००
हारजीत का भेद आनंद कुमार २.००
कुछ शब्द : कुछ रेखाएं विष्णु प्रभाकर ३.५०
हमारे संस्कार-सूत्र लक्ष्मीराम शास्त्री ३.००
कुछ देखा, कुछ सुना घनश्यामदास बिड़ला ३.५०
जमनालालजी घनश्यामदास बिड़ला १.५०
पड़ोसी देशों में यशपाल जैन ६.००
संस्कृति के परिव्राजक संकलन २०.००
गांधीजी और उनके सपने वियोगी हरि १.००
नीली झील संपा० विष्णु प्रभाकर ३.५०
आकाशदानी दे पानी गोविन्द चातक २.५०
मेरे हृदयदेव हरिभाऊ उपाध्याय ३.००
मानवता के दीये झवेरचंद मेघाणी ४.५०
रेंगनेवाले जीव सुरेशसिंह २.५०
नाश का विनाश मामा वरेरकर ३.००
परमसखा मृत्यु काका कालेलकर २.२५
जमनालालजी की डायरी ४.००

मण्डल के सम्पूर्ण साहित्य के लिए एक कार्ड लिखकर नया सूचीपत्र मंगा लीजिये :

सस्ता साहित्य मण्डल

एन. ७७ कनॉट सर्कस, नई दिल्ली

शाखा : जीरो रोड, इलाहाबाद

मई, १९६६ [अंक ५

जीवन साहित्य

हक माने जिम्मेदारी

आजादी का बोझ हममें से एक-एक आदमी को उठाना है। उठाने के मानी है, आपको आजादी की जिम्मेदारियां समझनी हैं। आजादी खाली हक नहीं है, हक तो वह है, लेकिन हर हक के साथ जिम्मेदारी है, उसे समझना है और मिलकर अपने मुल्क को आगे बढ़ाना है।

—जवाहरलाल नेहरू

संपादक
हरिभाऊ उपाध्याय

एक प्रति

जीवन साहित्य

मई, १९६६

विषय-सूची

ग्राहकों से

जिन सदस्यों का वार्षिक शुल्क समाप्त हो गया है, उन्हें 'जीवन-साहित्य' की वी० पी० भेजी जा रही है। उनसे अनुरोध है कि वे वी० पी० अवश्य छुड़ाने की कृपा करें। पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक-संख्या लिखने की कृपा करें।

—व्यवस्थापक

उत्तरप्रदेश, राजस्थान, मध्यप्रदेश, हिमाचलप्रदेश, दिल्ली, बिहार एवं पंजाब की राज्य-सरकारों द्वारा
कालेजों, लाइब्रेरियों तथा उत्तरप्रदेश और मध्यप्रदेश की ग्राम-पंचायतों के लिए स्वीकृत

जीवन साहित्य

● वर्ष २७ : अंक ५ ● मई, १९६६

ग्रामदान से गांव-परिवार

विनोबा

दुनिया में तीन प्रकार के देश हैं। कुछ देशों में मजदूरवर्ग, जिसको हम तीसरा दर्जा मानते हैं; पहले दर्जे में आ गया है। उनका राज्य वहां चलता है। अमीर लोगों में से बहुतों को उन्होंने खतम कर दिया है, मार डाला है, और जो कुछ हैं, उनका जीवन बिलकुल घृणित है। लेकिन मध्यमवर्ग अपनी जगह पर कायम है। कुछ राष्ट्र ऐसे हैं, जहां ऊंचे वर्ग के लोग बराबर ऊंचे रह गये हैं और मजदूर वगैर हघृणित माने गये हैं। मध्यमवर्ग अपनी जगह पर है। वह होता ही है। चाहे पूंजीवाद हो या समाजवाद, उसका दर्जा वही रहता है। महाभारत में व्यास ने लिखा है—जो बीचवाला होता है, उसको हमेशा क्लेश होता है। जो बिलकुल जड़-बुद्धि है और जो "बुद्धः परांगतः" यानी बुद्धि के उस पार गया है, वे दोनों सुख में हैं और बीच का जो वर्ग है, वह न अज्ञानी कहलायगा, न श्रद्धावान और न बुद्धिमान ही कहलायगा। वह हमेशा क्लेश पाता है, अर्थात मध्यमवर्ग को हमेशा दुःख है।

और, मध्यमवर्ग में कुछ गलत मूल्य पैठ गये हैं। मध्यमवर्ग की बहनें काम नहीं करेंगी। फिर उनका बोझा-सा मालूम होता है, बोझा ढोना पड़ता है। ऊपरवालों के पास तो पैसा होता है। इसलिए उनको कोई परवा नहीं। चाहे बहनें काम करें, चाहे न करें। और नीचे वर्ग की बहनें मजदूरी करती हैं, इसलिए उनका भी बोझा नहीं। लेकिन मध्यमवर्ग में ऐसा होता है कि एक कुटुम्ब में एक इंजिन और बाकी चार-चार, पांच-पांच माल के डिब्बे होते हैं। संसार भारवाही है। संसार का भार वहन करनेवाला एक पुरुष होता है और बाकी सारे मालगाड़ी के डिब्बे। कहीं-कहीं तो परिवार में डिब्बे बहुत ज्यादा होते हैं। फिर यह अपने को बचाने के लिए शोषण के साधन ढूंढ लेता है। उसको शोषण के साधन ढूंढने पड़ते हैं। ऊपरवालों के पास शोषण के व्यवस्थित साधन मौजूद होते हैं। फिर मध्यम वर्गवाला ढूंढ़ लेता है। उसका एक धंधा या नौकरी होती है, उसमें पूरा नहीं पड़ता। इसलिए फिर कोई पूरक उद्योग, सप्लीमेंटरी धंधा ढूंढ लेता है, छोटी-मोटी चोरी, रिश्वत, भ्रष्टाचार, ये पूरक उद्योग हैं।

हम जो काम करने जा रहे हैं, उसमें तीनों श्रेणियों को जोड़ने की योजना है। समाज में सब मिलकर काम करेंगे, बांटकर खायेंगे, जैसे संयुक्त परिवार में होता है। परिवार में बिलकुल समानता नहीं होती। कमबेशी

जिम्मेदारियां होती हैं, कमबेशी कमाई होती है। किसी-की खाने की शक्ति ज्यादा है, तो वह ज्यादा खाता है; किसीकी कम है, तो वह कम खाता है। किसीकी कमाने की शक्ति ज्यादा है, तो वह ज्यादा कमाता है; किसीकी कम है तो वह कम कमाता है। परिवार में यह कमबेशी होता है, लेकिन कम बेशी भावना से नहीं होता। यह जो सम्मिलित परिवार का ध्येय है, नमूना है, वह हम गांव में उपस्थित करना चाहते हैं।

बिहार में तो पचास-पचास मनुष्य एक परिवार में होते हैं; कहीं तो इससे भी ज्यादा होते हैं। बीस-पच्चीस मनुष्यों का परिवार तो वहां मामूली-सी बात है। तो, ग्रामदान यानी सौ-दो सौ मनुष्यों का परिवार। यह जो सामूहिक परिवार की भावना है, उसको ज़रा "एक्स-टेंड" करना है। हम मिलजुलकर काम करेंगे। एक-दूसरे को संतोष देने की कोशिश करेंगे। जैसे घर में एक माता होती है और सब लोग उसपर विश्वास रखते हैं। अपना सारा उसको समर्पण करते हैं और वह सबकी देख-भाल करती है। वैसे ही गांव में एक माता होगी—ग्राम-सभा। उसको सब अपनी-अपनी ग्रामदनी का हिस्सा देंगे, जमीन की मिल्कियत समर्पण करेंगे, और वह हमारी देखभाल करेगी। इस प्रकार सारे गांव को एक बृहत परिवार में परिणत करने का काम हम करेंगे।

फिर गांव में उत्पादन बढ़ायेंगे। उत्पादन बढ़ाने के लिए मजदूर, मालिक और महाजन, तीनों का सह-योग एकत्र करेंगे। उत्पादन बढ़ाने के लिए साधन भी लायंगे। वैज्ञानिक साधनों का उपयोग करेंगे। और, वैज्ञानिक साधनों का उपयोग करना है, तो वह ग्रामदान में अच्छा सधेगा। क्योंकि बंटे हुए परिवार होंगे, तो एक-एक किसान वैज्ञानिक साधन उपयोग में नहीं ला सकता। इसका उसको लाभ नहीं होगा। तो ऐसा एक ग्राम-परिवार बनाओ और श्रेणियां खतम करो।

श्रेणियां न आदि में थीं और न अंत में रहेंगी। अगर भगवान की इच्छा होती कि मनुष्यों में इस प्रकार की श्रेणियां हों, तो कोई कपड़े पहनकर जन्म लेते, कोई गहने पहनकर जन्म लेते। लेकिन भगवान ऐसा नहीं करता। जब जन्म होता है तब बच्चा पूर्ण अपरिग्रही आता है, चाहे वह अमीर के घर में जन्मा हो, चाहे गरीब के घर में। और जब जाता है, तब सब छोड़कर जाता है; चाहे वह अमीर हो या गरीब हो। इसलिए ईश्वर की योजना में श्रेणियां नहीं थीं। लेकिन हमने वे बनाईं। वे श्रेणियां काम के लिए बनाई होतीं, जैसे चतुर्वर्ण बनाये, तो अलग बात थी। लेकिन हमने जो श्रेणियां बनाई हैं, उनमें कोई काम करेगा, कोई काम नहीं करेगा; कोई कपड़े पहनेगा, कोई नहीं; कोई पापी माना जायगा, कोई पुण्यवान माना जायगा। वस्तुतः यह भेद कृत्रिम है। उससे सहयोग नहीं सधेगा। इसलिए एक परिवार के समान गांव में सबको मिलकर काम करना है।

अब गांव में समानता सधेगी, ऐसा नहीं। कमबेशी होगा, लेकिन वह जैसे परिवार में होता है वैसा होगा। हर कोई प्रामाणिकता से श्रम करेगा, और सब मिलकर प्रेम से रहेंगे। सुख दुःख बांटकर रहेंगे। दुःख में साथी बनते हैं, तब दुःख का भार कम होता है। मेरे पेट में दर्द है, वह दर्द मेरा है और उसका दुःख मुझे ही होगा। लेकिन पेट दुख रहा है और कोई मेरी ओर ध्यान नहीं दे रहा, तो उसका सदमा मुझे पहुंचेगा और दुःख होगा। पेट दुख रहा है वह तो दुखेगा ही, लेकिन इसका दुःख ज्यादा होगा। और अगर प्रेम का दर्शन होता है, कोई सहानुभूति दिखाता है, तो दुःख का भार हलका होता है। मनुष्य को सबसे अधिक जरूरत है सहानुभूति की।

हमारी मां एक कहानी कहा करती थीं—रामायण की कहानी। उसका सार यह है: "ये दिन भी जायंगे।" दशरथ के कुल में राम जन्मे। अच्छी हिफाजत हुई। इतने में विश्वामित्र आये और उनको जंगल जाना पड़ा। इससे लोगों को दुःख हुआ। लेकिन रामचंद्र का चेहरा शांत था, उदासीन था। लोगों ने उनसे पूछा कि आप कैसे शांत हैं? तो उन्होंने कहा, "ये दिन भी जायंगे।" फिर वहां विश्वामित्र के घर उनका पालन-पोषण, रक्षण-शिक्षण अच्छी तरह हुआ। वे घर वापस आये, तो सबको बहुत आनन्द हुआ। लेकिन रामचंद्र के चेहरे पर आनन्द नहीं था। वह उदासीन थे। किसीने

(शेष पृष्ठ १७५ पर)

शांतिदूत नेहरू

जगजीवनराम

कोई भारतीय हमारे स्वातंत्र्य संघर्ष के गौरवमय इतिहास को विस्मृत नहीं कर सकता और इसी प्रकार कोई इस चित्र के अभिन्न अंग नेहरू को विस्मृत नहीं कर सकता। उनकी वैद्युतिक उपस्थिति, प्रभावपूर्ण मुद्राएं, ओजपूर्ण शब्द, हृदयमोहक मुस्कान, उन्मुक्त हंसी, लक्ष्यहीन और भटकानेवाली व्यर्थ की चीजों से चिढ़; ये स्मृतियां हमेशा ही उन लोगों के लिए मूल्यवान निधियां बनी रहेंगी, जो उन्हें निकट से जानते थे।

वैभव के मध्य जन्म लेकर भी वह धनिकों जैसे तुच्छ आमोद-प्रमोद में कभी रत न हुए। वैभव प्रदर्शन से उन्हें अतीव घृणा थी। पढ़ाई के उपरांत वह वकालत का अभ्यास करने लगे। लेकिन इसमें उनका जी न मन सका। राजनीति ने उन्हें आकर्षित किया अवश्य, लेकिन उसे उन्होंने नीरस और निम्न स्तर पर पाया। वह महान, श्रेष्ठ, उल्लेखनीय व साहसिक कार्य करना चाहते थे। पंजाब और अवध के किसान-आंदोलनों में मार्शल लॉ की दुर्घटनाओं की जांच करने के लिए कांग्रेस जांच-समिति के साथ कार्य करने से उनकी अस्पष्ट महत्वाकांक्षाओं को एक स्वरूप मिला, एक सीमा व गहनता उन्हें वहां प्राप्त हुई।

गांधीजी के साथ निकट सहयोग से, जिनकी छाप उनके ऊपर बहुत अधिक पड़ी, वह अग्रणी व्यक्तित्व बन गये। वह वास्तव में शांतिवादी थे, जिनकी बातें ध्यान से सुनने और प्रशंसा करने के लिए लोग विवश हो जाते थे और जो समय-समय पर जनसामान्य के पूज्य नेता के रूप में सामने आते थे।

जनसामान्य के इतने विश्वास और स्नेह-भाजन होने के कारण ही वह शक्ति के अनंत आगार बन गये। फिर भी वह अपनी विशिष्ट प्रणाली, रुचियां, स्वभाव, वाह्याकर्षण तथा सामान्य व्यक्तियों से दूरी रखने के कारण अभिजातवर्गीय श्रीमंत ही लगते थे। उन्हें विहँसते, लहलहाते हुए धान या गेहूं के खेतों में रुचि न थी बल्कि पर्वतों के एकांत जीवन और अपार शोभा में आनंद प्राप्त होता था। उन्हें सिकन्दर और नेपोलियन जैसे विजेता नहीं, बल्कि बुद्ध और अशोक जैसे शांतिदूत ही प्रेरणा देते थे। महान कहलानेवाले व्यक्तियों के कृतित्व नहीं, बल्कि जनता के संघर्षों और प्रयासों की कहानी ही उनकी कल्पना को गति प्रदान करती थी।

कभी-कभी जब उनके आदर्शों की कल्पना को इस निकृष्ट जगत की वास्तविकताएं क्रूर प्रहार करके चूर-चूर कर देती थीं, तब वह बड़े खिन्न होकर विचारों में डूब जाते थे। लेकिन उन्होंने जीवन से भागने का विचार कभी नहीं किया। जीवन पर अविश्वास नहीं किया। उनमें आश्चर्यजनक सहनशक्ति थी, जिससे हर आघात झेलकर वह पुनः सजग और उद्यत हो जाते थे।

विभाजन-विप्लवों ने उनका हृदय झकझोर दिया। उन्होंने राजेन्द्रबाबू को लिखा, "जिस हैवानियत और परोपकार में लोग संलग्न हो गये हैं, उसकी कभी कल्पना कर सकना भी मेरे लिए कठिन था। इस प्रकार के कृत्य जो लोग करते हैं, वे स्वयं को तो पशुता के निम्न स्तर तक गिरा ही लेते हैं साथ में वातावरण को भी विषाक्त करते हैं। इस वातावरण के साथ मेरा मेल नहीं हो सकता। मुझमें इसका सामना करने की हिम्मत नहीं है। फिर भी मुझे पूरा विश्वास है कि यदि हम इस मनोवृत्ति के सामने झुक जायं तो राष्ट्र के रूप में हमारा अन्त हो जाएगा। जबतक हमारा कोई आदर्श न हो, स्वतंत्रता का कोई अर्थ नहीं और भारत उस महानता को कभी प्राप्त नहीं कर सकेगा, जिसका हम सब इतने लम्बे समय तक स्वप्न देखते रहे हैं। विश्व की आंखें हमारी ओर लगी हुई हैं और विश्वमत महत्त्वपूर्ण है। लेकिन सर्वोपरि बात यह है कि हम स्वयं भी अपने कृत्य देख रहे हैं और यदि हम अपनी ही दृष्टि में अपने को निकृष्ट बना बैठें तो हमारी रक्षा कौन करेगा ?"

आज नहीं, चाहे कल भी नहीं, लेकिन वर्षों पश्चात जब शांति वास्तविक रूप ग्रहण कर लेगी, नेहरू के ये शब्द केवल हमारे देश में नहीं, बल्कि सारे विश्व में प्रतिध्वनित होंगे। राष्ट्रों के मध्य होते रहनेवाले युद्ध अन्ततः उन्हें शांति का आश्रय लेने के लिए विवश कर देंगे।

आनेवाला विश्व

सम्पूर्णानन्द

"अब जबकि मनुष्य ने यह सीख लिया है कि कैसे इस विश्व को छोड़ा जा सकता है, यह विश्व फिर से पहले जैसा कभी नहीं होगा ।"

मैंने ये शब्द 'लाइफ' नामक पत्रिका के हाल ही के एक अंक से उद्धृत किये हैं। इनके लेखक हैं सुप्रसिद्ध अंग्रेज खगोलवेत्ता आर्थर जी० क्लार्क। इन शब्दों में ऐसा वक्तव्य निहित है, जिसके विषय में मुझे आशंका है कि उसकी महत्ता इतनी गहरी है कि उसकी अभिव्यक्ति भाषा के वश से बाहर की बात है। हम कुछ वर्षों से अन्तरिक्ष यात्रा से परिचित हो रहे हैं और ज्यों-ज्यों अन्तरिक्ष और उसके खतरों से सम्बद्ध विभिन्न क्षेत्रों में प्रगति होती जाती है, वैसे-ही-वैसे अन्तरिक्ष-यात्रा और उसके विषय में आशाएं एवं महत्त्वाकांक्षाएं उत्पन्न हो रही हैं। हमने अमरीकी और रूसी अन्तरिक्ष-यात्रियों के साहसिक अभियानों को उत्सुकता से देखा है और सम्भवत: केरल के रेतीले किनारों से जब-तब छोड़े जानेवाले राकेटों के अपने निजी कौतुकमय प्रयत्नों के विषय में भी ध्यान से पढ़ा है। किन्तु अभी हाल में अमरीकी अन्तरिक्ष-यात्रियों द्वारा प्रदर्शित असाधारण कर्म एवं अन्तरिक्ष में मुश्किल से दो एक फुट दूसरे से दूर रहकर दो अन्तरिक्ष यानों के मिलन, वह प्रत्यक्ष सुगमता जिससे मनुष्य अपने अन्तरिक्ष-यान के कक्ष से बाहर निकला और अन्तरिक्ष में विचरण करने की बात—इन सबने निश्चय ही एक नये युग का सूत्रपात किया है।

अब मनुष्य धरती पर कैद प्राणी नहीं रहा है, वह अब समुद्र से भी आबद्ध नहीं रह गया है और न ही धरती के चारों ओर व्याप्त वातावरण तक सीमित रहा है। वह अब अन्तरिक्ष का नागरिक है।

पृथ्वी के गहन अन्धकारमय प्रदेशों को ढूंढ़ निकालने, उसके मरुस्थलों, जंगलों और हिम क्षेत्रों की खोज के पराक्रमपूर्ण कार्यों के लिए साहस और धैर्य की आवश्यकता थी। तूफानों तथा लहराते समुद्रों में जाना निस्संदेह ही अत्यधिक संकटपूर्ण था और हवाई यात्रा में मनुष्य को इतनी शक्तियां लगानी पड़ीं, जितनी इससे पहले कभी नहीं लगानी पड़ी थीं। इससे भी अधिक शक्ति उसे तब लगानी पड़ी, जब उसने अपने-आपको एक ऐसी भिन्न प्रकृति के तत्व की दया पर पाया, जहां न कोई लंगर था और न ही शरण लेने के लिए कोई स्थान। पर इस सबके बावजूद अपने इस सारे जल और थल से संयुक्त यह संपूर्ण पृथ्वी पदार्थों की एक छोटी-सी गेंद ही तो है, जिसका व्यास केवल ८००० मील है। और उसपर वायु भी गुरुत्वाकर्षण के अदृश्य सूत्रों से इस गेंद से बंधी हुई है।

दूसरी ओर अन्तरिक्ष असीम है, इस तथ्य के बावजूद भी कि उसे विशुद्ध गणितीय भाषा में ससीम कहा जाता है। और यदि उसका विस्तार हो रहा है तो वह प्रतिदिन और भी असीम होता जा रहा है। सबसे निकट का नक्षत्र भी तीन प्रकाश वर्षों से अधिक दूर है। पृथ्वी के अलावा सबसे पास का पिण्ड चन्द्रमा लगभग ढाई लाख मील दूर है और प्रकाश को भी सूर्य से हमारे पास तक पहुंचने में आठ मिनट लगते हैं। पर आज हम इसी विराट् शून्य में छलांग लगा रहे हैं। मैं जानता हूं कि सारा अंतरिक्ष नितान्त शून्य नहीं है, किन्तु उसमें जो पदार्थ है वह इतने सूक्ष्म रूप में फैला हुआ है कि अधिकांश व्यावहारिक प्रयोजनों के लिए उसे अस्तित्वहीन माना जा सकता है। इस अपरिमित पार्थक्य का, जिसमें मनुष्य अपने-आपको जानबूझकर अवगाहित करने जा रहा है, अनुमान इस तथ्य से ही लगाया जा सकता है कि यदि एक बार अन्तरिक्ष यान ७.२ मील प्रति सेकंड की नाजुक गति से सीमा को पार करके दुर्घटनाग्रस्त हो जाय तो अन्तरिक्ष यात्री की हड्डियां भी धरती

माता की गोद में दस लाख सालों में भी आने की संभावना नहीं दीखती। इस अभियान में अब लौटने का प्रश्न नहीं है। जल, थल और वायु मनुष्य की शक्तियों को रोकने में असमर्थ सिद्ध हो चुके हैं। अब मनुष्य का अभियान अन्तरिक्ष की ओर है और यदि इस अगाध महासागर में कहीं बुद्धियुक्त जीवन के कोई दूसरे द्वीप हुए तो वह उनसे सह-नागरिकता पाने की खोज में निकल पड़ा है।

ऐसा प्रतीत होता है कि इस कदम की महत्ता हमारे मन में गंभीरता से नहीं पैठ सकी है। मानव के मस्तिष्क पर जो आध्यात्मिक परिवर्तन आना चाहिए था, उसकी अनुभूति के कोई स्पष्ट चिह्न स्वतः लक्षित नहीं हुए हैं। यह केवल भारत के बारे में ही नहीं, अपितु सारी मानवता के बारे में सत्य है। सारे कार्य पूर्ववत से चल रहे हैं। लगता है मानो कुछ अनहोनी बात हुई ही न हो। मानवीय जीवन, शांति और युद्ध की समूची धारणा में एक क्रांतिकारी परिवर्तन की आवश्यकता है। किन्तु लगता है कि मानवता को इस आवश्यकता का कोई ज्ञान ही न हो। चाहिए तो यह था कि आणविक शक्ति का आविष्कार ही हमें गम्भीरता एवं उग्रता से सोचने पर मजबूर करता, पर आज, जबकि अन्तरिक्ष यात्रा आणविक शक्ति से भी अधिक सशक्त है, फिर भी ऐसा नहीं दिखाई देता कि हमें इस तथ्य का ज्ञान है। युद्ध लड़े जा रहे हैं, नये आक्रमणों की तैयारियां हो रही हैं, विश्व के विभिन्न भागों में शक्ति के मद में मत्त राष्ट्र दूसरे राष्ट्रों को कुचलने या उन्हें कठपुतली मात्र बना देने का प्रयत्न कर रहे हैं। रंगभेद एवं भौतिक पदार्थों का स्वामित्व आज भी मनुष्य को मनुष्य से अलग कर रहा है। फिलहाल सभी देशों ने आकाशमण्डल की स्वतंत्रता मौखिक तौर से मंजूर कर रखी है, क्योंकि अन्तरिक्ष यात्रा बहुत कम है, किन्तु सम्भवतः अदूरवर्ती भविष्य में ही वहां अन्तरिक्ष नौ सेना का निर्माण हो जायगा जिससे गगनमण्डल की स्वतन्त्रता भी उसी तरह कल की एक कहानी बनकर रह जायगी, जैसे कि आज समुद्रों की स्वतंत्रता एक अतीत की गाथा हो गई है। इन स्थितियों में हम उस सहयोग एवं स्वस्थ होड़ की, जो कि आज अन्तरिक्ष अनुसंधान के क्षेत्र में एक शुभ लक्षण है, बने रहने की आशा नहीं कर सकते। जैसे ही हम चन्द्रमा पर पहुंचेंगे, उपनिवेशवाद एवं खनिज अनुसंधान की बहुत-सी समस्याएं उठ खड़ी होंगी, जिनसे द्वेष की सृष्टि होगी और अन्ततः युद्ध होंगे। तब अन्तरिक्ष धरा का एक विस्तार प्राप्त भाग मात्र बनकर रह जायगा, जहां मानव अपने लोभ एवं दम्भ की सन्तुष्टि में जुटा होगा।

इस विषय में तथ्य की बात यह है कि यदि मानव जाति को अन्तरिक्ष युग के योग्य बनना है तो उसे अपने में एक आध्यात्मिक क्रांति करनी होगी। विचार एवं आचरण की क्षुद्रता, जिससे हम अब तक ग्रस्त रहे हैं, से काम नहीं चलेगा। हमें इन सबसे मुक्ति पाकर अपने मानस को स्वयं अन्तरिक्ष के समान ही विस्तृत एवं सर्वान्तिमूर्तकारी बनाना होगा।

यदि मनुष्य अन्तरिक्ष-यात्रा द्वारा उपलब्ध होनेवाले अवसर का बुद्धिमत्तापूर्वक उपयोग करेगा तो उसका हर प्रकार से लाभ-ही-लाभ है। स्वास्थ्य एवं सुख तब उसका इच्छानुसार अनुसरण करेंगे। कई भूमियों, जहां के प्राकृतिक रूप सम्भवतः धरती से भिन्न होंगे, की यात्रा का अवसर और अपरिचित रूपवाले जीवन के सम्पर्क में आना तथा नई परिस्थितियों का सामना करना—ये सब तथ्य मनुष्य का चरित्र ऊपर उठायेंगे। वे उसको आज के सभी ओर व्याप्त अवसाद से छुटकारा दिलायेंगे और व्यक्तित्व की उस शक्ति का पुनर्लाभ करायेंगे, जो मानवता के किशोर काल में उसका एक विशिष्ट लक्षण था। यह वह युग था, जब देवी-देवता इस धरती पर विचरण किया करते थे और मनुष्य को प्रकृति एवं उसकी सारी सन्तानों से अपने निकट सम्बन्ध की प्रतीति होती थी। आज मानव ने यह प्रतीति खो दी है।

परन्तु यह सम्भव तभी हो सकेगा, जब मनुष्य युद्ध का पूर्ण प्रतिषेध एवं अपने साथियों के साथ शांतिपूर्वक रहना सीख ले। कोई भी राष्ट्र आवश्यक प्रतिमाओं एवं भौतिक साधनों से कितना ही सम्पन्न क्यों न हो, अन्तरिक्ष-विजय का प्रयास किसी एक राष्ट्र द्वारा अकेले सम्भव नहीं, विजय लाभ की तो बात ही दूर है। कोई भी ऐसा एकाकी स्वार्थपूर्ण प्रयास सम्भवतः पूर्णतः विफल ही होगा। ऐसा प्रयास निस्सन्देह धरती को केवल खंडहर में बदल सकता

(शेष पृष्ठ १८४ पर)

जीवन-संपदा का अधिकार

रजनीश

१. मैं क्या देखता हूं ? देखता हूं कि मनुष्य सोया हुआ है । आप सोये हुए हैं । प्रत्येक सोया हुआ है । रात्रियां ही नहीं, दिवस भी निद्रा में ही बीत रहे हैं । निद्रा तो निद्रा है ही, किन्तु यह तथाकथित जागरण भी निद्रा ही है । आंखों के खुल जाने मात्र से नींद नहीं टूटती । उसके लिए तो अन्तस् का खुलना आवश्यक है । वास्तविक जागरण का द्वार अन्तस् है । जिसका अंतस् सोया हो, वह जागकर भी जागा हुआ नहीं होता और जिसका अंतस् जागता है, वह सोकर भी सोता नहीं है ।

२. जीवन जागरण में है । निद्रा तो मृत्यु का ही रूप है । जाग्रति का दीपक ही हृदय को आलोक से भरता है । निद्रा तो अन्धकार है और अंधकार में होना, दुःख में, पीड़ा में, संताप में होना है । स्वयं से पूछें कि आप कहां हैं ? क्या हैं ? यदि संताप में हैं, भय में हैं, दुःख और पीड़ा में हैं तो जानें कि अंधकार में हैं—जानें कि निद्रा में हैं । इसके पूर्व कि कोई जागने की दिशा में चले, यह जानना आवश्यक है कि वह निद्रा में है । जो यही नहीं जानता वह जाग भी नहीं सकता है । क्या कारागृह से मुक्त होने की आकांक्षा के जन्म के लिए स्वयं के कारागृह में होने का बोध जरूरी नहीं है ?

३. मैं प्रत्येक से प्रार्थना करता हूं कि वह भीतर झांके । अपने मन के कुएं में देखें । क्या वहां से आंखें हटाने की वृत्ति होती है ? क्या वहां से भागने का विचार आता है ? निश्चय ही यदि वहां से पलायन का ख्याल उठता हो तो जानना कि वहां अंधकार इकट्ठा है । आंखें अंधकार से हटना चाहती हैं और आलोक की ओर उठना चाहती हैं ।

४. प्रतिदिन नये-नये मनुष्यों को जानने का मुझे मौका मिलता है । हजारों लोगों को अध्ययन करने का अवसर मिलता है । एक बात उन सबमें समान है । वह है दुःख । सभी दुखी हैं । सभी पीड़ा में डूबे दिखाई देते हैं । एक घना संताप है, चिन्ता है, जिसमें कि वे सब जकड़े हुए हैं । इससे वे बेचैन हैं और तड़फड़ा रहे हैं । स्वांस तक लेना कठिन हो रहा है । आसपास दुःख ही दिखाई देता है, हवाओं का—जीवनदायी हवाओं का तो कोई पता ही नहीं है । क्या ऐसी ही स्थिति आपकी है ? क्या आप भी अपने भीतर घबड़ा देनेवाली घुटन का अनुभव नहीं करते हैं ? क्या आपकी गर्दन को भी चिन्ताएं नहीं दबा रही हैं और क्या आपके रक्त में भी उनका विष प्रवेश नहीं कर गया है ?

५. अर्थहीनता घर किये हुए है । ऊब से सब दबे हैं और टूट रहे हैं । क्या आप इससे ही तृप्त और संतुष्ट हैं ? यदि यही जीवन है तो फिर मृत्यु क्या होगी ? नहीं मित्र, यह जीवन नहीं है । वस्तुतः यह मृत्यु है, और जीवन से हम परिचित नहीं हैं । जीवन सर्वथा भिन्न अनुभव है । जानकर ही मैं यह कह रहा हूं । कभी इस तथाकथित जीवन को ही जीवन मानने की भूल मैंने भी की थी । वह भूल स्वभाविक भी है । जब और किसी भांति के जीवन को व्यक्ति जनता ही नहीं तो जो उपलब्ध होता है, उसे ही जीवन मान लेता है । यह मानना भी सचेतन नहीं होता । सचेतन होते ही तो मानना कठिन हो जाता है । वस्तुतः अविचार में ही—अबोध में ही वैसी भूल होती है । स्व के प्रति थोड़ा-सा भी विचार उस भूल को तोड़ देता है । **जो उपलब्ध है, उसे स्वीकार नहीं, विचार करें ।** स्वीकार अचेतन है । वह अंधविश्वास है । विचार सचेतन है । उसके द्वारा ही भ्रमभंग होना प्रारंभ होता है ।

६. विचार विश्वास से बिलकुल विरोधी घटना है । विश्वास अचेतन है । उससे जो चलता है वह मात्र जीता

ही है, जीवन को उपलब्ध नहीं होता। जीवन को उपलब्ध करने के लिए विश्वास की नहीं, विचार और विवेक की दिशा पकड़नी होती है। विश्वास यानी मानना। विचार यानी खोजना। जानने को मानना घातक है। खोज के लिए विश्वास बाधा है। जो मान लेते हैं, वे जानने की दिशा में चलते ही नहीं। चलने का कोई कारण ही नहीं रह जाता। जानने का काम मानना ही कर देता है। इस भांति कागज के फूल ही असली फूलों का धोखा दे देते हैं। और झूठे काल्पनिक पानी से ही अपनी प्यास के बुझाने को मान लिया जाता है।

७. ज्ञान के मार्ग में विश्वास की वृत्ति सबसे बड़ा अवरोध है। विचार की मुक्ति में विश्वास की ही अड़चन है। विश्वास की जंजीरें ही स्वयं की विचारशक्ति को जीवन की यात्रा नहीं करने देतीं और उनमें रुका व्यक्ति पानी के घिरे डबरों की भांति हो जाता है। फिर वह सड़ता है और नष्ट होता है, लेकिन सागर की ओर दौड़ना उसे संभव नहीं रह जाता। बंधो नहीं—स्वयं को बांधो नहीं। खोजो—खोजने में ही सत्य जीवन की प्राप्ति है।

८. जीवन जैसा मिला है, उसपर विश्वास मत कर लेना—उससे संतुष्ट मत हो जाना। वह जीवन नहीं, बल्कि जीवन के विकास और अनुभव की एक संभावना मात्र ही है। एक कहानी मैंने सुनी है। किसी वृद्ध व्यक्ति ने अपने दो पुत्रों की परीक्षा लेनी चाही। मरने के पूर्व वह अपनी संपत्ति का उत्तराधिकारी चुनना चाहता था। उसने गेहूं के कुछ बीज दोनों को दिये और कहा कि मैं अनिश्चित समय के लिए तीर्थ यात्रा पर जा रहा हूं, तुम इन बीजों को संभालकर रखना। पहले पुत्र ने उन्हें जमीन में गाड़कर रख दिया। दूसरे ने उनकी खेती की और उन्हें बढ़ाया। कुछ वर्षों बाद जब वृद्ध लौटा तो पहले के बीज सड़कर नष्ट हो गये थे और दूसरे ने उन्हें हजारों गुना बढ़ाकर संपदा में परिणत कर लिया था। यही स्थिति जीवन की भी है। जो जीवन हमें मिलता है, वह बीजों की भांति है। उससे ही तृप्त नहीं हो जाना है। बीज तो संभावनाएं हैं। उन्हें जो वास्तविकताओं में परिवर्तित कर लेता है, वही उनमें छिपी संपदा का मालिक होता है।

९. हम सब अवसर हैं। जो हैं, वहीं नहीं रुके रहना है। वस्तुतः जो हो सकते हैं, वहां तक पहुंचना है। वहीं पहुंचना हमारा वास्तविक होना भी है। फूलों को कभी देखा है? कभी उनके आनन्द को, कभी उनकी अभिव्यक्ति को विचारा है? सुबह हम फूलों की एक सुन्दर बगिया में थे जो मित्र साथ थे, उनसे मैंने कहा: "फूल सुन्दर हैं, स्वस्थ हैं और सुवास से भरे हैं, क्योंकि वे जो हो सकते थे, वही हो गये हैं। उन्होंने अपने विकास की पूर्णता को पा लिया है। जबतक मनुष्य भी ऐसा ही न हो जाय, तबतक उसका जीवन भी सुवास से नहीं भरता है।"

●

(पृष्ठ १७० का शेष)

पूछा कि आप उदासीन क्यों हैं? तो बोले, "ये भी दिन जायंगे।" फिर भयानक आपत्तियां आईं, उनको बनवास में जाना पड़ा। लोग दुखी हुए, लेकिन भगवान राम फिर भी शांत थे। उन्होंने कहा: "ये दिन भी जायंगे।" फिर जंगल में सब प्रसन्न थे, खुश थे, सीताजी खुश थीं, लक्ष्मण खुश थे, रामचंद्र शांत उदासीन थे। बोले: "ये दिन भी जायंगे।" फिर सीताहरण हुआ, आपत्तियां आईं, सब दुखी हो गये। प्रभु उदासीन थे। बोले: "ये दिन भी जायंगे।" यों करके सारी रामायण बताई।

सार यह है कि सुख के बाद दुःख और दुःख के बाद सुख आनेवाले हैं। आयंगे और जायंगे। सुख-दुःख आये और गये, लेकिन रामचंद्रजी के चेहरे पर शांति थी, क्योंकि वह जानते थे कि "ये दिन भी जायंगे।" सार यह है कि दुःख सबको भोगना है। बात इतनी ही है कि हमारे दुःख में आपकी सहानुभूति चाहिए। इसलिए हम अभी यह कोशिश नहीं करते कि ग्रामदान में बिलकुल समानता हो। लेकिन परिवार के समान सब रहें और एक दूसरे के लिए सहानुभूति रहे।

●

सदाचार का वातावरण

हरिभाऊ उपाध्याय

अखिल भारतीय संयुक्त सदाचार समिति ने निश्चय किया है कि आगामी १३ अप्रैल को सारे भारत में, सभी प्रदेशों और जिलों में सदाचार–दिवस मनाया जाय। यह प्रसन्नता का विषय है कि भारत के रक्षा मंत्री श्री यशवन्तराव चौहान ने सदाचार दिवस समारोह का मंगलाचरण करना स्वीकार किया है। इसमें दो राय नहीं हो सकतीं कि मानव-जीवन के विकास और समाज की समुचित व्यवस्था और उन्नति के लिए सदाचार अनिवार्य है। सभी धर्म, सभी देश, सभी महापुरुष और गुरु, सभी राजनैतिक दल के नेता, सदाचार के महत्व को मानते हैं। इसलिए मैं आशा करता हूं कि सभी धर्मों और राजनैतिक दल के लोग मिलकर इस उत्सव को उत्साह और सफलता के साथ मनायेंगे। इसका विस्तृत कार्यक्रम समिति की ओर से प्रकाशित किया गया है।

सदाचार का सीधा-सादा अर्थ है—सचाई और ईमानदारी से जीवन के समस्त कार्यों को करना। हमारे राष्ट्रपिता गांधीजी ने इसे साधन-शुद्धि के नाम से पुकारा था, पर यह बड़े दुःख की बात है कि इस समय हमारे देश में चारों ओर से सदाचार के विपरीत दुराचार और भ्रष्टाचार की आवाज सुनाई देती है। ऐसा प्रतीत होता है कि मानो हम अपने जीवन के इन परम मूल्यों को खोते जा रहे हैं, यहांतक कि हमारी सरकार को भ्रष्टाचार-निवारण के लिए एक खास समिति बिठानी पड़ी। उस समिति ने माना है कि केवल सरकारी आज्ञाओं और साधनों से भ्रष्टाचार का निवारण नहीं हो सकता, क्योंकि यह दुतर्फा है। इसके लिए जन-साधारण में सदाचार का वातावरण फैलाना जरूरी है। इसी उद्देश्य को लेकर संयुक्त सदाचार समिति की स्थापना की गई और इसी उद्देश्य को पूरा करने की दृष्टि से सदाचार-दिवस मनाने का निर्णय किया गया है।

सभी धर्मों और देशों में एक परम्परागत सदाचार की प्रणाली चली आ रही है। जो ईश्वर और धर्म ग्रन्थों पर विश्वास रखते हैं, उनके लिए उसके निर्दिष्ट सदाचार ही मान्य हो सकते हैं। उन सबों में सदाचार सम्बन्धी धारणाओं में कोई बहुत अन्तर नहीं है। इसके साथ ही अब एक राष्ट्रीय सदाचार की भी बहुत आवश्यकता है। हम इसे राष्ट्रीय चारित्र्य कहते हैं। भारत में ही नहीं, और देशों में भी अब प्रजातन्त्र प्रणाली स्वीकार की गई है, जिसका संचालन हर देश के अपने-अपने एक संविधान के द्वारा होता है। प्रजातन्त्री देशों में संविधान का महत्व ईश्वर-आज्ञा से दूसरे नम्बर पर माना जाता है और जो लोग ईश्वर को नहीं मानते, उनके लिए तो संविधान का दर्जा सबसे ऊंचा है। उस संविधान के प्रति वफादारी और उसकी मर्यादा का पालन और प्रतिष्ठा की रक्षा महान राष्ट्रीय सदाचार हैं। राजतंत्र की रक्षा के लिए सदाचार उतना आवश्यक नहीं था, जितना प्रजातंत्र की रक्षा के लिए अनिवार्य है। प्रजातन्त्र तो नियम-संविधान, मर्यादा-पालन पर ही निर्भर है। अतः मैं चाहता हूं कि सदाचार दिवस में सब जगह हम अपने संविधान के प्रति निष्ठा का प्रदर्शन करें।

कई सामाजिक और प्रशासनिक रीति-नीतियां भी ऐसी देखी जाती हैं, जिनके कारण अनैतिकता, दुराचार और भ्रष्टाचार का मौका मिलता रहता है। आर्थिक विषमता भी एक ऐसा रोग है, जो मनुष्य को भ्रष्टाचार और दुराचार के लिए मजबूर करता है। सब प्रकार के भ्रष्टाचारों, दुराचारों के खिलाफ आवाज उठाना आवश्यक है। इस विषम रोग के निवारण के लिए ही समाजवादी व्यवस्था की घोषणा की गई है।

कोई बीज या पौधा अनुकूल वातावरण में ही पनप और फल-फूल सकता है। कठोर नियम, अनुशासन, दण्ड-विधान भी तभी सफल हो सकते हैं, जब जन-मानस उनके अनुकूल हों। इसलिए सरकारी प्रयासों के साथ-साथ लोक-शिक्षा भी सतत चलती रहनी चाहिए।

अपने सभी देशवासियों से मेरी अपील है कि पूर्वोक्त बातों पर ध्यान देकर सदाचार-दिवस को इस सफलता के साथ मनावें, जिससे भारत में दुराचार और भ्रष्टाचार को बहुत हद तक नियंत्रण में लाया जा सके।

यमुना तट ने छीन लिया ऐश्वर्य हमारा

वासुदेव शर्मा

इसी भूमि पर देव तुल्य ऐसा नर आया,
मानव का आदर्श आचरण से बतलाया।
सब सुख थे स्वाधीन किन्तु उनको ठुकराया,
पराधीन पद दलित देश को हृदय लगाया।

कवि का कोमल हृदय, बुद्ध की करुणा पाई,
हिमगिरि-सा विश्वास, उमंगों में तरुणाई।
धरा धन्य हो उठी स्वर्ण-सी किरणें छाईं,
उर्म्मिल सागर हुआ, नीलिमा नभ मुस्काई।

आँधी हो तूफान उन्हें डटकर ललकारा,
बिता दिया संग्राम-भूमि में जीवन सारा।
रहा जूझता रण-आंगन में सबके आगे,
फूंका जीवन-मंत्र देश के सपने जागे।

सदियों का वह मार्ग किया दशकों में पूरा,
चिन्ता थी यह स्वप्न नहीं रह जाय अधूरा।
किया राष्ट्र निर्माण नया नकशा प्रकटाया,
बना नया इतिहास, नया भूगोल उठाया।

गौतम-सा गृह त्याग, गया वह नहीं गहन वन,
घर-घर को ही लगा बनाने नंदन कानन।
संन्यासी का वेश नहीं—पर संन्यासी था,
आकर्षण निर्लिप्त योग का अभ्यासी था।

पल पल जिसने कर्मयोग में सदा बिताया,
बिना किये विश्राम छोड़ दी नश्वर काया।
इसी देश के लिए जिया प्रणवीर जवाहर,
इसी देश के लिए किया सर्वस्व निछावर।

बच्चे-बच्चे उसे प्राण से प्यारे लगते,
ज्यों गुलाब के फूल रहे ये सदा महकते।
होता है विश्वास नहीं ऐसा नर नाहर,
अब होगा उत्पन्न कभी इस वसुन्धरा पर।

तुम्हें देश से प्यार, प्यार था नगर-नगर से,
इस मिट्टी से प्यार, प्यार था डगर-डगर से।
ग्राम ग्राम से प्यार, प्यार था नहर-नहर से,
सागर से था प्यार, गंग की लहर-लहर से।

हिममंडित ये शैल शिखर झरने नद नाले,
झरते हैं निःशब्द घने ये बादल काले।
पशुपक्षी वन लता कुंज तरु कोमल किसलय,
अतिशय प्रिय था तुम्हें गर्व से खड़ा हिमालय।

आज तुम्हारे बिना शून्यता सब में छाई,
घूम रही सर्वत्र उदासी-सी परछाईं।
अन्तर में है रुदन, रुदन है सदन-सदन में,
वन कानन में रुदन, रुदन है विश्व गगन में।

उन्मन तारे चांद शून्य नभ की गहराई,
उर्म्मिल सागर आज नहीं लेता अंगड़ाई।
बहती है चुपचाप सिंधु सतलज की धारा,
यमुना तट ने छीन लिया ऐश्वर्य हमारा।

पुष्पांजलि कर कोटि उठाये खिन्न धरा है,
भस्म कलस में जन मानस की स्मृति बिखरा है।
नत मस्तक बढ़ चली देश में अश्रु कतारें,
नयनों में बस रहे—जवाहर कहां हमारे ?

श्रीअरविन्द के संदेशवाहक पुराणीजी

रवीन्द्र

"क्षमा कीजिये डाक्टर, आपकी बात मान लूं तो मुझे सब कुछ काम-काज छोड़कर सारे समय बड़े ही जतन से इस शव को ढोना पड़ेगा। मैं पुनर्जन्म माननेवाला हूं। मेरे लिए इसी शरीर के साथ जीवन की इतिश्री नहीं हो जाती। लाखों जन्म देखे हैं और लाखों देखने बाकी हैं। जबतक शरीर काम देता है, तबतक ठीक है, काम न दे सके तो उसे घसीटते रहने में क्या मजा है ?"

लगभग सत्तर वर्ष के पुराणीजी इंग्लेण्ड, फ्रांस, जर्मनी, अमरीका, जापान आदि का चक्कर लगाकर लौटे ही थे कि उन्हें हृदय का दौरा हो गया। इससे पहले रक्त-तंच (थाम्बोसिस) दो बार 'मैं भी जाऊं' पूछ चुका था। पर पुराणीजी ने उसे अंदर घुसने की इजाजत न दी। अब उन्हें ज़रा सुस्ताते देख उसने जोर से पंजा मारा और पहलवान को गिरा लिया। शरीर पछाड़ खा गया, देखनेवालों ने सोचा अब किस्सा खत्म। लेकिन जिसने जीवन भर कभी हार न मानी हो वह भला यम के प्रहार के आगे कैसे झुक जाता ? देखने वालों ने देखा कि पुराणीजी इस घातक चोट को भी सह गये। स्थिति गम्भीर थी। भारत के सबसे बड़े हृदयरोग विशेषज्ञ को दिखाया गया। उन्होंने कहा, "यह अपने-आपमें आश्चर्य की बात है कि यह रोगी इस अवस्था में भी जिंदा है। इसके उठने-बैठने पर, हिलने-डुलने पर नियंत्रण होना चाहिए। काम करने का तो ख्याल ही मन से निकाल देना चाहिए, तब शायद कुछ दिन का आयुष्य और मिल जाय।" भारतीय संस्कृति में पगे हुए पुराणीजी ने जो उत्तर दिया, वह हम पहले ही देख आये हैं। इसका परिणाम क्या हुआ ? जो डाक्टर कुछ न करने के लिए कह रहे थे वही अपने संगी-साथियों को बुला लाये और उन्होंने आत्मा की अनश्वरता के बारे में बहुत-सी बातें सुनीं। जब आदमी भला-चंगा हो, तब "नैनं छिन्दन्ति शास्त्राणि' कहना बहुत सरल है, पर जब जीवन और मृत्यु के बीच केवल एक सांस का पर्दा हो तब, उस डाक्टर के सामने जिसे, लोग जीवनदाता मानते हैं, ऐसी बातें कह सकना किसी विरले का ही काम है।

लेकिन यह कोई आकस्मिक घटना न थी। पुराणीजी के पूर्वजों में मेवाड़ का रक्त बहता था। ऋषि दयानन्द ने उनके घर को अतिथि बनकर पवित्र किया था। इनके पिता अपने नियमित जीवन और कर्तव्य-परायणता के लिए प्रसिद्ध थे। कहते हैं, वह अपने विद्यालय में पढ़ाने के लिए आये, लड़कों से कहा, "पुस्तकें खोलो," और वहीं समाप्त हो गये।

पुराणीजी को छोटी आयु में ही श्रीअरविन्द के दर्शन हुए, मानो उसी समय उनके भावी जीवन का कार्यक्रम अजाने ही निश्चित हो गया। देश परतंत्र था। गुलामी की जंजीरें उसे जकड़े हुए थीं। श्रीअरविन्द इसके विरुद्ध जूझ रहे थे। नवयुवक पुराणी मानों मंत्र मुग्ध से हो गये और उन्होंने धन-दौलत को ही सब कुछ माननेवाले गुजरात की भावी सन्तति को जगाने का बीड़ा उठाया। कुश्ती, लाठी, गतका, मलखम्ब आदि नाना प्रकार की कसरतों का प्रचार शुरू हुआ, बीस-बीस, पचीस-पचीस मील दौड़ने, पहाड़ों पर और जंगलों में बाकायदा युद्ध-कला-शिक्षण के कार्य-क्रम शुरू हो गये। उन दिनों भले घरों के लड़के इस प्रकार की चीजों में भाग नहीं ले सकते थे। व्यायाम करना या कुश्ती आदि में भाग लेना तो हुड़दंगों का काम था। ऐसे समय में पुराणीजी के चुम्बकीय व्यक्तित्व ने बारह-चौदह वर्ष के लड़कों को अपनी ओर खींचना शुरू किया। अच्छे-भले

घरों के लड़के मां-बाप का विरोध सहकर, कई तो मार-पीट सहते हुए लंगोट बांधकर पुराणीजी की व्यायाम-शालाओं में आने लगे। कसरत और खेल कूद के साथ-साथ उन्हें भारतीयता की शिक्षा मिलती थी, खेल-ही-में उन्हें बताया जाता था कि जीवन में कुछ और भी है, जिसे प्राप्त किये बिना मनुष्य दो पांव पर चलनेवाला जानवर रह जाता है।

धीरे-धीरे जादू का असर बढ़ता गया, विरोधी भी पुराणीजी के प्रशंसक बनते गये। सारे गुजरात में 'बड़ील बन्धु' पुराणी का असर फैल गया। नगर-नगर में, गांव-गांव में व्यायामशालाएं खुलने लगीं, सच्चरित्र युवकों की टोलियां देश के लिए कुछ करने के अरमान लिये, सुख-सुविधाओं को छोड़कर तपस्या का जीवन बिताने लगीं। खाना मिल गया तो खा लिया, न मिला तो सूखे चने चबा लिये और कभी वह भी मुयस्सर न हुए तो हरिनाम लेकर पानी पी लिया। व्यायाम के साथ कला, संस्कृति, धर्म आदि का अध्ययन भी चलता जाता था। भारत को स्वाधीन कराने के लिए क्रांतिकारी कार्यक्रम तो वना लिया, उसके लिए पूरी तैयारी भी कर ली, पर अनगिनत युवकों की जानों की बाजी लगा देना आसान काम न था। अपनी जिम्मेदारी पर पुराणीजी इतना बड़ा काम हाथ में नहीं लेना चाहते थे। उन्हें अपने गुरु के सान्निध्य में आकर पथ-प्रदर्शन पाने की जरूरत मालूम हुई। उन दिनों पांडिचेरी जाना बहुत ही कठिन काम था। अंग्रेज सरकार को विश्वास था कि वहां बैठकर श्रीअरविन्द गुप्त रूप से बम बना रहे हैं और अंग्रेजी राज्य का तख्ता उलटने की तैयारी कर रहे हैं। पांडिचेरी आनेवाले के साथ गुप्तचर छाया की तरह लग जाते थे। लेकिन जब ओखली में सिर दिया तो मूसलों का क्या डर? वह पहली बार १९१८ में पांडिचेरी आये।

श्रीअरविन्द से इन्होंने अपने क्रांतिकारी कार्य के लिए आशीर्वाद मांगा। श्रीअरविन्द ने कहा, "नहीं, भारत की स्वाधीनता के लिए इसकी जरूरत नहीं होगी।" पुराणीजी के आग्रह करने पर गुरु ने कहा, "मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूं कि भारत स्वतन्त्र होगा और अवश्य होगा और उसके लिए क्रांति की जरूरत नहीं होगी।" ऊपर से हुकुम हो चुका है, भारत का स्वतन्त्र होना उतना ही निश्चित है, जितना सूर्य का उगना। उसके लिए उसे यथोचित नेता भी मिल जायंगे। इसलिए जो आध्यात्मिक जीवन की पुकार सुन रहे हैं, उन्हें आंतरिक काम पर ही अधिक जोर देना चाहिए। हृदय के कपाट खुल गये। संशय, शंका, चिंता आदि को धो डाला गया और लगभग ढाई वर्ष के बाद पुराणीजी निश्चिन्त होकर सो सके। यहां से वापस जाकर उन्होंने सशस्त्र क्रांति का विचार छोड़ दिया और शरीर-गठन, चरित्र-निर्माण आदि के रचनात्मक काम में पूरी तरह से लग गये। यहां यह ध्यान रहे कि श्रीअरविन्द के प्रभाव में आकर पुराणीजी शुरू से हर काम भगवान का काम मानकर भगवान के लिए ही करते थे।

दो वर्ष बाद १९२० में पुराणीजी फिर पांडिचेरी आये। इस बार उन्हींके शब्दों में "इन दो वर्षों में श्रीअरविन्द के शरीर की कांति में आश्चर्यजनक परिवर्तन हो गया था। पहले सामान्य बंगालियों की तरह उनका श्यामवर्ण था, चेहरे पर और आंखों में एक अलौकिक प्रभा थी। इस बार सीढ़ी चढ़ते ही मैंने सेव के जैसे लालिमा लिये हुए गाल और तेजस्वी स्निग्ध गौर वर्ण देखा। श्रीअरविन्द के शरीर में यह परिवर्तन देखकर मेरे मुंह से निकल पड़ा—"आपको क्या हो गया है? बाद में मालूम हुआ कि यह परिवर्तन साधना के परिणाम स्वरूप हुआ था।"

इसके बाद १९२३ में पुराणीजी स्थिर रूप से श्रीअरविन्द के साथ ही रह गये। यहां रहते हुए भी गुजरात की व्यायाम संस्थाओं के साथ उनका सम्बन्ध बना रहा। उसके मार्ग-दर्शन के लिए लिखे गये पत्रों की कई किताबें छप चुकी हैं। आश्रम में रहते हुए उन्होंने श्रीअरविन्द की बहुत-सी पुस्तकों का गुजराती में अनुवाद किया और बहुत-से स्वतंत्र लेख लिखे, जिनके कई संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। वैदिक साहित्य का उन्होंने गम्भीर अध्ययन किया था और श्रीअरविन्द के वेद भाष्य की दृष्टि से वैदिक शब्दों का ऐक कोश भी तैयार किया था। श्रीअरविन्द के महाकाव्य 'सावित्री' पर एक ग्रंथ अंग्रेजी में लिखा और इसी प्रकार अन्य अनेकानेक पुस्तकें रचीं। उनके बहुत से

लेखों के अनुवाद हिन्दी में भी छप चुके हैं। हिन्दी में तुलसी और कबीर का उन्होंने अच्छा अध्ययन किया था और अपने परम मित्र सुमित्रानन्दन पंत के काव्य से भी अच्छा परिचय रखते थे।

इतना सब काम करते हुए भी पुराणीजी को देखकर कभी यह न लगता था कि उन्हें अवकाश नहीं मिलता। अपनी समस्या लेकर हर व्यक्ति उनसे मिल सकता था पत्र-व्यवहार कर सकता था, फिर चाहे वह पारिवारिक कलह से लेकर संस्थाओं के संगठन-सम्बन्धी, साहित्य-विषयक या किराये पर मकान लेने की समस्या क्यों न हो, हरेक का समाधान करने के लिए उनके पास यथेष्ट समय होता था। "समय नहीं है" कहकर उन्होंने शायद ही कभी किसीको लौटाया हो। उनके व्यक्तित्व में एक आग थी, जो हमेशा धधकती रहती थी और सम्पर्क में आने वाले पर अपना प्रभाव डाले बिना न रहती थी। उन्हें देखने से ही शरीर में स्फूर्ति आती थी और उत्साह बढ़ता था। इतने काम-काज में लगे हुए पुराणीजी पांडिचेरी आनेवाले नये लोगों को जो पत्र लिखा करते थे, वे सचमुच देखने लायक होते थे। उन पत्रों में वह पूरी जानकारी होती थी, जिसकी किसी नये आदमी को जरूरत हो सकती है। उनमें यहांतक सूचना होती थी कि यहां मच्छर बहुत हैं, अपने साथ मच्छरदानी लेते आना, यहां सर्दी ज्यादा नहीं होती, गरम कपड़ों की जरूरत नहीं है, यहां स्टेशन पर कुली को इतने पैसे देने होते हैं और रिक्शा का किराया इतना होगा। नया आदमी उन दिनों के पांडिचेरी के वातावरण में खो-सा जाता था। अजानी भाषा, पुलिस की दृष्टि, घरों की समस्या आदि से घबराहट होती थी। ऐसे समय पुराणीजी ही नये लोगों के—चाहे वे राजा हों या रंक—सबसे अच्छे मित्र होते थे। एक इसी प्रकार के गुमनाम विद्यार्थी को लिखे हुए "पुराणीजी के एक पत्र को देखकर गांधीजी के दो महारथी—श्री मशरूवाला और श्री धोत्रे—बोल उठे थे, "पुराणीजी के जैसे कामकाजी आदमी के पत्र में इतनी छोटी-छोटी बातें भी नहीं छट पातीं, यह सचमुच आध्यात्मिकता का ही प्रभाव है।"

१९४७ में श्रीअरविन्द के जन्म-दिन पर भारत स्वतंत्र हुआ। गुजरात से बुलावा आया। लोगों का आग्रह था कि पुराणीजी आकर अपने गुरु की प्रसादी हमें भी दें। श्रीअरविन्द का आशीर्वाद लेकर उन्होंने वहां की यात्रा की, उसके बाद कई अन्य प्रदेशों और देशों में भी जाना पड़ा। वह जैसे-जैसे भ्रमण करते गए, वैसे-वैसे उनके लिए मांग बढ़ती गई। लोग उनके सम्पर्क में आने और उनसे माताजी तथा श्रीअरविन्द का सन्देश सुनने के लिए लालायित रहने लगे। उन्होंने श्रीअरविन्द का एक जीवन-चरित्र लिखा और 'श्रीअरविन्द के साथ वार्तालाप' के कई भाग तैयार किये। जापान, यूरोप और अमरीका में विद्यालयों, विश्व-विद्यालयों, गिरजाघरों और अन्य सभा-सोसाइटियों में न जाने कितने लोगों को उन्होंने श्रीअरविन्द का सन्देसा सुनाया। उनके प्रभाव का कुछ अन्दाजा उन पत्रों से लग सकता है, जो अभी तक आते जा रहे हैं।

विदेश यात्रा में अत्याधिक कार्यभार और अनियमित जीवन के कारण उनका शरीर कुछ थक-सा गया था। उसी समय हृद्रोग ने आकर उन्हें बहुत दुर्बल कर दिया और कुछ काल के लिए खाट की शरण लेनी पड़ी। उसके बाद शारीरिक श्रम तो बन्द कर देना पड़ा, परन्तु लिखने-पढ़ने का काम वेग से चलता रहा। १० दिसम्बर १९६५ की शाम को पुराणीजी भले-चंगे थे। कुछ लोगों को अगले दिन सवेरे मिलने के लिए समय दिया। रात को फिर से हृदय का दौरा हुआ, सवेरे साढ़े पांच के आस-पास चारों ओर नजर घुमाई, मानों वहां आये हुए लोगों से विदा ले रहे हों और अपनी आंखें हमेशा के लिए मूंद लीं। कमरे में शान्ति का राज्य था, कहीं एक हिचकी तक न सुनाई दी। श्रीअरविन्द के सन्देशवाहक के यहां शोक कैसे आ सकता था। लोगों ने देखा, पुराणीजी मरे नहीं हैं, उनके पंच तत्व अपने-अपने मूल में जा मिले हैं।

●

बाबा के साथ चार दिन

निर्मला देशपाण्डे

"यहां पर मैं ईश्वर के 'डिटेंशन' (कैद) में हूं। इस सीमा के बाहर नहीं जा सकता हूं।"—एक वृद्ध अतिथि को छोड़ने, बाबा अपने निवास-स्थान के गेट के पास पहुंचे और प्रणाम करते हुए उन्होंने यह बात कही। जमशेदपुर का इंस्पेक्शन बंगला, उनका 'डिटेंशन कैम्प' है, जिसके बाहर जाने के लिए उसकी अनुमति चाहिए, जिसके पास सिर्फ वे ही पहुंच सकते हैं।

किसीने पूछा "आप कबतक यहां रहेंगे?" बाबा ने कहा—"जबतक वह चाहेगा! मानव के हाथ में है क्या? शास्त्रीजी यहीं पर मुझसे मिले थे और जाते समय आश्वासन देकर गये कि फिर मिलूंगा, जल्द-से-जल्द मिलने की कोशिश करूंगा। क्या वह अपना वादा पूरा कर सके?"

"हमने सुना है कि आप एक साल तक यहां रहेंगे?" प्रश्नकर्ता ने कहा। "हम एक माह यहां रह चुके, इतना कह सकता हूं।" बाबा ने जवाब दिया।

जनवरी २२ की सुबह जब मैं बाबा के पास पहुंची, तब वह लान पर लेटे थे। सूर्योदय के बाद लान पर आ जाते हैं और सूर्यास्त के समय कमरे में लौट जाते हैं। सूर्य की यात्रा के साथ, उनकी चारपाई की दस-बीस गज की सीमा के भीतर यात्रा चलती है और धूप से बचानेवाले रंगीन छाते की दिशा भी बदलती रहती है। उनका वास्तविक निवास-स्थान है वह लान, इंस्पेक्शन बंगाला सिर्फ शयन-स्थान है। लान सड़क के किनारे है। दिन-भर वाहनों का आवागमन चलता रहता है। बाबा कहते हैं—"यहां पर मुझे फुटपाथ पर रहने का आनन्द मिल रहा है। ऐसा आनन्द जीवन में अब तक नहीं मिला था।" सड़क पर अधिक शोर होता है, तो बाबा बंबई और कलकत्ते के फुटपाथ पर रहनेवाले गरीबों के जीवन की अनुभूति लेते हैं।

मैं प्रणाम करने गई, तब बाबा अखबार पढ़ रहे थे। वह सभी अखबार बारीकी से पढ़ते हैं। उसके बाद उनके हाथ में कभी 'भागवत धर्म-सार' दीखा, कभी 'गुरु-बोध-सार', तो कभी 'विचारपोथी।' पेंसिल से निशान लगाये जा रहे थे। कुसुम ने एक दफा मूल संस्कृत ग्रंथ पढ़ने की इच्छा प्रकट की तो बाबा ने कहा था कि "तुम्हें वह सब पढ़ने की क्या आवश्यकता है? मैंने सबका सार, मक्खन तुम लोगों को दिया है, उसीका सेवन करो।"

पृथ्वी घूमती है; लेकिन हमें स्थिर-सी लगती है। बाबा के पास चार दिन रही। तब स्थिरता में तूफान देखा। आंध्र और उड़ीसा से ग्रामदान-प्राप्ति की सूचनाएं तार द्वारा आईं। बाबा ने बाल से कहा—ये तार रखते हो न? संभालकर रखो।" और फिर पास बैठे हुए बंगाल के कार्यकर्ताओं से कहा, "मैं ऐसी ही खबरें सुनना चाहता हूं।" खाने का समय होते ही बाबा उठ खड़े हुए। ताई ने कहा, "आजकल खड़े-खड़े ही खाते हैं।" वेदों में कहा है कि सोनेवाला कलियुग में, बैठनेवाला द्वापर युग में, खड़ा रहनेवाला त्रेतायुग में और चलनेवाला सत्ययुग में रहता है। इन दिनों बाबा अपने हृदयस्थ राम के द्वापार युग को छोड़कर अन्य सब युगों में रहते हैं। सुबह आधा घंटा सत्युगों में बीतता है और दिन-भर में बीच-बीच में वह पिंजड़े के शेर की तरह घूमते रहते हैं। ताई कुछ बोल रही थीं और बाबा सुन रहे थे। मैं विश्वास न कर सकी। हमने माना था कि अब वे हम मानवों की वाणी कभी न सुन सकेंगे, अनहद नाद ही सुनते रहेंगे। लेकिन उनकी श्रवण-शक्ति बहुत बढ़ गई है। अब वे हमारी बातें भी सुन लेते हैं।

मध्य प्रदेश के भूतपूर्व मंत्री तथा मजदूर-नेता श्री द्रविड़ साहब बाबा के प्रेम-परिवार के सदस्य हैं। मध्य-

प्रदेश के सर्वोदय-कार्य में उनका सक्रिय सहयोग मिलता रहता है। बाबा की मध्यप्रदेश की यात्रा के लिए उन्होंने श्रद्धा से मजदूर संघ की गाड़ी भेजी थी। उस यात्रा में जब द्रविड़ साहब उनसे मिलने गये तो बाबा ने हाथ जोड़कर हँसते हुए कहा, "जय द्रविड़! अब तक मैं स्वावलंबी था, अब द्रविड़ावलंबी हो गया हूं।" गत दिसंबर के 'इंटक' के अधिवेशन में अ० भा० राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस के अध्यक्ष के तौर पर द्रविड़ साहब को चुना गया। जमशेदपुर में बर्नपुर के एक मजदूर-नेता, श्री दास बाबा से मिलने आये, तब बाबा ने उनसे कहा—"इस साल आपने 'इंटक' का प्रेसीडेंट द्रविड़ को बनाया है। वह बहुत अच्छे आदमी हैं। मेरी कल्पना है कि ग्रामदान-आन्दोलन और मजदूर-आन्दोलन दोनों का 'कोआपरेशन' होना चाहिए, क्योंकि ग्रामदान आन्दोलन में देहातों के जो भूमिहीन मजदूरों हैं, उन्हें उठाने की बात है और मजदूर का आन्दोलन शहर, कारखाने वगैरह के मजदूरों में चलता है। अगर कहीं शहर के मजदूर हड़ताल करते हैं, तो दूसरे मजदूर काम करने आते हैं। लेकिन गांव-गांव में ग्रामदान हो जाय, तो फिर ग्रामसभा की इजाजत से ही गांव के मजदूर शहर आयंगे, इसलिए भूमिहीन मजदूर अगर मजबूत बनते हैं, उनको अपने गांव में ही काम मिलता है, तो फिर जब कभी फैक्टरी वगैरा को जरूरत पड़ेगी तो उन्हें ग्रामदानी गांव की ग्रामसभा के पास जाकर मजदूर मांगने पड़ेंगे, ग्रामसभा शर्तें पेश करेगी कि मजदूरों के लिए अच्छे मकान हों, सफाई की व्यवस्था हो, तालीम की व्यवस्था हो, इसलिए मजदूरों की 'बारगेनिंग' बढ़ेगी। आज 'बारगेनिंग पावर' (सौदे की शक्ति) नहीं है। वह ग्रामदान-आन्दोलन से बढ़ेगी।

मेरा ख्याल है कि गांव-गांव में ग्रामदान-प्राप्ति का जो काम चल रहा है, उसमें 'इंटक' को अपने कुछ कार्यकर्ताओं को भेजना चाहिए। ग्रामदान से जमीन की मिलकियत खत्म होती है, फिर फैक्टरी की मिलकियत टिकेगी नहीं, एकदम 'लैंडस्लाइड' होगा। इसलिए चाहता हूं कि आप लोगों की कुछ ताकत ग्रामदान के काम में लगे और मेरी ताकत आपको मिले।

"तीन साल पहले की बात है, मैं राउरकेला गया था। वहाँ पर मैंने 'आफर' किया था कि अगर सारे मजदूर अपना एक यूनियन बनायेंगे तो मैं यहां के मजदूरों का मार्गदर्शन करने के लिए तैयार हूं। वहांपर कम्यूनिस्ट कांग्रेस, पी० एस० पी० आदि के अलग-अलग यूनियन थे और मजदूर बंटे हुए थे। मेरी बात को कांग्रेसवालों और कम्युनिस्टों की यूनियन ने मंजूर किया, लेकिन पी० एस० पी०वाले तैयार नहीं थे। शायद वहांपर उनकी ताकत कुछ ज्यादा थी। वे तैयार नहीं हुए तो मैं लाचार रहा। सारे मजदूरों का एक संगठन नहीं बन सका। अक्सर मजदूरों का राजनैतिक शोषण चलता है, उसमें मजदूरों का 'इंटरेस्ट' (हित) नहीं है, 'पोलिटिक्स' का 'इंटरेस्ट' है। मैंने वहां पर मजदूरों को 'आफर' किया था कि मालिकों के खिलाफ आपकी जो शिकायतें होती हैं, उसमें मैं कुछ करने के लिए तैयार हूं।"

"भूमिहीन मजदूर और 'फैक्टरी मजदूर' अलग-अलग हैं, यह मानकर सिर्फ 'फैक्टरी मजदूरों' का आंदोलन चलाना 'अनसाइंटिफिक' है। इसमें 'पोलिटिकल इंटरेस्ट' है। लेकिन अब 'इंटक' के अध्यक्ष द्रविड बने हैं, तो मजदूर आंदोलन और ग्रामदान आंदोलन, दोनों आंदोलन एक हो जायं।

इस साल जमशेदपुर में ईद के अवसर पर हर मुसलमान भाई के पास बाबा का संदेश पहुँचा। हर मस्जिद पर पीला साफा बांधे हुए शांति-सैनिक उस संदेश के पर्चे बांट रहे थे। शाम को एक मुसलमान सज्जन ईद मुबारक कहने आये, तब बाबा ने कहा कि "मोहम्मद पैगंबर खुद बहुत फ़ाका करते थे, लेकिन लोगों से सिर्फ रमजान में फाका करने के लिए कहते। किसीने उसका कारण पूछा तो उन्होंने कहा कि मैं फाका करता हूं, लेकिन मुझे दूसरा खाना मिलता है, रूहानी खुराक! पैगंबर बादशाह थे, लेकिन जिस दिन मरे उस दिन उनकी पत्नी ने कहा कि उनके घर में दिया जलाने के लिए तेल नहीं था! वह इतनी गरीबी में रहे। उन्होंने अपने चेलों को गरीबी में रहने का उपदेश दिया। एक दफा उनके पास शिकायत आई कि खलीफा उमर महीन आटा खाता है तो उन्होंने उसे बुलाकर कहा कि "महीन आटा क्यों खाते हो? हमें मोटा आटा ही खाना चाहिए।"

गत पंद्रह साल की यात्रा की सबसे आकर्षक चीज थी, सुबह का 'वाकिंग सेमिनार।' बढ़ते हुए चरणों के साथ बाबा की वाक्गंगा भी बहती जाती थी। शायद ही कोई ऐसा विषय हो, जिस पर चर्चा न होती हो। हम लोग चाहे जो ऊटपटांग सवाल करते जाते और काव्यशास्त्र-विनोद में कितना काल बीत जाता, पता ही न चलता। इस बार मैंने पूछा, "क्या वैसी चर्चाएं अब न होंगी?" बाबा ने हँसते हुए कहा, "मुझे दुनिया में अब भी 'इंटरेस्ट' है। दुनिया से मैंने अपने को हटा नहीं लिया है। हां, कोई प्रश्न पूछे तो बोलूंगा।" इस 'पासपोर्ट' को प्राप्त करते ही मैंने प्रश्नों की माला पेश की और जब ज्ञानवर्षा आरम्भ हुई तो मुझे लगा कि मेरा पात्र कितना छोटा है। देनेवाला दे ही रहा था।

मैंने महाराष्ट्र के एक विद्वान् साहित्यिक की बात सुनाई कि वह कहते हैं कि "इन दिनों देश में स्वार्थ भोग-लालसा बहुत बढ़ी है। युवकों का सारा ध्यान भोग की तरफ है। उन्हें रद्दी तालीम दी जा रही है, इससे मुझे बहुत चिन्ता हो रही है।"

बाबा ने जवाब दिया कि "मुझे इसकी जरा भी चिन्ता नहीं है, क्योंकि विश्वशक्तियां उसके खिलाफ हैं विश्व में जो शक्तियां काम कर रही हैं, उनके सामने भोगवृत्ति, स्वार्थ वगैरह टिकेगा नहीं। विश्व में नई शक्तियां काम कर रही हैं, विश्व-मानव बन रहा है। कोसिजिन ने अभी जो काम किया, ऐसा कार्य संसार के इतिहास में कभी नहीं हुआ था। आज तक यही हुआ है कि जब दो देश आपस में लड़ते हैं तो तीसरा देश तटस्थ रहता है, या दोनों में से एक का समर्थन करता है या उस लड़ाई का लाभ उठाकर एक पर हमला करता है। लेकिन लड़नेवाले दो राष्ट्रों को निकट लाकर दोनों में समझौता कराने की कोशिश आज तक कभी नहीं हुई थी। कोसिजिन ने एक महान् कार्य किया है। उधर अमरीका ने हमें जो अनाज दिया है, वह भी एक ऐसी घटना है, जिसमें विश्वशक्ति काम कर रही है। यह भूतदया-प्रेरित कार्य है। उन दो घटनाओं का मुझ पर बहुत असर हुआ। इसलिए युवकों को कितनी भी रद्दी तालीम दी जाय तो भी विश्व-शक्तियां उन्हें दूसरी प्रेरणा देंगी। और वे ही विश्व-शक्तियां हमें तालीम को परिवर्तन करने की अक्ल भी देंगी। इसलिए आज जो चल रहा है उनकी मुझे कोई चिंता नहीं है। यह तो 'पासिंग फेज' है।'

विएतनाम की समस्या के बारे में मैंने सवाल किया तो बाबा ने जवाब दिया कि "अमरीका को 'फीयर कांप्लेक्स' है। चीन की ताकत बढ़ेगी, इस भय से अमरीका वहां पर इतना खर्च कर रहा है। लेकिन उसीसे चीन की ताकत बढ़ रही है। अगर अमरीका वहां से अपनी सेना हटा ले, तो चीन की ताकत घटेगी। दक्षिण-पूर्व एशिया के राष्ट्र चीन की हुकूमत कबूल नहीं करेंगे, क्योंकि वे सब देश 'नेशनलिस्ट' हैं। हां, यह हो सकता है कि वे देश कम्यूनिज्म को कबूल कर लें। वहां पर कम्यूनिज्म स्टेट्स बन सकते हैं। लेकिन अमरीका के हटने से चीन का जोर कम ही होगा। कुछ देश कम्यू-निस्ट बनें तो क्या हर्ज है? हर देश को अपना पैटर्न तय करने का अधिकार है और आपने 'कोएक्जिस्टेंस' तो मान्य किया ही है।"

मैंने कहा कि "कुछ लोगों का यह आक्षेप है कि चीन-भारत संघर्ष के समय भारत के किसी भी गांधीवादी ने युद्ध के खिलाफ आवाज नहीं उठाई। भारत का समर्थन कर सब गांधीवादियों ने राष्ट्रवादी भूमिका ली।"

इस पर बाबा ने कहा—मान लो कि मैं हिन्दुस्तान का नहीं, जापान का नागरिक होता और उस वक्त मुझे लगता कि भारत पर चीन का हमला हुआ है और भारत उसका प्रतिकार सेना से कर रहा है और इसका मैं बचाव करता तो क्या कहा जाता? क्या मुझे राष्ट्रवादी कहा जाता? इसमें राष्ट्रवाद का सवाल ही नहीं है। किस पक्ष में न्याय और किस पक्ष में अन्याय है, यह सवाल है। हां, और अगर केवल ऐसा बोलना ही हो कि हम युद्ध के खिलाफ हैं, तो मैत्री-यात्रावाले वह बोले भी हैं और भारत की सरकार ने उन्हें बोलने भी दिया। मैं सरकार में होता तो उनसे कहता कि चीन से आपको इजाजत मिलेगी तो फिर हम देखेंगे। उन्हें न चीन ने इजाजत दी, न पाकिस्तान ने दी, न बर्मा ने दी और भारत मानता था कि अपने पर आक्रमण हुआ है, फिर

भी उसने इजाजत दी और उन्हें दो-चार दिन नहीं, नौ-दस महीने तक प्रचार करने दिया। पंडित नेहरू ने यहाँ तक कहा कि यात्रा के विदेशी भाई-बहनों के स्वास्थ्य को संभालो, उन्हें कमजोर मत होने दो। जब पण्डितजी से पूछा गया कि क्या कांग्रेसवाले उस यात्रा में मदद कर सकते हैं ? तो उन्होंने कहा कि 'कांग्रेसमैन' की हैसियत से नहीं कर सकते, लेकिन व्यक्तिगत हैसियत से मदद कर सकते हैं। इससे ज्यादा उदारता क्या होगी ?"

एक विदेशी सज्जन बाबा से मिलने आये। उन्होंने कुछ सवाल पेश किये। एक सवाल था—"क्या आप मानते हैं कि आज का भारत गांधीजी की अपेक्षाओं के अनुसार आगे बढ़ रहा है !"

बाबा ने जवाब दिया—"इस सवाल का जवाब देना कुछ कठिन है। लेकिन मैं यह कह सकता हूं कि अनेक कठिनाइयों के बावजूद भारत गांधीजी की तालीम पर चलने की कोशिश कर रहा है। गांधीजी का पथ बुद्ध और ईसा का पथ है। अगर ईसा मसीह आज इस धरती पर आयेंगे तो क्या देखेंगे ! दुनिया में हर साल बाइबिल की दस लाख से अधिक प्रतियां खरीदी जाती हैं। तो क्या उसके माने यह है कि हम ईसा के पथ पर चल रहे हैं ? क्या उससे ईसा संतुष्ट होंगे ? बड़े दिन पर वियत-नाम में लड़ाई बन्द की गई थी। हाँ, प्रभु ईसा अवश्य हम पर दया करेंगे और कहेंगे कि मेरे बच्चे यथाशक्ति कोशिश कर रहे हैं। मैं मानता हूं कि यद्यपि बाहर से दीखता है कि दुनिया में शस्त्रों की होड़ चल रही है, फिर भी वह मिथ्या है, वास्तविकता नहीं। आज दुनिया में शांति की शक्तियां इतनी बलशाली बनी हैं, जितनी वे पहले कभी नहीं थीं।"

दूसरा सवाल था—"क्या आज की भारत-चीन-समस्या में गांधीजी की अहिंसा के लिए कोई स्थान है ?"

बाबा ने जवाब दिया—"मुझे अब भी आशा है। अभी ताशकन्द में एक समझौता हुआ, जिससे भारत और पाकिस्तान कुछ निकट आये। मैं मानता हूं कि अगर हम भारत-पाक-समस्या को हल कर सकें तो भारत-चीन समस्या को भी हल कर सकेंगे। भारत और चीन संसार के दो सबसे बड़े देश हैं और शायद सबसे गरीब देश भी। इस हालत में लड़ाई का जारी रहना, दोनों के हित में नहीं है। इसलिए मुझे पूरी आशा है कि उन देशों में कुछ समझौता हो सकेगा।"

(पृष्ठ १७३ का शेष)

है। मनुष्य तब एक जंगली जाति का रूप बन जायगा, जो प्रकाश का परित्याग करते हुए एक दूसरे की हत्या करने पर उतारू होगा। इसकी समाप्ति यहीं तक नहीं होगी, अपितु हम इस घृणा एवं विकृति का संदेश शायद अन्तरिक्ष के दूसरे भागों में भी ले जायं और अपने रणक्षेत्रों को उन प्रदेशों में फैला दें जो कि सृष्टि के उषाकाल से आज तक यह नहीं जानते कि जनसंहार क्या होता है। तब हमारी उपलब्धियां न केवल हमारे ही लिए वरन् दूसरों के लिए भी अभिशाप बन जायंगी। प्रकृति और अन्तरिक्ष हम से निस्संदेह ही इसका दंड लेंगे, पर किस रूप में यह मैं नहीं जानता।

मैं विवेकशील नेताओं, विचारकों, बुद्धिजीवियों और धार्मिक प्रमुखों से समय रहते इस ओर ध्यान देने का आग्रह करता हूं। यह एक महानतम अवसर है, जो मानवजाति के इतिहास में प्रथम बार आया है। यह ऐसा अवसर है जबकि हम अपने सारे साधन एकत्र करें, एक होकर कार्य करें, मानव जाति को नैतिक जीवन का मार्ग दिखायें और उसे छोटी-छोटी पार्थक्य की प्रवृत्तियों से ऊपर उठना सिखायें। ऐसा अवसर शायद फिर कभी नहीं आयगा। किन्तु एक बात प्रत्येक को ध्यान में रखनी होगी। मैं फिर इस लेख के आरम्भ में दिये गए उद्धरण की ओर ध्यान आकृष्ट कर रहा हूं। अन्तरिक्ष-यात्रा ने प्राचीन विश्व को अब सदैव के लिए समाप्त कर दिया है। मनुष्य चाहे आगे बढ़े या पीछे की ओर लौट जाय, वह भले ही देवदूत बन जाय या अपनेको शैतान की छाया बना ले, वह दूसरे ग्रहों में फैल जाय या अपने पुराने घर धरती से भी लुप्त हो जाये, किन्तु यह पुराना व्यवस्थाक्रम अब अधिक समय तक नहीं रहेगा। हमें दो राहों में से एक को चुनना है और जिस परिवर्तन को हम चाहें, उसका चयन और उसे लाने के लिए कार्यारम्भ कर सकते हैं। सर्वोपरि आवश्यकता जिस बात की है वह है पहले अपने-आपको परिवर्तित करने के दृढ़ संकल्प की।

मैं अन्धा नर हूं

ठाकुर घनश्यामनारायणसिंह

मैं अन्धा नर हूं,
फिर भी,
नहीं किसी पर आश्रित
कर लेता हूं काम अपरिमित
ब्रेल-लिपि है माध्यम मेरी
इसके ही द्वारा
पढ़ लेता हूं--
जीवन की पुस्तक सारी
काम भी मैं कर लेता हूं
शाल-दुशाले बुनता हूं
कुर्सी बुनता, संगीत सुनाता
और
अपनी रोजी आप कमाता हूं
मैं अन्धा नर हूं।
जीवन देता शाश्वत उल्लास मुझे
क्योंकि अपने पैरों पर
मैं खुद आज खड़ा हूं
अजादी की सौगात मिली मुझको
अब,
होता नहीं है सौतेला व्यवहार
कहीं पर
भारत के जन-जीवन में समरस होकर
मैं आगे बढ़ आया हूं,
मैं अन्धा नर हूं।

फूल और जड़ें

माईदयाल जैन

कुछ अधिक वर्षा के कारण वाटिका में गुलाब की क्यारी में पौधों की जड़ों की मिट्टी इतनी बह गई कि कुछ जड़ें दिखाई देने लगीं। वे जड़ें अपने भद्दे, आंके-तिरछे, मिट्टी लगे तथा इधर-उधर फैले केशों के कारण असुन्दर लग रही थीं। सुन्दर-सुन्दर, लाल गुलाबी, सुगंधित गुलाबों की संगति में जड़ें अपने आप ही अपनी लावण्यहीन असुन्दरता के कारण संकोच तथा लज्जित-सी अनुभव कर रही थीं। निर्दयी वर्षा ने आज उनकी असुन्दरता को प्रगट करके जग-जाहिर कर दिया था।

गुलाब के फूलों ने उन्हें देखा तो नाक-भौं सिकोड़कर दूसरी तरफ़ हट गये, पर उन्होंने जबान से जड़ों को एक भी अपशब्द न कहा! जड़ें कुरूप थीं, तो क्या, पर उन्होंने भी जमाने को देखा हुआ था, गुलाबों के घृणापूर्ण व्यवहार को समझते उन्हें देर न लगी। वे उस अपमान को बिना कुछ बोले विष के कड़ुए घूंट के समान पी गईं। और करतीं भी क्या?

इतने में एक अर्धविकसित, गदराया, महकता हुआ फूल अपनी तरुणाई के जोश में जड़ों को अपने पास देखकर घृणा से आग बबूला हो गया —"कहां मैं वाटिका का गौरव और कहां ये नीच जड़ें!" यह भाव मन में आते ही फूल सौंदर्य-मद से और भी लाल हो गया और जड़ों का अपमान करते हुए कहने लगा, "कलजुग आ गया है। लोकाचार, मान-मर्यादा तथा परम्परा सबका अंत हो गया है। सारी उम्र धरती के नीचे दबी रहनेवाली जड़ों को भी जमाने की हवा लगी है, जो सिर उठाकर हमारे बराबर उठने की धृष्टता कर रही हैं। इन्हें कोई कहने-सुनने वाला ही नहीं रहा, तभी तो दिमाग हो रहा है और सिर पर चढ़ी आ रही हैं। दूर हटो, नहीं तो अभी एक क्षण में मटियामेट कर दूंगा।"

उस गुलाब की अपमानजनक, तिरस्कारपूर्ण और मद-भरी बातों को सुनकर बूढ़ी जड़ें तो कुछ न बोलीं, पर एक तरुण उठती जवानीवाली और केशहीन जड़ फूल के इस व्यवहार को सहन न कर सकी। उसने फूल के इस दुर्व्यवहार को जड़जाति का अपमान समझा। क्रोध से वह लाल हो गई और कहने लगी—

"सहस्रों वर्षों भूमि के अन्दर रहनेवाली आज हममें से कुछ जड़ें वर्षा ऋतु का आनन्द लेने वाटिका में निकल आईं, तो कौन गजब हो गया! क्या यह सबकुछ तुम चंद फूलों के लिए ही है? क्या हम इस पौधे के वैसे ही अंग नहीं हैं, जैसे कि तुम हो? क्या हम इस वाटिका के तुम्हारे समान निवासी नहीं हैं? इस भूमि का जो अन्न-जल-रस तुम्हें मिलता है, वही हमें मिलता है। अपने इस रूप, चिकनी-चुपड़ी शक्ल और सुगंध पर इतना अभिमान न करो। तुम्हारा जीवन कुल एक-दो दिन का है और हम वर्षों से इस वाटिका में हैं और रहेंगी। हवा का एक झोंका तुम्हें मिट्टी में मिला देगा, माली की एक चुटकी तुम्हें इस पौधे से तोड़कर वाटिका से दूर ले जायगी और वह तुम्हें बाजार में बेच देगा। रही हमें नष्ट करने की धमकी, सो जरा होश की बात करो। तुम्हारा पालन-पोषण करनेवाली तो हम जड़ें ही हैं। हम ही भूमि से रस चूस-चूसकर तुम्हें रंग, सुगंध तथा लावण्य प्रदान करती हैं। यदि हम अपना काम छोड़ दें तो एक दिन में आटे-दाल का भाव मालूम हो जायगा और सब इतराना भूल जाओगे। जाओ, अपनी राह लो।"

गुलाब के पौधे ने फूल और जड़ों की बात सुनी तो उसे अपना ही जीवन संकट में दिखाई देने लगा। जड़ों के कार्य न करने पर सचमुच वह सूख जायगा, पत्ते मुरझा जायेंगे और फूल पैदा ही न होंगे। उसने फूल और जड़ों को समझाते हुए कहा, "व्यर्थ के झगड़े में न पड़ो। फूल और जड़ें

(शेष पृष्ठ १८९ पर)

शान्ति की खोज

द्रोपदी कोच्छड़

शान्ति की इच्छा मानव के मन में रहती है, इसलिए वह शांति की खोज करता है, क्योंकि वह पशु-पक्षी, कीट-पतंग या पेड़-पौधा नहीं है। वह शक्ति के रूप में पृथ्वी पर आया है, वह शक्ति ही सुख-शान्ति की इच्छुक है। परन्तु मनुष्य अपनी प्रकृति की तुच्छता में अपने-आपको खो देता है। वह अपनी आत्म-शक्ति से जो कि उसको परमात्मा की ओर से वरदान रूप में मिली है, अपरिचित ही रहता है। यही कारण है कि उसका सारा जीवन संसार में भटकते-भटकते ही समाप्त हो जाता है। जिस सुख-शांति की वह इच्छा रखता है, वह उसको अन्त तक भी प्राप्त नहीं होती, जिससे वह दुखी और अशान्त ही बना रहता है।

मनुष्य दुखी और अशांत इसलिए रहता है, क्योंकि वह अपने जीवन का सारा समय संसार के हवाले कर देता है। अपने ऊपर विचार करने के लिए उसके पास अपना कोई समय नहीं रहता वह न तो अपनी आवश्यकताओं और इच्छाओं पर विचार करता है। और न उनकी छानबीन करता है, न उसमें एकता लाने के प्रयत्न ही।

आपके पास २४ घंटे का अपना समय है, जिसको भगवान ने दिन-रात में विभक्त कर दिया है। उसका आपकी परिस्थितियों और सामर्थ्य के अनुसार विभाजन भी हो गया है। अब जिनके लिए आपको कोई विशेष कष्ट नहीं उठाना पड़ता, आपने कभी सोचा है कि दिन-महीने निकलते-निकलते वर्षों बीत गये। आपने सारे-के-सारे दिन इसी प्रकार संसार में घूम-फिर कर बहिर्मुखी अवस्था में खर्च कर दिये। कभी आत्मचिंतन के लिए भी समय निकाला नहीं। इतने लम्बे चौबीस घंटों में से थोड़ा-सा समय अपने लिए भी बचाकर रख लीजिये। यह आपका बचाया हुआ समय आपके जीवन में बहार लायेगा। यह आपको सुख-शान्ति प्रदान करेगा। यह सुख-शांति आपको स्वस्थ और सुन्दर बना देने में सहायक होगी, यह आपकी कमजोरियों को हटा देने में समर्थ होगी, यह आपको शक्तिशाली बनायगी, जिससे आप अपने जीवन का आनन्द ले सकेंगे, क्योंकि इससे आप अपने-आपको सुव्यवस्थित रखने में समर्थ हो जायँगे।

जो अपने-आपको सुव्यवस्थित बनाये रखने में समर्थ होता है, वही अपनी उलझनों को सुलझाने में सक्षम हो सकता है। उलझनें संसार में इतनी नहीं हैं, जितनी हमने अपने अज्ञान से पैदा कर ली हैं। इसी अज्ञान को हटाकर शुद्ध, स्वस्थ और सच्चे विचारों से भरना है। इसके लिए समय चाहिए।

सोचिये, आप उस घर में रह रहे हैं, जिसकी दीवारें उखड़ी हुई हैं, फर्श मैला है। सामान इधर-उधर बिखरा हुआ है, आप उस घर में रहने का क्या आनन्द ले सकते हैं? उसको साफ और सुव्यवस्थित करने के लिए समय निकालोगे तभी वह ठीक होगा। उसमें बैठने का आपको आनन्द भी आयेगा। उसमें खिड़कियां भी हैं और रोशनदान भी, परन्तु उनमें से आई हुई ठण्डी हवा का झोंका आपको शीतलता पहुंचाने में समर्थ नहीं हो सकता। आप इधर-उधर देखकर अशान्त ही बने रहते हैं। यदि आप उसको सुव्यवस्थित और सुन्दर बनायेंगे तो उसमें बैठने का आप आनन्द भी पायेंगे।

इस बाहर के घर को तो आप दूसरों की सहायता से भी ठीक कर सकते हैं, परन्तु आपके मन-रूपी घर में तो और कोई नहीं घुस सकता। आपको ही पता है कि क्या-क्या कूड़ा आपने उसमें जमा कर रखा है, कितना वह मैला है, कहां से उसकी सफाई शुरू करनी है। यह काम अपने हाथ में लीजिये, इसके लिए समय निकालिये और

एकान्त में बैठकर इसपर विचार कीजिये।

मन की चंचलता से भी घबराइये नहीं। आपकी इन्द्रियों की चंचल वासनाओं ने इसे चंचल बनाया हुआ है, यह तो आत्मवान है। इसमें तो परमात्मा का वास है। आपकी बहिर्मुखी इन्द्रियों की चंचल वृत्तियों ने इसकी स्थिर रहनेवाली शक्ति को हर लिया है। अब यह इतना चंचल हो गया है कि वह अपने-आपको भूल गया है।

इसकी यह अवस्था हो गई है कि दुःख और अशांति में ही उसका दिन-रात कटता है। पल-भर भी उसको चैन नहीं मिलता और वह प्रति-दिन अपनी स्थिर रहने वाली शक्ति को खोता जा रहा है।

आपने उसको उस कमजोर मनुष्य की तरह रहने के लिए विवश कर दिया है, जो यह सोचकर दुखी रहता है कि मेरी किस्मत ही खराब है। बात असल में यह है कि उसने अपनी किस्मत आप बनाई है। पहले उसने आलस वश मेहनत कम की। खाना भी कम मिला। कमजोर हो गया। कमजोर मनुष्य से मेहनत होती नहीं। आलस बढ़ता गया और वह मेहनत से जी चुराने लगा, जिससे उसकी रही-सही शक्ति भी जाती रही। यदि वह ठीक से मेहनत करता तो उसको खाना भी अच्छा मिलता, जिससे उसका स्वास्थ्य बना रहता, शक्ति बनी रहती, अधिक मेहनत कर पाता अच्छा कमाता खाता संसार की खुशियां उसको भी नसीब होतीं।

जैसे खुशियों का मेहनत से सम्बन्ध है, वैसे ही एकांत में चिंतन का आपके मन की स्थिर अवस्था से सम्बन्ध है। जितना समय देंगे, उतनी ही संसार की बहारें लूटेंगे।

इस धोखे में न रहिये कि बाहर के अशांत वातावरण ने आपको अशांत किया हुआ है। बात इससे विपरीत है। रेलगाड़ी में सफर तो आप कर रहे होते हैं और चलती आपको धरती दिखाई देती है। आप शांत कमरे में बैठ जाइये, आपको सारा वातावरण ही शांत दिखाई देगा।

यह भी मत सोचिये कि आपकी कठिन परिस्थितियों ने आपको परेशान किया हुआ है। कठिन परिस्थितियां ही आपको आत्म-चिंतन के लिए विवश करती हैं और अशांत वातावरण में ही मनुष्य शांति की खोज करता है।

संसार-त्याग कर शांति की खोज करना कहां तक सम्भव है, यह तो मैं नहीं कह सकती। संसार का सच्चा आनन्द लूटने का भागीदार मानव बने, यही मेरी कामना है।

इसके लिए किसी समय और स्थान के लिए भी दूसरों से राय मत लीजिये। अपने लिए आप ही नियम बनाइए और अपने मालिक आप बनिये। बस, यही सोचिये कि कौनसी वस्तु मेरी दुःख और अशांति का कारण है और क्यों-कैसे मैं इसमें परिवर्तन ला सकता हूं। अपना लक्ष्य आप ही निर्धारित कीजिये। अपने गुरु आप ही बनिये। यदि कोई सहारा चाहते हैं तो इतना ही बहुत है कि महापुरुषों द्वारा लिखी उत्तम विचारों से भरी पुस्तकें पढ़िये। यह आपका अच्छी तरह पथ प्रदर्शन कर सकती हैं, क्योंकि आप इसमें से अपने स्वभाव, परिस्थितियों और वातावरण के अनुकूल विचार ग्रहण कर सकते हैं।

हरेक को अपनी परिस्थितियों से आप ही जूझना पड़ता है। इन्हीं परिस्थितियों में से गुजरकर इन्हें अपने अनुकूल ढाल कर ही मनुष्य सच्ची शांति और सुख पाता है। इनसे भाग निकलनेवाले या इनसे भयभीत रहनेवाले के हिस्से कभी शांति नहीं आती।

संसार के वातावरण से अलग अपने मन का वातावरण बनाये रखिये, जिससे आपका अपना अस्तित्व बना रहे। आप संसार में खो न जायं। कोई विचार खलबली पैदा करनेवाला हो, जो बार-बार अपने मन की शांति को भंग करता हो तो उस पर ठण्डे दिल से विचार कीजिये। अपने हृदय से उसका उत्तर मांगिये, आपको मिलेगा। उसीके अनुकूल चलिये। बिना सोचे-विचारे अपने मन रूपी घर को अशांति से न भरिए। आपके शरीर और मन ने क्या अपराध किया है, जो संसार की तुच्छ वस्तुओं के पीछे उसे दुखी कर अशांति के हवाले कर देते हैं। ऐसा भूलकर भी न करिये। यह आपकी शक्ति और स्वास्थ्य की शत्रु है।

यदि आप अपने मनरूपी घर को इस प्रकार की अस्त-व्यस्तता से बचा पाये तो समझ लीजिये कि शांति की खोज करनेवाली पाठशाला का प्रवेश-पत्र आपको प्राप्त हो गया। अब मेहनत से पढ़ाई शुरू कीजिये और आगे की श्रेणियों में पहुंच जाइये।

कहते हैं, मन को मारो। भई, इसने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है, जो इसको मारो। इसको सदा जिंदा रखो। यही तुम्हारा सच्चा मित्र, सखा और बन्धु है। इसको वश रखने के सदा प्रयत्न करो। इसके साथ ऐसा प्रेम का व्यवहार करो, जैसा एक लाड़ले बच्चे के साथ उसके सभ्य और सुशिक्षित माता-पिता करते हैं। इसकी इच्छाओं को दिल खोलकर पूरी करो। अपनी सामर्थ्य में रहकर यदि बुरी वासनाएं इसे घेरने लगें तो एकांत में बैठकर इसको समझाओ। अपने व्यवहार से इसके साथ ऐसा मेल बिठाओ। इसको इतना मुग्ध रखो कि यह हर समय तुम्हारे स्वागत के लिए तैयार रहे। मधुर मुस्कान के साथ तुम इसमें घुल-मिल जाओ, फिर इस संसार की क्या मजाल, जो तुम्हारी शांति में बाधक बने!

पढ़ते तो हम उपनिषद हैं, जो इस हवा में बैठकर लिखे गए हैं, जिसमें सांस लेने की हम कल्पना भी नहीं कर सकते, तो उस ज्ञान को हम व्यवहार में कैसे लायें। पहले हम उस हवा में पहुंचें तभी तो उसको समझ सकते हैं।

हमारे धर्म-ग्रन्थों में ज्ञान भरा पड़ा है, परन्तु आजकल के जमाने में वैसे-का-वैसा ज्ञान व्यवहार में नहीं लाया जा सकता। समय बदल गया है। वायुमण्डल में परिवर्तन आ गया है। मनुष्यता का मान-दण्ड बदल गया है, तो वैसे-का-वैसा ज्ञान हम कैसे पचा सकते हैं। हमें तो सुख-शांति से जीवन बिताने के नियम आने चाहिए, जिसका हम समाज में रहकर सुगमता से पालन कर पायें।

मानव-जीवन के दो पहलू होते हैं। एक बाहर का ढांचा शरीर और दूसरी उसकी अन्तरात्मा यदि हम अपनी अन्तरात्मा से सम्बन्ध बनाये रखें, संसार के सारे काम करते हुए भी इसकी आवाज को न ठुकरायें तो हम कभी भी संसार में पछाड़े न जायें। यदि हम इससे सम्बन्ध ही न बना पाये तो मानवता का जो वरदान हमने पाया है, उससे वंचित ही रह जायंगे। इसलिए हमें एकांत में आत्म-चिंतन की आवश्यकता है। प्रतिदिन जीवन-व्यापार में से निकलकर आत्म-चिंतन करने के लिए समय निकालिये, ताकि मनुष्यता का जो वरदान हमने पाया है, उसको सार्थक कर पावें।

यदि हम ऐसा नहीं कर पाते तो हमारा जीवन उस मनुष्य की तरह अधूरा रहता है, जिसका अपना कोई घर नहीं होता। वह सदा इसी चिंता में रहता है कि अब मैं किसके द्वार पर जाऊं, परन्तु जिसका अपना घर होता है, उसको यह चिंता नहीं रहती। जब वह संसारी कामों से अलग होता है तो अपने सुव्यवस्थित और सजे-सजाये घर में जा बैठता है। संसार के कोलाहल से अलग होकर वह संसार के सारे व्यापार पर ठण्डे दिल से विचार करता है तो उसका जीवन स्वस्थ बना रहता है।

आजकल के जमाने में अस्त-व्यस्तता का सबसे बड़ा कारण यह है कि हमारा आंतरिक जीवन नहीं रहा। संसार के बाजार की भूल-भुलंइयों में हम खो गये। बीमारियां और कष्ट इसीलिए मानव-समाज को घेरे हुए हैं।

सारा संसार उस ईश्वर का है, सृष्टि-रचयिता का, जो बीज से फूल बनाता है, फिर फूल से बीज। उसी की बनाई हुई यह सब रचना है। आनन्द से भरपूर पृथ्वी मानव ने अपनी वासनाओं से कड़वी कर दी है। यदि मनुष्य इन झूठी वासनाओं से ऊपर उठ जाय और सुख-शांति की इच्छुक आत्मा तृप्त हो जाय तो इससे बढ़कर और क्या होगा।

हे मानव, तू शक्ति के रूप में पृथ्वी पर आया है। अपने-आपको पहचान, संसार को मालिक का रचाया हुआ एक खेल समझ और अपना पार्ट ठीक ढंग से अदा कर। इसमें खो न जा।

(पृष्ठ १८६ का शेष)

दोनों ही पौधे के अंग हैं, दोनों ही आवश्यक हैं। यदि जड़ें भवन की नींव के समान हैं तो फूल उसके कलस हैं। किसी के सुन्दर या असुन्दर होने अथवा नीचे या ऊपर होने से उसका महत्व कम या अधिक नहीं होता। यदि वास्तव में देखा जाय तो वृक्ष की जड़ें, भवन की नींव और समाज के निम्न वर्ग फूलों, कलसों और समाज के उच्च वर्गों से अधिक उपयोगी, प्राणदायक और आवश्यक हैं। यदि इसे भलीभांति समझ लिया जाय, तो बहुत से वाद-विवाद समाप्त हो जायं।"

इतने में वायु के एक झोंके से वह फूल टहनी से टूटकर गिर पड़ा, मानों जड़ों का चरण स्पर्श करके अपनी भूल के लिए क्षमा मांग कर प्रायश्चित्त कर रहा हो।

सामान्य जनों का कवि दांते

अवनीन्द्रकुमार विद्यालंकार

इटली का प्रसिद्ध कवि, इटालियन भाषा का उन्नायक और उसको साहित्यिक भाषा बनानेवाला महाकवि दांते है। इसकी सातवीं जन्म-शताब्दी अगले वर्ष के मई तक मनाई जायगी।

यूरोप के प्रथम महान कवि और इटली के महानतम कवि दांते को श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए विश्वभर के विद्वान ओरनो नदी के तट पर स्थित फ्लोरेंस में गत वर्ष एकत्र हुए थे। अंग्रेजो के महाकवि और समीक्षक इलियट का निधन हो जाने से फ्रेंच कवि सेंटजान पर्स ने उद्घाटन-भाषण दिया। फ्लोरेंस में महाकवि दांते का जन्म हुआ था। इसके चर्चों के गुम्बद लुभावने और आकर्षक हैं। ये दांते की मधुर स्मृति को जगाते हैं, क्योंकि दांते की कविताओं की अनेक पंक्तियां यहां संगमरमर पर अंकित करके सड़कों पर लगाई गई हैं। फ्लोरेंस ने अपने इस लोकप्रिय कवि को राजनैतिक झगड़ों में देश निर्वासित कर दिया था। फ्लोरेंस उस समय एक नगर-राज्य था। इस नगर-राज्य की छह सदस्यों की नगर-राज्य परिषद् का दांते भी एक बार सदस्य चुना गया था।

फ्लोरेंस में जमींदार वर्ग—सामन्त वर्ग—नवीन उत्पन्न व्यापारी वर्ग और मध्यम वर्ग से लड़ रहा था। रोम का पोप सामन्त वर्ग का पोषक था। दांते सामान्य जनता का समर्थक था। ३६ साल की आयु में दांते को पोप के दरबार में फ्लोरेंस ने अपना राजदूत बनाकर भेजा, जिससे पोप फ्लोरेंस के मामले में हस्तक्षेप न करे और न इस नगर-राज्य की स्वाधीनता को सीमित करने में किसी अन्य को सहायता दे। दांते ने इस समय फ्लोरेंस को जो छोड़ा तो सदा के लिए छोड़ दिया। इसके बाद वह फिर कभी फ्लोरेंस में नहीं आया।

देश-निर्वासन का दण्ड हटा लेने के बाद भी वह फ्लोरेंस वापस नहीं आया, क्योंकि क्षमादान सशर्त था और जुर्माना मांगा गया था। जैसे पहले उसने निर्वासन दण्ड की कोई अपील नहीं की थी, इसी प्रकार इस नये आदेश का भी उसने कोई विरोध नहीं किया, परन्तु स्वाभिमानी कवि जन्मभूमि को वापस जाने को तैयार नहीं हुआ।

फ्लोरेंस शहर का नाम, ऐतिहासिकों, कलाकारों और कवियों के मन में अनेक मधुर स्मृतियों को जाग्रत करता है। दांते की जन्मभूमि सांस्कृतिक और कलात्मक विचार-धाराओं और आन्दोलनों की, उसके निर्वासन के बाद से, केन्द्र रही है। बायरन ने रोम को अपनी आत्मा बताया था। फ्लोरेंस भी सदा, आत्मा को महान उच्च, सुन्दर बनाने वाले तत्वों का शहर रहेगा। दांते की आत्मा ने इस शहर को अपूर्व गौरव प्रदान किया। इसकी तुलना भारत के तुलसीदास और उनके रामायण लिखने के स्थान वाराणसी से ही की जा सकती है।

शताब्दी-महोत्सव 'पालाज्जो वेशियो' महल में हुआ। यह 'पिपाजा डेल्ला सिगनोयूइआ' में स्थित है। इसका निर्माण १२९८ और १३०४ के मध्य हुआ था। यह राजमहल कई सदियों तक स्थानीय सरकार का केन्द्र रहा। यह टस्कनी के रानैजतिक और सांस्कृतिक जीवन की राजधानी रहा। यह राजमहल अनेक घटनाओं का मूक साक्षी है। जैसे, सावोनरोला का जलाया जाना।

अंग्रेजी के आधुनिक महाकवि इलियट ने मिल्टन के बदले दांते को अपना आदर्श माना था। इलियट ने दांते के काव्य की विस्तृत समीक्षा लिखी है। महोत्सव का अन्तिम भाषण इटली के आधुनिक जीवित महान कवि यूजेनीओ मोनताले ने दिया।

फ्लोरेंस में दुनिया-भर से आये और एकत्र विद्वानों और अतिथियों ने ही शताब्दी महोत्सव नहीं मनाया, बल्कि

सड़कों पर चलनेवाले सामान्य जनों ने भी इस महोत्सव में भाग लिया, क्योंकि इटली की जनता दांते को महानतम इटालवी मानती है, जैसे अंग्रेज शेक्सपियर को महानतम अंग्रेज मानते हैं। लेकिन दांते और शेक्सपियर में एक अन्तर है। दांते ने जिस इटालवी भाषा में अपना 'डिवाइन कामेडी' महाकाव्य लिखा, वह भाषा आज भी जीवित है, और आज के इटालियनों को उसको समझने में कठिनाई नहीं होती। किन्तु शेक्सपियर के बारे में यह बात नहीं कही जा सकती। उसकी भाषा को साधारण अंग्रेज समझने में असमर्थ है। इस दृष्टि से दांते की तुलना तुलसी से की जा सकती है। तुलसी की भाषा किसी हिन्दीभाषी को समझने में कोई कठिनाई नहीं होती।

वर्डस्वर्थ ने दांते का अभिनन्दन 'इटली का महान कवि' कहकर किया था। चॉसर ने दांते को केवल महानतम धार्मिक कवि के रूप में ही नहीं देखा, बल्कि अपने संयम के अधिकतम आचारवान कवि के रूप में देखा। पश्चिमी साहित्य की दृष्टि से यह बात ठीक है। 'डिवाइन कामेडी' काव्य के तीन भाग हैं। पहला नरक से सम्बन्ध रखता है। दूसरा पाप-प्रक्षालन का है और तीसरा स्वर्ग का है। दांते ने अपने काव्य को 'डिवाइन' विशेषण नहीं दिया था। यह उसके एक प्रकाशक ने दिया और वह स्वीकार कर लिया गया। यह काव्य इटली में आज भी अत्यधिक लोकप्रिय है। प्रति वर्ष ८०,००० प्रतियां छपती और बिकती हैं। इसकी तुलना एकमात्र तुलसी के रामचरित मानस से की जा सकती है। दोनों आचार और नीतिशास्त्र के सबसे बड़े कवि हैं।

दांते के काव्य में राजनैतिक संग्रामों का भी वर्णन है। अपने समय के ख्यातिप्राप्त व्यक्तियों का भी उसने चित्रण किया है। ये सब उसको नरक में मिलते हैं। उनसे वह भेंट करता है। इस मुलाकात की रिपोर्ट भी उसने अपने काव्य में दी है। इस कारण गुएल्फ्स और घिब्वेलिनेस केवल फ्लोरेंस की दीवारों के मध्य ही नहीं लड़ते, बल्कि दांते की आत्मा में भी संघर्ष करते हैं। दांते दुष्टता से घृणा करता था, क्योंकि यह प्रेम में बाधक है।

फ्लोरेंस में शताब्दी महोत्सव छह दिन मनाया गया। इसके बाद दो दिन वेरोना शहर में मनाया गया, क्योंकि यहां दांते ने देश-निर्वासन के दिनों में आश्रय पाया था। पहले उसने बोरतोलोम मेओ डेला स्केला की मैत्री के कारण 'स्कैलीगैरी' दरबार में आश्रय पाया था। बाद में केन ग्रांडे के कारण उसने यहां आश्रय पाया था। 'पैरडीसो' दांते ने इसीको समर्पित किया है।

फ्लोरेंस से निर्वासित होने पर भी दांते का इस नगर के प्रति अनुराग कम नहीं हुआ। फ्लोरेंस के प्रति उसका प्रेम कैसा था, इसका वर्णन उसने 'कनवीवीओ' में इस प्रकार किया है:

"रोम की सबसे सुन्दर पुत्री फ्लोरेंस का नागरिक होना आनन्द और उल्लास की बात थी। उसने अपने प्रेममय हृदय से मुझे अलग कर दिया। मैं वस्तुतः एक ऐसी नौका हूं, जिसमें पतवार और मस्तूल नहीं है। मैं विभिन्न बन्दरगाहों में ले जाया गया हूं।"

इसी प्रकार 'डी वुलगारी एलोक्यु एन्तिमा' में दांते जब सारे संसार को अपना देश कहता है, तब वह अपने विषय में कहता है, "मैं इस समुद्र में मछली के समान हूं।"

"वसुधैव कुटुम्बकम्" की भावना दांते में अत्यधिक गहरी होने पर भी वह फ्लोरेंस को कभी नहीं भूला।

दांते की ५६ साल की आयु में रावेन्ना में सन् १३२१ में मृत्यु हुई। दांते की समाधि या मकबरा यहीं है। फ्लोरेंस इसको वापस चाहता है, पर रावेन्ना का जवाब है, जब जीवित दांते को फ्लोरेंस ने अपने यहां नहीं रखा, तो मृत के लिए इतना व्याकुल क्यों है? जन्म-शताब्दी महोत्सव की समाप्ति अगले वर्ष रोम में होगी।

१२ नवम्बर १३०२ को फ्लोरेंस ने दांते को निर्वासन का दण्ड दिया था। यदि फ्लोरेंस में फिर वह दिखाई देता तो उसको जीता जलाने का भी आदेश दिया गया था। परन्तु देश-निर्वासन का दण्ड भी महाकवि ने शान्ति से सुना और इसमें भी अपना सम्मान ही माना। दांते ने जो कुछ लिखा है, वह अध्यात्मवादी की दृष्टि से नहीं लिखा, बल्कि राजनैतिक और सामाजिक सुधारक के नाते लिखा है। वह मानता है कि लक्ष्य-सिद्धि के लिए मानव को स्वतंत्र होना चाहिए। वह लौकिक कार्यों में धार्मिक सत्ता के हस्तक्षेप का विरोधी था। वह पोप और नरेशों के बीच

हो रहे विवाद और संघर्ष को अनावश्यक मानता था। वह कहता था कि सम्पूर्ण यूरोप एक इकाई होकर जीवित रह सकता है। यूरोप की एकता को उसने देखा था और इसी कारण उसको आधुनिक युग का युगद्रष्टा कवि माना जाता है।

सिचोर एम० बरबी ने दांते के विषय में लिखा है, "कवि सदा मानव को देव से अलग रखता है। सत्य को वह विशेष रूप से देखता है, जो कि इस जीवन के लिए आवश्यक है। इसको वह परमात्मा के साथ नहीं जोड़ता। वह शाश्वत जीवन में विश्वास करता है। स्वतंत्र मानव ही आत्मबोध प्राप्त कर सकता है। मानव जब अधिकतम रूप में स्वतंत्र होता है तब मानव-जाति सर्वश्रेष्ठ होती है, यह दांते ने 'मॉनार्की' में लिखा है।"

दांते एक प्रतिभाशाली कवि था। उसका समय अपेक्षाकृत शांति का था। वाल्तेयर ने उसको पागल बताया है। उसके काव्य को राक्षसी वृत्ति का बताया है। वाल्तेयर बुद्धिवादी युग का विश्लेषण कर रहा था और उस प्रसंग में उसने यह बात कही है, यह न भूलना चाहिए। 'इन दी फिगर आफ वियेट्रिस' के बारे में कवि चार्ल्स विलियम की राय है कि दांते अत्यन्त गहरी वैयक्तिक अनुभूति का वर्णनकार है। यह बात सर्वथा सच है।

कवि चार्ल्स विलियम के बारे में एक विचित्र कहानी प्रचलित है। वह बाल कटा रहा था। नाई अपनी प्रेम-कथा बाल काटने के साथ-साथ सुनाता जाता था। नाई बोला, "जब मेरी प्रेयसी ऐसा करनेवाली थी।" नाई ने आगे कहा, "मैं अत्यन्त प्रसन्न हूं कि मेरा विश्व-भर में कोई शत्रु नहीं है।" यह सुनते ही विलियम कूदकर उठ खड़ा हुआ। उसने नाई का हाथ अपने हाथ में लेकर कहा, "बस भाई, दांते भी ठीक-ठीक यही बात कहता है। मध्ययुग में दरबारी प्रेम के काम में कानूनों से परिचित होने की जरूरत नहीं है। रोमांटिक प्रेम को सिद्धान्तों को भी जानने की जरूरत नहीं। प्रेम तत्व वही है, जो हम स्वतः अनुभव करते हैं या साधारण जीवन-व्यवहार में हम अनुभव कर सकते हैं। दांते को समीक्षकों ने विभिन्न दृष्टि से देखा है। कुछने उसको धर्मशास्त्री, आचार-शास्त्री की दृष्टि से देखा है। कुछ उसको नैतिकवादी मानते हैं। अनेक उसको व्यंग्य-लेखक मानते हैं। कुछ उसको गौथिक कला में विलास करनेवाला बताते हैं। किन्तु सच यह है कि वह एक महाकवि और यथार्थ अनुभव की वास्तविक मूर्ति बनानेवाला है।

'डिवाइन कामेडी' के तीन भाग हैं। इसमें से इनफरनो (नरक) से बहुत अधिक लोग परिचित हैं। दांते के द्वारा किया गया नरक का वर्णन और भारतीय पुराणों और उपाख्यानों में वर्णित नरक में बहुत समानता है। दोनों के नरक में चीत्कार है। करुण क्रन्दन है। पछतावे का रुदन है। आग की भयंकर लपटें हैं। खौलते कढ़ाहे हैं। वर्णन सजीव है। इटालियनों ने 'डिवाइन कामेडी' को कण्टस्थ कर रखा है। दांते यदि केवल नरक ही लिखता, पर गेटरी (पाप-प्रक्षालन) और पैरेडाइस (स्वर्ग) न लिखता तो भी वह अमर हो जाता। तब फिर इस काव्य का नाम वह 'डिवाइन कामेडी' न रख पाता, क्योंकि विएट्रिस से उसकी भेंट नरक से निकलने पर ही होती है। विएट्रिस के प्रति उसका हार्दिक अनुराग था। दांते जब नौ साल का था, तब उसने एक पार्टी में विएट्रिस को देखा था।

विएट्रिस की आयु इस समय सात वर्ष की थी। दांते उसको देखकर उसपर मुग्ध हो गया। विएट्रिस का विवाह एक बैंकर से हुआ, दांते का किसी और कन्या से। विएट्रिस २४ साल की आयु में मर गई, लेकिन विएट्रिस को दांते कभी नहीं भूला। उसके हृदय की रानी सदा वही रही। ऐसा प्रतीत होता है कि दांते ने विएट्रिस के प्रति अपना अनुराग प्रकट करने के लिए ही यह महाकाव्य लिखा है। भारतीय पाठक को इस अवसर पर राधा कृष्ण के प्रेम की याद आना स्वाभाविक है। वस्तुतः 'डिवाइन कामेडी' काव्य एक प्रेम गीति काव्य है। दांते की मान्यता है कि यह सृष्टि जो घूम रही है, चल रही है, सूर्य, चन्द्र निकलते-डूबते हैं, यह सब प्रेम का ही प्रताप है।

दांते ने विएट्रिस को बचपन में देखा था। प्रथम दर्शन ने दांते में जो भाव उत्पन्न किये, उसका वर्णन करते हुए उसने लिखा है, "मैं सच कहता हूं, उस क्षण जीवन की आत्मा, जो कि हृदय के अत्यन्त गुप्त स्थान में रहती है, इतनी अधिक जोर से कांपने लगी कि ऐसा प्रतीत होता था, हृदय की धड़कन तेज हो गई है। मैं भयभीत हो उठा।

है, सहसा बोल उठा—भगवन्, देखा, मुझसे भी अधिक प्रबल शक्ति है, और वह मेरे अन्दर आ रही है और मेरे ऊपर प्रभुत्व करेगी।

वैष्णव काव्य से परिचित व्यक्ति के लिए दांते के इस आध्यात्मिक प्रेम को समझना कठिन नहीं है। इलियट ने दांते की भावना की गहराई की ओर ध्यान खींचा है। किन्तु यह केवल भावना ही नहीं है। 'डिवाइन कामेडी' के विषय में इलियट ने लिखा है कि यह भावना के रूप में प्रत्येक चीज को प्रकट करता है, निराशा, प्रवंचना और दूरदृष्टि के मध्य उसकी भावना विचरण करती है। मानव जो कुछ अनुभव करने की क्षमता रखता है, दांते वह सब अनुभव करता है और उसका वर्णन करता है। वह एक सत्य-शोधक के समान अपनी खोज में आगे ही आगे बढ़ता जाता है। दांते ने मानवीय अनुभूति को प्रकट करने के लिए सात सौ साल पहले उन शब्दों को चुना, जो आज भी उसी प्रकार प्रचलित हैं, और जो पुराने नहीं हुए हैं।

दांते का जीवन निर्वासन में बीता। जीवन में तूफान आये, आंधियां आईं, विपत्तियां आईं, लेकिन इन सबमें वह धीर-वीर के समान डटा रहा। विएट्रिस के प्रति उसके हृदय में भरा अनुराग उसको बल देता रहा। विएट्रिस के प्रेम की वेदी पर दांते ने अपना जीवन समर्पित कर दिया। वह पूर्ण समर्पण का जीवन था। उसका ध्यान, उसका सारा जीवन, एकमात्र उस बालिका के प्रति उत्पन्न प्रेम पर केन्द्रित था। दांते ने अपनेको प्रेम के सहारे ऊंचा उठाया। विएट्रिस के विषय में उसने जो कुछ कहा, वह और किसी स्त्री के बारे में और किसी कवि ने नहीं कहा।

विएट्रिस को दांते ने एक जगह मां के रूप में देखा है। वह लिखता है, "मेरे पथ-प्रदर्शक ने सहसा मुझे मां के समान उठा लिया, गोद में ले लिया। वह शोर से जाग उठी थी और पास जलती आग की लपटों का स्पर्श उसको हुआ था। अतः वह जाग उठी। आग से बचाने के लिए उसने बच्चे को गोद में ले लिया। शिशु को लेकर वह उड़ी, तेजी से उड़ी।" स्वर्ग में पहुंचने पर दांते अपने पथ-प्रदर्शक विएट्रिस की ओर इस प्रकार देखने लगा, मानो वह उसके ही भीतर समाया हुआ है। पथ-प्रदर्शक विएट्रिस और अपने में उसने अभेद पाया। तादात्म्य सम्बन्ध पूर्ण हो गया।

दांते का काव्य 'डिवाइन कामेडी' एक यात्री की सात दिन की यात्रा का वर्णन है। दांते स्वर्ग से पुनः भूतल पर लौट आता है। उसने दिखाया है कि मानव की मुक्ति का मार्ग ज्ञान और प्रेम की राह से होकर जाता है। विएट्रिस इन दोनों की प्रतीक है। दांते के काव्य में ज्ञान की गरिमा है, भावना की उष्णता है, और माधुर्य है और कल्पना का अद्भुत विलास है। ज्ञान, भावना और कल्पना इन तीनों का संगम त्रिवेणी में हुआ है।

दांते निराशा का कवि नहीं है, यद्यपि उसकी यह पंक्ति प्रसिद्ध है:

"जो कोई यहां प्रवेश करता है, वह सब आशा का परित्याग कर दे।" लेकिन इसी प्रसिद्ध-पंक्ति के समान उसकी दूसरी भी अत्यन्त प्रसिद्ध पंक्ति है:

"जो कोई यहां प्रवेश करता है, वह अपनी आशा को पुनर्जीवित कर ले।"

नरक में उसकी यात्रा के समय उसका पथ-प्रदर्शक वर्जिल है। वर्जिल इटली का एक प्राचीन कवि था। दांते की इसपर बहुत श्रद्धा थी। अतः उसने उसको अपना पथ-प्रदर्शक चुना। दूसरा पथ-प्रदर्शक उसके अनुराग और प्रेम की मूर्ति विएट्रिस है, जिसको वह जीवन भर नहीं भूला, यद्यपि उससे वह जीवन में कभी-कभी ही मिलता था। उसका प्रेम शाश्वत बन गया।

काव्य में मृत्यु और नरक की कल्पना करना और उसका चित्रण करना एक अत्यन्त साहसपूर्ण कार्य है। दांते के बाद और किसी पश्चिमी लेखक व कवि ने यह साहस नहीं किया। वह आज भी विलक्षण और रम्य है। दांते मानव के ध्यान में उस समय तक रहेगा, जब तक उसीके शब्दों में स्वर्ग में दिये गए प्रीतिभोज की याद ताजी रहेगी। उस समय तक हमारा प्रेम इस साहसी यात्रा-पथ को आलोकित करता रहेगा। दांते के इस संकल्प और दृढ़ विश्वास के सामने क्या कोई बाधा टिक सकती थी!

दांते का जब ५६ साल की आयु में देहान्त हुआ, वह फ्लोरेंस का देवता माना जा चुका था, इटली उसको अपना महानतम पुत्र मानता था। विश्वविद्यालय उसके काव्य को सर्वश्रेष्ठ बताते थे। वह यश के शिखर पर था। लगता था, 'डिवाइन कामेडी' लिखकर महाकवि थक गया था। उसको विश्राम की आवश्यकता थी। अतः चिर निद्रा लेकर उसने विश्राम किया।

'मानस' में दार्शनिक विचारधारा का समन्वय

गौरीशंकर द्विवेदी 'शंकर'

भारतीय इतिहास में सोलहवीं शताब्दी अपना एक विशिष्ट स्थान रखती है।

इस शताब्दी में मुगल सम्राट् अकबर के गुप्त षड्यन्त्रों द्वारा भारतीय समाज की दिन-पर-दिन अधोगति होती जा रही थी और वर्ग-संघर्ष उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा था। शैव और वैष्णव, निर्गुण और सगुण उपासक तथा और भी कितने ही प्रकार के विद्वान निरर्थक शास्त्रार्थों में वितण्डावाद बढ़ा-बढ़ाकर समय और शक्ति का दुरुपयोग करके समाज को दुखी बना रहे थे।

सौभाग्य से ही इस शताब्दी में ही हिन्दी-साहित्याकाश में तुलसी, केशव और सूर जैसे महाकवियों का उदय हुआ, जिन्होंने अपने-अपने युगान्तरकारी चामत्कारिक सत्साहित्य द्वारा समूचे राष्ट्र को नवीन मार्ग-दर्शन दिया।

तुलसी के अमर साहित्य ने भारतीय समाज को नव-जीवन प्रदान किया। प्रस्तुत लेख में उनके सुप्रसिद्ध ग्रंथ श्रीरामचरितमानस में वर्णित समन्वय विचारधारा पर ही संक्षेप में प्रकाश डाला जा रहा है।

तुलसी जन-साधारण में भक्ति-भावना के सफल सुकवि माने जाते हैं और इसमें सन्देह नहीं है कि विगत तीन शताब्दियों में तुलसी के समान दूसरा समर्थ महाकवि अबतक उत्पन्न नहीं हो सका है।

तुलसी की अमर कृति 'मानस' में ज्ञान का अगाध-सागर भरा हुआ है, उसमें जितनी ही गहराई में जाइये उतना ही विशेष आनन्द उपलब्ध होता है।

त्रस्त भारतीय समाज को उस युग में जिस प्रकार के ग्रंथ की आवश्यकता थी उसकी पूर्ति 'मानस' द्वारा हो गई। फलस्वरूप प्रत्येक वर्ग को धार्मिक आदर्श का अवलम्ब मिल गया।

'मानस' में श्रीराम का कथानक इतनी कुशलतापूर्वक चित्रित किया गया है कि विष्णु के अवतारी, अयोध्या के स्वामी श्रीराम जन-जन के लिए इष्टदेव और लोकनायक दोनों ही बन गये। 'मानस' में मुख्य चार संवाद हैं—काकभुशुण्डि-गरुड़, उमा-शंकर, याज्ञवल्क्य-भारद्वाज और तुलसी-उनका अंतर्मन (अब श्रोतागण) संवाद। इस प्रकार प्राचीन और अर्वाचीन इतिहास एवं उदात्त भावनाओं का सामंजस्यपूर्ण विवरण प्रस्तुत करके तुलसी ने भरपूर सफलता प्राप्त की है।

'मानस' में प्रारम्भ से ही समन्वयवादी विचारधारा को अपनाया गया है। उन दिनों यह प्रथा-सी पड़ गई थी कि अपने इष्टदेव को सबसे बड़ा माना जाय और दूसरे देवताओं को हीन समझा जाय, इस प्रथा को दूर करने के लिए आचार्य तुलसी ने 'मानस' में प्रारम्भ से ही मंगलाचरण में सब देवी-देवता, गुरु, ब्राह्मण, संत, असंत, खल और राम-रूप द्वारा जीव-मात्र की वन्दना की है। इस पद्धति से परस्पर का वितण्डावाद धीरे-धीरे अपने-आप कम हो गया।

उस युग में दार्शनिक विचारधाराओं में भी कितने ही भेद और उपभेद थे, उनमें से मुख्य थे माध्वाचार्य का द्वैतवाद (२) शंकराचार्य का अद्वैतवाद और (३) रामानुजाचार्य का विशिष्टाद्वैतवाद। दार्शनिक ग्रंथों में नास्तिक और आस्तिक अंगों का विस्तारपूर्वक उल्लेख किया गया है।

चार बौद्ध, एक जैन और एक चार्वाक वेद-प्रतिकूलता के कारण नास्तिक दर्शन माने गये हैं।

आस्तिक दर्शन के मुख्य छह अंग; वेदान्त, सांख्य, योग, मीमांसा, न्याय और वैशेषिक हैं। इनमें वेदान्त के अतिरिक्त शेष पांच दर्शन द्वैतवादी माने जाते हैं।

आस्तिक दर्शन के कितने ही भेद और उपभेद हैं, किन्तु अन्तिम लक्ष्य उन सबका एक ही सा है कि इस संसार

की अनित्यता का भली प्रकार ज्ञान प्राप्त करके अपनी अन्तरात्मा के सत्, चित् और आनन्दमय रूप **ब्रह्म** का साक्षात्कार करना और शाश्वत शान्ति प्राप्त करने का यत्न करते रहना। श्रीमद्भगवद्गीता में इस विषय पर विस्तार-पूर्वक उल्लेख किया गया है।

उक्त तीन दार्शनिक सिद्धांतों में जो भेद है वह इस प्रकार है :

१. **द्वैतवाद**—वह दार्शनिक सिद्धांत है, जिसमें आत्मा और परमात्मा अर्थात् जीव और ईश्वर दो भिन्न पदार्थ मानकर विचार किया जाता है।

२. **अद्वैतवाद**—वह सिद्धांत है, जिसमें चेतना या ब्रह्म के अतिरिक्त और किसी वस्तु या तत्त्व की वास्तविक सत्ता नहीं मानी जाती और आत्मा तथा परमात्मा में भी कोई भेद स्वीकार नहीं होता।

३. **विशिष्टाद्वैतवाद**—वह सिद्धांत है, जिसके अनुसार माना जाता है कि जीवात्मा और जगत दोनों ब्रह्म से भिन्न होने पर भी वास्तव में भिन्न नहीं हैं।

'मानस' में स्थल-स्थल पर जहां भी दार्शनिक विचार-धारा आई है, वहां तुलसी ने अपनी भरपूर कुशलता का परिचय दिया है। फलस्वरूप समूचे ग्रंथ का अनुशीलन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि तुलसी ने दार्शनिक सिद्धांतों में भी समन्वयवादी विचारधारा से ही काम लिया है।

'मानस' के प्रारम्भ में ही भावात्मक और निषेधात्मक ढंग से निर्गुण ब्रह्म की व्याख्या करते हुए लिखा गया है :

एक अनीह अरूप अनामा, अज सच्चिदानन्द परधामा।
व्यापक विश्व रूप भगवाना, तेहि धर देह चरित हत नाना।

अर्थात् परमेश्वर एक हैं, उनको कोई इच्छा नहीं है, उनका कोई रूप और नाम नहीं है, वे अजन्मा, सच्चिदानन्द और परमधाम हैं, वे सबमें व्याप्त और विश्व रूप हैं, उन दयामय भगवान ने ही दिव्य शरीर धारण करके नाना प्रकार की लीलाएं की हैं।

आगे चलकर शिवजी ने देवी पार्वती के प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा है :

रस्सी में सांप का भ्रम हो जाने की तरह अज्ञानी मानव संसार को, झूठ को उसी प्रकार सत्य मानता है, जैसे स्वप्न का भ्रम तब तक दूर नहीं होता जबतक मानव जाग न जाय। बोध हो जाने पर ही भ्रम का निवारण होता है। ब्रह्म निर्गुण अवश्य है, किन्तु भक्तों के कष्ट दूर करने के लिए जब अवतार होता है तब ब्रह्म सगुण रूप हो जाता है। यथा :

सो केवल भगतन हित लागी, परम कृपाल प्रनत अनुरागी।

ब्रह्म के निर्गुण और सगुण दोनों ही रूप अकथनीय, अथाह, अनादि और अनुपम हैं। यथा :

अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा, अकथ अगाध अनादि अनूपा।

निर्गुण और सगुण में उतना ही अन्तर है जितना जल और हिम में। शीत पाकर जल ही हिम बन जाता है, उसी प्रकार भक्तों की साधना से द्रवीभूत होकर निर्गुण ब्रह्म सगुण बनकर अवतरित हो जाता है। यथा :

सगुनहिं अगुनहिं नहिं कछु भेदा, गावहिं मुनि पुरान बुध वेदा।
अगुन अरूप अलख अज जोई, भगत प्रेम बस सगुण सो होई।
जो गुन रहित सगुन सोई कैसे, जलु हिम उपल बिलग नहिं जैसे।

तुलसी अपने इष्टदेव श्रीराम में निर्गुण और सगुण ब्रह्म के दोनों ही रूपों का समन्वय देखते हैं। यथा :

राम ब्रह्म व्यापक जग-जाना, परमानन्द परेस पुराना।

श्रीराम तो व्यापक ब्रह्म, परमानन्द स्वरूप, परात्पर प्रभु, और पुराण पुरुष हैं, इसको समूचा विश्व जानता है। इसी प्रसंग में आगे कहा गया है :

जगत प्रकास्य प्रकासक रामू, मायाधीस ग्यान गुन धामू।
जासु सत्यता तें जड़ माया, भास सत्य इव मोह सहाया।
रजत सीप महुं भास जिमि, जथा भानु कर वारि;
जदपि मृषा तिहुं काल सोइ, भ्रम न सकइ कोउ टारि।

यह संसार प्रकाश्य है और श्रीराम इसके प्रकाशक हैं। श्रीराम माया के स्वामी और ज्ञान तथा गुणों के भण्डार हैं, उनकी सत्ता से, मोह की सहायता पाकर जड़माया भी सत्य सी जान पड़ती है। जैसे सीप में चांदी की और सूर्य की किरणों में जल की प्रतीति होती है, यद्यपि यह प्रतीति तीनों कालों में झूठ है तथापि इस भ्रम को दूर नहीं किया जा सकता।

प्रभु की कृपा से ही भ्रम दूर होता है और वे प्रभु हैं श्रीराम, उनका आदि अंत और किसी ने भी नहीं जान पाया। वेदों ने भी अपने अनुमान से कहा है :

बिनुपद चलइ सुनइ बिनु काना, कर बिनु करम करइ विधि नाना

आनन रहित सकल रस भोगी, बिनु बानी बकता बड़ जोगी।
तन बिनु परस नयन बिनु देखा, ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेषा।
असि सब भांति अलौकिक करनी, महिमा जासु जाइ नहिं बरनी।

तात्पर्य यह है कि उस ब्रह्म की करनी सब प्रकार से इतनी विलक्षण है कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। वेद और पण्डित वर्ग उस महिमा का बखान करते हैं। साधक वृन्द उनका निरन्तर ध्यान करते हैं, वही भक्तों के हितकारी श्री दशरथनन्दन, अयोध्या के स्वामी श्रीराम हैं।

उक्त वर्णन में स्पष्ट अद्वैतवाद है।

निषादराज को प्रबोधन करते हुए लक्ष्मण ने कहा था :

बोले लखन मधुर मृदु बानी, ग्यान, विराग भगति रस सानी।
काहु न कोउ सुख दुख कर दाता, निज कृतकरम भोगु सब भ्राता।
जोग वियोग भोग भल मंदा, हित अनहित मध्यम भ्रम फंदा।
जनमु मरनु जहं लगि जगजालू, संपति विपति करम अरु कालू।
धरनि धामु धनु पुर परिवारू, सरगु नरकु जहं लगि व्यवहारू।
देखिअ सुनिअ गुनिअ मन माहीं, मोह मूल परमारथु नाहीं।
सपने होइ भिखारि नृपु, रंकु नाकपति होइ;
जागें लाभ न हानि कछु, तिमि प्रपंच जिय जोइ।

तात्पर्य यह है कि सांसारिक दृश्य-प्रपंच को समझ-बूझकर बोध कर लेना चाहिए। इन सबकी जड़ अज्ञान अथवा मोह है, ये परमार्थतः नहीं हैं।

श्री लक्ष्मणजी और अधिक स्पष्ट करते हुए कहते हैं :

अस बिचारि नहिं कीजिअ रोसू, काहुहि बादि न देइअ दोसू।
मोह निसां सबु सोवनिहारा, देखिअ सपन अनेक प्रकारा।
एहि जग जामिनि जागहिं जोगी, परमारथी प्रपंच वियोगी।
जानिअ जबहिं जीव जब जागा, जब सब विषय विलास विरागा।
होइ विवेक मोह भ्रम भागा, तब रघुनाथ चरन अनुरागा।
सखा परम परमारथ एहू, मन क्रम बचन राम पद नेहू।
राम ब्रह्म परमारथ रूपा, अविगत अलख अनादि अनूपा।
सकल विकार रहित गत भेदा, कहि नित नेति निरूपहिं वेदा।
भरत भूमि भूसुर सुरभि, सुरहित लागि कृपाल;
करत चरित धरि मनुजतनु, सुनत मिटहिं जगजाल।

श्रीरामजी ने अवतार लेकर विभिन्न लीलाएं करके भक्त, भूमि, ब्राह्मण, गौ और देवताओं के कष्टों को दूर करने का संकल्प किया है। वे वास्तव में परमार्थ स्वरूप पर ब्रह्म हैं, वे आदि रहित, उपमा रहित, विकारों से रहित भेदशून्य हैं, वे स्थूल दृष्टि से देखने में न आनेवाले और जानने में न आने वाले हैं। वेद उनका नित्य नेति, नेति (न इति, न इति) कहकर गुण-गान किया करते हैं।

उक्त भावनाएं विशिष्टाद्वैतवाद में आती हैं।

तुलसी ने द्वैतवाद, अद्वैतवाद और विशिष्टाद्वैतवाद का समन्वय करके आदि से अंत तक 'मानस' में अपने इष्ट-देव श्रीराम को ही आदि ब्रह्म माना है। उनका स्पष्ट मत है कि समस्त संसार के कर्ता-धर्ता श्रीराम ही हैं। यथा :

विधि हरि सम्भु नचावन हारे

'मानस' के निम्न अवतरणों से यह और अधिक स्पष्ट हो जाता है :

गिरा अरथ जल बीचि सम, कहिअत भिन्न न भिन्न;
बंदउं सीताराम पद, जिन्हहिं परम प्रिय खिन्न।

... ...

ईश्वर अंस जीव अविनासी,
चेतन अमल सहज सुखरासी।

बालि की स्त्री, तारा को उपदेश देते हुए श्रीराम ने कहा है :

छिति जल पावक गगन समीरा, पंच रचित यह अधम सरीरा,
सो सरीर तुव आगे सोवा, जीव नित्य तुम केहि लगि रोवा।

संसार के पंच परमाणुओं और नित्य जीव की ओर संकेत है। अद्वैतवाद में ब्रह्म को ही सत्य माना गया है और समस्त संसार को मिथ्या। यथा :

ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नाऽपरः

... ...

झूंठेउ सत्य जाहि बिनु जाने, जिमि भुजंग बिनु रजु पहिचाने,
जेहि जाने जग जाइ हेराई, जागे जथा सपन भ्रम जाई।

'मानस' में आचार्य तुलसी की दार्शनिक विचारधारा का यही निष्कर्ष निकलता है कि ब्रह्म और जीवात्मा एक दूसरे से भिन्न नहीं हैं। विश्व की रचना ब्रह्म द्वारा ही हुई है। अतएव वह सत्य है, असत्य नहीं है। माया-मोह और भ्रम का जाल अविद्या द्वारा ही उत्पन्न होता है, इससे दुखदाई है। अविद्या में पड़कर मानव सांसारिक प्रपंचों जैसे राग-द्वेष, काम-क्रोध, मोह-लोभ आदि में फंस जाता है, उसको ही माया कहते हैं। सद्ज्ञान, विद्या द्वारा उत्पन्न

(शेष पृष्ठ १६६ पर)

हनुमानगंज सर्वोदय सम्मेलन

सुरेश राम

"भारत आर्थिक अवमूल्यन के चक्कर में फंस गया है जिसकी वजह से उत्पादन घटा है और बेरोजगारी बढ़ी है। मुद्रा स्फीति भी लगातार जारी है और चीजों के दाम बढ़ते चले जा रहे हैं। देश के बड़े-बड़े हिस्सों में ऐसा अकाल पड़ा है जिसके कारण खाद्य की जटिल स्थिति और भी ज्यादा बिगड़ गई है।..कहीं-कहीं तो मुट्ठी भर मोटे-से-मोटा अनाज न पा सकने के कारण लोग मौत के शिकार हुए हैं। शासन का जो तंत्र है वह बिल्कुल जड़ और कल्पना-हीन है। और आम जनता की जो मांगें हैं उनका उसे पर्याप्त ध्यान नहीं है। विभिन्न निहित स्वार्थों को जो देश के व्यापक हितों के लिए हानिकारक रहे हैं नियंत्रित करने में भी असफलता रही है।...संघ उस मांग का समर्थन करता है जो इमरजेंसी खत्म करने और डी०आई०आर० हटाने के लिए देश में उठाई गई है।...सर्व सेवा संघ यह आशा प्रकट करता है कि यह वर्तमान संकट हमारे नीति-निर्माताओं और योजकों की आंखें खोल देगा और अब उनका आग्रह बदलेगा।"

उपर्युक्त उद्धरण उस निवेदन (वक्तव्य) से लिया गया है जो गत १७ अप्रैल को अखिल भारत सर्वोदय सम्मेलन में देश के सामने प्रस्तुत किया गया। यह सम्मेलन बलिया शहर से ६ मील दूर हनुमानगंज नामक गांव की अमराई में १५-१६-१७ अप्रैल को हुआ। इसकी अध्यक्षता श्री जगन्नाथनजी ने की, जो तमिलनाड के बहुत अनुभवी, साहसपूर्ण और निष्ठावान् जनसेवक हैं। बिहार में ग्राम-दान के क्रान्तिकारी कार्यक्रम में लगे रहने के कारण संत विनोबा ने इस सम्मेलन में शिरकत नहीं की। लेकिन श्री जयप्रकाश नारायण, दादा धर्माधिकारी, श्री धीरेन्द्र मजूमदार और अन्य नायक तथा सेवक बड़ी तादाद में पधारे थे।

सम्मेलन का प्रारम्भ १५ अप्रैल को तीसरे पहर तीन बजे सूत्रयज्ञ से हुआ। स्वागत समिति की ओर से श्री गांधी आश्रम के मंत्री श्री विचित्रनारायण शर्मा ने सम्मेलन में आनेवालों का स्वागत किया। इनकी तादाद पांच हजार से ऊपर थी। अधिकांश मित्र महाराष्ट्र और गुजरात से आये थे।

अपने अध्यक्षीय भाषण में श्री जगन्नाथनजी ने कहा कि आज की परिस्थिति में देश को अन्न में स्वावलम्बी करने की हमारी सबसे पहली योजना होनी चाहिए। विनोबाजी तो १९५० से ही इस पर जोर दे रहे हैं। बाहरी देशों से अन्न का आयात बन्द होना चाहिए। यह तभी होगा जब अनाज पैदा करनेवाले किसान का उत्साह और प्रेरणा बढ़ाने की चिन्ता की जायगी। देश की भू-समस्या का हल कानून से होनेवाला नहीं है। जनता के मानस को नया मोड़ देना और जन-शक्ति को जाग्रत करना आवश्यक है। यह ग्रामदान के द्वारा संभव होगा। इसमें मालिक, मजदूर और महाजन सभी को शामिल होना चाहिए। यह ग्राम दान एक-दो नहीं बल्कि प्रखंड के पैमाने पर होने चाहिएं। प्रखण्ड दान होने पर अन्न-स्वावलम्बन, वस्त्र-स्वावलम्बन और सबको काम देने की योजनाओं पर अमल करना संभव है। हाल ही में तमिलनाड के तिरुनेलवेली जिले में तीन प्रखण्ड दान मिले हैं। हमें आशा है कि निकट भविष्य में तमिलनाड में और देश के अन्य भागों में सैकड़ों प्रखण्ड-दान और कई जिला दान भी प्राप्त होंगे और देश भर में भू-समस्या का सही हल और अहिंसक क्रान्ति का दर्शन दुनिया के सामने रखना आसान हो जायगा।

सर्वोदय जगत् में श्री धीरेन्द्रभाई को कौन नहीं जानता? वे अपने को मिस्त्री बताते हैं जिसका काम है हुजूर को मजूर बनाना। उन्होंने सर्वोदय सम्मेलन में क्रांति की झांकी पेश करते हुए कहा कि सारी दुनिया में आज शान्तिमय क्रान्ति

की आईडियोलाजी (आदर्शवाद) स्वीकार की जाती है और हिंसा की सार्थकता में ज्यादा विश्वास नहीं रह गया है। लेकिन क्रान्ति सम्पन्न करने की जो हमारी पद्धति या टेक्नोलोजी है वह पूंजीवादी ढंग की है। यही तो कारण है कि लोकतंत्र में 'लोक' ऊपर उठने की बजाय 'तंत्र' के तले दब गया है। पूंजीवाद, राज्यवाद और सैनिकवाद का बोलबाला बढ़ता जा रहा है। इसकी रोक ग्रामदान में है जिससे लोक-शक्ति खड़ी होगी और सच्चे लोकतंत्र की स्थापना होगी।

इस सम्मेलन में पहले से, तीन दिन तक, तारीख १२, १३, १४ अप्रैल को सर्व सेवा संघ की मीटिंग हुई थी, जिसमें देश के विभिन्न भागों से आये हुए लगभग एक हजार कार्य-कर्ताओं ने सर्वोदय आन्दोलन की वर्तमान गतिविधियों पर गंभीरता से विचार-विनिमय किया था। विशेष मन्थन त्रिविध कार्यक्रम पर हुआ जो सन् १९६३ की दिसम्बर में रायपुर (मध्य प्रदेश) में सर्वोदय सम्मेलन के अवसर पर स्वीकार किया गया था। यह त्रिविध कार्यक्रम अहिंसक क्रान्ति का रसायन है जो तीन तत्वों से मिलकर बना है—ग्रामदान, ग्रामाभिमुख खादी और शान्ति-सेना। मई १९६५ में सन्त विनोबा ने ग्रामदान तूफान का आह्वान किया और अबतक लगभग अठारह हजार ग्रामदान देश भर में हो चुके हैं। हनुमानगंज में यह निश्चय किया गया कि तूफान को ज्यादा गतिमान बनाया जाय और इस साल के अन्दर-अन्दर पचास हजार ग्रामदान जरूर प्राप्त करने चाहिए।

हिन्दी के सुप्रसिद्ध लेखक और तत्व-चिंतक श्री जैनेन्द्र-कुमारजी ने चेतावनी दी और बोले कि जबतक देश में निषेध की शक्ति पैदा नहीं होती है, तबतक उसका न तो मनोबल बढ़ेगा और न पूरा विकास होगा। जन-जीवन के प्रति अगर हम संवेदना-शील नहीं हैं तो उसको क्रान्ति से समरस नहीं कर सकेंगे। ग्रामदान की संभावनाओं का दिग्दर्शन कराते हुए सर्व सेवा संघ के सहमंत्री राममूर्तिजी (जो विहार के सुप्रसिद्ध रचनात्मक केन्द्र खादीग्राम के आचार्य हैं) ने कहा कि आज हमारे मंसूबे पूंजीवादी हैं, आकांक्षाएं साम्राज्यवादी हैं और नारे समाजवादी हैं। विकास का सवाल साधनों से ज्यादा पारस्परिक संबंधों का है। इस समय केवल विरोध से काम नहीं चलेगा बल्कि विद्रोह की जरूरत है और ग्रामदान नई क्रान्ति का, विरोध-मुक्त विद्रोह का प्रतीक है।

इस सम्मेलन की तीन विशषताएं थीं—खादी और ग्रामोद्योग प्रदर्शनी, शान्तिसेना रैली और शान्ति सेवा दल। प्रदर्शिनी का उद्घाटन करते हुए खादी ग्रामोद्योग कमीशन के अध्यक्ष श्री उ० न० ढबर ने कहा कि ग्रामोद्योगों को तोड़ने का जो काम ब्रिटिश सरकार ने शुरू किया था वह आज भी जारी है। जनता का कर्तव्य है कि चुप न बैठे और अपनी ताकत खड़ी करे ताकि शासन और समाज पर प्रभाव पड़े और नीति बदले। यह प्रदर्शिनी इस दिशा में नम्र प्रयत्न है।

शान्ति-सेना की रैली १७ तारीख को सवेरे साढ़े छः बजे हुई। इसमें लगभग छः सौ शान्ति-सैनिक और सैनिकाओं ने भाग लिया। निरीक्षण श्री जयप्रकाशजी ने किया। रैली में असम, आंध्र, उड़ीसा, कर्नाटक, गुजरात, तमिलनाड, पंजाब, बिहार, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, राजस्थान और उत्तर प्रदेश के मित्र शरीक थे। उनको सम्बोधित करते हुए श्री जयप्रकाशजी ने एक सारगर्भित और छोटा-सा भाषण दिया जिसमें उन्होंने कहा कि हमें यह नहीं भूलना है कि हमारा काम केवल यह नहीं है कि अव्यवस्था में व्यवस्था करो। अशान्ति में शान्ति पैदा करें, बल्कि यह भी है कि शोषण-रहित और शासन-मुक्त समाज की स्थापना के लिए सतत प्रयत्न करें। राज्य बदलना और नये जन-मानस का निर्माण करना इसके अंग हैं।

शान्ति-सेना दल में लगभग ढाई सौ स्त्री-पुरुष शरीक थे। इनका संचालन शान्ति सेना मंडल के मन्त्री श्री नारायण देसाई ने किया। इसमें बीस से लेकर सत्तर बरस तक के तरुणों ने भाग लिया। सम्मेलन का सारा काम इस दल ने ही उठाया जिसमें विशेष उल्लेखनीय हैं पाखाने और पेशाब-घरों को बनाना और उनको सदा साफ रखना।

इस सम्मेलन की पूर्णाहुति श्री जयप्रकाशनारायणजी के भाषण से हुई। उसमें उन्होंने बताया कि त्रिविध कार्य-क्रम से बढ़चेकर क्रान्तिकारी और रचनात्मक प्रोग्राम आज देश के सामने दूसरा कुछ नहीं है। जहां दो-ढाई लाख ग्रामदान हासिल हुए तो इसकी विराट शक्ति का दर्शन

मिलेगा। उन्होंने अनुरोध किया कि देश का जो शिक्षित और बुद्धिजीवी अंग है उसकी उपेक्षा न कर और उसको भी इस क्रान्ति में सहयोगी बनाने की कोशिश करें।

अंतर्राष्ट्रीय परिस्थिति पर अपने विचार प्रकट करते हुए श्री जयप्रकाशजी ने भारत-चीन और भारत-पाक विवादों पर विस्तार से रोशनी डाली। उन्होंने कहा कि चीन का मसला सीमा का नहीं, बल्कि सीधा राजनीतिक प्रश्न है। इसको हल करने के लिए यह जरूरी है कि हम बिना किसी शर्त के चीन से मिलें और बात करें। भारत और चीन की जीवन-पद्धतियों में फर्क जरूर है, लेकिन उनमें टक्कर या संघर्ष होना जरूरी नहीं है।

पाकिस्तान के साथ मैत्रीयुक्त नाते की आवश्यकता पर जोर देते हुए श्री जयप्रकाशनारायण ने सुझाव पेश किया कि श्रीमती इन्दिरा गांधी को चाहिए कि राष्ट्रपति अयूब खां को नई दिल्ली बुलायें, मिलकर बात करें और भारत-पाक समस्याओं को एक नये दृष्टिकोण से हल करने की कोशिश करें। उसी दृष्टिकोण से जिसको खोजने में ताशकंद सम्मेलन सफल हुआ था। दूसरी चीज उन्होंने यह रखी कि काश्मीर (जो हिन्दुस्तान का ही अंग है) के निवासियों के प्रति हमारा कर्तव्य है कि उनके साथ न्याय करें और उनको संतुष्ट व प्रसन्न रखें। लेकिन यह तबतक नामुमकिन है जबतक हम शेख अब्दुल्ला और सैकड़ों अन्य काश्मीरियों को जेल में बन्द रखेंगे। इसलिए प्रधान मंत्री को मेरी सलाह है कि वे शेख साहब और उनके साथियों को रिहा करें और उन्हें बातचीत करने के लिए दिल्ली बुलायें। यह बहुत कुछ संभव है कि ताशकंद घोषणा के उद्देश्यों और भावना को सुरक्षित रखने और आगे बढ़ाने में शेख साहब एक रचनात्मक पार्ट अदा करें।

देश के कोने-कोने में ग्रामदान का सन्देश पहुंचाने और इस क्रान्ति को सफल बनाने के लिए उत्साह और प्रेरणा लेकर सारे मित्र हनुमानगंज से विदा हुए। वहां के आकाश में एक ही ध्वनि गूंज रही थी—

हमारा मंत्र—जय जगत!
हमारा तंत्र—जय ग्रामदान!!

●

(पृष्ठ १९६ का शेष)

होता है, भवबन्धन से मुक्ति दिलाने में वही वास्तविक सहायता करता है।

'मानस' में प्रसंगानुसार स्थल-स्थल पर दार्शनिक विचारों का समावेश है, किन्तु वे किसी एक विचारधारा के अनुगामी प्रतीत नहीं होते, उनमें तो तुलसी की स्वतंत्र विचारधारा स्पष्टतया भासित होती है।

'मानस' में स्थल-स्थल पर सरल : सुबोध भाषा में भारतीय दर्शन-ज्ञान के विविध वादों का बड़ी ही कुशलता पूर्वक समन्वय करके आचार्य तुलसी ने अपने इष्टदेव श्रीराम रूपी ब्रह्म को संसार के जन-जन और कण-कण में समाया हुआ माना है अतएव विरोध-भावनाओं को कहीं भी स्थान नहीं। उनका सन्देश है कि सबसे ही निश्छल प्रेम और प्रगाढ़ स्नेह किया जाय, यही कारण है कि 'मानस' को उत्तरोत्तर लोक-प्रियता प्राप्त होती जा रही है।

'मानस' का अनुशीलन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि दार्शनिक विचारधारा का समन्वय करके आचार्य तुलसी ने उसे अत्यंत उत्तम रूप में हिन्दी जगत को भेंट किया है फिर भी लेखक का यह विनम्र निवेदन है कि भाषा और साहित्य के समर्थ आचार्य इस पर विशेष रूप से प्रकाश डालें तो अच्छा हो, जिससे शोध-शास्त्रियों को मार्ग-दर्शन मिल सके।

●

कसौटी पर

सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी के प्रकाशन

शिक्षण और सरकार : लेखक—विनोबा, पृष्ठ २४, मूल्य २५ पैसे

विनोबा ने बार-बार कहा है कि शिक्षण सरकार से मुक्त होना चाहिए। जैसे स्वराज्य के बाद साम्राज्य का झण्डा नहीं रह सकता, वैसे ही गुलामी का शिक्षण भी नहीं रह सकता। यह छोटी-सी पुस्तक शिक्षण-जगत् में क्रांति उत्पन्न करने की क्षमता रखती है। शिक्षण के संबंध में विनोबाजी के विचार अत्यन्त मौलिक हैं। हमें विश्वास है कि जो भी इन्हें पढ़ेगा, उसे लाभ ही होगा।

शांति-सेना और विश्व-शांति : लेखक—काका सा० कालेलकर, पृष्ठ २१५, मूल्य ३.००

वैज्ञानिक प्रगति के साथ-साथ मानव युद्ध के शस्त्रों में भी प्रगति करता जा रहा है। धीरे-धीरे लड़ाई के तरीके और हथियार अधिक खतरनाक होते जा रहे हैं। पत्थर युग के हथियारों से लेकर अणु युग के हथियारों तक की होड़ में क्या अभी तक समाधान हो सका है? क्या मनुष्य घातक प्रहार करनेवाले शस्त्रों से संतोष कर सका है? वर्तमान युग के महान् चिंतक काका सा० कालेलकर ने इस पुस्तक में मानवीय समस्याओं को सुलझाने के नये उपाय बताये हैं। शांति-सेना की आवश्यकता, उसका संगठन, पुरुषों तथा स्त्रियों का उसमें योगदान, शांति-सेना और विज्ञान, शांति-सेना की विशेषताएं, शांति-सेना की शिक्षा, आदि-आदि विषयों पर लेखक ने बड़े सारगर्भित रूप में प्रकाश डाला है। पुस्तक पठनीय तथा मननीय है।

आजादी की मंजिलें : लेखक—डा० मार्टिन लूथर किंग, अनुवादक—सतीश कुमार, पृष्ठ २८०, मूल्य ४.००

अमरीका के नीग्रो स्वतंत्रता-आंदोलन ने सारे विश्व की आंखें अपनी ओर आकृष्ट की हैं। इस पुस्तक में रंगभेद की नीति के विरुद्ध एक महान् सत्याग्रह की अभूतपूर्व कहानी है। नोबल पुरस्कार के विजेता नीग्रो-आंदोलन के मूर्धन्य नेता डा० मार्टिन लूथर किंग ने इस पुस्तक में बड़े प्रभावशाली ढंग से अपनी बात कही है। लेखक के शब्दों में यह उनकी कहानी है, जिन्होंने मानवीय दृष्टि से स्वयं अपना ही मूल्यांकन करना सीखा है।

ग्रामदान—शंका और समाधान : लेखक—धीरेन्द्र मजूमदार, पृष्ठ ११८, मूल्य १.००

इस पुस्तक के लेखक वर्षों से रचनात्मक संस्थाओं की सेवा में संलग्न हैं। उनका चिंतन मौलिक और विचार स्पष्ट हैं। वह करुणा और क्रांति के धनी हैं। प्रस्तुत पुस्तक में उन्होंने बताया है कि ग्रामदान क्या है, उसमें कैसी-कैसी संभावनाएं हैं, सरकार और ग्रामदान का क्या संबंध है, इसमें गांव का पुरुषार्थ किस रूप में जाग्रत होता है? इन तथा अन्य अनेक प्रश्नों का समाधान इस पुस्तक के पढ़ने से हो जाता है। ग्रामदान आज की एक प्रमुख उपलब्धि है। उसे समझने में इस पुस्तक से बड़ी सहायता मिलती है।

ग्राम-भावना (पट्टी कल्याणा) प्रधान संपादक—श्री ओमप्रकाश त्रिखा। प्रस्तुत पत्र ग्राम-स्वराज्य का संदेशवाहक मासिक है। इसके सामान्य अंक बड़ी शुद्ध और विचार-प्रेरक सामग्री से युक्त रहते हैं। इस पत्र का अप्रैल अंक 'ग्राम-स्वराज्य विशेषांक' के रूप में प्रकाशित हुआ है। इस विशेषांक में सामग्री का चयन विशेष सूझ-बूझ से किया गया है। उसमें ग्राम-स्वराज्य की कल्पना को स्पष्ट किया गया है। गांधीजी ने कहा था, "ग्राम स्वराज्य की मेरी कल्पना यह है कि वह एक ऐसा पूर्ण प्रजातंत्र होगा, जो अपनी महत्व की जरूरतों के लिए अपने पड़ोसी पर निर्भर नहीं करेगा, और फिर भी बहुतेरी दूसरी जरूरतों के लिए, जिनमें दूसरों का सहयोग अनिवार्य होगा, वह परस्पर सहयोग से काम लेगा।"

विशेषांक की सारी सामग्री का ताना-बाना इसी कल्पना के इर्दगिर्द बुना गया है।

विशेषांक पठनीय तथा उसके विचार मननीय हैं। इसके लिए सम्पादक तथा प्रकाशक बधाई के पात्र हैं।

—सव्यसाची

…मारी राय

क्या व कैसे ?

…ग-पुरुष को श्रद्धांजलि

इस महीने की २७ तारीख भारत तथा संसार के लिए …तिहासिक तिथि है। उस दिन यशस्वी लोकनेता जवाहर-…लाल नेहरू की भौतिक काया हमसे सदा के लिए छिन गई …थी। नेहरूजी की उपलब्धियों के विषय में क्या कहें! …कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं है, जिसपर उन्होंने अपनी छाप न …डाली हो। वह सच्चे अर्थों में युग-निर्माता थे। यद्यपि …उनका कार्य-क्षेत्र मुख्यतः भारत रहा था, तथापि सारा …संसार उनसे प्रेरणा ग्रहण करता था। वह इतने बड़े थे …कि उनका व्यक्तित्व एक देश की सीमा में नहीं समा सकता …था। वह सबका भला चाहते थे। उनकी एक ही इच्छा …थी। संसार में कोई भी व्यक्ति दीन न रहे और सबको …सम्मानपूर्वक जीने का अधिकार हो। इसलिए उन्होंने …दैन्य को मिटाने का अहर्निश प्रयास किया। वर्षों तक …उनका प्रभाव और आकर्षण अक्षुण्ण बना रहा। यह सामान्य …बात नहीं है। जो उनसे मतभेद रखते थे, वे भी मानते हैं …कि नेहरूजी असामान्य व्यक्ति थे।

काया किसी की भी अमर नहीं होती, नेहरूजी को …भी एक-न-एक दिन जाना ही था, लेकिन उन्होंने जो कुछ …किया, उसका महत्व कभी कम नहीं होगा। यह दूसरी बात …है कि अपनी कमियों और कमजोरियों के कारण हम उनके …रास्ते पर न चल सकें।

नेहरूजी का जीवन खुली पुस्तक है। उनके देश-…वासियों का कर्तव्य है कि वे उनके कार्य को आगे बढ़ावें-…नेहरूजी बड़े थे, उन्होंने मानव-जाति की महान सेवा की, …आदि-आदि बातें कहने से काम नहीं चलेगा, जरूरत इस बात …की है कि हम उनके विचारों के अनुसार आचरण करें। हमें …ऐसे समाज का निर्माण करना है, जिसमें साम्प्रदायिकता, …धर्म, ऊंच-नीच, गरीबी-अमीरी इत्यादि की संकीर्णताएं …न हों, हर आदमी को विकास का मौका हो और देश का …प्रत्येक व्यक्ति कर्तव्यपरायण नागरिक हो। नेहरूजी के इस स्वप्न को चरितार्थ करके ही हम उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि अर्पित करने के अधिकारी होंगे।

जहांतक नेहरूजी का संबंध है, उन्होंने अपना पार्ट बड़ी खूबी से अदा किया। अब हमारी बारी है। आज हमारा देश भारी संकट से गुजर रहा है। इस संकट का संगठित रूप से ही मुकाबला किया जा सकता है। यदि कांग्रेस में फूट रहेगी, उसके नेता अपनी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए आपस में झगड़ते रहेंगे, पदों के प्रति उनका मोह बना रहेगा, नागरिक सरकार का मुंह देखेंगे, तो इस देश का भगवान् ही मालिक है।

हम नेहरूजी के प्रति अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि वह हमें उनके रास्ते पर चलने की सद्बुद्धि और क्षमता प्रदान करें।

'सर्व सेवा संघ' का निवेदन

इस बार १२ अप्रेल से १४ अप्रेल तक 'सर्व सेवा संघ' का अधिवेशन बलिया में हुआ और १५ अप्रैल से १७ अप्रेल तक १६वां सर्वोदय सम्मेलन उसी स्थान पर हुआ। पाठक जानते हैं कि गांधीजी की रचनात्मक संस्थाओं के योग से 'सर्व सेवा संघ' का निर्माण हुआ था और गांधीजी के उत्सर्ग के उपरान्त "उनके भाईचारे में विश्वास रखने वाले" व्यक्तियों की एक विदेह संस्था बनी थी, जो 'सर्वोदय समाज या सम्मेलन' कहलाती है। उसके वार्षिक अधिवेशन होते रहते हैं। 'सर्व सेवा संघ' की प्रवृत्तियों में मुख्यतः भूदान तथा ग्रामदान हैं, जिनके अंतर्गत अहिंसक क्रांति के लिए पिछले वर्षों में बड़ा महत्वपूर्ण कार्य हुआ है। अब भी हो रहा है। विनोबाजी उसके प्रेरणा-स्रोत हैं। सर्वोदय सम्मेलन अपने अधिवेशनों में लम्बे-चौड़े प्रस्ताव पास नहीं करता। दो-तीन दिन तक कार्यकर्ता अपने-अपने क्षेत्रों में होनेवाले कार्य तथा कठिनाइयों की चर्चा करते हैं और अंत में सम्मेलन एक निवेदन प्रकाशित करता है।

इस वर्ष 'सर्व सेवा संघ' ने जो निवेदन प्रस्तुत किया

है, उसे हम ज्यों-का-त्यों नीचे देते हैं :

"सर्व सेवा संघ को यह देखकर बड़ा दुःख और चिंता होती है कि देश की आर्थिक स्थिति बिगड़ती जा रही है और यहां के सार्वजनिक जीवन में कुछ अस्वास्थ्यकर तत्त्व प्रवेश कर रहे हैं। भारत एक आर्थिक मंदी के चक्कर में फंस गया है, जिसकी वजह से उत्पादन घटा है और बेरोज-गारी बढ़ी है। मुद्रा-स्फीति भी लगातार जारी है और चीजों के दाम बहुत बढ़ते चले जा रहे हैं। देश के बड़े-बड़े हिस्सों में ऐसा अकाल पड़ा है, जिसके कारण खाद्य की जटिल स्थिति है, जो और भी ज्यादा बिगड़ गई है। परिणाम इसका यह हुआ है कि आम आदमियों के लिए जीवन बहुत कठिन हो गया है और समाज के जो पीड़ित तथा साधनहीन अंग हैं, उनको अकथनीय मुसीबत में से गुजरना पड़ रहा है। सही तो यह है कि मुट्ठी भर मोटे-से-मोटा भी अनाज न पा सकने के कारण लोग मौत के शिकार हो गये!

"इस अभूतपूर्व परिस्थिति का सामना करने के लिए जो प्रयत्न चल रहा है, उसके लिए केन्द्रीय और प्रदेशीय सरकारों से संघ अपनी सहानुभूति प्रकट करता है। लेकिन वह यह कहे बिना नहीं रह सकता कि ये चीजें आकस्मिक घटनाओं का परिणाम नहीं हैं, बल्कि उन गलत नीतियों और योजनाओं का इकट्ठा नतीजा हैं, जिनकी मूल कल्पना ही दोषयुक्त थी और वर्षों से जिनके खिलाफ बार-बार चेतावनी और सावधानी कराने के बावजूद जिनपर अमल किया जाता रहा है। विशेष दुःख की बात यह है कि गांव के हितों को बुरी तरह नजरंदाज किया गया है। इसका अन्न-उत्पादन पर बहुत हानिकारक असर पड़ा है और ग्रामीण की टिकने की शक्ति को इस हद तक कमजोर बना दिया है कि एक भी फसल खराब हो जाने से, उसे भुखमरी का सामना करना पड़ता है। शासन का जो तंत्र है, वह बिलकुल जड़ और कल्पनाहीन है और आम जनता की जो मांगें हैं, उनका उसे पर्याप्त ध्यान नहीं है। विभिन्न निहित स्वार्थों को, जो देश के व्यापक हितों के लिए हानि-कारक रहे हैं, नियंत्रित करने में भी असफलता रही है।

"आएदिन हिंसक विस्फोट हमारे देश के सार्वजनिक जीवन का एक दुःखद और खतरनाक अंग बन गया है। लेकिन पिछले चंद महीनों में ऐसी कोई चीज नहीं हुई है, जो दमन करने के विशेष अधिकारों की शासन-तंत्र की लालच-भरी मांग को न्यायसंगत ठहराये और आपत्कालीन स्थिति को खत्म करने और डी०आई०आर० के उपयोग को बंद करने की उनकी अरुचि को सही करार दे सकें। इसने तो हमारे जनतंत्र के लिए खतरा खड़ा कर दिया है और देश में निराशा की भावना को बढ़ाकर हिंसा की प्रवृत्ति को उत्तेजित ही किया है। संघ जनता से अपील करता है कि वह अपने असंतोष को व्यक्त करने के लिए हिंसात्मक और निष्फल ढंग से प्रदर्शन करना बंद करे और जो कुछ करे वह खालिस शांतिमय उपायों से ही करे, क्योंकि वे सदा ज्यादा प्रभावशाली सिद्ध होते हैं। साथ-ही-साथ संघ उस मांग का जोरों से समर्थन करता है, जो आपत्कालीन स्थिति को खत्म करने और डी०आई०आर० को हटाने के लिए बड़े जोर से देश में उठायी गई है।

"पिछले कई सालों से संघ बार-बार उन विभिन्न चीजों पर जोर देता रहा है, जिन्हें देश की अर्थ-रचना को मजबूत बनाने के लिए उसने जरूरी समझा है। हमारी अर्थ-रचना में ग्रामीण क्षेत्र को महत्त्वपूर्ण स्थान देने और इसे पुनरुजीवित करने के लिए जो कदम उठाने चाहिए, उनके संबंध में अबतक जो कहा गया है, उसे दोहराने की जरूरत नहीं है। बहुत से सुझाव जैसे कृषि-उत्पादन को प्राथ-मिकता देना, असरकारक भूमि-सुधार करना, गांवों में कर्जे की सुविधाएं करना, सिंचाई के साधन देना, अन्न-उत्पादन में प्रोत्साहन देने की दृष्टि से दामों की नीति निर्धारित करना, श्रम-प्रधान उद्योगों द्वारा पूरक रोजगार देना और अन्य सुझाव अर्से से सामने रहे हैं और कुछ तो मामूली बात बन गये हैं। लेकिन राष्ट्र की नीतियों और योजनाओं में उनको योग्य महत्त्व नहीं मिला। सर्व सेवा संघ यह आशा प्रकट करता है कि यह वर्तमान संकट हमारे नीति-निर्माताओं और योजकों की आंखें खोल देगा और अब उनका आग्रह बदलेगा। अबतक औद्योगीकरण की जो नीति बरती गई है, उसमें छोटे और मध्यम पैमाने के उद्योगों को दबाकर बड़े पैमाने वाले पूंजी-प्रधान उद्योगों पर जोर दिया गया है, जो विदेशी सहायता पर बहुत निर्भर रहे हैं। इस आश्रय ने देश के मनोबल को कमजोर बनाया है। अब समय आ गया है कि इस नीति में परिवर्तन किया

जाय और छोटे तथा मध्यम पैमाने के उद्योगों को पूरा महत्त्व दिया जाय और उनके विकास के लिए सुविधाएं प्रदान की जायं। हर किसी को पूरा रोजगार देना नियोजन का एक प्रमुख उद्देश्य होना चाहिए। इस संदर्भ में संघ उन सिफारिशों की तरफ ध्यान दिलाता है, जो सर्व सेवा संघ द्वारा आयोजित चौथी योजना संबंधी परिसंवाद में की गई हैं।

"सर्वोदय आंदोलन यह इन्कार नहीं करता कि राज्य-शक्ति के प्रयोग का महत्त्व है। लेकिन उसकी श्रद्धा हमेशा से लोकशक्ति यानी लोगों के चेतनशील, संगठित और उद्देश्ययुक्त अभिक्रम में रही है। लोकशक्ति के तीन स्वरूप हैं, पहला यह कि सामाजिक प्रक्रिया और परिवर्तन का मुख्य अंग बने, दूसरा यह कि राज्य की नीतियों पर प्रभाव डालने में सक्षम साधन सिद्ध हो और तीसरा यह कि राज्य की दमनकारी और जनता को विवश करने की प्रेरणाओं को खत्म कर सके। इस श्रद्धा के साथ सर्वोदय आंदोलन विभिन्न रचनात्मक प्रवृत्तियों को कमोबेश सफलता के साथ अमल में उतारता रहा है और उसके पीछे उद्देश्य यही रहा कि जनता का अभिक्रम जाग्रत हो। दो साल पहले रायपुर में ग्रामदान, ग्रामाभिमुख खादी और शांति-सेना का त्रिविध कार्यक्रम देश के सामने रखा गया, जो वर्षों के अनुभव का नतीजा था और जिससे आशय यह था कि लोगों का अभिक्रम जागे और सारी गांधी-प्रेरित रचनात्मक प्रवृत्तियों का यह स्फूर्ति-स्रोत बन जाय। इस त्रिविध कार्यक्रम की प्रेरक शक्ति ग्रामदान रहा है। एक साल पहले विनोबाजी ने ग्रामदान-तूफान का आवाहन किया। उसका बहुत अच्छा और आश्चर्यजनक स्वागत देश में हुआ और लोगों में तथा सर्वोदय एवं अन्य कार्यकर्ताओं में इससे बहुत उत्साह भी पैदा हुआ। जिन क्षेत्रों में आंदोलन ने अपनी जड़ें पकड़ ली हैं, वहां यह निराशा की व्यापक भावना को दूर करने में बहुत-कुछ सफल रहा है और उसने हिंसात्मक उपद्रवों की वृत्ति को भी रोका है। लोगों के जीवन में जनतांत्रिक मूल्यों और प्रणाली की बलवान और स्थायी बुनियाद भी इसने डाली है। इसने भूमि-समस्या का एक बहुत संतोषजनक और प्रभावशाली हल पेश किया है और ग्रामीण भारत से संबंधित अन्य समस्याओं को सुलझाने का मार्ग भी खोल दिया है। पिछले चंद महीनों में ग्रामदान की तादाद तिगुनी हुई है और पूरे-के-पूरे ब्लाक, तहसील या सबडिवीजन के दान के विचार ने लोगों के चित्त को स्पर्श किया है और कई ब्लाक-दान प्राप्त किये भी जा चुके हैं। पिछले कई महीनों से देश में लगभग औसत ५० ग्रामदान रोज मिले हैं।

"इस अर्से में शांति-सेना के संगठन की भी उन्नति हुई है। किशोर शांति-दल और शांति सेवा-दल के रूप में इसकी प्रवृत्तियां विकसित हुई हैं। शांति-सेना का उद्देश्य केवल यह नहीं है कि शांति-स्थापना का साधन सिद्ध हो, बल्कि सामाजिक परिवर्तन और आर्थिक तथा सामाजिक समस्याओं के शांतिमय निराकरण के लिए एक बलवान शक्ति भी बने। भूदान तथा ग्रामदान आंदोलनों को बढ़ाने का काम करके उसने इस पार्ट को अदा किया है। यह सही है कि अन्य प्रकार की समस्याओं के हल निकालने के साधन अभी खोजने होंगे, लेकिन आज ग्रामदान-तूफान आंदोलन से क्रांतिकारी, सामाजिक परिवर्तन के लिए एक सफल राह खुली है और शांति-सेना के संगठन को व्यापक आधार भी मिला है। इसलिए बड़े पैमाने पर ग्रामदानी गांव में शांति-सेना और शांति सेवा-दल खड़े करने का प्रयास होना चाहिए। शहरों की परिस्थिति के संदर्भ में शांति-सेना का विशेष महत्त्व है और इसलिए शहरी इलाकों में इसे प्रभावशाली बनाने के लिए पूरी कोशिश होनी चाहिए।

"रायपुर के बाद से ग्रामाभिमुख खादी के विचार को अमल में लाने की दिशा में स्पष्ट प्रगति हुई है। संघ यह उम्मीद करता है कि ग्रामदानी गांव में खादी तथा ग्रामोद्योग खोलने के प्रयत्न ज्यादा तेजी से किये जायंगे और जहां खादी का काम होता है, वहां ग्रामदान का विचार फैलाया जायगा।

"संघ को यह देखकर संतोष होता है कि त्रिविध कार्यक्रम का एक महत्त्वपूर्ण परिणाम यह हुआ है कि अनेक संस्थाओं में लगे हुए और विभिन्न क्षेत्रों में काम करनेवाले कार्यकर्त्ता एक-दूसरे के नजदीक आये हैं और एक गतिशील और निष्ठावान बिरादरी बन गयी है। तूफान आंदोलन से यह प्रक्रिया तो बढ़ेगी ही, मगर साथ-ही-साथ कार्यकर्त्ताओं

के संगठन को ज्यादा व्यापक और मजबूत बनाने के लिए हर संभव कदम उठाने चाहिए।

"सर्व सेवा संघ को यह विश्वास है कि आंदोलन को इतना गतिमान बनाया जा सकता है कि इस साल के अंत तक कम-से-कम ५० हजार गांव और कई सौ ब्लाक ग्रामदान में प्राप्त हो जायं। उससे देश भर में शांतिमय क्रांति को चालना मिलेगी और लोगों में इतनी ताकत आयगी कि वे राज्य की नीति और योजनाओं का रंग बदल सकें।

"इसलिए संघ सब सर्वोदय-कार्यकर्त्ताओं, संस्थाओं राजनैतिक तथा अन्य सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओं और विशेषकर ग्रामदानी गांव के निवासियों से अपील करता है कि वे अपनी शक्तियों को उपर्युक्त उद्देश्य की प्राप्ति की दृष्टि से एक सुनियोजित और सुगठित ढंग से आंदोलन के लिए समर्पित करें।

"सर्व सेवा संघ सब गांधीनिष्ठ संस्थाओं और सरकारी एजेंसियों से भी अनुरोध करता है कि वे अपनी प्रवृत्तियों को ग्रामदानी गांवों में फैलाने में प्राथमिकता दें, ताकि वे क्षेत्र जनशक्ति के बलवान् केन्द्र के रूप में खिल उठें।"

जैसा कि पाठकों ने देखा होगा, इस निवेदन में देश की वर्तमान स्थिति पर गहरी चिन्ता प्रकट की गई है, साथ ही यह भी बताया गया है कि पिछले वर्षोंमें 'सर्व सेवा संघ' ने क्या-क्या प्रवृत्तियां चलाई हैं और उनका क्या-क्या परिणाम निकला है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि देश की वर्तमान स्थिति अत्यन्त असंतोषजनक है, लेकिन यह भी सच है कि इसके लिए सरकार जितनी दोषी है, उससे कहीं अधिक दोष जनता तथा दूसरे लोगों का है। सरकार की नीतियां गलत हो सकती हैं, लेकिन खाद्यान्न तथा अन्य चीजों को दबाकर इस दृष्टि से रखना कि उसे ऊंचे दामों पर काले बाजार में उन्हें बेचा जायगा, छोटे-से-छोटे काम के लिए रिश्वत लेना, इन तथा ऐसी ही व्याधियों के लिए आखिर कौन जिम्मेदार है?

हमारी निश्चित राय है और हमने कई बार लिखा भी है कि मौजूदा हालत में सुधार तभी होगा जबकि सरकार और जनता, दोनों मिलकर काम करेंगे। लोकतंत्र में शासक का अर्थ होता है जनता, क्योंकि जनता के प्रतिनिधि ही तो देशका मार्ग-दर्शन करते हैं। अतः सरकार को बुरा-भला कहने से कुछ नहीं होने का, और न हर काम मे, हर घड़ी, सरकार का मुंह ताकने से ही कुछ होगा। अनुकूल परिणाम तब निकलेगा जब कि देशहित के कार्यों में सरकार और जनता कंधे-से-कंधा मिलाकर काम करेंगे। अब आगे इसी दिशा में प्रयत्न होना चाहिए।

स्वावलम्बन की दिशा में बढ़ने की आवश्यकता

हाल ही में हमारी प्रधानमन्त्री श्रीमती इंदिरा गांधी अमरीका की यात्रा कर आई हैं। उसी प्रवास में वह फ्रांस, इंग्लैण्ड तथा रूस के कर्णधारों से भी मिलीं। यद्यपि उनका यह प्रवास कई दिन पहले समाप्त हो चुका है और उसके संबंध में चर्चाएं भी अब बासी हो गई हैं, फिर भी कुछ मुद्दे आज भी ताजे हैं।

श्रीमती इंदिरा गांधी ने बार-बार कहा कि वह किसी प्रकार की सहायता की मांग करने अमरीका नहीं गई और कि उनकी यह यात्रा भारत तथा अमरीका आदि देशों के बीच गहरी समझ एवं निकटता पैदा करने के लिए थी।

प्रधान मंत्री को अमरीका में कई स्थानों पर आखिर क्यों इस बात पर जोर देना पड़ा कि वह सहायता की मांग करने नहीं आई हैं?

यह एक प्रश्न है, जो आज भी अपना महत्व रखता है।

अमरीका तथा दूसरे देशों में लोगों की आम धारणा बन गई है कि भारत खाद्यान्न की दृष्टि से भारी संकट से गुजर रहा है। यहां तक तो ठीक है, लेकिन संकट के जो आंकड़े वहां दिये गए हैं और आज भी दिये जा रहे हैं, वे किसी भी स्वाभिमानी राष्ट्र के लिए लज्जा की चीज हैं। विभिन्न देशों के नागरिकों की मान्यता है कि हमारे देश में करोड़ों व्यक्ति भूखों मर गये हैं और यदि अनाज आदि भेजकर भारत की तत्काल सहायता नहीं की गई तो देश तबाह हो जायगा। कहने का तात्पर्य यह कि अमरीका में ही नहीं, अन्य देशों में भी एक ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई है कि भारत पर दया होनी चाहिए।

इस दया से हमारे देश की और हमारी मौजूदा हालत के सुधार में कितनी मदद मिलेगी, हम नहीं जानते, लेकिन एक बात स्पष्ट है और वह यह कि गांधी, नेहरू तथा अन्य महापुरुषों ने भारत का जो गौरव प्रतिष्ठित किया था, वह नष्ट हो जायगा। एक-दूसरे की सहायता करना उच्च

कोटि का कर्त्तव्य है, लेकिन किसी को दयनीय मान कर मदद देना अत्यन्त अवांछनीय है। बाइबिल में कहा गया है कि ऐसा दान दो कौड़ी का है, जिसके साथ स्वयं दाता का आत्मदान न हो। दया से देने वाले का अहंकार बढ़ता है और लेने वाले का दैन्य।

हम श्रीमती इंदिराजी को बधाई देते हैं कि उन्होंने अमरीका के राष्ट्रपति तथा दूसरे अधिकारियों से साफ-साफ कह दिया कि आपत्कालीन स्थिति को दूर करने के लिए हम अन्न की बाहरी मदद लेंगे, लेकिन उस समस्या को अंततोगत्वा हल हम अपने साधनों, अपने स्वावलम्बन, से ही करेंगे।

अब समय आ गया है कि यही भावना सारे देश में व्याप्त हो। सरकार का अधिकांश काम दफ्तरों में चलता है, वहां फाइलें और आंकड़े दौड़ते हैं, लेकिन फाइलों और आंकड़ों से किसी भूखे का पेट नहीं भर सकता। पेट भरेगा अन्न से, जो खेतों में उपजेगा, दफ्तरों में नहीं।

इसलिए जरूरी है कि प्रधान मंत्री ने जो कुछ कहा, उसपर देश अमल करे। बाहर से आनेवाले अन्न को लेने से हम इन्कार न करें, क्योंकि जब घर में अन्न न हो तब बाहर के अन्न को लेने से इन्कार करना मूर्खता होगी। लेकिन हम शीघ्र-से-शीघ्र ऐसी अवस्था उत्पन्न करें कि आगे चलकर हमें किसी का भी मुंहदेखा न बनना पड़े। प्रश्न एक-दो महीने का या एक-दो साल का नहीं है। किसी भी बड़े राष्ट्र के जीवन में एक-दो या दस-पांच साल का विशेष महत्व भी नहीं होता। प्रश्न समस्या के स्थायी हल का है और वह अपने पुरुषार्थ से ही संभव हो सकता है। जिन्हें दूर जाना है, उन्हें अपने पैरों को ही मजबूत बनाना होता है।

●
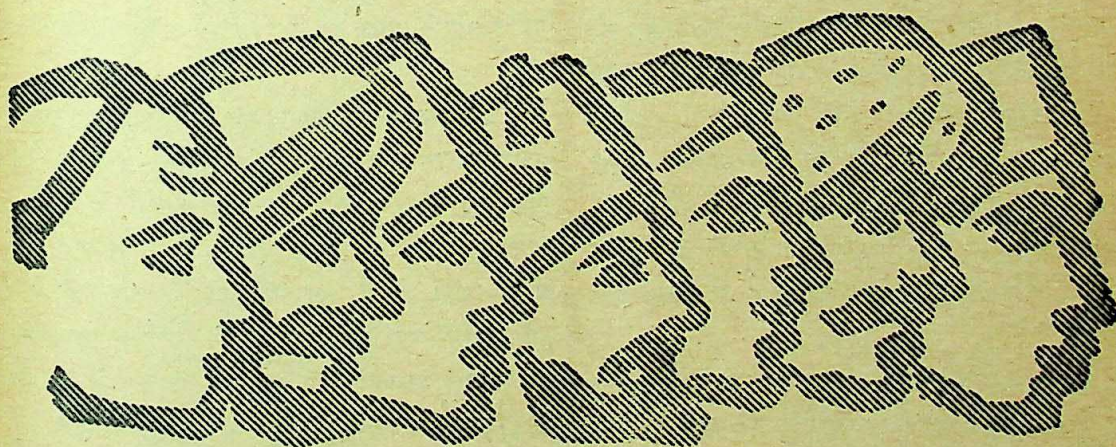
'मंडल' की ओर से

हमारे नवीनतम प्रकाशन

'मण्डल' से हाल ही में वैसे तो बहुत से नये प्रकाशन हुए हैं, लेकिन उनमें से कुछ की ओर हम विशेष रूप से अपने पाठकों का ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं।

१. परम सखा मृत्यु--इस पुस्तक के लेखों में वर्तमान युग के मौलिक चिन्तक काका सा० कालेलकर ने जीवन को देखने की नई दृष्टि प्रदान की है। हममें से अधिकांश लोग मृत्यु को शत्रु मानते हैं। इसलिए हमारे जीवन का रस कुछ फीका पड़ जाता है। यदि हम यह जान लें और मान लें कि मृत्यु हमारी मित्र है तो हमारा सुख कई गुना बढ़ जायगा और हमें जीवन एक नये ही रूप में दिखाई देगा। यह पुस्तक इसी दिशा की प्रेरणा देती है। इसकी प्रत्येक रचना पाठकों के विचारों में एक नई क्रांति उत्पन्न करने की क्षमता रखती है।

२. वेदमंत्रों के प्रकाश में : हमारे वेदों में जीवन की उत्तमोत्तम शिक्षाएं संग्रहीत हैं। लेकिन कम ही लोग उन्हें जान पाते हैं। इस पुस्तक में विद्वान् लेखक श्री सम्पूर्णानंदजी ने कुछ चुने हुए वेदमंत्रों पर ऐसी आख्यायिकाएं प्रस्तुत की हैं, जिन्हें न केवल सामान्य-से-सामान्य पाठक भी समझ सकते हैं, अपितु उनसे लाभ भी उठा सकते हैं। कथाओं के माध्यम से लेखक ने जीवन की बड़े सुन्दर ढंग से उदात्त भावनाओं को विकसित करने के लिए विचार-सामग्री दी है। प्रत्येक आख्यान जैसे विचारों का सिन्धु है, उसमें जो जितनी गहरी डुबकी लगायेगा, उतने ही मूल्यवान रत्न उसे प्राप्त होंगे।

श्री सम्पूर्णानन्दजी हिन्दी के सिद्धहस्त लेखक हैं। अतः इस पुस्तक की भाषा तथा शैली के तो कहने ही क्या हैं! सभी रचनाएं रस से परिपूर्ण हैं।

३. भारतीय संयोजन में समाजवाद : इस पुस्तक में गांधीवादी संयोजन के प्रमुख व्याख्याता श्री श्रीमन्नारायण ने बताया है कि समाजवाद क्या है, उसे अपने समाज में लाने के लिए देश में क्या-क्या प्रयत्न हुए हैं और अभी कितना काम करने को शेष है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि हमारा लक्ष्य समाजवाद की स्थापना करना है, लेकिन हममें से बहुत से लोग अभी तक समाजवाद की कल्पना से परिचित नहीं हैं। यह पुस्तक इस दिशा का एक उपयोगी प्रयास है। यह जहां समाजवाद की कल्पना को समझने में मदद करती है, वहां उसे कार्यान्वित करने की प्रेरणा भी देती है।

४. रेंगनेवाले जीव : श्री सुरेशसिंहजी की जीव-जन्तु संबंधी पुस्तक-माला की यह अंतिम पुस्तक है। इस माला में उन्होंने जल, थल तथा नभ के जीव-जन्तुओं का बड़े अच्छे ढंग से परिचय कराया है। प्रस्तुत पुस्तक में उन्होंने रेंगने वाले जीवों को लिया है। उनकी शरीर-रचना किस प्रकार की है, वे कैसे रहते हैं, उनकी विशेषताएं क्या हैं, आदि-आदि बातें बड़े ही सरल-सुबोध ढंग से बताई हैं। यह तथा इस माला की अन्य पुस्तकें अनेक चित्रों से परिपूर्ण हैं।

५. जमनालाल बजाज की डायरी : इस पुस्तक का प्रकाशन जमनालाल बजाज सेवा ट्रस्ट, वर्धा की ओर से हुआ है। इसमें जमनालालजी की डायरी के चुने हुए अंश दिये गए हैं। जमनालालजी के जीवन में प्रारम्भ से ही शोधन-वृत्ति थी। वह गांधीजी के सम्पर्क से विकसित हुई। यह डायरी उनके जीवन से संबंधित घटनाओं आदि पर प्रकाश डालती है। यह सन् १९३१ से १९४७ तक की है। आगे इसमें और भी भाग प्रकाशित होंगे।

—मंत्री

नवीन प्रकाशन

१९६५–६६

गांधी : व्यक्तित्व, विचार और प्रभाव		२५.००
महात्मा गांधी (जीवनी)	बी० आर० नंदा	५.००
विनोबा के विचार : भाग ३		१.५०
रचनात्मक राजनीति (राजनीति)	सं० रामकृष्ण बजाज	४.००
पत्र-व्यवहार (भाग ५)	सं० रामकृष्ण बजाज	५.००
सहकारिता (ग्रामोपयोगी)	जवाहरलाल नेहरू	२.००
शिक्षा का विकास (शिक्षा)	भगवानप्रसाद	३.००
सामुदायिक विकास और पंचायती राज	जवाहरलाल नेहरू	२.५०
अहिंसा की कहानी	यशपाल जैन	१.७५
लड़खड़ाती दुनिया	जवाहरलाल नेहरू	३.००
भारत-सावित्री (खण्ड २)	वासुदेवशरण अग्रवाल	५.००
ज्वालामुखी (उपन्यास)	अनंत गोपाल शेवड़े	३.५०
तंदुरुस्त रहने के उपाय (स्वास्थ्य)	धर्मचंद सरावगी	१.२५
विनोबा की बोध-कथाएं (कथाएं)		१.५०
पुरंदरदास (जीवनी)		१.५०
मेरा वकालती जीवन (संस्मरण)	ग० वा० मावलंकर	४.००
जिन्दगी दांव पर (उपन्यास)	स्टीफन ज्विग	३.००
जमना-गंगा के नैहर में (यात्रा)	विष्णु प्रभाकर	४.५०
मास्टर महिम (उपन्यास)	मनोज बसु	४.००
लोकतंत्र का लक्ष्य	इन्द्रचन्द्र शास्त्री	४.००
जैनधर्म का प्राण	सुखलाल संघवी	२.००
पंजाब-केसरी लाला लाजपतराय	मुकुटबिहारी वर्मा	१.००
हारजीत का भेद	आनंद कुमार	२.००
कुछ शब्द : कुछ रेखाएं	विष्णु प्रभाकर	३.५०
हमारे संस्कार-सूत्र	लक्ष्मीराम शास्त्री	३.००
कुछ देखा, कुछ सुना	घनश्यामदास बिड़ला	३.५०
जमनालालजी	घनश्यामदास बिड़ला	१.५०
पड़ोसी देशों में	यशपाल जैन	६.००
संस्कृति के परिव्राजक	संकलन	२०.००
गांधीजी और उनके सपने	वियोगी हरि	१.००
नीली झील	संपा० विष्णु प्रभाकर	३.५०
आकाशदानी दे पानी	गोविन्द चातक	२.५०
मेरे हृदयदेव	हरिभाऊ उपाध्याय	३.००
मानवता के दीये	झवेरचंद मेघाणी	४.५०
रेंगनेवाले जीव	सुरेशसिंह	२.५०
नाश का विनाश	मामा वरेरकर	३.००
परमसखा मृत्यु	काका कालेलकर	२.२५
जमनालालजी की डायरी		४.००
वेद मंत्रों के प्रकाश में	संपूर्णानंद	१.५०
भारतीय संयोजन में समाजवाद	श्रीमन्नारायण	३.५०

मण्डल के सम्पूर्ण साहित्य के लिए एक कार्ड लिखकर नया सूचीपत्र मंगा लीजिये

सस्ता साहित्य मण्डल

एन-७७, कनॉट सरकस, नई दिल्ली

शाखा : **जीरो रोड, इलाहाबाद**

रजिस्ट
डी० र

हमारी
नवीन
कृति

जीवन-
निर्माण
की
श्रेष्ठ
आख्यायि

इस पुस्तक में विद्वान लेखक ने वेदों के कुछ चुने हुए मंत्रों पर रोचक तथा शिक्षाप्रद आख्यायिकाएं प्रस्तुत की हैं। प्रत्येक रचना अत्यन्त मूल्यवान हैं। पढ़ने में रस आता है, साथ ही उससे जीवन को ऊंचा बनाने की प्रेरणा मिलती है। उपयोगी सामग्री; सुन्दर छपाई; मूल्य डेढ़ रुपया

सस्ता साहित्य मण्डल
एन, ७७ कनॉट सर्कस, नई दिल्ली
शाखा : जीरो रोड, इलाहाबाद

जून, १९६६ [अंक ६

जीवन साहित्य

सुख में सुमिरन ना किया

सुख में सुमिरन ना किया, दुःख में किया याद।
कह कबीर ता दास की, कौन सुने फरियाद।।

... ...

सांच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।
जाके हिरदै सांच है, ता हिरदै गुरु आप।।

... ...

साधु कहावन कठिन है, लम्बा पेड़ खजूर।
चढ़ै तो चाखे प्रेम रस, गिरै तो चकनाचूर।।

... ...

वृक्ष कबहु नहिं फल भखै, नदी न संचै नीर।
परमारथ कै कारने, साधुन धरा सरीर।।

—कबीर

शुल्क एक प्रति

संपादक
हरिभाऊ उपाध्याय

जीवन साहित्य

जून, १९६६

● ● ●

विषय-सूची

ग्राहकों से

जिन सदस्यों का वार्षिक शुल्क समाप्त हो गया है, उन्हें **'जीवन-साहित्य'** की वी० पी० भेजी जा रही है। उनसे अनुरोध है कि वे वी० पी० अवश्य छुड़ाने की कृपा करें। पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक-संख्या अवश्य लिखने की कृपा करें।

—व्यवस्थापक

उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मध्य प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, दिल्ली, बिहार एवं पंजाब की राज्य-सरकारों द्वारा
कालेजों, लाइब्रेरियों तथा उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश की ग्राम-पंचायतों के लिए स्वीकृत

जीवन साहित्य

● वर्ष २७ : अंक ६ ● जून, १९६६

ग्रामदान, जनता और सरकार

विनोबा

हजारों वर्षों से मानव समाज विकसित होता आया है। उसको अनेक अनुभव आये और उन अनुभवों से मानव समाज सीखता गया। एक जमाना था, जब राजा नहीं। लेकिन समस्याएं आती थीं। दुर्जनों का मुकाबला कैसे करना है, यह मालूम नहीं था। इसलिए फिर लोगों ने समझा कि व्यवस्था के लिए एक राजा होना चाहिए। और मनु महाराज पहले राजा बने। ऐसी कहानी है। मनु जंगल में तपस्या कर रहे थे। लोग उनके पास गये और उन्होंने कहा कि हम व्यवस्था नहीं कर पा रहे हैं, व्यवस्था करने के लिए कोई राजा चाहिए; इसलिए आप हमारे राजा बनिये। मनु महाराज ने कहा कि ठीक है, आपकी इच्छा होगी तो मैं राजा बनूंगा। लेकिन मेरी दो शर्तें हैं। एक तो यह कि मुझे अगर सर्वसम्मति से बुलाते हो तब आऊंगा। एक भी आदमी का विरोध होगा तो नहीं आऊंगा। फिर सबसे पूछा गया और सबने सर्वसम्मति से कहा कि मनु महाराज राजा बनें। उनकी दूसरी शर्त यह थी कि राजा होने के बाद मुझे दंडन भी करना पड़ेगा। लेकिन उसका पाप आप सबको उठाना पड़ेगा? उसका जिम्मा मुझपर नहीं रहेगा। यह भी कठिन शर्त्त थी। लेकिन लोगों ने मान लीं और तब मनु महाराज राजा बने और राजा बनकर मुक्त रह गये। प्रजा ने सारा जिम्मा उठाया।

इसका अर्थ क्या होता है? यह हमको ज़रा सोचना चाहिए। आजकल मेजारिटी (बहुमत) का राज्य चलता है। इसके पहले राजा का राज्य चलता था। उस समय राजा और उनके सरदारों की एक छोटी माइनारिटी (अल्पमत) रहती थी, और वह 'माइनारिटी' अपनी सत्ता चलाती थी। उसमें बुराइयां लोगों ने देखी और तय किया कि मेजारिटी का राज्य होना चाहिए। लेकिन जैसे 'माइनारिटी' में दोष होते हैं, वैसे 'मेजारिटी' में भी हो सकते हैं। इसलिए शुद्ध राज्य कौन-सा हो सकता है? तो मनु महाराज ने जो सामने रखा, वैसा होगा, यानी सर्वसम्मति से होगा वह शुद्ध राज्य होगा।

मनु महाराज ने जो दो शर्त्त डालीं, उनमें से हमने सर्वसम्मति की शर्त्त ग्रामदान में उठा ली है। दूसरी शर्त्त थी कि दंडन करने का पाप का बोझ प्रजा को उठाना चाहिए। उसका अर्थ यह होता है कि नम्बर एक की जिम्मेदारी लोगों की है। लोगों में ऐसा प्रसंग ही न आवे कि सरकार को दंडन करना पड़े। यानी वे लोकशक्ति निर्माण करना चाहते थे, लोकसत्ता चाहते थे। पहले यह

चाहते थे कि लोग जिम्मेदारी उठायें।

आज क्या होता है? पहली जिम्मेदारी हम दिल्ली की समझते हैं। हमारी रक्षा, शिक्षा, मार्गदर्शन, खेती का विकास, उद्योगों का संयोजन, व्यापार-व्यवहार का इंतजाम, बाहर से चीजें लाना, यहांतक कि अन्न भी बाहर से मंगवाना—यह सब जिम्मेदारी दिल्ली की है। इसका मतलब यह कि पाप-पुण्य सरकार के हैं। और लोग मुक्त हैं। हमने चुनाव करके अपने प्रतिनिधि सरकार में भेज दिये। अब हम बरी हैं। हम टैक्स देते हैं सरकार को। इसलिए अच्छा राज्य चलाना सरकार का काम है और पाप-पुण्य की जिम्मेवारी भी सरकार की है। मनु महाराज ने कहा कि पाप-पुण्य का जिम्मा प्रजा का है। इसका अर्थ यह कि मुख्य जिम्मा प्रजा का है और बिलकुल लाचारी से जो दंडन करना पड़ेगा उसका जिम्मा सरकार का है। बाकी गांव का दंडन गांव करे, गांव का न्याय गाँव करे। अगर गांव का समाधान नहीं होता है, तो आखिर में अदालत में जायं। यानी अदालत में मुकदमे कम-से-कम जायं। सरकार का जिम्मा कम-से-कम हो और प्रजा का मुख्य जिम्मा हो। चोरियां हों नहीं या कम-से-कम हों, यह जिम्मा लोगों का हो। फिर भी जो चोरियां होंगी, उनके लिए सरकार दंडन करे, निमित्त मात्र दंडन करे। जब न्यायाधीश फांसी की सजा देता है तो यह सोचता है कि इसका पाप मुझे नहीं लगेगा। किसीने खून किया; कानून से गुनाह साबित हुआ तो उसको फांसी की सजा दी; इसलिए पाप से मुक्त हूं, ऐसा वह सोचता है। फिर जेलर क्या सोचता है? वह सोचता है कि अदालत में सजा पाकर वह यहां आया है, उसको फांसी देना है और उसका पाप मुझे नहीं लगेगा। फिर फांसी पर लटकानेवाला मनुष्य सोचता है: मैं क्या करूं? राजा की आज्ञा है, इसलिए "मैं यह काम करता हूं। इसलिए मैं पापमुक्त हूं" इस प्रकार सब पापमुक्त हैं, तो आखिर पापी कौन है? आखिर यह पाप जनता को लगता है। लेकिन हम समझते हैं कि सरकार को लगता है। हम सारी जिम्मेवारी सरकार पर डालते हैं और मनु महाराज प्रजा पर डालते हैं। इसलिए समाज में झगड़ा, चोरियां, शोषण कम-से-कम हों, यह देखने का काम प्रजा का है। फिर जितना नहीं हो सकेगा उतना काम लाचारी से सरकार करेगी। इसलिए इन दोनों शर्तों के अनुसार मुख्य जिम्मेवारी प्रजा की होती है और फिर बाकी बची हुई थोड़ी जिम्मेवारी सरकार की है।

लेकिन आज उलटा चलता है। आज मुख्य जिम्मेवारी दिल्ली की है; उससे कम पटना, भोपाल, बम्बई या मद्रास की है; उससे भी कम जिले की है और उससे कम गांव की यानी जनता की है। यानी कम-से-कम जिम्मेवारी जनता की। वस्तुत: लोकशाही में बिलकुल इसके उलटी बात होनी चाहिए। मुख्य जिम्मेदारी जनता पर होनी चाहिए। उससे कम दो-चार गांवों की पंचायत पर होगी; उससे कम पटना, भोपाल, बम्बई या मद्रास पर और कम-से-कम दिल्ली पर होगी। और फिर उसके ऊपर जो विश्व-राज्य होगा उसपर उससे भी कम जिम्मेवारी होगी। ऐसा जब होगा, तब सर्वत्र मंगल होगा, कल्याण होगा, सर्वोदय होगा।

मनु महाराज की जो शर्त्त हैं, उनका पालन हमने कभी नहीं किया। ग्रामदान में सर्व-सम्मति और लोभ ही प्राथमिक रूप से जिम्मेवार हैं। यह हमने माना है। यह ग्रामदान का विचार मनु महाराज का विचार ही है। उसको गांव-गांव में प्रकट करने की कोशिश हम कर रहे हैं।

देशभक्त गोखले

काका सा० कालेलकर

स्वराज्य के बाद भारत की स्थिति बिलकुल बदल गई है। दुनिया के दरबार में भारत को स्थान मिला है इतना ही नहीं, भारत अब धीरे-धीरे दुनिया की परिस्थिति पर अपना असर डालने लगा है। भारत की लोकसंख्या और भारत की गरीबी इतने बड़े पैमाने पर है कि सारी दुनिया के छोटे-बड़े अनेक राष्ट्रों को भारत का विचार करना पड़ता है। दूसरी ओर भारत ही सारी दुनिया में सबसे बड़ा प्रजातन्त्र है और दुनिया भी उसी रूप में उसे पहचानती है।

भारत की नीति की दो बातें दुनिया पर असाधारण प्रभाव डालने लगी हैं। एक है हमारा सर्वधर्म समभाव और दूसरी बात है दुनिया की लश्करी राजनीति में भारत की तटस्थता। दोनों ओर से इतना जबरदस्त दबाव होता रहा, फिर भी भारत निष्ठापूर्वक अडिग रहा और किसी भी गुट में शामिल नहीं हुआ। यह कोई छोटी सिद्धि नहीं है। यह सब हो सका इसका एक ही कारण है—हम स्वतन्त्र हुए, अपने भाग्यविधाता अब हम खुद ही हैं।

जिनकी जन्म-शताब्दी हम आज मनाते हैं उन नामदार गोखले का ज़माना ऐसा नहीं था। हमारे भाग्यविधाता अंगरेज़ थे। उनका छोटे-से-छोटा गोरा अफसर भी हमारे सबसे श्रेष्ठ नेताओं को दबा सकता था और चार सयानी बातें कहता था, ऐसे वे दिन थे। 'देश की जो हालत है उसका स्वीकार करके उसमें से अपने राष्ट्र को जगाने के लिए अपनी जान को निचोड़ डालना' ऐसा प्रण जिन्होंने लिया उनमें से एक नामदार गोखले थे। एक तरफ लोगों को तैयार करना और दूसरी ओर साम्राज्य सरकार के बनाये हुए छोटे दरबार में भारत का केस पेश करना, ऐसा दुतर्फा काम गोखलेजी को करना पड़ता था। यह करते हुए अपने चारित्र्य की, अपनी विद्वत्ता की, आर्थिक क्षेत्र में अपनी वाहोशी की और अनुनयशील वक्तृत्व की छाप देश पर और उस समय के राज्यकर्ताओं पर अच्छी तरह जमाकर देश की सेवा की। इसलिए कृतज्ञ भारत की ओर से उन्हें हम श्रद्धांजलि दे रहे हैं।

अपनी बाल्यावस्था में हम महाराष्ट्री लोग दो राजनैतिक नेताओं को विशेष रूप से जानते थे—बाल गंगाधर तिलक और गोपालकृष्ण गोखले। सरकार-दरबार में गोखलेजी का अच्छा प्रभाव था। लेजिस्लेटिव काउन्सिल—विधान परिषद के वे मेम्बर थे। इसलिए उन्हें सब 'नामदार (ऑनरेबल) गोखले' कहते थे। टीकाकार उन्हें 'राजमान्य' कहते थे। गुजरात में जैसे किसी भी आदमी के नाम के पीछे 'भाई' शब्द आता है, बंगाली में बाबू और अंग्रेजी में (पहले) मिस्टर आता है, वैसे महाराष्ट्र में किसी को भी खत लिखा जाय तो शुरू में राजमान्य राजेश्री शब्द आयेंगे ही।[1] लेकिन गोखलेजी तो नरम दल के थे, इसलिए उनके आलोचक उन्हें 'राजमान्य' कहते थे। उसपर से बालगंगाधर तिलक के लिए लोगों ने विरुद बना लिया 'लोकमान्य'।

राजनैतिक क्षेत्र में हम युवकों को लोकमान्य का राजकारण पसन्द आता था। परन्तु दूसरों की तरह मैं नामदार गोखलेजी के बारे में कभी ओछा नहीं बोलता था। वह समर्थ शिक्षाशास्त्री हैं, गणिती और अर्थशास्त्री हैं, निर्मल और त्यागी हैं और विशेषकर संसार-समाज सुधार के बारे में लोकमान्य जैसे नरमदल के नहीं हैं, सुधारक हैं। इसलिए गोखलेजी मुझे खास पसन्द आते।

जब गांधीजी ने मुझे अपने आश्रम में आकर रहने का निमन्त्रण दिया तब कोई गलतफहमी न रहे, इसलिए मैंने

---

१. गुजरात में गांधीजी के सत्याग्रह के आन्दोलन के पहले किसी भी सज्जन के नाम के पहले रा० रा० यानी राजमान्य राजेश्री लिखने का रिवाज था।

पहले से स्पष्टता कर ली थी कि, "मैं क्रान्तिकारी हूं, परंतु हिंसा पर का मेरा विश्वास ढीला हो गया है। लेकिन अहिंसा अध्यात्म की दृष्टि से श्रेष्ठ है, ऐसा मानते हुए भी अहिंसा स्वराज्य दिला सकेगी, ऐसा विश्वास मैं अपने दिल में अबतक पैदा नहीं कर सका हूं।" और दूसरी बात मैंने गांधीजी से कही कि, "आप नामदार गोखले को अपना राजनैतिक गुरु मानते हैं। मुझे लोकमान्य तिलक का राजकारण पसन्द है, इसलिए गोखलेजी के बारे में उस प्रकार का आदर नहीं है।" गांधीजी ने तुरन्त कहा, "उसमें कोई हर्ज नहीं। मैं जानता हूं कि अमुक लोगों में गोखले प्रिय नहीं हैं।"

इतनी स्पष्टता करने के बाद मैंने आगे कहा कि, "संसार समाज-सुधार में गोखलेजी के विचार पसंद होने से उतने भर के लिए मैं उन्हें नेता मानता ही हूं। तदुपरांत उनकी दो प्रवृत्तियों के कारण मेरे मन में उनके लिए आदर है। नमक का कर अन्यायकारी है, वह दूर होना ही चाहिए। इस प्रकार का प्रखर आंदोलन उन्होंने हर वर्ष लेजिस्लेटिव काउन्सिल में चलाया है। यह कर वह दूर न करवा सके तो फिर भी कम तो करवा ही सके हैं। यह एक वस्तु। दूसरी यह कि प्राथमिक शिक्षा मुफ्त, सार्वत्रिक और लाजमी करनी चाहिए, इस बारे में उन्होंने जो आन्दोलन चलाया, वह बताता है कि गोखलेजी में गरीबों के प्रति कितनी गहरी और जीवित दर्दभरी भावना है। तिलक पक्ष के कुछ लोग जब भी मौका मिले, गोखलेजी को गालियां देने में कसर नहीं रखते। मैं उनमें से नहीं हूं। गोखलेजी के मन में प्रजा-शक्ति के बारे में काफी विश्वास नहीं है, यही एक शिकायत उनके बारे में मेरे मन में है।"

गांधीजी ने मेरी बात शान्ति से सुन ली और वह चर्चा आगे नहीं चली। परंतु इसी कारण मेरे मन में बहुत मंथन शुरू हो गया। गांधीजी, जिन्हें अपना राजनीतिक गुरु मानते हैं और 'महात्मा' कहते हैं, उनके बारे में जल्दी में ओछा अभिप्राय मुझे नहीं बनाना या रखना चाहिए। नई दृष्टि से उनकी ओर देखना चाहिए, इस प्रकार मैं सोचने लगा।

और एक बात। न्यायमूर्ति रानडे के धर्म-प्रवचन मुझे बहुत पसंद आते थे और सातारा के हैडमास्टर, विख्यात अर्थशास्त्री गणेश व्यंकटेश जोशी के बारे में मेरे मन में बहुत आदर था। उन दोनों के चेले के रूपमें भी गोखलेजी को पहचानता था। इसलिए भी गोखलेजी के बारे में मेरा सद्भाव देखते-देखते बढ़ गया।

गोखलेजी के बारे में सारी बातें गांधीजी के साथ शान्तिनिकेतन में हुई होंगी। बाद में कुछ ही दिनों में गोखलेजी का देहान्त हुआ। इसलिए सार्वजनिक जीवन में वह हमारे पूर्वज-से बने। इस प्रकार भी उनके बारे में मेरा आदर बढ़ा।

और एक मुख्य बात तो कहने की रह गई। हम जब कालेज में पढ़ते थे, उसी अरसे में सन् १९०५ में गोखलेजी ने 'सर्वेन्ट्स आफ इंडिया सोसायटी' की स्थापना की। गरीबी में रहना, जो कुछ भी आजीविका मिले उसीमें गुजारा करना और सारी जिंदगी देश-सेवा के लिए अर्पण करना, इस उद्देश्य से लोकसेवकों को इकट्ठा करना, उन्हें दीक्षा देना और राजनीतिक क्षेत्र के अलावा जनता की अनेक क्षेत्रों में सेवा करना, इसके लिए उन्होंने एक लोक-सेवक-समाज की स्थापना की। उस ज़माने में वह उनकी सचमुच असाधारण वस्तु थी। इस कारण गोखलेजी के बारे में मेरे मन में सब तरह से आदर उत्पन्न हुआ था।

जिस साल मेरा जन्म हुआ उसी साल (सन १८८५) कांग्रेस का भी जन्म हुआ। और बाद में जिस कालेज में मैं पढ़ा उस कालेज की स्थापना भी १८८५ में ही हुई थी। गोखलेजी इसके आजीवन सदस्य बने थे। और गोखलेजी तथा उनके साथियों ने जेस्युइट लोगों की तरह गरीबी में रहकर देश-सेवा करने का सोचा था। परन्तु यह बिचार उस समय परिपक्व नहीं हुआ था। डेक्कन एज्यूकेशन सोसायटी की पूरी निष्ठा से बीस साल तक सेवा करने के बाद गोखलेजी उसमें से मुक्त हुए और उन्होंने तुरन्त 'सर्वेण्ट्स आफ इंडिया सोसायटी' की स्थापना की। उसी वर्ष यानी चालीस वर्ष की जवान उम्र में वह बनारस के कांग्रेस अधिवेशन के अध्यक्ष हुए। बनारस में जब अध्यक्ष का जुलूस निकला तब लोगों में इतनी कम जागृति थी कि रास्ते पर के लोग कहने लगे, "पूना का कोई राजा आया है, उसका यह जुलूस है।"

हम छुटपन में जो गणित सीखे वह गोखलेजी की किताब पर से ही। यों हम उन्हें एक शिक्षाशास्त्री के रूप में जानते ही थे। फर्ग्युसन कालेज की सेवा तो उन्होंने पन्द्रह साल तक

। फिर भी उनका मुख्य काम तो राजनैतिक सार्वजनिक वन का ही था। कांग्रेस का और लेजिस्लेटिव काउन्सिल काम उनके जमाने में उन्होंने जितना किया, उतना शायद किसीने किया हो। विदेशी सरकार से दिन-रात काम है, लिए उन्होंने अंगरेजी भाषा का ज्ञान अच्छी तरह प्राप्त था। उनके बोलने के ढंग पर सभी मुग्ध थे। हिन्दुस्तान कमान्डर इन चीफ लार्ड किचनर ने एक बार कहा था कि मदार गोखले ने जो अंगरेजी किताब न पढ़ी हो वह पढ़ने तने महत्त्व की न होगी। सचमुच अंगरेजी साहित्य तो गोखलेजी पी गये थे। उनके व्याख्यान सुनना जीवन बड़ा आनंददायी अवसर था। 'राजकाज चलाने में ल और बड़े पहुंचे हुए; बड़े-बड़े अंगरेज अफसरों और जनीतिक पुरुषों से टक्कर लेनेवाले गोखलेजी की तैयारी, दकुशलता और दूसरे आदमी को जीतने की कुनेह, यह सब खकर लोग चकित हो जाते थे। हिन्दुस्तान का अर्थशास्त्र न्हें इतना मालूम था कि अंगरेज़ सरकार उनसे डरकर लती। लार्ड कर्जन जैसे अहंमन्य और मिजाजदार इसराय को अगर किसी भारतीय नेता की ईर्ष्या होती थी वह गोखलेजी की। लार्ड कर्जन जब भारत छोड़कर ले गये (उन्हें जाना पड़ा) तब सात्त्विक गोखलेजी के ही उद्गार थे कि, "सज्जनो! दुनिया में भली-बुरी माम बातों का अंत होता ही है।" वेल्बी कमिशन से लेकर ब्लिक सर्विस कमिशन तक गोखलेजी ने राजनीतिक त्र में जो काम किया उससे उस जमाने में जितनी शक्य थी, रत की कीर्ति बढ़ी। गोखलेजी ने तो ठेठ सन् १८९६ गांधीजी को जो प्रोत्साहन दिया, दक्षिण आफ्रीका के हमारे वासियों की स्थिति सुधारने के लिए गांधीजी की जो मदद की, उसके लिए हमारी प्रजा गोखलेजी की सदैव कृतज्ञ हेगी। गोखलेजी ने उस आपत्कालीन समय हिंद में से न सिर्फ पैसे इकट्ठे करके दक्षिण अफ्रीका में गांधीजी को भेजे, वह खुद भी दक्षिण अफ्रीका गये और वहां के सबसे ऊंचे राजनीतिक पुरुषों से उन्होंने विष्टि भी की। कविवर रवीन्द्रनाथ ने यहां से मिस्टर एण्ड्रूज और पियरसन को भेजा। बहुत बातचीत और झगड़े के अंत में गांधीजी तीन पौंड का माथा-कर रद करा सके और अमुक काले कानूनों को पास होने से रोक सके।

महाराष्ट्र में कोल्हापुर के पास एक गरीब, किंतु संस्कारी खानदान में जन्म लेकर अपनी हिम्मत से गोखलेजी ने अच्छी शिक्षा पाई और ऊंची नौकरी और धन-सम्पदा का लोभ छोड़कर राष्ट्र की सेवा में अपनी सारी बुद्धि-शक्ति खर्च की और अपनी काया को निचोड़ डाली, देश को ठक्कर बापा जैसे अनेक भारत सेवक तैयार कर दिये और उम्र पचास तक पहुंचे उसके पहले ही देह छोड़ी। बहुत ही श्रद्धा से गोखले कहते कि देश की परिस्थिति सुधारने की बहुत कोशिश करता हूं, परन्तु सफलता नहीं मिलती। संभव है, हमारे भाग्य में असफलता के द्वारा ही देश की सेवा करना बदा हो। परन्तु हमारे बाद जरूर ऐसे लोग आयेंगे, जिन्हें पूरी सफलता प्राप्त होगी और भारतभूमि अच्छे दिन देखेगी।' उनकी इन इच्छा को सफल होने के लिए भारत को लंबे अरसे तक राह देखना नहीं पड़ा। सन् १९१५ के प्रारम्भ में गोखलेजी इहलोक छोड़ गये और तीस-पैंतीस वर्ष के अन्दर भारत देश ने स्वतन्त्रता के सूर्य के दर्शन किये।

आज ऐसे आर्यसुपुत्र भारतरत्न, महात्मा गोखलेजी के जन्म को सौ साल पूरे होते हैं, इसलिए हम सारे भारतवर्ष की ओर से उन्हें कृतज्ञतापूर्वक श्रद्धांजलि अर्पण करें। तपस्या तो की गोखले सरीखों ने और उसका लाभ मिला हमको। उनकी निःस्वार्थ परंपरा चालू रखेंगे तो सब अच्छा ही होगा। और वही उस भारतसेवक का उत्तम श्राद्ध होगा।

उनका जमाना अब नहीं रहा। देश की और दुनिया की परिस्थिति बदल गई है। भारत द्वारा सारी दुनिया की सेवा करने का मौका हमें मिला है। परन्तु ऐसी सेवा करने की निष्ठा और चारित्र्यसिद्धि तो हमें गोखले सरीखे पूर्वजों से ही विरासत में पानी और बढ़ानी होगी।"[1]

---

१. आकाशवाणी, बम्बई के सौजन्य से।

अमर वीरांगना लक्ष्मीबाई

पं० सुन्दरलाल

(कुछ चरित्र अपने प्रबल त्याग, उत्कट देशभक्ति, कर्मठता और आदर्श जीवन के कारण भारतीय जनता के हृदय में सदा-सदा के लिए बस गये हैं। रानी लक्ष्मीबाई का नाम ऐसे चरित्रों में सदा उच्चस्थान पर रहा है। १७ जून को उनकी पुण्यतिथि के अवसर पर प्रसिद्ध क्रांतिकारी व 'भारत में अंग्रेजी राज' के विद्वान् लेखक द्वारा रानी के उज्ज्वल व वीरतापूर्ण चरित्र का एक चित्र यहां प्रस्तुत है, जो सदा-सर्वदा हमें प्रेरणा प्रदान करता रहा है और करता रहेगा।—सम्पादक)

गत एक सौ वर्षों से भी अधिक समय से रानी लक्ष्मीबाई का नाम सम्पूर्ण भारत के हृदय में बसा रहा है। विभिन्न भारतीय भाषाओं में रानी लक्ष्मीबाई पर रचित सैकड़ों आल्हाओं, युद्धगीतों व अन्य साहित्य ने भारत के प्रथम स्वाधीनता संग्राम में प्रदर्शित रानी की वीरता को शाश्वत बना दिया है। सन् १८५७ से लेकर १९४७ तक के मध्य भारतीय स्वाधीनता के लिए संघर्ष करनेवाले अगणित देशभक्तों के लिए उनका नाम सदा ही अनन्त प्रेरणा प्रदान करनेवाला रहा है।

१८५४ तक मध्य भारत में स्थित झांसी एक स्वाधीन भारतीय रियासत थी, जो दिल्ली के मुग़ल सम्राट् के प्रति निष्ठावान थी। उस समय सम्राट् सम्पूर्ण भारत के सार्वभौम सत्तासम्पन्न शोधक माने जाते थे।

१८५४ में झांसी के राजा गंगाधर राव की बिना संतान के ही मृत्यु हो गई। पर मृत्यु से पूर्व राजा और उनकी युवा पत्नी लक्ष्मीबाई ने अपने ही परिवार के एक बालक दामोदरराव को अपने पुत्र और उत्तराधिकारी के रूप में गोद ले लिया। रस्म-समारोह में ईस्ट इंडिया कम्पनी के प्रतिनिधि भी उपस्थित थे।

पर गवर्नर जनरल की आज्ञा से ईस्ट इंडिया कम्पनी की सेनाओं ने यह तर्क तक देते हुए कि दामोदर राव का गोद लेना अवैधानिक है, सम्पूर्ण झांसी को गैर-कानूनी व अवैधानिक रूप से छीन लिया। रानी लक्ष्मीबाई, जिसकी उम्र उस समय केवल १८ वर्ष थी, कम्पनी के इस अनुचित कार्य के आगे रंचमात्र भी न झुकी। ब्रिटिश गवर्नर जनरल ने रानी को ५ हजार रुपया प्रतिमास आजीवन पेंशन का प्रस्ताव रखा, पर रानी ने तिरस्कारपूर्वक उसे अस्वीकार कर दिया।

इसके तीन साल बाद ही ब्रिटिश शासन के विरुद्ध देशव्यापी स्वाधीनता-संग्राम की लहर ने जन्म लिया। रानी लक्ष्मीबाई की आयु उस समय २१ वर्ष की थी। रानी उस स्वाधीनता संग्राम की एक प्रमुख नेत्री और कर्मठ कार्यकर्ता बन गईं। रानी ने शादी से पूर्व ही अपने बचपन में घुड़सवारी आदि की अच्छी शिक्षा प्राप्त की हुई थी। रानी तलवार चलाने व रायफल के प्रयोग में भी कुशल थी। दीर्घ व कठोर संघर्ष के बाद रानी लक्ष्मीबाई ने सम्पूर्ण झांसी की रियासत को ब्रिटिश शासकों से स्वाधीन करा लिया और झांसी के किले पर एक बार पुनः यूनियन जैक के स्थान पर दिल्ली के सम्राट् की हरी पताका फहराने लगी।

मैं यहां भारत में स्वाधीनता संग्राम में रानी लक्ष्मीबाई द्वारा किये गए वीरतापूर्वक कार्यों में नहीं जाऊंगा। इतना कहना ही पर्याप्त है कि उत्तर में जमुना के मध्य और दक्षिण में विन्ध्याचल तक का सम्पूर्ण प्रदेश ब्रिटिश शासकों से स्वाधीन करा लिया गया और इस सबके पीछे थी रानी लक्ष्मीबाई के विस्मयजनक सैनिक नेतृत्व की शक्ति, अतुल उत्साह, प्रबल वीरता और अदम्य भावना। भारतीय इतिहास के इन अविस्मरणीय वर्षों में

ी ने क्या कार्य किये, किस प्रकार घोड़े की पीठ पर ड़ों मील बिना रुके चलती रही, कैसी कठिन रिस्थितियों में उसने अपने सैनिकों को उत्साह व प्रेरणा न की और किस प्रकार उस काल के महानतम कुछ क कमांडरों के विरुद्ध भी विजय प्राप्त की—यह सारी ानी आज रोमांस के समान लगती है। अंग्रेज इति-कारों ने 'सैनिक नेत्री के रूप में रानी के गुणों की भरकर प्रशंसा की है।

सुपरिचित इतिहासकार विन्सेंट ए० स्मिथ ने अपनी क्सफोर्ड स्टूडेन्ट्स भारतीय इतिहास' नामक पुस्तक में नी को विद्रोही नेताओं में सर्वाधिक योग्य बताया है।

रानी लक्ष्मीबाई की मृत्यु जिस समय हुई, उसके हाथ तलवार थी और वह वीरतापूर्वक दुश्मन का सामना कर ी थी। उसकी मृत्यु के बाद उसके एक स्वामिभक्त सेवक चन्द्रराव ने गंगादास बाबा नामक साधु की झोपड़ी के रानी की हिन्दू रीति से अन्त्येष्टि-क्रिया सम्पन्न की।

ब्रिटिश अधिकारियों के विवरणों के अनुसार रानी अति उच्च और निष्कलंक चरित्र की महिला थी। इन कारियों में अधिकांश रानी लक्ष्मीबाई के निकट र्क में आये थे या झांसी के दरबार में रहे थे। महा-ट्र इतिहास संशोधक मंडल, पूना ने इधर रानी के तिहास पर कुछ उल्लेखनीय शोधें की है। इन शोधों से असंदिग्ध रूप से सिद्ध हो गया है कि रानी लक्ष्मीबाई ना गंगाधरराव के जीवन-काल में एक आदर्श हिन्दू ी की तरह रही और अपने पति की मृत्यु के बाद भी दर्श हिन्दू विधवा के रूप में उसका जीवन बीता। एक िरदायी ब्रिटिश अधिकारी मेजर मैलकम को रानी के निक जीवन को अत्यन्त निकटता से देखने का अवसर त हुआ था, उसने भारत के तत्कालीन गवर्नर जरनल लिखे गये एक सरकारी पत्र में १६ मार्च १८५५ को ा था, रानी एक अत्युच्च चरित्रवान महिला है और ांसी में उसका भारी सम्मान है।

१८५७ के संग्राम के अत्यन्त अधिकृत लेखक सर न काये ने रानी लक्ष्मीबाई के बारे में लिखते हुए कहा कि रानी के बारे में बहुत-सी गलत बातें लिखी गई हैं, क्योंकि यह हमारी रीति रही है कि किसी देशी राजा का राज्य ले लेना और फिर उसके पदच्युत शासक के भावी उत्तराधिकारी के चरित्र को बदनाम करना। यह कहा गया है कि रानी मात्र बच्चा थी और दूसरों के प्रभाव में थी और उसका स्वभाव अत्यन्त उद्धत था। पर रानी के साथ बातचीत से यह प्रदर्शित हो गया है कि रानी को बच्चा कहना गलत है। उसके स्वभाव को उद्धत बताना तो एकदम मिथ्या कल्पना है।

पर कुछ पुस्तकों में रानी के चरित्र पर कीचड़ उछा-लने की कम चेष्टा नहीं की गई है। २५ अगस्त १९५८ के टाइम्स में मिस्टर लेआर्ड एम० पी० ने इस तरह की बातों का सहारा लिया है। यही नहीं ब्रिटिश इतिहास-कारों द्वारा लिखी गई कई पुस्तकों में रानी का एक गलत और काल्पनिक चित्र भी प्रस्तुत किया गया है, जिसमें रानी को भारतीय पेचवान हुक्का पीते हुए और पास में एक सुराही रखे हुए बताया गया है। स्वभावतया इस सुराही से शराब की ओर इंगित किया गया है। निश्चय ही यह चित्र एकदम मिथ्या व दूषित है।

ब्रिटिश इतिहासकारों ने ऐसे अनेकों काल्पनिक व मनगढ़ंत चित्र रचे हैं। कासेल के भारत के इतिहास में मैंने अभी सम्राट बहादुरशाह का एक चित्र देखा, जिसमें उन्हें राजपूती ढंग से जूते व राजपूती धोती पहने, सिर पर राज-पूती पगड़ी बांधे और पैरों में सोने के कड़े डाले बताया गया है।

ब्रिटिश इतिहासकारों ने तो इन मिथ्या चित्रों का सहारा लिया ही है, पर यह देखकर दुःख होता है कि भारतीयों ने भी उनके इस कार्य की नकल की है और इन वीर चरित्रों को गलत रूप में पेश किया है।

१८५७ का स्वाधीनता संग्राम किन कारणों से असफल रहा, हम इसके विस्तार में नहीं जायंगे। इसके ९० साल बाद भारत ने पूर्णतया भिन्न तरीके से अपनी स्वाधीनता प्राप्त की, पर इस सारे ९० वर्ष के समय में रानी लक्ष्मी-बाई के नाम ने उसके असाधारण और वीरतापूर्ण चरित्र ने विदेशी शासन, से मुक्ति के लिए संघर्ष करनेवाले भारतीय वीरों को सदा प्रेरित किया और चेतना प्रदान की। जबतक भारत की स्वाधीनता का इतिहास कायम है रानी का नाम सदा अमर रहेगा।

आधुनिक विश्व पर गांधीजी का प्रभाव

सुरेश राम

सन् १९६१ की शरद् ऋतु।

ब्रिटिश पार्लमेंट के सामने हजारों युवक और युवतियां खड़े थे उनके सेनानी थे नब्बे बरस के तरुण सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक और दार्शनिक, लार्ड बर्ट्रेन्ड रसेल। सबका एक ही नारा था—आणविक शस्त्र खतम करो।

लार्ड रसेल और उनके अनेकों साथियों को ब्रिटिश सरकार ने जेल में डाल दिया। सारी दुनिया चकित रह गई, इस अद्भुत सत्याग्रही के अनोखे सत्याग्रह पर।

इस घटना के लगभग डेढ़ बरस बाद जब मैं लार्ड रसेल से वैल्स में उनके घर पर मिला और सूत को एक माला उनको भेंट में दी तो वह गद्‌गद् हो गये और बोले, "मुझे यकीन है कि जो काम मैं कर रहा हूं, उससे गांधी की आत्मा को बड़ी प्रसन्नता होती होगी। अब हिंसा के दिन लद गये और दुनिया को अहिंसा की तरफ आना होगा।

....

सन् १९६२ का अक्तूबर महीना।

अफ्रीका महाद्वीप के उत्तरी रोडिशिया नामक देश की राजधानी लुसाका में एक विशाल सार्वजनिक सभा। स्त्री, पुरुष और बच्चे हजारों की तादाद में मौजूद थे।

मंच पर उनका नेता और हृदय सम्राट कैनेथ काउन्डा (जो आजकल स्वतंत्र जम्बिया के राष्ट्रपति हैं) आया और जय-जयकार से आकाश गूंज उठा।

उन्होंने कहा, "यह समय जय-जयकार का नहीं, हमारी कसौटी का है। दुश्मन से मोर्चा लेना है और अहिंसा और शांति के रास्ते से हमको चलना है। अगर सरकार की तरफ से आपके कोई डंडा मारे तो उसके सामने सिर झुका देना, अगर कोई गुस्से में गाली दे या भड़काये तो जाकर थाने में रिपोर्ट कर देना, अगर कोई किसी तरह की धमकी दे तो हँसकर उसकी बात को टाल देना। लेकिन हमको किसी हालत में न बुरा शब्द मुंह से निकालना है, न अपने हाथ से किसीपर हमला करना है।"

सारी सभा ने इस आदेश के जवाब में कहा, "काउन्डा वेसु (काउन्डा की जय हो), जम्बिया वेसु (जम्बिया की जय हो)।"

तीन मर्तबा उन्होंने हाथ उठवाये कि हिंसा न करने का संकल्प लेते हैं।

इस शानदार आंदोलन के परिणाम-स्वरूप दो बरस के अन्दर उत्तरी रोडेशिया ब्रिटिश परतंत्रता की बेड़ियों से मुक्त हो गया और जम्बिया नाम के स्वाधीन राज्य का जन्म हुआ।

उन्हीं दिनों काउन्डाजी की आत्म-कथा प्रकाशित हुई थी। उसकी एक प्रति उन्होंने मुझे दी और अपने हस्ताक्षर के साथ एक संदेश भी लिखा—

"हमको सदा प्रसन्न रहना चाहिए ताकि इस दुनिया को ज्यादा बेहतर बनाने में योगदान कर सकें। मेरी शुभ कामनाएं—कैनेथ डैविड काउन्डा (२६-१०-१९६२)।

....

सन १९६३ की २८ अगस्त।

अमरीका में लगभग दो लाख नर-नारियों का एक अद्वितीय जलूस। इसमें काले और गोरे, सभी नस्लों के लोग थे। सुप्रसिद्ध वाशिंगटन स्मारक से दो मील पैदल चलकर यह विशाल जनसमूह लिंकन की मूर्ति तक गया। इसका नेतृत्व कर रहा था चौंतीस साल का एक नवजवान, रेवरेण्ड मार्टिन लूथर किंग।

उस नर-सागर को संबोधित करते हुए किंग ने कहा, "मैं एक स्वप्न देख रहा हूं कि एक दिन वह आयगा, जब भूतपूर्व गुलाम (काले लोग) और गुलामों के मालिक (गोरे लोग) भाई-चारे की मेज पर बराबर बैठेंगे और

अमरीकी समाज एकरस बनेगा।" उसके बाद वह राष्ट्रपति केनेडी से मिले, जिन्होंने पूरे समर्थन का आश्वासन दिया।

अमरीका के अन्दर ऐसा शांतिपूर्ण और शानदार प्रदर्शन न किसीने देखा था, न सुना। कट्टर गोरे भी मान गए कि रंग-भेद अब कुछ दिन का मेहमान है और नैतिक दृष्टि से तो इसमें कोई सार नहीं रह गया।

अपने साथियों से मार्टिन लूथर किंग कहा करते हैं, "आज हमारे सामने यह सवाल नहीं है कि हिंसा का रास्ता पकड़ें या अहिंसा का। या तो अब अहिंसा पर चलना होगा या फिर सबका खात्मा होगा।"

....

दुनिया के तीन महाद्वीपों के तीन उपर्युक्त प्रसंगों से सहज पता चलता है कि किस तरह गांधीजी का प्रभाव बढ़ रहा है और हर किसीको प्रेरणा दे रहा है। सचमुच अभी तो उसका आरम्भ ही है। एक जमाना वह आयगा, जब दुनिया के सभी देश हथियारों को तिलांजलि देंगे और बापू की राह पर उत्साह से आगे बढ़ेंगे। आज तो यह कल्पना ही लगती है। लेकिन मई १९६२ में जब मैं उत्तरी रोडेशिया के स्वाधीनता-संग्राम के सिलसिले में टांगानिका (जिसे अब तंजानिया कहते हैं) की राजधानी दारेसलाम पहुंचा तो अमरीका के महान शांतिवादी नेता रेवरेण्ड ए० जे० मस्ते के दर्शन हुए। उन्होंने पूछा, "क्या तुम्हें विश्वास है कि दुनिया शस्त्रों को शीघ्र छोड़ेगी?" मैंने कहा, "जरूर छोड़ेगी।" इसपर वह बोले, "हां, जरूर छोड़ेगी। लेकिन तुम्हें इस बारे में कोई शक नहीं रहना चाहिए। जानते हो कि १९४२ में गांधी ने जब 'क्विट इन्डिया' का उद्घोष किया तो अंग्रेजी राज्य अपनी चरम सीमा पर था और कोई नहीं कह सकता था कि पांच साल में वह भारत छोड़कर चला जायगा। ठीक उसी तरह से आज हिंसा चरम सीमा पर है। देखते-देखते वह दिन आयेगा कि सारे राष्ट्र हथियार छोड़ देंगे। मैं भले वह दिन देखने को जिंदा (श्रद्धेय मस्ते की आयु उस समय ७७ वर्ष की थी) न रहूं, लेकिन तुम और तुम्हारी पीढ़ी के लोग जरूर देखेंगे।"

श्रद्धेय मस्ते के कथन को कोई काल्पनिक ही समझेगा। लेकिन इससे इन्कार नहीं किया जा सकता कि आज दुनिया के छोटे-बड़े सभी राष्ट्र मानते हैं कि हिंसा या शस्त्रों से मसला हल नहीं होता। ७ अगस्त १९४५ को जब हिरोशिमा पर अमरीका ने अणु-बम गिराया, तब से युद्ध का स्वरूप ही बदल गया और आगे से उसमें हारने-जीतने का सवाल ही नहीं रहा। जनरल डगलस मेकआर्थर ने कहा था, "आधुनिक युद्ध एकदम निरर्थक चीज है, यह अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्नों या मतभेदों को हल करने में पूर्णतया असफल रहेगा।" अमरीका के भूतपूर्व राष्ट्रपति और अनुभवी सेनापति, जनरल आइजन हावर का तो प्रसिद्ध वाक्य है, "लड़ाई और उसकी तैयारी का धंधा एकदम मूर्खतापूर्ण और निरर्थक काम है।" सुप्रसिद्ध ब्रिटिश सेनापति, स्टीफेन किंग हाल कहा करते हैं, "पुण्यवानों की भाषा में कहा जाय तो हिंसा करना पाप है और पापियों की भाषा में कहा जाय तो हिंसा करना आत्महत्या है।"

सवाल उठेगा कि हिंसा के निरर्थक होते हुए भी दुनिया में हिंसा क्यों चल रही है? यह हिंसा, जो हम चारों तरफ देखते हैं, वह शांति और अहिंसा की खोज में चल रही है। पुराने संस्कारों के वश होकर हिंसा का आश्रय ले लिया जाता है। लेकिन उसमें विश्वास नहीं रह गया है। मगर साथ ही यह भी कबूल करना पड़ेगा, कि अहिंसा की सार्थकता पर विश्वास नहीं जमा है। आज मानव-समाज उस पंछी की तरह है, जो अपने हिंसारूपी घोंसले को छोड़ चुका है, लेकिन अहिंसा को अभी अपनाया नहीं है। बीच की हालत में उसके पंख फड़फड़ा रहे हैं। बेचैन है मंजिल पर पहुंचने के लिए, अभी रास्ते में भटक रहा है।

मगर पंछी की दिशा में कोई शंका नहीं की जा सकती। दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह और भारत के स्वाधीनता आंदोलन से गांधी ने दुनिया को दिखला दिया, कि अहिंसा की शक्ति में अनंत संभावनाएं भरी हैं। जैसा राष्ट्रपति राधाकृष्णन ने कहा है, "मानव इतिहास में गांधी पहला व्यक्ति था, जिसने अहिंसा के सिद्धान्त को व्यक्तिगत स्तर से उठाकर सामाजिक व राजनैतिक स्तर तक विकसित कर दिया।"

माना यह जाता था कि सत्य और अहिंसा ऐसे सद्गुण हैं जो व्यक्ति तक ही सीमित रहनेवाले हैं और सामाजिक या व्यापक क्षेत्र में उनका कोई उपयोग नहीं है। गांधी-जी ने हमारे इस भ्रम को दूर किया और इन सद्गुणों को सामूहिक शक्ति का रूप दिया। मार्टिन लूथर किंग के शब्दों में—

"मैं समझा यह करता था कि ईसा का सिद्धांत व्यक्तिगत क्षेत्र में प्रभावशाली हो सकता है और जहां समुदाय की बात हो वहां हमको ज्यादा यथार्थवादी मार्ग अपनाना होगा और शत्रु से प्यार करो आदि सिद्धांत को ताक पर उठाकर रख देना होगा। लेकिन गांधी को पढ़ने पर पता चला कि मैं कितनी भयानक भूल कर रहा था—गांधी इतिहास में शायद पहला व्यक्ति था, जिसने ईसा के प्रेम के सिद्धांत को एक व्यापक और बलवान सामाजिक शक्ति में रूपांतर किया। गांधी के लिए प्रेम सामाजिक और सामूहिक परिवर्तन के लिए एक बलवान माध्यम था। महीनों से जिस चीज की मैं खोज कर रहा था, वह मुझे गांधी के प्रेम और अहिंसा में मिली। बेन्थम और मिल, मार्क्स और लेनिन, रूसो और नीट्शे से जो बौद्धिक और नैतिक संतोष नहीं मिल सका, वह मुझे गांधी के अहिंसक प्रतिरोध के सिद्धांत में मिला। मैं यह महसूस करने लगा कि पीड़ित जनता को अपनी स्वाधीनता-प्राप्ति के लिए यही एक मात्र व्यावहारिक और उचित रास्ता है।"

अहिंसा का यह मार्ग वैज्ञानिक युग की मांग के अनुकूल ही है। विज्ञान के कारण सत्ताधारियों और श्रीमानों के पास सम्पत्ति तथा अधिकार इतनी मात्रा में आ पहुंचे हैं कि पहले कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। साथ-ही-साथ उनके पास शोषण और दमन या हिंसा के साधन भी खूब बढ़ते गए। राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक और हिंसात्मक—सभी तरह के साधनों पर उनका स्वामित्व हो गया और ऐसा लगता था कि अब पीड़ित और शोषित सदा सर्वदा ही पीड़ित और शोषित रहेंगे।

कार्ल मार्क्स ने क्रांति का शंखनाद किया और सारे संसार के मजदूरों को एक आवाहन दिया—"एक हो जाओ, तुम्हारे पास अपनी बेड़ियों के सिवाय और कुछ खोने को नहीं है।" मार्क्स की इस पुकार पर मजदूरों ने जगह-जगह एक होने की कोशिश की और रूस में तो एक हो भी गये। लेकिन उनकी बेड़िया नहीं कटीं। यह जरूर है कि उनको पहले से बेहतर खाना-पीना मिलने लगा, उनको रोजगार मिला, उनको आत्म-सम्मान प्राप्त हुआ, मगर राजनैतिक दृष्टि से उनके ऊपर एक समुदाय का आधिपत्य कायम ही रहा। उसीके हाथ में राजनैतिक, आर्थिक और फौजी सत्ता केन्द्रित हो गई। आम जनता और उसके बीच की खाई बनी रही। यही कारण है कि समाजवादी रूस हो, या जनतंत्रवादी ब्रिटेन या अमरीका, आज कहीं भी जनता का अंकुश सरकार पर नहीं है और वह अपनेको असहाय महसूस करती है।

इस कुचक्र से बचने का एक-मात्र उपाय अहिंसा का है। हिंसा ऐसा शस्त्र है, जो सदा चंद लोगों या अधिकारियों के कब्जे में रहेगा और बाकी लोग लाचारी के शिकार रहेंगे। लेकिन अहिंसा या प्रेम या नैतिक शक्ति इसके एकदम विपरीत है और जो गरीब-से-गरीब को भी उतनी हासिल है, जितनी अमीर-से-अमीर और किसी को। दूसरे शब्दों में, अहिंसा जन-शक्ति का स्रोत और आधार है। इसलिए अगर हमें जनतंत्र स्थापित करना है तो अहिंसा के द्वारा ही कर सकेंगे। बापू का प्रसिद्ध वाक्य है—

"मेरा विश्वास है कि सच्चा जनतंत्र अहिंसा के परिणामस्वरूप ही खड़ा हो सकता है। अगर दुनिया के किसी राष्ट्र को सचमुच जनतांत्रिक होना है तो उसे हिम्मत के साथ अहिंसा को अपनाना होगा।"

दुनिया के विभिन्न देशों में जगह-जगह अहिंसा के केन्द्र या आश्रम चल रहे हैं। अमरीका में तो अहिंसक पद्धति पर कई संस्थाएं काम कर रही हैं और वहां की सामाजिक तथा आर्थिक कुरीतियों से टक्कर भी ले रही हैं। इंग्लैंड में अहिंसा के बहुत-से स्कूल खुले हैं, जहां अहिंसा के विभिन्न पहलुओं पर विचार-विमर्श होता है। फ्रांस में लांजिल दे-वास्तों (जिन्हें बापू ने शांतिदास का प्यारा नाम दिया था) का बड़ा सुन्दर आश्रम चलता है, जहां के निवासी श्रम की निष्ठा के रूप में कुछ उद्योग भी करते हैं। इटली में डोलची डेंलिनो डोलची का केन्द्र है, जो अहिंसा का मानव पावर-हाउस बन गया

है। जर्मनी, नार्वे, स्वीडन आदि में भी केन्द्र या आश्रम चल रहे हैं। फिर सैकड़ों नवयुवक ऐसे हैं, जिन्होंने अनिवार्य सेना कार्य से इन्कार किया है और अहिंसा और शांति की खातिर जेल भी भुगत रहे हैं। वे मानते हैं कि जो अन्तःकरण से अहिंसा का अनुयायी है, उसको सेना-कार्य से मुक्ति मिलनी चाहिए। और अगर सरकार यह मुक्ति नहीं देती है तो उसको अपने मत या सिद्धांत पर अटल रहने के लिए हर तरह की सजा या यातना खुशी से भुगतनी चाहिए। आज भी सैंकड़ों जवान जेलों के अन्दर अहिंसा की खातिर बंद पड़े हैं। उनकी तपस्या अवश्य सार्थक होगी और अहिंसा का राज्य स्थापित करने में मदद देगी। हम इनको अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

अक्सर समझा जाता है कि क्रांति हिंसा से होती है। यह ऊपरी तौर से तो सत्य मालूम होता है। लेकिन ज़रा गहराई से विचार करने पर पता चलेगा कि यह कितना भ्रम है। हिंसा से जो क्रांति होती है, उसमें केवल गद्दी का बदल होता है। एक व्यक्ति या समुदाय के बजाए दूसरे के हाथ में सत्ता आ जाती है। लेकिन मूल्यों का परिवर्तन नहीं होता। या होता भी है तो अधूरा और अस्थायी होता है। जैसा एक इतिहासकार ने कहा है, जितनी ज्यादा हिंसा होगी, उतनी ही क्रांति कम होगी। अगर हम वास्तव में क्रांति चाहते हैं और मूल्यों को प्रतिष्ठित करना चाहते हैं तो वह अहिंसा और हृदय-परिवर्तन द्वारा ही हो सकती है। कहने की जरूरत नहीं कि अगर हिंसा से क्रांति संभव होती तो हिटलर, स्टालिन, चर्चिल और रूजवेल्ट अवश्य ही क्रांति कर डालते और अपने स्वप्नों का संसार खड़ा कर लेते।

क्रांति जबर्दस्ती नहीं लादी जा सकती। बल-प्रयोग के द्वारा किसीको दबाया जा सकता है, उसका सर भी काटा जा सकता है। लेकिन उसके सर के अन्दर का दिमाग नहीं बदला जा सकता। जबतक दिमाग नहीं बदलता है, तबतक वह दिल भी साथ नहीं देगा। इसलिए हिंसा की क्रांति कृत्रिम और दिखावटी होती है। जितनी समस्याएं उससे हल होती दीखती हैं, उससे कहीं ज्यादा नई समस्याएं खड़ी हो जाती है। क्रांति तो मरजी का सौदा है, जिसमें दिल और दिमाग दोनों खुशी से एक साथ और एक ही तरफ प्रेरित होने चाहिए। सत्याग्रह के जरिए गांधीजी ने दुनिया को बतला दिया कि क्रांति लाने में अहिंसा ही सफल हो सकती है।

उसी रास्ते पर चलकर आज बर्ट्रेण्ड रसेल, मार्टिन लूथर किंग आदि नेताओं के मार्गदर्शन में समाज आगे प्रगति कर रहा है। मानव के अन्दर सहज ही तीन तरह की चाह होती है—राजनैतिक आजादी, सामाजिक समानता और आर्थिक विकास। उत्तरी रोडेशिया में कैनेथ काउन्डा ने, घाना में क्वामे एनक्रूमा ने, टांगानिका में जूलियस नेरेरे ने इसी रास्ते से राजनैतिक आजादी हासिल की और इसी रास्ते से सामाजिक समानता का आंदोलन अमरीका में मार्टिन लूथर किंग कर रहे हैं।

लेकिन क्या इसी रास्ते आर्थिक विकास भी हो सकना संभव है। पूंजीपति या श्रीमान् अपनी पूंजी या या साधनों को क्यों दूसरे को देगा? हां, सरकार भले उससे ले सकती है और कैपिटेलिज्म (पूंजीवाद) के बजाय स्टेटिजम (राज्यवाद) आ सकता है, मगर शोषण तो नहीं रुकेगा। तो क्या अहिंसा के द्वारा यह मुमकिन है? इस प्रश्न का उत्तर बापू पहले ही दे चुके हैं। उन्होंने ट्रस्टीशिप का सिद्धांत समाज के आगे पेश किया था और कहा कि यह एक ऐसा सिद्धांत है जो अर्थ-शास्त्र के वर्तमान सिद्धांतों के मिट जाने के बाद भी कायम रहेगा।

मगर बापू की इस बात का रहस्य समझ में नहीं आता था। यद्यपि उन्होंने सामाजिक स्वामित्व में खादी के उद्योग को विकसित किया, लेकिन फिर भी उससे पूरा नक्शा स्पष्ट नहीं होता था। व्यक्ति की मालकियत भी न हो, सरकार की भी मालकियत न हो और इन दोनों की जगह समाज की मालकियत हो और उत्पादन के साधनों का न्यायपूर्ण बटवारा भी हो—यह गुत्थी थी, जिसका हल ट्रस्टीशिप के अन्दर मौजूद तो था, लेकिन यह साफ नहीं था कि उसकी नुमाया शकल क्या होगी? इसी वजह से कुछ लोगों को यह ख्याल होने लगा था कि अहिंसा के रास्ते से राजनैतिक स्वराज्य भले हासिल किया जा सके, लेकिन आर्थिक क्षेत्र में यह उतनी उपयोगी नहीं है।

इस सवाल का जवाब भूदान-ग्रामदान-आंदोलन के

द्वारा विनोबाजी दे रहे हैं। ग्रामदान में जमीन की मालकियत निजी न होकर ग्राम-सभा की रहती है। लेकिन जमीन पर काश्त करने और विरासत में दूसरों को देने का व्यक्ति का हक कायम रक्खा है। ग्रामदान में जमीन की निजी और सरकारी, दोनों मालकियत न रहकर समाज की मालकियत रहती है और तिस पर भी उसके उपयोग पर व्यक्ति की पूरी आजादी कायम रहती है। इस तरह ग्रामदान में पूंजीवाद और समाजवाद दोनों की अच्छाइयों का समावेश है और साथ-ही-साथ विकास का रास्ता भी खुलता है। यही कारण है कि देश में लगभग तेरह हजार ग्रामदान अबतक हो चुके हैं और उसमें से चार हजार अकेले बिहार प्रांत के ही हैं। बिहार के जनमानस में ग्रामदान की सर्थकता ज्यादा गहरे प्रवेश कर रही है और वह समय दूर नहीं, जब बिहार के कुल-के-कुल पचहत्तर हजार गांव या कम-से-कम दस हजार गांव जल्दी ही ग्रामदान में आ जायंगे। फिर जो काम बिहार में हो सकता है, वह बाकी सारे देश में जरूर हो सकता है। इस तरह ग्रामदान आर्थिक स्वराज्य की कुंजी पेश कर रहा है। एक बार भूमि के जैसा विकट प्रश्न हल हो जाय तो उद्योग या कारखानों की समस्या भी सुलझ जायगी, क्योंकि जहां जमीन की निजी मालकियत खत्म होकर समाज की मालकियत कायम हुई, वहां कारखानों या उद्योगों की निजी मालकियत भी नहीं टिक सकेगी। और वे ट्रस्टी-शिप के आधार पर चलेंगे।

ऊपर के संक्षिप्त विवेचन से पता चलेगा कि किस तरह समाज के विभिन्न क्षेत्रों में गांधीजी का प्रभाव काम कर रहा है। राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक, सभी दृष्टियों से अहिंसा दिन-दिन ज्यादा समर्थ सिद्ध हो रही है। और यह भी स्पष्ट है कि विज्ञान और अहिंसा के मेल से इस दुनिया में सर्वत्र सुख और शांति की स्थापना होगी। लेकिन उसके लिए हम जो अहिंसा के दावेदार हैं, उनको कठिन परीक्षा से गुजरना होगा। आज अहिंसा का पौधा अपने विकास के लिए हम अहिंसा वालों के त्याग और बलिदान की खाद मांगता है। जितनी ज्यादा तादाद में यह खाद हम अहिंसा के पौधे को दे सकेंगे, उतना ही ज्यादा जोर से और ज्यादा तेजी के साथ यह फूले और फलेगा।

अंत में एक छोटे-से प्रसंग को दिये बिना मेरा मन नहीं मानता। उससे पता चलेगा कि इस खाद को पहुंचाने की तैयारी भी अहिंसा-जगत में हो रही है। घटना आक्सफोर्ड की है, जो इंगलैंड का महान विद्या-केन्द्र है। वहां पर अहिंसा के अध्ययन-मनन के लिए एक छोटा-सा समुदाय है। हर हफ्ते में एक बार रात में इस समुदाय के युवक और युवतियां मिला करते हैं और अहिंसा पर विचार-विनिमय होता है। एक दिन किसी मुद्दे पर जोरदार चर्चा चल रही थी। बहुत वाद-विवाद के बाद एक मसला हल हुआ। उसके समर्थकों ने जीत की खुशी में ताली बजाई। लेकिन इन समर्थकों में एक तरुण बिलकुल गम्भीर बैठा रहा। जब ताली बज चुकी और हँसी आदि खत्म हो गई तो उसने कहा, "दोस्तो, हम अहिंसा या गांधी की बात करते हैं, लेकिन हमारा व्यवहार उसके विपरीत होता है। अभी हमने जरा-सी जीत होने पर उसका पूरा जश्न मनाया। लेकिन आप जानते हैं कि गांधी क्या कहता था? उसने एक जगह लिखा है कि अगर हमारी हार हो तो हमको दुखी नहीं होना चाहिए और अगर हमारी जीत हो तो हमको अहंकार से फूल नहीं उठना चाहिए। हार हो या जीत, हमको एक-सी तटस्थता बरतनी चाहिए।"

सभी लोग मान गये कि वह युवक सही कह रहा है। जीत मनानेवालों ने कहा कि अब हम अपनी नासमझी का प्रायश्चित्त करना चाहते हैं। आइये, हम सब पांच मिनट के लिए मौन प्रार्थना करें और भगवान से विनती करें कि वह हमको गांधी के सच्चे रास्ते पर चलने की सामर्थ्य दे।

मुझे उस मौन प्रार्थना में सजीव गांधी का दर्शन हुआ और मन कहने लगा—यही है गांधी और उसका प्रभाव, जो विकसित अहिंसा के रूप में लगातार बढ़ता ही जायगा।

●

'स्व-राज्य' की भूख और भावना मंद क्यों ?

काशिनाथ त्रिवेदी

'स्व-राज्य' भारत का अपना एक बहुत ही पुराना और अर्थ-गंभीर शब्द है। वेदों के जमाने से चला आ रहा है। जबसे इस देश में मनुष्य ने अपने जीवन के ध्येय को जाना-पहचाना और अपने रूप-स्वरूप को समझा है, तब से 'स्वराज्य' का सपना उसके जीवन के साथ जुड़ गया है। अपने इस सपने को सिद्ध और साकार करने में इस देश के मनुष्य ने अपने प्राणों तक की बाजी लगाने में भी सुख का ही अनुभव किया है। 'स्व-राज्य' से भिन्न किसी और विचार में उसका मन इतना नहीं रमा, जितना इसमें रमा और डूबा। मनुष्य की परम सिद्धि 'स्व-राज्य' में समाई है, इस बात की अनुभूति और प्रतीत हमारे पूर्वजों ने किसी समय बड़ी स्पष्टता और तीव्रता से की थी। 'यतेमहि स्वराज्ये'—जैसे वेद-वचन हमारे इस कथन के प्रमाण हैं। अपेक्षा और आकांक्षा यह रही कि मनुष्य जबतक मनुष्य के रूप में जीये, तबतक उसके जीवन का अधिष्ठान 'स्व-राज्य' ही रहे। किसी भी प्रकार की पराधीनता और परवशता उस युग के हमारे पराक्रमी पूर्वजों को रुची नहीं। 'स्व-राज्य' के सुख के आगे दुनिया के सारे सुख उन्हें तुच्छ-से लगे। 'स्व-राज्य' का अर्थ है, अपने ऊपर ही प्रभुत्व। अपने तन पर, अपने मन पर, अपनी इन्द्रियों पर, अपने विकारों पर, अपनी वासनाओं पर और अपने लोभ तथा अपने स्वार्थ पर अपना ही अंकुश चलाने की शक्ति, धृति और बुद्धि में से ही मनुष्य अपने लिए 'स्व-राज्य' की सृष्टि कर पाता है। जो अपनेको जीत लेता है, वह दुनिया में अजेय बन जाता है। संसार की कोई शक्ति, कोई संपत्ति और कोई प्रलोभन उसे विचलित और विजित नहीं कर पाते। मनुष्य ने हजारों-लाखों वर्षों के अपने विकास के पथ में जो अनेकानेक कड़वे-मीठे अनुभव प्राप्त किये, उन सबके निचोड़ के रूप में उसके मन ने स्वराज्य की अनुभूति में जिस मधुर तृप्ति का अनुभव किया, उसके कारण वह सदा-सदा के लिए 'स्व-राज्य' का अनन्य उपासक बन बैठा। इस देश में किसी जमाने में स्त्री-पुरुष दोनों ने मिलकर अपने जीवन को स्वराज्य के पथ पर अग्रसर करने के लिए भगीरथ प्रयत्न किये। उनके जीवन की वे अद्भुत सिद्धियां आजतक इस देश के स्त्री-पुरुषों को प्रेरित और अनुप्राणिक करती चली आ रही हैं। हमारे लोक-जीवन की यह एक ऐसी अनूठी थाती है कि इसपर अपना सबकुछ न्योछावर करना विचारशील मनुष्य के लिए कभी कठिन अथवा असंभव नहीं रहा।

... ...

दैव का कुछ ऐसा दुर्विलास रहा कि भारत की इस पुरातन भूमि को समय के फेर में पड़कर सैकड़ों वर्षों तक पराधीनता का दुःख देखना पड़ गया। सैकड़ों वर्षों की यह जो भीषण दासता इस देश के लोक-जीवन पर लद रही, उसके बड़े भंयकर, घातक और गहरे दुष्परिणाम सामने आये। दासता के फेर में पड़कर इस देश का औसत मनुष्य इतना दीन-हीन-मलीन और दुर्बल बन गया कि उसे अपनी मानवता का भी ध्यान और भान नहीं रहा। शासकों ने उसे एक मानवपशु का रूप दे दिया और उसके साथ पीढ़ियों तक पशु से भी बुरा व्यवहार करने का सिलसिला जारी रखा। परिणाम यह हुआ कि धीरे-धीरे मनुष्यों का एक बहुत बड़ा समाज अपनों और परायों की दासता की चक्की में पिस-पिसकर इतना क्षीण और जर्जर हो गया कि मनुष्य के नाते उसे अपने अस्तित्व को ही भूलना पड़ गया। स्वतंत्र रूप से सोचने-समझने, करने-धरने और कमाने-धमाने की

उसकी सारी शक्तियां समाप्त हो गईं। मनुष्य के नाते स्वतंत्रतापूर्वक जीने के सारे अवसर उससे छिन गये। परिणामस्वरूप वह क्रम-क्रम से जड़, मूढ़, निष्क्रिय और निस्तेज बनता गया और उसके समूचे जीवन में एक अगम और अथाह निराशा घर कर गई। मानव-समाज के जीवन का यह समय अमावस के घने अंधेरे के रूप में उसपर छाया रहा। इस सबका परिणाम यह हुआ कि औसत मनुष्य की दृष्टि सिकुड़ गई, शक्ति छिन्न-भिन्न हो गई, बुद्धि में भ्रष्टता आ गई, भावनाएं विकृत हो गईं और आकांक्षाएं सब मुरझा गईं। औसत आदमी अपने नित्य के जीवन में एक कठपुतली-सा बनकर रह गया। किसी जमाने का सिंह इस जमाने की भेड़ बनकर जीने लगा। उसे अपने सिंहत्व का बोध करानेवाली परिस्थितियां प्रकट ही नहीं हो पाईं। सैकड़ों सालों तक संसार के लोक-जीवन पर परायों की दासता का यह अंध चक्र चलता ही रहा। इस अंधेरे काल में मनुष्य अपने उज्ज्वल युग की सारी भावनाओं और भाषाओं को भी भूल बैठा। जीवन के महान् उदात्त सपनों को सिद्ध करने के लिए उसने शब्दों के रूप में जो कुछ समर्थ संकेत और प्रतीक खड़े किये थे, उन्हें भी वह बुरी तरह भूल बैठा। यही कारण है कि आज भारत जैसे प्राचीन देश की मानवता को 'स्व-राज्य' जैसे पुराने शब्द का स्मरण कराने की लम्बी कोशिशों के बाद भी इस देश का औसत आदमी उस शब्द को और उसके मर्म को पकड़ने में बार-बार विफल होता नज़र आता है।

जैसे अमावस की घोर अंधेरी रात के बाद शुक्ल पक्ष की दूज का चांद अपनी चमक से सृष्टि में एक नये चमत्कार को जन्म देता है, वैसे ही सैकड़ों वर्षों की घोरतम दासता के बाद इस देश में भी बीसवीं शताब्दी के पहले-दूसरे दशक में इसी देश के तत्कालीन मनीषियों ने एक बार फिर 'स्व-राज्य' शब्द का उच्चारण करके लोकजीवन में एक नये प्रकाश की सृष्टि की। आधुनिक भारत के इतिहास में स्व० श्री दादाभाई नौरोजी ने पराधीन भारत के सामने पहली बार सन् १९०६ में 'स्व-राज' शब्द का उद्घोष किया। उस समय तक अंग्रेजों की हुकूमत में रहकर भारत का औसत आदमी जिस तरह निर्वीर्य और निस्तेज बन चुका था, उससे खिन्न और बेचैन होकर स्व० श्री दादाभाई नौरोजी ने उसके सामने पहली बार 'स्व-राज्य' का मंत्र रखा था और उससे कहा था कि जबतक भारत का औसत नागरिक अपने नित्य के जीवन में इस मंत्र को सिद्ध करने के लिए कटिबद्ध नहीं होता है, तबतक लाख दूसरे उपाय करने पर भी उसके दैन्य, दुःख और हास्य का अन्त नहीं हो सकेगा और वह स्व-राज्य के सुख से भी वंचित ही बना रहेगा। इस ऐतिहासिक घटना के कुछ ही वर्षों बाद लोकमान्य तिलक ने देश की आम जनता के सामने दासता से मुक्ति पाने के लिए जिस मंत्र को सिद्ध करने की बात रखी, वह भी स्व-राज्य की ही बात थी। उन्होंने उस जमाने में डंके की चोट से कहना शुरू किया कि—"स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है और हम उसे लेकर रहेंगे"। लोकमान्य का यह स्वराज्य वेदकाल से चले आये पवित्र परम्परावाले 'स्व-राज्य' शब्द से भिन्न अर्थवाला नहीं था। उनके मन में भी भावना तो यही रही कि इस देश का हर नागरिक व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में स्व-राज्य के सुख से वंचित न रहे। केवल राज्य-परिवर्तन उनका लक्ष्य शायद ही रहा हो। केवल राज्य की भूख इस देश में कभी स्वाभाविक और स्वस्थ मानी ही नहीं गई। जब-जब राज्य का प्रश्न सामने आया, तब-तब हमारे महान् पूर्वजों ने उससे मुंह मोड़कर अपनेको 'स्व-राज्य' की साधना में रत रखना ही पसंद किया। स्व-राज्य की सिद्धि में जीवन की सारी सिद्धियां उन्हें निहित दिखाई पड़ीं। जब लोकमान्य से पूछा गया कि देश में अंग्रेज़ी राज्य के न रहने पर अर्थात् उसके स्वतंत्र हो जाने पर वे स्वयं अपने लिए कौन-सा काम पसंद करेंगे, तो उन्होंने उसका एक बहुत ही सूचक और मार्मिक उत्तर दिया था। उन्होंने कहा था कि वे या तो गणित के अध्यापक का काम करेंगे या अपना समय वेदों के अध्ययन और संशोधन में लगायेंगे। शासन के किसी ऊंचे पद पर बैठने की कोई भावना और आकांक्षा उनके मन में नहीं थी। अपने निज के जीवन को तो उन्होंने कठोर साधनों द्वारा 'स्व-राज्य' के सारे लक्षणों से मंडित कर ही लियाथा। देश भले पर-राज्य

की चक्की में पिसता रहा हो, भले उनकी अपनी देह भी उस चक्की में पीसी जाती रही हो, फिर भी अपने मन-प्राण से तो वे स्वराज्य के ही उपासक तथा साधक बने रहे, वही उनका परम प्रिय साध्य रहा।

लोकमान्य तिलक के बाद गांधीजी ने पराधीन भारत को बन्धन-मुक्त करने का बीड़ा उठाया और १९२०-२१ से लेकर १९४८ के जनवरी महीने की ३० तारीख तक उन्होंने इस देश में स्वराज्य की सिद्धि के लिए जो प्रचंड पुरुषार्थ किया, उसके मूल में भी इस देश के औसत नागरिक को स्वतंत्र और स्वाधीन देखने की ही उत्कट भूख तथा भावना भरी थी। स्वयं गांधीजी तो इस देश के 'स्व-राज्य' को रामराज्य के रूप में देखना चाहते थे। यही उनका चरम साध्य था और उसीके लिए वे अपने जीवन के अन्तिम क्षणों तक संपूर्ण जागृति के साथ जूझते रहे। आज़ादी के बाद के ५ महीनों में उन्होंने कभी एक क्षण के लिए भी सत्ता और सम्पत्ति की बात अपने लिए सोची नहीं। उनके मन में तो एक ही चीज बसी हुई थी और वह थी—"कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्त्तिनाशनम्" की। उन्हें न राज्य की भूख थी, न स्वर्ग की और न मोक्ष की। उन्होंने तो अपनी नित्य की प्रार्थना में भी अपने सिरजनहार से सदा इसीकी याचना की :

> न त्वहं कामये राज्यम्,
> न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
> कामये दुःख तप्तानाम्
> प्राणिनामार्त्तिनाशनम्॥

जब १५ अगस्त १९४७ को देश एक लम्बी गुलामी के बाद आजाद हुआ, तो उन दिनों भी वह कलकत्ते में भयंकर रूप से भड़की हुई बन्धु-द्वेष की सर्व संहारकारी आग को अपने खून-पानी से बुझाने में ही लगे हुए थे। जिस 'स्व-राज्य' के लिए वह जीवनभर जूझते रहे, उसके कोई दर्शन उन्हें आजादी के साथ इस देश में कहीं हुए नहीं। इसलिए उनके मन में जीवन के अन्तिम क्षण तक एक गहरी व्यथा और वेदना ही बनी रही। उनका यह दुःख उनके अपने लिए नहीं, बल्कि हम सबके लिए था। जिनके जीवन को हर तरह समुन्नत देखने की साध लिये वे जीवनभर इतनी उत्कटता और प्रखरता के साथ दासता के बंधनों को काटने के प्रयत्न में जुटे रहे।

राम-कृष्ण और बुद्ध-महावीर के समय से लेकर गांधी और विनोबा के समय तक का हमारा सारा पुराना और नया इतिहास हमें पुकार-पुकारकर यही कहता चला आ रहा है कि मनुष्य जाति का सच्चा उद्धार उसके 'स्व-राज्य' की सिद्धि और परिणति में है। यह 'स्व-राज्य' आज के प्रचलित शासन और उसकी विविध प्रणालियों से एकदम भिन्न व पृथक् है। इसमें एक मनुष्य दूसरे मनुष्य पर, एक जाति दूसरी जाति पर, एक समाज दूसरे समाज पर और एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र पर अपनी और अपनों की सत्ता चलाने की बात को भुलाकर मन, वचन और कर्म से एक ऐसी उदात्त भूमिका स्वीकार करता है, जिसके चलते प्रत्येक मनुष्य का स्वतंत्र और स्वाधीन जीवन बिताने के पर्याप्त अवसर, अनुकूलताएं और सुविधाएं समाज द्वारा प्रस्तुत की जाती हैं। भले ही आज हममें से बहुतों को यह चीज निरी काल्पनिक या स्वप्न-वत् प्रतीत हो, पर असल में देश की और दुनिया की मानवता का सच्चा उत्कर्ष और उद्धार तो आखिर इसी रास्ते आगे बढ़ने से होगा, इसमें संदेह नहीं। जिस तरह जंगल के सब पेड़ अपने-अपनी जगह खड़े होकर अपने लिए आवश्यक सब प्रकार का भोजन सहज ही जमीन के अन्दर-बाहर से प्राप्त करते रहते हैं, और निरन्तर बढ़-कर फूल-फलकर जंगल की शोभा को और उसके वैभव को बढ़ाने में लगे रहते हैं, उसी तरह जिस दिन दुनिया का मानव भी अपने लिए आवश्यक पोषण ही सृष्टि के सब तत्वों से लेते रहने की वृत्ति धारण करेगा और एक-दूसरे का द्रोह करने की वृत्ति को विचारपूर्वक छोड़ेगा, उसी दिन वह अपनी मनुष्यता को उसके पूरे वैभव के साथ पल्लवित, पुष्पित और फलित करने में समर्थ हो सकेगा और अपनी धन्यता के साथ समूची मानवता को भी धन्य होते देखने का सुख लूट सकेगा।

आज इस देश में ऐसे 'स्व-राज्य' की भूख और भावना इतनी मन्द इसलिए हो गई है कि कुल मिलाकर आज देश का समूचा लोक-मानस सदियों की बदतर गुलामी के बाद सांसारिक सुखों और वैभवों के लिए इतना भूखा-प्यासा और उतावला-बावला हो उठा है कि

जो सत्ता और सम्पत्ति उससे सदियों तक जबर्दस्ती बिछुड़ी रही, आज उसीको हस्तगत करने में उसे अपने लौकिक जीवन की परम सिद्धि का दर्शन होता-सा लगता है। एक भ्रम, एक व्यामोह और एक माया ने उसे कुछ इस तरह घेर लिया है कि वह इन सबके आवरणों को चीरकर बाहर निकलने की अपनी मूल शक्ति को खो बैठा है और राजकाज की निपट भोंडी खटपटों में ही इतना उलझ गया है कि 'स्व-राज्य' की बात सोचना भी उसके लिए तो आज अत्यंत कठिन हो उठा है। इसमें दोष किसी एक व्यक्ति का नहीं, उस सारी व्यवस्था का है, जिसे स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद हमने राज-काज और समाज में प्रतिष्ठित होने दिया है। अतएव मुख्य प्रश्न व्यवस्था को बदलने का है। जिस घड़ी व्यवस्था को बदलने का मानस बनेगा, उसी क्षण से देश में 'स्व-राज्य' की भूख और भावना भी जागने लगेगी और आम लोगों के सोचने-समझने, करने-धरने और जीने-जिलाने के तौर-तरीकों में भी मूलगामी परिवर्तन सहज भाव से होने लगेंगे।

यही कारण है कि आज देश की उद्बुद्ध आत्मा एक बार फिर 'स्व-राज्य' की साध लेकर उसकी सिद्धि के लिए प्रयत्न करने को उन्मुख हुई है। आज भारत के कोने-कोने में ग्रामराज्य का जो घोष गूंज रहा है, उसके मूल में अपने देश की इस पुरानी और अनमोल निधि को अपनाने की ही उत्कट भावना काम कर रही है। जबतक हमारा तथाकथित सुखी, संपन्न, शिक्षित और प्रतिष्ठित नागरिक अपने आपको आज के इस प्रपंचपूर्ण राज-काज के चक्र में फंसाये रहेगा, तबतक स्व-राज्य की उसकी भूख और भावना आज की ही तरह मन्द और क्षीण होती रहेगी। राज्य तो अपनी प्रकृति के कारण सदा से कलह का मूल रहा ही है, जबकि 'स्व-राज्य' ने मनुष्य को सदा ही सुख की छांह में जीने का अवसर दिया है। आज की इस विकट और चुनौतियों से भरी घड़ी में पसंद यही करना है कि हम अपनेको, और अपने देश तथा समाज को किस रास्ते ले जाना चाहते हैं——राज-काज के प्रपंचपूर्ण रास्ते अथवा 'स्व-राज्य' के निर्मल, उज्ज्वल और शांत व क्रांत पथ पर ?

अन्त में अपने ही देश के एक संत पुरुष की चेतावनी भरी इन पंक्तियों को उद्धृत करके हम अपना यह कथन समाप्त किया चाहते हैं:——

जहां कलह तहं सुख नहीं, कलह सुखन को सूल।
सबै कलह इक राज में, राज कलह को मूल॥

राज अनन्त कलह की दिशा है। 'स्व-राज्य' अनन्त सुख की। जिसे जो भावे, उसी ओर वह जावे।

गीत

सपना था बीत गया।
चाहा था, गा न सका, जीवन-संगीत गया।
सोई पहचान पुरानी,
भूली सी नई कहानी
धूमिल परिचय क्षण में, कोई क्या, मीत गया।
कैसी यह रीति निराली,
खोकर भी निधि ही पा ली,
संघर्षों में पलकर, हारा मन, जीत गया।
यह सब केवल भ्रम है,
कहने को संयम है।
अन्तर की हलचल से, जीवन-घट रीत गया।
सपना था बीत गया।

——महेशचन्द्र 'सहल'

आगामी मानव

व्रजनन्दन

जबसे पृथ्वी पर मानव का इतना विकास हुआ कि वह समझ सके कि जिन परिस्थितियों के बीच वह जी रहा है, वे आदर्श नहीं हैं और वह उनका बुरी तरह दास है, तबसे वह एक ऐसी सृष्टि का स्वप्न देखने लगा, जिसका परिवेश उसके रहने के योग्य होगा और जिसमें वह स्वतंत्र होकर वास कर सकेगा। उसने राम-राज्य--पृथ्वी पर भगवान् के राज्य की कल्पना की, जिसमें उसे सभी प्रकार के सुख और ऐश्वर्य उपलब्ध होंगे, और वह अनवरोध मनवांछित वस्तुओं का उपभोग कर सकेगा। प्रबुद्ध मानस को इस रहस्य का भी पता चल गया कि उसे वह स्थिति बाह्य परिस्थितियों के पुनर्गठन द्वारा नहीं अपितु आंतर परिवर्तन द्वारा प्राप्त होगी। आंतर विकास द्वारा व्यक्ति पहले स्वयं स्वतंत्र और अपना स्वामी बनकर ही अपने परिवेश में परिवर्तन लाने में सक्षम होगा।

और तब से जाति का प्रबुद्ध अंश इस परिवर्तन को साकार करने की चेष्टा में लग गया। पर इस प्रयास में उसे एक बड़ी भयंकर वास्तविकता का सामना करना पड़ा। वह अंतर में स्वतंत्र और अपना स्वामी होकर भी अपनी ही बाह्य प्रकृति पर, दावा करने के लायक, कोई विजय नहीं प्राप्त कर सका। उसकी स्वतंत्रता आंशिक ही रही और बाह्य प्रकृति के सतत सशक्त विरोध के आगे हार मानकर, आंतरिक स्वतंत्रता और प्रभुता से ही संतोष कर, उसे अपना बाह्य शरीर और यह जगत्--जहां बाह्य प्रकृति का अजेय-सा प्रदीप्त होता साम्राज्य है, छोड़कर कहीं अन्यत्र सरक जाना पड़ा, जहां वह अपनी आंतर स्वतंत्रता में सुखपूर्वक रह सके।

श्रीअरविन्द अपनी अभूतपूर्व आध्यात्मिक अनुभूतियों के बल पर इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि दोहरी विजय मात्र संभाव्य ही नहीं वरन् एक निश्चिति है और कि जिस प्रकार जड़ के बाद वनस्पति, वनस्पति के बाद पशु और पशु के बाद मनुष्य की उत्पत्ति हुई, उसी प्रकार मानव के बाद अतिमानव का आविर्भाव प्रकृति के विकास-क्रम का अगला कदम होगा। प्रकृति के मंथर विकास में तीव्र गति प्रदान करने के साधन और प्रक्रियाएं भी उन्होंने खोज निकालीं। इस परिवर्तन को घटाने में दृढ़-संकल्प श्रीअरविन्द का हाथ बंटाने को श्रीमां २४ अप्रैल १९२० को पाण्डिचेरी आकर सदा के लिए यहीं बस गईं। इसी पुण्य-स्थली को केन्द्र बनाकर उनका महान् कार्य आरंभ हुआ और आज, उनके अथक प्रयास के परिणाम-स्वरूप, हम विकास-क्रम के इतिहास के एक ऐसे मोड़ पर आ गये हैं, जब मानव का आदिम स्वप्न स्थूल काया ग्रहण करना चाहता है। अब हम दृढ़ निश्चिति के साथ एक ऐसे मानव--अतिमानव--के प्रकटन की प्रतीक्षा कर रहे हैं जो अपनी आंतर और बाह्य, दोनों प्रकृतियों का स्वामी होगा। यह मानव वर्तमान मानव से विकास करके ही उत्पन्न होगा, किन्तु यह उससे उतना ही भिन्न होगा जितना कि बंदर से आज का मनुष्य। अब प्रश्न उठता है कि क्या इस विकास के परिणाम-स्वरूप सभी मानव अतिमानव हो जायंगे? इसीपर विचार करना हमारा यहां अभिप्रेत है।

प्रश्न का उत्तर ढूंढने के लिए श्रीमां हमें उस घड़ी की कल्पना करने को कहती हैं, जब बंदर के आगे पहला मनुष्य प्रकटा था, अथवा यों कहें कि वानर जाति पर मानव जाति को थोपा गया था। अवश्य ही नकल करने की अपनी सहजात प्रकृति के कारण, उसकी पहली-पहली प्रतिक्रिया मनुष्य की नकल करने की--मनुष्य बनने की हुई होगी, जिसकी उससे मांग की जा रही थी। पर सबसे पहले उसकी दृष्टि आगंतुक की पूंछ के रिक्त स्थान की ओर गई होगी--"अरे, इसे पूंछ तो है ही नहीं!" इस दृष्टि से अवश्य ही वह उससे न्यून है। मनुष्य होने से उसे उसकी प्यारी पूंछ,

जिसका उसे इतना गर्व है, गंवानी पड़ेगी। मनुष्य में उसके समान उछलने-कूदने, स्फूर्ति और द्रुतगामिता की शक्ति नहीं है। उसमें वह बल भी नहीं, जो दांतों से फोड़कर पुंगीफल चबा जाय। और बुद्धि? देखने में तो वह केवल जमीन पर चलता असहाय बुद्धू-सा लगता है। उसका संशय दृढ़ हो गया होगा—"हम बंदर ही मनुष्य से कहीं अच्छे हैं—बंदर ही रहो!"

मनुष्य के सामने एक और भी अधिक आग्रही प्रश्न उपस्थित होता है। अतिमानव मानव से मूलोपांत भिन्न जीव होगा, न कि मानव का मात्र एक संशुद्ध नैतिक संस्करण, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कि मानव पशु का केवल एक भव्य और आवर्धित संस्करण नहीं है। मनुष्य में, पशु से भिन्न, विवेक बुद्धि नामक वस्तु है, जिसे विकसित कर उसने अगणित चमत्कार किये हैं। इस बुद्धि का स्वभावतः उसे गर्व है। पर अतिमानव में रूपांतरित होने के लिए उससे इस बुद्धि का परिहार करने की मांग की जाती है, क्योंकि बुद्धि, अपनी चमत्कारी शक्ति के बावजूद, मन की शक्ति है और इसलिए सीमित है। मन की क्रिया शांत होने पर ही उसमें ऊपर का ज्ञान उतर सकता है, जो बुद्धि से अधिक सशक्त और असीम है। किसी अनिश्चित दिव्य स्फुरण की प्राप्ति के हित बुद्धि इस आत्मोत्सर्ग के लिए तैयार नहीं होती। किसी अनिश्चित अप्राप्त वस्तु के पाने की आशा में मनुष्य अपनी सबसे अमूल्य निधि दांव पर लगाने का साहस नहीं करता। उसे यह मूल्य अतिशय और अदेय प्रतीत होता है, मानो अपने बाहु-बल से जीते हुए साम्राज्य को, उससे परित्याग करने को कहा जा रहा हो। और वह अड़ जाता है। श्रीअरविन्द अपने एक सूत्र-वचन में कहते हैं: "बुद्धि ने सहायता की थी, बुद्धि बाधक है।" बुद्धि ने मनुष्य को इतना बड़ा बनाया था, पर अब वही उसकी आगे की महानता में बाधक बन जाती है। मनुष्य से उसका अहंभाव—उसका 'मैं' पन छोड़ने को कहा जाता है, किंतु बुद्धि बिना 'मैं' पन के अपने अस्तित्व की कल्पना नहीं कर पाती। यहां एक मजेदार घटना याद आती है, जिसका उल्लेख किये बिना रहा नहीं जाता। उन दिनों, जब आश्रम की स्थापना नहीं हुई थी, एक दिन किसी अच्छे पढ़े-लिखे सज्जन श्रीअय्यर ने श्रीअरविन्द के समक्ष योगाभ्यास करने की अपनी इच्छा व्यक्त की। श्रीअरविन्द ने उन्हें उचित निर्देश दिये और उनकी आंतरिक सहायता के फलस्वरूप एक दिन अय्यर महोदय को मन की निश्चलता का अनुभव प्राप्त हुआ। पर अनुभूति के होते ही वह श्रीअरविन्द के पास घबराये हुए आये और कहने लगे: "मैं समझ नहीं पा रहा कि मुझे क्या हो गया। मैं कुछ सोच नहीं सकता हूं। मुझे लगता है मानों मैं जड़ हुआ जा रहा हूं!" श्रीअरविन्द बड़े विनोदी थे। उन्होंने अपने एक शिष्य को इस घटना की चर्चा करते हुए लिखा था: "वह यह सोचने के लिए नहीं रुका कि वह जो इतनी बात बोल रहा है, क्या बिना सोचे ही? और कि, जो कुछ कोई पहले से ही है, वह हो नहीं सकता।" (वन कैन नॉट बी ह्वाट वन ऑलरेडी इज़)। अर्थात् जड़ तो वह पहले से ही है जो ऐसा आचरण कर रहा है, तो उसके जड़ हो जाने का कैसा प्रश्न?

मनुष्य दुःख के बिना सुख की कल्पना नहीं कर सकता। उसका सारा जीवन द्वंद्वों से भरा है। बिना छाया और प्रकाश के संयोग के वह कोई चित्र नहीं उभार पाता। जबतक वह उत्तेजना से भरकर इधर-उधर दौड़-धूप नहीं करता रहता, वह अपने को सुस्त और निष्प्राण सा महसूस करता है। मनुष्य कोलाहल का इतना आदी है कि अपना जी बहलाने के लिए वह और भी अधिक कोलाहल का आयोजन करता है—उत्सवों की चहल-पहल, पटाखे, आतिशबाजी आदि। अतिमानव के शांत और सामंजस्यपूर्ण जीवन में उसे संघर्ष के आनंद का अभाव प्रतीत होगा। अपनी बुद्धि के प्रकाश से स्वयं चुंधिया कर, संभव है, अतिमानव को वह अपने से तुच्छ जीव समझे और, कम-से-कम अतिमानव बनने के लिए अपना मानवपन छोड़ने को तैयार न हो। अतः अधिक संभावना है कि जाति का अधिकांश भाग अपने सामान्य जीवन की लीक पर ही चलता रहेगा। पर फिर भी कुछ ऐसे लोग अवश्य होंगे, जो इस साहस कार्य के लिए सामने आयेंगे और किसी भी मूल्य पर अतिमानवत्व की दिव्यता प्राप्त करना चाहेंगे। इस प्रकार पुराना मानव और नया अतिमानव, दोनों का पृथ्वीपर सह-अस्तित्व होगा।

अब हम देखें कि अतिमानव का मानव के साथ कैसा संबंध होगा। पर इसके पहले एक बार फिर हम वानर-युग में जाकर देख आवें कि मनुष्य ने पशुओं के साथ कैसा व्यवहार

किया। मनुष्य ने बहुत-से पशुओं को पकड़ा तथा बुद्धि और छल-बल से उन्हें अपना दास बनाया। उसने जंगल, पहाड़, समुद्र, और तुषाराच्छादित प्रांतों को छान डाला और वहां के अनेकों प्राणियों का, जो अबतक स्वच्छंद जीवन बिता रहे थे, वध किया अथवा उन्हें अपना बंदी बनाया। तो क्या अतिमानव भी, जो चूंकि मानव से उतना ही उत्कृष्ट-तर होगा जितना कि पशु से मनुष्य, मनुष्य के साथ वैसा ही बर्ताव करेगा जैसा कि मनुष्य ने पशु के साथ किया? असंभव! जिस अतिमानव की हम प्रतीक्षा कर रहे हैं, वह नीत्शे का अहंकार-वर्धित मानव नहीं होगा। वह होगा अहंकार को खोकर आत्मा में विस्तृत मानव—आत्मा, जो सर्वभूतों में एक है। सर्वभूतों में वह उसी आत्मा को देख पावेगा, जो स्वयं उसमें वास कर रहा है, और इस प्रकार वह सर्वभूतों को अपने अंदर और सर्वभूतों के अंदर अपने को देखेगा। अतः प्रकृतितः वह सबों से आत्मवत् व्यवहार करेगा। वह अन्यों से घृणा नहीं, प्रेम करेगा और सब प्रकार से उनकी सहायता करने को तैयार रहेगा प्रेम और करुणा उसके अंतर्जात गुण होंगे एवं मानव-जाति का अज्ञान-जनित दुःख से उद्धार करना उसका सहज स्वभाव होगा।

मानवता का एक बड़ा अंश यदि अतिमानव के चरम आदर्श तक न पहुंच सके, तब भी, मनुष्य रहते हुए भी, अर्थात् अतिमानवत्व के रूपांतर से बिना गुजरे हुए भी वह बहुत हदतक अपनी स्थिति में सुधार ला सकता है। जीवन की आवश्यकताओं का कुवितरण, जो मनुष्य के स्वार्थ का दुष्परिणाम है, और रोग, जो उसके अज्ञान और अचेतना के कुफल हैं, मनुष्य के स्थायी और अविलोप्य अभिशाप नहीं हैं। उनका निराकरण किया जा सकता है और मानव समाज यदि देवों का समाज न भी बने, तब भी, उसे अधिक सुसंस्कृत और जीने के योग्य बनाया जा सकता है। मनुष्य की बौद्धिक उपलब्धियों ने उसे उसकी नजरों में बड़ा बना दिया है, पर साथ ही उसकी पशुता और पैशाचिकता की भी खूब वृद्धि की है। वर्तमान मानव प्रकृति में रहते हुए भी, मनुष्य की स्वघाती और अन्यों को लील जाने की प्रवृत्ति मार्जित की जा सकती है तथा उसे अधिक मानवीय और मानव-हितैषी बनाया जा सकता है। इस कार्य में अवश्य ही अतिमानव उसका परम सहायक होगा। वह स्वयं मुक्त होने के कारण अन्यों को मुक्त कर सकेगा। वह एक उज्ज्वल दृष्टांत बनकर मनुष्य के बीच रहता, उसे अपनी लघुता, स्वार्थ एवं संकीर्णता तथा अज्ञान और अचेतना से मुक्त होने की प्रेरणा देता रहेगा। उसकी दीप्त चेतना और कलुष-रहित जीवन के निर्मल प्रभाव की शक्ति, सहानुभूति, ज्ञान एवं मति सामान्य मानव तथा उसके समाज में वास्तविक परिवर्तन घटा सकेंगे। अतिमानव पृथ्वी पर भगवान् का राज्य कायम करने में सोत्साह सचेष्ट होगा। मानव और अतिमानव एक दूसरे की सहायता करते 'श्रेयः परम्' लाभ कर सकेंगे।

पर अतीत के इतिहास से इंगित लेकर, हम इस स्थल पर एक दूसरी आत्यंतिक संभावना की चर्चा भी कर लें। क्या होगा यदि मनुष्य अतिमानव को अपने साथ रहने की अनुमति न दे? उसका आचरण उसे पसंद न हो, उसके सिद्धांतों को वह अपने लिए हानिकर समझे, उसकी क्रिया-कलापों को न समझकर उनका विरोध करे, उसकी निस्पृहता उसकी ईर्ष्या का कारण बने और वह उसे उत्साहित करने पर तुल जाय? स्पष्ट है कि मानवता को अपने से ऊपर उठाने का जो सुअवसर प्राप्त हो रहा था, वह उसे इन्कार कर देगा। मनुष्य जबतक अपने अहंकार में निवास कर रहा है, अपनी लाख प्रगति के बावजूद, उसका दूसरों के स्वार्थ के साथ टकराव होगा ही, होड़ा-होड़ी सदा चलती रहेगी, परस्पर भय, संशय और अविश्वास सदा बना रहेगा, और मनुष्य अपनी बुद्धि का उपयोग अन्यों पर अपनी उत्कृष्टता लादने के लिए सर्वदा करता रहेगा—चाहे इससे दूसरों की कितनी भी हानि क्यों न हो। और इस तनाव का अंतिम परिणाम होगा, उत्तेजना के एक उग्र क्षण में, परस्पर-विनाश—प्रलय! अथवा कम-से-कम इतना विनाश कि मानव संस्कृति नष्ट हो जाय एवं संहार और विनाश से अवशिष्ट मानव को फिर से अरण्य-जीवन आरंभ करना पड़े। कहते हैं कि आज की असभ्य जंगली जातियां किसी प्राचीन विकसित संस्कृति के विनाश के अवशेष हैं।

जैन दृष्टि का विकास

इन्द्रचन्द्र शास्त्री

जैन परंपरा अपने प्रवर्तक के रूप में २४ तीर्थंकर मानती है। उनमें से अन्तिम तीन की ऐतिहासिकता निर्विवाद है। २२ वें भगवान् नेमिनाथ कृष्ण के समकालीन ही नहीं, चचेरे भाई भी थे। उनके समय के विषय में निश्चित धारणा नहीं बनी है। फिर भी ऐतिहासिकता के विषय में संदेह नहीं रहा। २३ वें तीर्थंकर भगवान् पार्श्वनाथ वाराणसी के राजकुमार थे। उनका समय ई० पू० ८०० माना जाता है। उनके पश्चात् ई० पू० ६०० में अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर हुए।

तीनों महापुरुषों की जीवन घटनाओं से पता चलता है कि उस समय क्या परिस्थिति थी और उनमें कैसी प्रतिक्रिया हुई। ये प्रतिक्रियाएं ही वर्त्तमान जैनधर्म और दर्शन की आधारशिला हैं।

नेमिनाथ के जीवन में तीन बातें मिलती हैं। प्रथम का सम्बन्ध पशु-हिंसा से है और अन्तिम दो का भागवत संप्रदाय से। कहा जाता है, नेमिनाथ के विवाह पर उनके भावी श्वसुर राजा अश्वसेन ने बरात के भोजन के लिए बहुत-से पशुपक्षी एकत्र किये। उनके करुण क्रंदन से नेमिनाथ का हृदय द्रवित हो गया और उन्होंने विवाह न करने का निश्चय कर लिया। पशुओं के प्रति करुणा जैन धर्म का महत्वपूर्ण अंग है। यह भगवान नेमिनाथ की देन है।

दूसरी बात भागवत संप्रदाय की है। भागवत परंपरा भारत का प्राचीन धर्म है। जैनधर्म के समान यह भी मांसाहार एवं पशुहिंसा का विरोधी है। यह परंपरा भक्तिवाद पर अत्यधिक बल देती है। इसमें उपास्य के रूप में चार व्यूह माने गये हैं।

(१) वासुदेव
(२) संकर्षण (कृष्ण के बड़े भाई)
(३) प्रद्युम्न (पुत्र)
(४) अनिरुद्ध (पौत्र)

उत्तरकाल में आध्यात्मिक व्याख्या की गई। किन्तु यह स्पष्ट है कि इनका प्रारंभ कृष्ण और उनके परिवार की पूजा से हुआ। इतना ही नहीं कृष्ण की रानियों को भी दैवी शक्तियों के रूप में पूजा गया। यह गुणों के आधार पर व्यक्ति की पूजा नहीं थी, किन्तु व्यक्ति के आधार पर गुणों की व्याख्या थी। कृष्ण की प्रत्येक चेष्टा को गुण मान लिया गया। उनका उठना-बैठना, खाना-पीना, विलास-लीलाएं आदि सारी बातें धर्म का अंग बन गईं। उनका श्रवण, कीर्त्तन एवं अनुकरण साधना का मुख्य तत्व हो गया।

नेमिनाथ के मन में इसकी प्रतिक्रिया हुई और उन्होंने व्यक्ति-पूजा के स्थान पर गुणपूजा का प्रतिपादन किया। भक्ति का स्थान गुणों के प्रति श्रद्धा ने ले लिया। दोनों परंपराओं में टक्कर हुई और परस्पर आक्षेप होने लगे। जैन धर्म अपने महापुरुषों के साथ जो विशेषण लगाता है वे भागवत परंपरा से मिलते हैं। जैन आगमों का पर्यालोचन करने से पता चलता है कि इस परंपरा का कृष्ण के साथ घनिष्ठ संबंध रहा होगा। 'अंतकृद्दशांगसूत्र' में कृष्ण की रानियों का वर्णन है, जो कठोर तपस्या द्वारा मोक्ष प्राप्त करती हैं। 'वण्हिदसाओ' नामक सूत्र वृष्णि-कुल से सम्बन्ध रखता है। 'ज्ञाता धर्म कथा' में भी कृष्ण की जीवन घटनाएं आई हैं। जैन परंपरा ६३ शलाका पुरुष के रूप में जिन महापुरुषों की गणना करती है, उनमें वासुदेव भी हैं।

इतना होने पर भी सभी वासुदेवों को नरकगामी बताया गया, यह बात धार्मिक विद्वेष को प्रकट करती है। मतभेद महत्वपूर्ण हो या नगण्य, जब एक ही परंपरा से

शाखाएं फूटती हैं तो उनमें विरोध की मात्रा स्वाभाविक रूप से उग्र होती है। जैन परंपरा यह भी मानती है कि सभी वासुदेव भविष्य में मोक्ष प्राप्त करेंगे। इस प्रकार एक ओर श्रद्धा प्रकट की और दूसरी ओर कठोर दंड दिया। व्यक्ति के स्थान पर गुणों को प्रतिष्ठित करना भगवान नेमिनाथ की देन है।

तीसरी बात कर्मसिद्धांत है। भक्तिवादी परंपराएं हमारा भविष्य ईश्वर या किसी अतींद्रिय सत्ता के हाथ में सौंपती हैं। उनका कथन है कि समस्त विश्व भगवान का खिलौना है। यह जिसे चाहता है बनाता है और जिसे चाहता है बिगाड़ डालता है। उसकी इच्छा पर कोई नियंत्रण नहीं है। इसके विरुद्ध जैन-परंपरा का कथन है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने भाग्य का स्वयं निर्माता है। इसके लिए वह कर्मवाद को प्रस्तुत करता है। जैन परंपरा में भगवान् महावीर से पहले के साहित्य को पूर्व कहा गया है। १४ पूर्वों में एक का नाम 'कर्मप्रवादपूर्व' है। इससे पता चलता है कि महावीर से पहले कर्मविषयक सिद्धांत अस्तित्व में आ चुका था।

भगवद्गीता में दोनों तत्वों का सम्मिश्रण मिलता है। वहां यह भी बताया गया है कि व्यक्ति स्वयं अपना उद्धारक है, वही अपना मित्र है और वही शत्रु। दूसरी ओर यह भी बताया गया है कि व्यक्ति को अपना सब कुछ भगवान के हाथों में सौंप देना चाहिए। कर्ममार्ग और भक्तिमार्ग का यह समन्वय वस्तुतः देखा जाय तो उपर्युक्त दो परंपराओं का समन्वय है। ज्ञानमार्ग के रूप में तीसरी परंपरा का प्रारंभ उपनिषदों में हुआ है। इस प्रकार गीता साधना की प्राचीन परंपराओं का समन्वय ग्रंथ बन गया। महाभारत में भी कर्म और भक्ति को लेकर अनेक संवाद मिलते हैं।

पार्श्वनाथ के समय तापसों का बहुत प्रभाव था। पंचाग्नितप, दोनों हाथों को उठाकर घूमते रहना, एक टांग पर खड़े रहना, वृक्ष से उल्टा लटकना आदि शुष्क क्रियाएं साधना का मुख्य तत्व मानी जाती थीं। साधारण जनता ऐसा करनेवालों को योगी अथवा आध्यात्मिक महापुरुष मानकर पूजती थी। पार्श्वनाथ ने इस शुष्क क्रियाकांड के विरुद्ध आवाज उठाई और आभ्यंतर तप को महत्त्व दिया। कहा जाता है उन्होंने अहिंसा, सत्य, अस्तेय और अपरिग्रह के रूप में नैतिक जीवन पर भी बल दिया। जैन धर्म चरित्र को दो भागों में विभक्त करता है—संवर और निर्जरा। संवर का संबंध नैतिकता के साथ है और निर्जरा का बाह्य एव आभ्यंतर शुद्धि के साथ। पार्श्वनाथ ने तप का निषेध नहीं किया, किन्तु उसके साथ आभ्यंतर शुद्धि को आवश्यक बताया। दूसरे शब्दों में यों कहा जा सकता है कि उन्होंने शरीर-शोषण के स्थान पर आत्मशुद्धि के रूप में सम्यक् चरित्र का स्वरूप प्रस्तुत किया। इस प्रकार जैन दृष्टि के विकास में चौथे तत्त्व का सम्मिश्रण हुआ।

भागवत तथा तापसों के अतिरिक्त तीसरी परंपरा उपनिषदों एवं साख्य-योग आदि ज्ञानवादियों की थी। उनकी मान्यता थी कि ज्ञान से ही मुक्ति होती है। भगवान् महावीर ने श्रद्धा और क्रिया को भी आवश्यक बताया। इस प्रकार सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चरित्र के रूप में मोक्षमार्ग का विकास हुआ।

यह भी पता चलता है कि महावीर के समय वैदिक क्रिया कांड एवं पशुहिंसा का बहुत प्रचार था। महावीर ने इसका भी विरोध किया।

वैदिक परंपरा में वर्णविद्वेष भी उत्कट रूप ले चुका था। विजेता आर्यों ने पराजित मूलनिवासियों को शूद्रवर्ण में रक्खा और उसे मानवीय अधिकारों से वंचित कर दिया। महावीर ने इसका भी विरोध किया और अपने श्रमण संघ में सभीको समान अधिकार दिया।

ऊपर तीन परंपराओं का निर्देश आया है—भागवत, तापस और वैदिक। वैदिक के पुनः दो भेद हो गये। (१) यज्ञ-यागादि क्रियाकांड में विश्वास रखनेवाले मीमांसक, (२) आत्मसाक्षात्कार पर बल देनेवाले वेदांती। महावीर के समय इनके अतिरिक्त कुछ अन्य परंपराओं का भी उल्लेख आता है, जिनकी पृष्ठभूमि में जैन दृष्टि का विकास हुआ।

सर्वप्रथम स्थान बौद्धों के अनात्मवाद का है। उसका कथन है कि आत्मा नाम का कोई शाश्वत तत्व नहीं है। वह केवल अनुभूतियों की धारा है। प्रतिक्षण पिछली अनुभूतियां समाप्त होती जाती हैं और उनका स्थान नई

अनुभूतियां लेती रहती हैं। एक दिन यह धारा सूख जाती है। इसीका नाम निर्वाण है। महावीर ने इस परंपरा के विरुद्ध शाश्वत आत्मतत्व को प्रस्तुत किया।

द्वितीय परंपरा अद्वैतवाद की थी। उसका कथन था कि बाह्य जगत् सत्य नहीं है। स्वप्न के समान अवास्तविक है। महावीर ने इसके विरुद्ध बाह्य जगत् को भी सत्य बताया।

तीसरी परंपरा नास्तिकों की थी। उनका कथन था कि शरीर और आत्मा भिन्न नहीं है। शरीर का नाश होने पर आत्मा का भी नाश हो जाता है। ऐसा कोई तत्व नहीं है जो परलोक में जाता है। स्वर्ग तथा नरक कोरी कल्पना है। नास्तिकों की कुछ परंपराएं चार भूतों को मानती थीं, कुछ आकाश को मिलाकर पांच, कुछ काल को मिलाकर छः। कुछ नियति, स्वभाव आदि को मिलाकर सात या आठ मानती थीं। महाभारत के शांतिपर्व में इन सबका वर्णन आया है। महावीर ने इन सबके विरुद्ध शरीर से भिन्न आत्मा का अस्तित्व बताया।

चौथी परंपरा नियतिवाद की थी। इसका प्रतिपादक गोशालक साधनाकाल में कुछ समय तक महावीर के साथ रहा था। इसकी मान्यता है कि विश्व में परिवर्तन एक निश्चित क्रम के अनुसार हो रहा है। प्रत्येक व्यक्ति का भविष्य निश्चित है। हम अपने पुरुषार्थ द्वारा उसमें कोई परिवर्तन नहीं ला सकते। महावीर ने इसके विरुद्ध पुरुषार्थ का समर्थन किया। नेमिनाथ ने भगवान् की पराधीनता के विरुद्ध आवाज उठाई थी। महावीर ने भाग्य की पराधीनता के विरुद्ध। जैन कर्मवाद वर्तमान पर अतीत के प्रभाव को स्वीकार करता है। साथ ही, यह भी मानता है कि नवीन पुरुषार्थ द्वारा उस प्रभाव को न्यूनाधिक या समाप्त किया जा सकता है। नियतिवाद को आजीवक संप्रदाय भी कहा जाता था।

ऊपर के विवेचन से नीचे लिखे तथ्य निकलते हैं, जिन्हें हम जैन धर्म एवं दर्शन की भूमिका कह सकते हैं :

(१) अहिंसा
(२) गुणपूजा
(३) कर्मवाद अर्थात् निजी पुरुषार्थ में विश्वास।
(४) हृदयहीन कायाक्लेश की अपेक्षा विचारशुद्धि का अधिक महत्व
(५) आत्मविकास के पथ में मानव मात्र का समान अधिकार।
(६) आत्मा के रूप में शाश्वत तत्व
(७) बाह्य जगत् की वास्तविक सत्ता
(८) परलोक का अस्तित्व
(९) पुरुषार्थ का महत्व

भगवान का मंदिर

हरिकृष्णदास गुप्त 'हरि'

भोले श्रद्धालु ने अपना सर्वस्व लगाकर एक भव्य मन्दिर का निर्माण कराया और भगवान् से उस में निवास करने के लिए प्रार्थना की।

प्रार्थना हृदय से थी, अतः अनसुनी न रही। उसे लगा भगवान् उत्तर में कह रहे हैं :

"एवमस्तु" !—कहते हुए मुझे प्रसन्नता होती पर मैं अकेला तो हूं नहीं। मेरा ही रूप यह समूचा विश्व मेरे साथ है। तू ही कह मैं इस सबके सहित इसमें कैसे समाऊंगा।

सोच में पड़ गया भोला श्रद्धालु; किन्तु क्षण-भर को ही फिर चमत्कृत हुआ। श्रद्धा उसकी सच्ची थी। आंखें उस की खुलीं। वह तह में पहुंचा। और फिर जरा-सी देर में अपने हृदय-मन्दिर को,एक कर दिया। अपने हृदय को 'तू-मैं' 'यह-वह' आदि की असंख्य विभाजक दीवारों से मुक्त करके अनन्त विशालता प्रदान करते हुए उसने भगवान से उसमें बसने के लिए प्रार्थना करनी चाही। पर करनी नहीं पड़ी, भगवान पहले ही अखिल विश्वसहित उसे जीवन-कृतकृत्यता भेंट करते हुए उसके उस मन्दिर में बस गए थे।

स्वानुभूति और सन्त

बाबूराव जोशी

संतों ने जिस युग को अपने काव्य चमत्कार से अलंकृत किया वह हिन्दी का स्वर्णयुग माना जाता है। इस युग के सभी सन्त हिन्दी के मर्मी कवि हैं। उनकी वाणी काव्य रचनामात्र नहीं, उनके आत्मानुसंधान का परिणाम है। वे प्रेम के पुजारी, समता के संस्थापक और सत्य के साधक थे। यद्यपि उन्होंने सत्य दर्शन के लिए वेद, उपनिषद्, बौद्ध दर्शन, सूफीमत, शैवदर्शन, योग आदि का सहारा लिया, किन्तु सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर मालूम होता है कि उन्होंने सबसे अधिक महत्व दिया स्वानुभूति को। श्री रामधारीसिंह दिनकर के शब्दों में "बुद्धि जिसे लाख कोशिश करने पर भी समझ नहीं पाती, हृदय उसे अचानक देख लेता है। विद्या तो समुद्र में उठती हुई तरंगों का नाम है। अनुभूति अन्तरात्मा में बसती है। उसका एक कण लाखों मन ज्ञान से अधिक मूल्यवान है।" बात यह है कि आत्म प्रतीति के बिना अध्यात्म-ज्ञान संभव ही नहीं है। बुद्धि की विडम्बना यह है कि वह सत्य का पर्याय नहीं बन सकती। यदि कोरे तर्क के आधार पर सत्य का निरूपण करने का प्रयत्न किया गया तो निराशा ही पल्ले पड़ेगी। सत्य-दर्शन के लिए ब्रह्म जिज्ञासा से आकुल अन्तर, इन्द्रिय निग्रह एवं विकार त्याग तो चाहिए, किन्तु इनसे भी अधिक आवश्यक है स्वानुभूति। सन्त और विद्वान् में यदि कोई प्रमुख अन्तर है तो यही कि विद्वान् की अनुभूति अपनी स्वयं की अनुभूति नहीं होती। वह दूसरों की अनुभूति पर अवलम्बित रहता है। किन्तु सन्त स्वयं की अनुभूति को ही प्रधानता देता है। वस्तुतः ग्रंथों से प्राप्त होनेवाला ज्ञान पराजित या अन्योपलब्ध ज्ञान है। वस्तु की समीक्षा में वह उतना समर्थ नहीं होता, जितना स्वाजित या स्वउपलब्ध ज्ञान।

सन्तों ने ब्रह्म-जिज्ञासा से आकुल होकर शास्त्रों की ओर नहीं, अपनी अन्तरात्मा की ओर झांका और अनुभव किया कि आत्मा और परमात्मा दो नहीं हैं। कबीर ने कुंभ के रूपक से इस तथ्य को समझाते हुए कहा था—

जल में कुंभ कुंभ में जल है, बाहर भीतर पानी।
फूटा कुंभ जल जलहि समाना, यह तत कथौ गियानी।।

उपनिषदों ने इसी रहस्य को 'द्वा सुपर्णा' और 'छायातप' के रूपकों द्वारा अभिव्यक्त किया था। इस तथ्य को समझकर ही सन्त आत्म विभोर हुए थे और आत्म-विभोरता की इस स्थिति में दादू ही ने कहा था—

चर्म दृष्टि देखे बहुत, आतम दृष्टी एक।
ब्रह्म दृष्टि परिचय भया, दादू बैठा देख।।

स्पष्ट है कि सन्त आत्म परिचय के द्वारा ही 'पूरे सो परचा' करने में समर्थ हुए थे। उन्होंने स्थूल बुद्धि से ऊपर उठकर प्रत्यक्षानुभूति प्राप्त की थी और प्रज्ञान से आगे बढ़कर अन्तर्ज्ञान के क्षेत्र में प्रविष्ट हुए थे। इस क्षेत्र में प्रवेश करने पर ही सर्वत्र अपने राम के ही दर्शन होने लगे थे और वे कह उठते थे—

'जंह देखो तंह एको एक'

सन्तों का ज्ञान उनकी स्वानुभूति से भिन्न नहीं है। स्वानुभूति की महिमा का वर्णन सभी सन्तों ने किया है। कबीर की अनुभूति का आधार है विवेकमूलक अर्न्तदृष्टि। चिन्तन करते-करते उन्हें राम जलु की प्राप्ति हुई थी—

चेतत चेतत निकसियो नीर सो जलु निर्मल कथत कबीर।

चिन्तन पर आधारित होने के कारण उनकी अनुभूति द्वन्द्वातीत एवं आनन्द स्वरूप हो गई थी। वे आनन्द विभोर होकर कहते थे—

अब मोहि जलत राम जलु पाइया,
राम उदकि तनु जलत बुझाइया।

अनुभूति की इसी स्थिति में वे सीमा का उल्लंघन

करके निस्सीम तक पहुंच जाते थे और उस शून्य सरोवर में स्नान करके वहां विश्राम करने लगते थे जहां मुनियों की भी गति नहीं है—

हद्दि छाड़ि बेहद गया, किया सुन्नि असनान।
मुनिजन महल न पावई, तहां किया विसराम॥

गुरु नानक के लिए वह कोई रहस्य ही नहीं है। उसे देखने के लिए उन्हें किसी विशेष स्थान, समय या विधि की आवश्यकता नहीं है। स्वानुभति से ही उसे जानकर उन्होंने कहा था।

जहं देखा तहं एक तू, सतगुरु दिया दिखाइ।
जोति निरंतर जाणिए, नानक सहज सुभाइ॥

ज्ञान किसी भी वस्तु की चतुर्दिक् सीमाओं का परिचय करवाता है, किन्तु अनुभूति अनुभव की वस्तु में मग्न कर देती है। ज्ञान की स्थिति में ज्ञेय से कुछ-न-कुछ दूरी बनी ही रहती है। किन्तु अनुभूति तादात्म्य स्थापित कर देती है। दादू अनुभूति के इस रस में आकंठ डूबे हुए थे, तभी तो उन्होंने कहा था—

ज्ञान लहर जंह ते उठे, वाणी का परकास।
अनभै जहं ते ऊपजे, सबदे किया निवास॥

वे एकमात्र स्वानुभूति को ही आत्म साक्षात्कार का साधन मानते थे। वे स्पष्ट शब्दों में कहते थे कि मुझे आनन्द नाम और निर्वाण सब कुछ स्वानुभूति से ही प्राप्त हुआ है—

अनभै ते आनन्द भया पाया निर्मल नांव।
निहचल निर्मल निर्वाण पद अगम अगोचर ठांव॥

इसमें कोई सन्देह नहीं कि सन्तों की यह स्वानुभूति सामान्य लोगों के लिए असाधारण एवं रहस्यमय है। अतः वे इस पर आश्चर्य कर सकते हैं। कबीर की बातों पर लोगों ने इसी प्रकार का आश्चर्य व्यक्त किया था। कबीर क्या उत्तर देते ? जो वाणी का विषय ही नहीं, उसे वाणी से कैसे व्यक्त किया जाय ? उन्होंने इतना ही कहा—

दीठा है तो कस कहूं, कह्या न को पतियाइ।

विज्ञान के इस युग में हो सकता है कि कुछ लोग स्वानुभूति का मजाक उड़ायें, किन्तु मैं कहना चाहता हूं कि कुछ बड़े-बड़े पाश्चात्य वैज्ञानिक और विद्वान् भी इस तथ्य को स्वीकार करते हैं कि हमारी बुद्धि की परिधि के परे भी एक ऐसी सत्ता है जिसे दर्शन और विज्ञान के किसी ज्ञात तर्क से जान नहीं सकते। युग-मनीषी आइन्स्टीन को कौन नहीं जानता ? उन्होंने अपनी मृत्यु के पूर्व एक पत्रकार से बातचीत करते हुए कहा था कि मनुष्य की प्रज्ञा से भी आगे की रहस्यमयी अनुभूति में मेरी आस्था है। कुछ बातें ऐसी होती हैं, जिन्हें आजीवन हम जानते हैं, कि वे सच हैं किन्तु उन्हें हम सिद्ध नहीं कर पाते। मस्तिष्क तो वहींतक हमारा साथ देता है, जहांतक वह जानता है और सिद्ध कर सकता है, पर एक ऐसी स्थिति आती है, जहां मस्तिष्क छलांग-सी लगाकर बोध के उच्चतर स्तर पर पहुंच जाता है। इस स्थिति को चाहे स्वानुभूति कहिये, चाहे अन्तर्ज्ञान, किन्तु उसे प्रमाणित करना असंभव है। हर एक व्यक्ति के जीवन में ऐसी स्थिति अवश्य आती है जहां केवल अन्तर्ज्ञान के पंखों पर सवार होकर ही वह अनुभूति कर सकता है, जो केवल ज्ञान द्वारा संभव नहीं और जिसका कोई हल हमारा ज्ञान प्रस्तुत भी नहीं कर सकता। एक दूसरे विद्वान् अल्डुस हक्सले ने अपनी पुस्तक "साइन्स एण्ड मारल्स" में लिखा है—"मुझे यह काफी स्पष्ट जान पड़ता है कि बुद्धि और चेतना के अतिरिक्त एक और तीसरी चीज भी है, जिसे मैं अपने दिल और दिमाग में न तो पदार्थ के रूप में देख सकता हूं और न बुद्धि या चेतना के किसी परिवर्तित रूप में, चाहे चेतना की अभिव्यक्ति के साथ भौतिक पदार्थ का कितना ही घनिष्ट सम्बन्ध क्यों न हो।" श्री जे० एम० स्टुआर्ट ने अपने ग्रंथ 'क्रिटिकल एक्सपोजीशन आफ वर्गसाज फिलासफी' में स्वानुभूति के महत्व पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि तत्वान्वेषण के लिए स्वानुभूति अत्यन्त आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है। यह स्वानुभूति या अन्तर्ज्ञान सहजात है। इन्द्रियों की स्वाभाविक वृत्तियों के परिष्कार के बाद ही सहज वृत्ति प्रकट होती है। कबीर ने इसी स्वानुभूति को ही 'सहज' कहते हुए लिखा था—

सहज सहज सब कोइ कहे, सहज न चीन्है कोइ।
जिन सहजे हरि जी मिले, सहज कही जे सोइ॥
सहज सहज सब कोइ कहे, सहज न चीन्है कोइ।

जिन सहजे विसया तजी, सहज कहीजें सोइ ।।

ज्ञान की भांति सन्तों का योग और भक्ति-भावना भी ानुभूति के रस में डूबे हुए हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कबीर ने अपनी प्रारंभिक रचनाओं में हठयोग के डलिनि योग एवं चक्र भेदन की क्रियाओं का बार-बार लेख किया है, किन्तु इसके बाद में वे स्वयं ही कह —"आसण पवन दूरि करि बवरै।" सन्त हरिदास रंजनी ने भी कहा था—"अवधू आसण बैसण झूठा, ब लगि मन विसराम न माने।" इस प्रकार हमें सन्तों ी रचनाओं में स्वानुभूति का प्रभाव उत्तरोत्तर बढ़ता आ प्रतीत होता है। स्वानुभूति के प्रभाव ने ही सन्तों ो लय योग की प्रणवोपासना की ओर किया—"शुद्ध रंजन राम नाम सांचा" की दुहाई देकर अनहद शब्द ी चिन्ता करने का उपदेश दिया था। यही योग साधना ा सरलीकृत मार्ग है। इसीको उन्होंने सहज योग कहा । यह सहज इन्द्रिय-निग्रह, विकार-त्याग और मन- ाधना के रूप में परिणत होकर साधना का अत्यन्त सरल प बन जाता है। कबीर ने अनहद नादब जानेवाले रंगी ाधक का परिचय देते हुए कहा था—

सो जोगी जाके मन में मुद्रा।
रात दिवस नहीं करई निद्रा।
मन में आसन मन में रहसा।
मन का जपतप मन सू कहना।
मन में खपरा मन में सिंगी।
अनहद नाद बजावे रंगी।
पंच परजारि भसम करि भूका।
कह कबीर सो लहसे लंका।

भक्ति तो जैसे सन्तों के अन्तर्मन की सर्वोत्तम उप- ब्धि है। उनके भक्ति विषयक पदों को देखकर ऐसा गता है, जैसे उन्होंने मोक्ष-प्राप्ति का सबसे अधिक सरल, न्दर एवं श्रेष्ठ मार्ग ढूंढ निकाला हो। कबीर ने कहा—

ब्रह्म कथि कथि अन्त न पाया।
राम भगति बैठे घर आया ।।

नारद और शांडिल्य दोनों ने ही भक्ति को प्रेम-निष्ठ माना है। नारद ने कहा है—"सा परानुरक्तिरीश्वरे" और शांडिल्य ने कहा है—"सा यस्मिन् परमप्रेमरूपा"। यह प्रेम तत्व ही सन्तों की भक्ति का मूलाधार है। नारद के इस ऋण को स्वीकार करते हुए कबीर ने कहा था—

भक्ति नारदी मगन शरीरा
हरि विधि भव तरि कहै कबीरा।

इस आध्यात्मिक प्रेम के लिए सन्त विषय-त्याग, अखण्ड-भजन, हरिगुण कीर्त्तन, सत्संग, गुरु कृपा और अनन्य भाव को आवश्यक मानते थे। उनके अनुसार भक्ति का राजमार्ग सबके लिए खुला है। उपर्युक्त साधनों को अपनाकर कोई भी उसपर सरलतापूर्वक चल सकता है। भक्ति के इस मर्म को सन्तों ने न केवल समझा बल्कि दूसरों को भी समझाया। उनका मन तब सन्तुष्ट हुआ जब उन्होंने सर्वत्र राम को ही देखा।

एक राम देख्या सबहिन में कहै कबीर मन माना।

जो भेदवादी है, ऊंच-नीच, जाति-पांति, हिन्दू-मुसलमान और राम-रहीम में भेद करते हैं कबीर ने उनसे पूछा था—"अरे भाई दोऊ कहा सो मोहि बताओ ?" और उन्हें समझाते हुए कहा था—

हम तो एक एक करि जाना।
दोइ कहै तिनहिको दोजख जो नाहिन पहिचाना।
एके पवन, एकही पानी एक जोति संसारा।
एक ही खाक घड़े सब भांडे एक ही सिरजनहारा।

कौन कह सकता है कि ये बातें अब पुरानी हो चुकी हैं और अब इनमें व्यक्ति और समाज को ऊंचा उठाने की शक्ति नहीं है। कौन कह सकता है कि इनमें ऐसे चिरन्तन सुख और शान्ति के लिए स्थान नहीं है, जो विज्ञान की भी पहुंच के बाहर है ?

महाकवि न्हानालाल

अवनीन्द्रकुमार विद्यालंकार

गुजराती के महाकवि न्हाना लाल दलपतराम को स्वर्गस्थ हुए अभी बीस वर्ष पूरे हुए हैं (निधन तिथि ९ जनवरी १९४६)। इस महान नाटककार और महाकवि को गुजराती भाषा के प्रेमी कभी विस्मृत न करेंगे। इस अविस्मरणीय महाकवि ने अपने विषय में एक बा र कहा था :

"जीवन में मैंने भयंकर गोलन्दाजी का सामना किया है। यही नहीं, खुद मैंने भी भयंकर गोलन्दाजी की है। उसमें जीवन का खिलाड़ीपन है, आनन्द है। 'पर्स' लिया नहीं, पूजा भी नहीं होने दी। आनन्द है। एक बार एक सज्जन दस हजार रुपये लेकर आये थे। जहांगीर-नूरजहां का 'कापीराइट' चाहते थे। परन्तु 'कापीराइट' कभी किसीको नहीं दिया। सुपारी खाने तक का व्यसन मुझे नहीं है, यह देखकर लोगों को कौतुक हुआ। इस प्रकार का मैं पहला सुधारक कहलाया। मेरा कोई कट्टर शत्रु 'नानूवाई' या पीठ पीछे खंजर भोंकनेवाला दुश्मन किसीको कहूं, ऐसा जीवन मैं जीया नहीं।"

गुजराती काव्य के समीक्षकों ने न्हानालाल का 'कवियों का बादशाह' कहकर एक समय गौरव किया था। साक्षर गुजराती के घर में न्हानालाल की कोई-न-कोई कृति अवश्य मिलेगी। ऐसा गुजराती विरला ही मिले जो साक्षर हो और जिसकी जिह्वा पर न्हानालाल के कुछ पद न हों।

यह महाकवि महातेजस्वी, निर्भीक और उदात्त विचारों का था। गुजराती भाषा की शक्ति का इस महाकवि ने ही यथार्थ परिचय दिया है। ऊंचे-से-ऊंचे विचार गम्भीर-से गम्भीर गहन-से-गहन बात प्रकट करने की शक्ति गुजराती भाषा में है, यह आपने सिद्ध किया है। आपने गुजराती को एक नई शैली दी है। इसको 'अपद्यागद्य' या 'डोलन शैली' कहते हैं। गुजराती के रसिकों को आपकी यह शैली बहुत भाई है। १८९८ में आपका पहला काव्य 'वसन्तोत्सव' प्रकाशित हुआ। इस समय आपकी आयु केवल २१ वर्ष की थी। यौवन फूटा ही था। यौवन में पदार्पण करने के साथ कवि ने यह काव्य गुजराती को प्रदान किया। इसके साथ गुजराती भाषा में न्हानालाल युग का प्रवर्त्तन हुआ। इस काव्य में नई शैली थी। गुजरात ने इस शैली को पसन्द किया। अपने नाटकों और 'कुरुक्षेत्र' महाकाव्य में भी आपने इसी शैली का व्यवहार किया है।

यह शैली सर्वथा नई या अज्ञात नहीं कही जा सकती है। संस्कृत के काव्यों में चम्पू काव्य मशहूर है। इन काव्यों में कथा, गद्य और पद्य दोनों में समान रूप से कही जाती हैं। लेकिन संस्कृत के चम्पुओं में पद्य की अधिकता रहती है। परन्तु न्हानालाल ने अपने काव्यों और नाटकों में गद्य-पद्य का सुन्दर सम्मिश्रण किया है। वह जोड़ा हुआ पैबन्द नहीं मालूम होता। वह एक प्रवाह प्रतीत होता है और लगता है कि धारा ऊंचाई पर चढ़कर समतल पर आ रही है। कभी ढाल पर उतरते हुए राही के पग टिकते नहीं, चलने के बदले दौड़ना पड़ता है, ऐसा ही कभी-कभी इसमें अनुभव होता है। ढाल पर दौड़ने में जो आनन्द है, वही खुशी और आनन्द न्हानालाल को पढ़ते हुए भी प्राप्त होता है। न्हानालाल ने यह शैली अपने विचारों को व्यक्त करने के लिए अपनाई है। यही कारण है कि आपके सिवाय और कोई गुजराती इस शैली को अपनाने में सफल नहीं हुआ। यह शैली न्हानालाल के साथ ही अन्तर्धान हो गई। न्हानालाल ने यह शैली अपने महाकाव्यों और विचार-प्रधान नाटकों में बरती है। यह शैली वाचकों को एक नये लोक में ले जाती है।

न्हानालाल ने सामाजिक और ऐतिहासिक दोनों प्रकार के नाटक लिखे हैं। सामाजिक नाटकों का विषय प्रेम है। पर यह नाटककार 'अशरीरी' प्रेम की महिमा गाने वाला है। न्हानालाल के नाटकों में भावना की अतिशय शुद्धता है।

शरीरी प्रेम की उदात्तता है और ब्रह्मचर्य की महिमा सत्य-न के गौरव से पूर्ण है। ये भाव जब तक महनीय रहेंगे तब-क न्हानालाल के नाटक भी अमर रहेंगे।

न्हानालाल का विषय इतिहास था। वह इतिहास का क विद्यार्थी था। इतिहास का निर्माण करने के साथ-साथ ह इतिहास का गम्भीर अध्येता भी था। उसका यह दृढ़ विश्वास था—

"पूर्व दिव्य है जिसका रहा
उसका भावी है रम्य काल।"

अतः न्हानालाल ने गुजराती पाठकों के सामने भारत का प्राचीन गौरव रखा है और नूतन आत्मविश्वास जगाया है। राजर्षि भरत, संघमित्रा, श्रीहर्ष सदृश नाटक लिखे हैं। इन्हीं के समान जहांगीर-नूरजहां और अकबर महान नाटक भी लिखे हैं।

'विश्व-गीता' महाकवि का नाट्यात्मक काव्य है। इसमें राम, कृष्ण, बुद्ध, शंकराचार्य, पतंजलि, मीराबाई इत्यादि पात्रों की योजना की गई है और हिन्दू धर्म की विचार-पद्धति में जीवन का क्या अर्थ है, यह दिखाने का सफल प्रयास किया गया है।

न्हानालाल के नाटकों के समान उनकी कविता भी बहुत लोकप्रिय हुई है। उनकी एक कविता है 'मादे जावुं छे पेलेदार', 'एक जाप्ला जले' 'कालनी खंजरी ना झंकार', 'वीरनी विदाय' इत्यादि। भाव-कविता में न्हानालाल की जोड़ का दूसरा कवि गुजराती में अभीतक नहीं हुआ है। शरद ऋतु आने पर गुजराती लड़कियां और महिलाएं रास गाती हैं। न्हानालाल के 'रासो' के तीन संग्रह प्रकाशित किये हैं। गुजराती महिलाओं में ये संग्रह और इनके गीत बहुत लोकप्रिय हुए हैं। गुजराती रसिक और कविता प्रेमियों की महाकवि के प्रति चाह बढ़ी, अपेक्षा बढ़ी। महाकाव्य की मांग होने लगी। मेजर नायडू जैसे 'सिक्सर' की मांग करने पर 'सिक्सर' अवश्य लगाते थे, वैसे ही महाकवि ने जनता की अपेक्षा को पूर्ण करने के लिए १९२६ में 'कुरुक्षेत्र' महाकाव्य लिखना शुरू किया। इस समय महाकवि की आयु ४९ वर्ष की हो चुकी थी। कविता युवा-वस्था का विषय मानी जाती है। यौवन के उन्माद की तरंगों में ही कल्पना की उड़ान हो सकती है, यह मान्यता प्रचलित है। इस महाकाव्य के प्रणयन में महाकवि के जीवन का एक युग स भी अधिक समय लग गया। पूरे १४ साल लगे। महाकाव्य १९४० में पूर्ण हुआ।

कुरुक्षेत्र महाकाव्य मे १०७०३ 'ओळी' या छन्द हैं हैं। इस महाकाव्य का गुजराती में अपूर्व स्वागत हुआ। इसके बाद महाकवि ने एक दूसरा महाकाव्य 'हरिसंहिता' लिखना शुरू किया। पर यह अपूर्ण ही रहा। यह विराट् काव्य अपूर्ण रहा, क्योंकि ६९ साल की आयु में कवि का स्वर्गवास ही हो गया।

महाकाव्य लिखने के अतिरिक्त महाकवि ने शाकुन्तल, मेघदूत, उपनिषद पंचक और भगवद्गीता का अनुवाद भी गुजराती में किया है। न्हानालाल ने कुल ९० पुस्तके लिखी हैं। इनकी लाख से भी अधिक प्रतियां गुजरात में खपी हैं।

न्हानालाल ने एक अपूर्व साहित्य सृष्टि-यज्ञ जीवन भर चलाया। इस यज्ञ का प्रारम्भ उनके पिता दलपतराय ने किया। दलपतराय ने काव्य रचना प्रारम्भ की और दो पीढ़ियों तक अर्थात् ११३ वर्ष तक निरन्तर यज्ञ चलता रहा। यह साहित्य तप और अनुष्ठान साहित्यिक जगत् में अनुपम है। न्हानालाल की मृत्यु के साथ यह यज्ञ समाप्त हो गया। सरस्वती की निरन्तर इतने वर्षों तक निष्ठा के साथ अराधना करना एक अपूर्व घटना है। भारत के और किस भाषा के इतिहास में पिता-पुत्र की जोड़ी ने ऐसा कार्य किया है, यह अज्ञात है।

एजेंसी एजुकेशन अफसर होते हुए १९२१ में महात्मा गांधी का असहयोग आन्दोलन का शंखनाद सुना और महाकवि ने राष्ट्र की पुकार पर ऊंचे वेतन की नौकरी का हँसते-हँसते परित्याग कर दिया। नौकरी छोड़ने के बाद के २५ वर्ष महाकवि ने अत्यन्त दरिद्रावस्था और विपन्नावस्था में गुजारे। इस गरीबी का न्हानालाल के व्यक्तित्व और साहित्य पर भी प्रभाव पड़ा, ग्रहण लग गया था।

१९४० के बाद महाकवि कहा करता था आज आपको जो दिखाई दे रहा है वह न्हानालाल नहीं। यह तो न्हानालाल का भग्न-अवशेष है, जो आपको दिखाई दे रहा है। भारत की स्वाधीनता के लिए महाकवि ने गरीबी स्वीकार की पर कभी दीनवाणी नहीं बोली।

न्हानालाल प्रेमी जीव थे । भावुकता-प्रधान थे । इसके साथ बड़े हठी भी थे। मन में जो उचित समझा वही वह बोलते और करते। परिणाम की उनको चिन्ता नहीं थी । जो भी हो उसको अत्यन्त धीरता से वह सहते थे। आर्य संस्कृति का उनको अत्यधिक अभिमान था। वह ब्राह्मण की सन्तान हैं, इसका उनको अत्यन्त गौरव था। कठिन विपन्नावस्था में भी महाकवि ने किसी-के सामने हाथ नहीं फैलाया।

महाकवि की पत्नी माणिकबेन वस्तुतः मणि ही थीं। स्वभाव से अतिशय मृदु और सौजन्य व शालीनता की मूर्ति थीं। पति की विपत्ति में भी वह प्रसन्न रहतीं, सदा मुस्कराती रहतीं। दरिद्रता बढ़ती गई। वनिये को देने के लिए भी पैसे उसके पास नहीं रहे। ऐसी अवस्था में भी माणिकबेन ने मुख पर उदासी नहीं आने दी। बनिये से कहती आज मेरे पास पैसे नहीं है, ये पुस्तकें ले ले और इनको दूकान पर लेजा।

महाकवि की मान्यता थी कि लेखक के लिए शुद्ध चरित्र का होना आवश्यक है। लेखक यदि शुद्ध चरित्र का न होगा तो वाङ्मय भी शुद्ध न होगा। वह हरेक से मन खोलकर प्रेम से मिलते थे। यदि कभी कोई प्रोफेसर मिलने आता महाकवि कहते आप प्रोफेसर अर्थात् पहले के ब्राह्मणों के समान समाज के मुख हैं। (ब्राह्मणो अस्य मुख मासीत्)। यह सदा शुद्ध रहना चाहिए। विद्याभ्यास से दृढ़ होना चाहिए। अध्ययन के फल से जो विचार दृढ़ बने हों, उनको निर्भीकता से प्रकट करना चाहिए, किसीसे डरना न चाहिए। कुएं में होने पर ही तैरना आता है। लेखक का चरित्र यदि भ्रष्ट हुआ तो उसका वाङ्मय कैसे श्रेष्ठ होगा।

'एक घाव दो टुकड़े' यह वृत्ति महाकवि की थी। इस पर एक बार श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी ने उनको 'सोटेबाज' कहा। महाकवि ने उसी समय झट से उत्तर दिया--हां, मैं सोटेबाज हूं। मैं सोटा लेकर अंधेरे में भूत ढूंढनेवाला हूं। पर मैं पूछता हूं, सामने छाती पर घाव करनेवाला अच्छा है या पीठपीछे जाकर वार करने वाला अच्छा है? महाकवि की यह वृत्ति थी और जीवन भर कायम रही। दरिद्रता भी इसको बदल नहीं सकी।

गुजराती जनता ने महाकवि के काव्यों का रसपान किया और आनन्द के साथ पान किया। गुजरात ने महाकवि का गौरव भी किया। परन्तु सत्यासत्य का प्रश्न आने पर महाकवि ने कभी समझौता नहीं किया। इस विषय में अपने प्रेमीजनों का भी कभी विचार नहीं किया। सत्य को कभी नहीं छोड़ा। गरीबी में भी उनका यही बाना रहा :

"दलपत वंश ने कभी भीख मांगी नहीं।"

थैलियां आईं, परन्तु महाकवि ने उनको तुच्छ माना और साभार अस्वीकार कर दिया। गरीबी को ही श्रृंगार माना। ब्राह्मण और धनी, ये दोनों बातें उनको विपरीत प्रतीत होती थीं।

बीमारी ने जब दबोचा, महाकवि खटिया पकड़ने को बाध्य हुआ, तब भी यह तेज गया नहीं, यह मनस्विता कायम रही। महाकवि उत्कट आशावादी थे। अन्त तक आशावादी रहे। महाकवि अन्तिम दिनों में कहते थे, आज पर्यन्त जीवित रहने का मुझे अवसर मिला है, जो सत्य माना वह कहने और करने की मुझे परवानगी मिली तो मैं वही पुण्यशील और पराक्रमी पिता मांगूगा, और वही पुत्र चाहूंगा, वही नाती-पोते-पोतियां, वही पुत्र वधू चाहूंगा, वही बीमारी--उससे भी अधिक विरोधी, प्रतिस्पर्धी और टीकाकार मांगूंगा, जिनकी भयंकर गोलन्दाजी ने मेरी विकट परीक्षा ली है--टीकाकारों के कारण आज मेरी यह अवस्था हुई है।

गुप्तजी के कुछ संस्मरण

सुधेश

अब, जबकि राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त नहीं रहे, उनके साथ बीते कुछ क्षणों की याद दिल को कचोटती है। अनेक बात मस्तिष्क में बिजली की तरह कौंधती हैं, पर अन्त में रह जाती है पीड़ा की अनुभूति।

३ दिसम्बर १९५५ की वह शाम मुझे कभी नहीं भूलेगी जब पहली बार मैंने उनके दर्शन किये। नार्थ एवेन्यू (नई दिल्ली) स्थित उनके निवासस्थान पर अचानक जा पहुंचा। द्वार पर दस्तक दी, दरवाजा खुला, और सामने एक वृद्ध सज्जन कम्बल ओढ़े कुर्सी पर आसीन। उनके चित्रों से उनके बाह्य स्वरूप की मैंने जो कल्पना की थी, उसके क़दम विपरीत। न वहां गांधी टोपी थी, न जाकेट, न लम्बा कोट, बल्कि एक नंगा सिर और उसके नीचे एक मोटा-सा कम्बल। पहले तो मुझे विश्वास नहीं हुआ कि मैं राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के सामने खड़ा हूं और इसीलिए उस कम्बलधारी व्यक्ति से पूछ बैठा, "क्या गुप्तजी अन्दर हैं? मैं उनसे मिलने आया हूं?" पर जब उन्होंने अपनी सहज मुसकान के साथ कहा—"आओ महाराज! मैं ही मैथिलीशरण हूं," तो मुझे विश्वास करना ही पड़ा।

'महाराज' शब्द कुछ अटपटा-सा लगा। बाद में मालूम हुआ कि यह उनका 'तकिया-कलाम' है। जिस सहज स्वाभाविकता से बातचीत के दौरान वे इस शब्द का बार-बार प्रयोग करते थे, उनके सान्निध्य में हर बार ऐसा लगा, मानो राजधानी में रहकर भी वे चिरगांव में ही हों।

औपचारिक बातों के बाद में मैंने उनसे कुछ प्रश्न पूछने की आज्ञा मांगी, जिसकी स्वीकृति तुरन्त मिल गई। मेरा पहला प्रश्न था—"आपको आरम्भ में लेखन की प्रेरणा किनसे मिली?" उत्तर था—"कवि तो मैं बिना किसी की प्रेरणा के बन गया था, पर आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी की मुझ पर विशेष कृपा रही।" और बस बात खत्म। मैं उनके मुख से कुछ और सुनना चाहता था, पर वह एक वाक्य बोलकर थक से गये। जितनी बात उन्होंने बताई, मैं पहले से जानता था, फिर यह क्या बात हुई?

मेरा असन्तोष उन्होंने भांप लिया। बोले, "इस बारे में मैं बड़ा सौभाग्यशाली रहा कि मुझे प्रोत्साहन सभी तरफ से मिला। बचपन में मुन्शी अजमेरी का सम्पर्क मेरे जीवन की अमूल्य निधि है। जब उनसे मेरा परिचय हुआ तो मेरी अवस्था ८-९ वर्ष की थी। वे मुसलमान थे, पर जैसे हमारे परिवार के सदस्य ही थे। उन्हें हिन्दी से विशेष प्रेम था। 'प्रेम' उपनाम से हिन्दी में कविता लिखते थे।"

"आपने खड़ी बोली में कविता लिखना कब से शुरू किया?"

अपनी स्मृति को टटोलते वे बोले, "यह तो याद नहीं कि मैंने खड़ी बोली में कब से लिखना शुरू किया। हां, इतना अवश्य याद है कि पहले मैं ब्रजभाषा में कविता लिखा करता था, यद्यपि उसमें कोई विशेष प्रगति नहीं हुई। तत्पश्चात् ब्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों में लिखता रहा, फिर खड़ी बोली में ही लिखा।"

"ब्रजभाषा की उन प्रारम्भिक रचनाओं को आपने पुस्तक रूप में प्रकाशित कराया है?"

मेरी इस जिज्ञासा का उन्होंने नकारात्मक उत्तर दिया, क्योंकि "वह तो बचपन की चीज थी। उसका अब कोई चिह्न भी बाकी नहीं है।"

गुप्तजी का बातचीत का मन था, यह देखकर मैंने पूछा, "आप अपनी सर्वोत्कृष्ट रचना किसे मानते हैं?"

उन्होंने कहा, "बहुत-से लोगों ने मुझसे यह प्रश्न किया है, किन्तु मैंने इस दृष्टि से अपने कृतित्व पर कभी विचार

ही नहीं किया। यह विचार करना और निर्णय करना तो दूसरों का काम है। पर जब आपने पूछ ही लिया है तो कहना पड़ेगा कि 'साकेत' और 'यशोधरा' को मैं अपनी प्रिय रचनाएं समझता हूं।"

"क्या 'भारत भारती' को आप कोई स्थान नहीं देंगे ?"

"नहीं, यह तो अपने समय की माग का उत्तर था। उसका अपना युग था।"

यह स्पष्टवादिता राष्ट्रकवि के अनुरूप ही थी। 'भारत भारती' के कारण उन्हें वह ख्याति मिली, जो कदाचित् किसी अन्य हिन्दी कवि को किसी पुस्तक से नहीं मिली। 'भारत भारती' ने ही उन्हें 'राष्ट्रकवि' के अनौपचारिक पद पर प्रतिष्ठित कर दिया। परन्तु गुप्तजी उसे 'साकेत' और 'यशोधरा' की श्रेणी में नहीं रखते, यह उनकी सज्जनता का ही नहीं, उनके आत्मालोचन का प्रमाण है। अपनी कृतियों का स्वयं मूल्यांकन करना बड़ा कठिन है, पर ईमानदार लेखक उसमें भी पीछे नहीं रहते।

मेरी धृष्टता देखिये कि मैं प्रश्न पर प्रश्न किये जा रहा था और उनकी सज्जनता के बारे में क्या कहूं, कि वे मेरे हर प्रश्न के लिए तैयार थे।

"'साकेत' का नायक आप किसे मानते हैं ?" यह एक विचित्र प्रश्न था।

उन्होंने तपाक से उत्तर दिया—"'साकेत' का नायक साकेत है।"

इस अप्रत्याशित उत्तर को सुनकर मैं सोच में पड़ गया। उन्होंने उसी गम्भीरता में स्पष्टीकरण किया, "मैं 'साकेत' का नायक साकेत को इसलिए मानता हूं कि साकेत में हमें सबके दर्शन हो जाते हैं, राम, सीता, लक्ष्मण, उर्मिला सभीके। हमारे लिए सब पूज्य हैं, इसलिए "कहत छोट बड़ लागहि दोषू।"

यह स्पष्टीकरण और भी मुग्ध कर देनेवाला था। यह इस बात का प्रमाण था कि गुप्तजी भक्त पहले हैं, कवि बाद में। इसलिए राम, सीता, लक्ष्मण और उर्मिला में भेद करना उन्हें पसन्द नहीं आया। यह उत्तर वही व्यक्ति दे सकता था जिसने अपने सम्पूर्ण जीवन-दर्शन को इन दो पंक्तियों में साकार कर दिया हो—

"राम तुम्हारा नाम स्वयं ही काव्य है,
कोई कवि बन जाए सहज सम्भाव्य है।"

"'साकेत' के नवम् सर्ग के गीत क्या समय-समय पर लिखे गए गीत हैं ?" इस सम्बन्ध में उन्होंने जानकारी दी, "नवम सर्ग के अधिकांश गीत एक ही काल में रचे गये, हां, कुछ गीत बाद में जोड़ दिये गए।"

विदाई लेने से पहले मैंने जानना चाहा, "आजकल आप क्या लिख रहे हैं ?"

अपनी सहज स्वाभाविक सज्जनता के स्वर में बोले, "महाराज, हम तो अपना काम समाप्त कर चुके, अब ७० वर्ष की अवस्था में कुछ लिखने-पढ़ने को जी नहीं चाहता। वैसे जीवनभर भी कुछ नहीं लिखा पढ़ा। आप जानते हैं कि मैं लिखा-पढ़ा आदमी नहीं। फिर भी जो कुछ लिखा, उससे मुझे असन्तोष नहीं। मैं यह भी नहीं चाहता कि लोग मुझे काफी समय तक पढ़ते रहें।"

मैं जब चलने लगा तो गुप्तजी कहने लगे, "आपने बड़ी कृपा की जो दर्शन दिये।" सुनकर मैं स्तब्ध रह गया सिर्फ यही कहते बना, "ये तो आपने मेरे शब्द छीन लिये।"

वह एक सरल, निश्छल, सहृदय, मिलनसार और निरभिमानी व्यक्ति थे। उनके व्यक्तित्व में सच्चे मानव और सफल कवि का सुन्दर सम्मिश्रण हुआ था। उनकी मुक्त हँसी प्रसिद्ध है। सुना है, बहुत जोर से हँसते थे। यह उनके निश्छल स्वभाव की परिचायक है।

योग : एक अद्भुत विज्ञान

जगन्नाथ प्रभाकर

योग एक अद्भुत विज्ञान है, जिसका आविष्कार अति प्राचीन काल में भारत के साधकों ने किया था। आदिम मनुष्य निसर्ग या प्रकृति का अनुकरण करके ही योगी बने थे। मेढक, सर्पादि जीव शीत काल में बिलों या अन्य सुरक्षित स्थानों में निराहार रहकर जड़वत निश्चेष्ट पड़े रहते हैं। उनकी हैमन्तिक जड़ता और लम्बे अनशन आदि अनेक दुष्कर कार्य कभी-कभी मनुष्यों में भी देखने में आ जाते हैं। परन्तु अज्ञ लोग लापरवाही के कारण इसके रहस्य का अनुसंधान नहीं कर सकते। अनेक लोग कुछ भी प्रकृति तत्त्व नहीं जानते, फिर भी वे ऐसे बहुत-से काम करते हैं जिनके साथ योग के किसी-न-किसी अंग का विलक्षण सादृश्य होता है। भानुमति का खेल इस बात का अन्यतम निदर्शन है। भानुमति के खेल को हम समाधि का अनुकरण कह सकते हैं, क्योंकि यह खेल या करतब दिखाने से पहले उन्हें कुम्भक करना पड़ता है और उसके द्वारा अपना बाह्य चैतन्य या होश विलुप्त करना पड़ता है। शरीर के भीतर वायुपुंज को कैद कर रखने से उनका शरीर जब नितान्त हल्का हो जाता है तब वे एक मात्र छड़ी का सहारा लेकर भूमि से कुछ ऊंचा शून्य योगासन लगाये बैठे रह सकते हैं। फिर धीरे-धीरे अभ्यासपूर्वक छड़ी का सहारा परित्याग करके भी वे भूमि से ऊपर वायु के समुद्र में रूई के एक गोले की भांति इस प्रकार तैर सकते हैं, जैसे समुद्र के वक्ष पर नाव।

भानुमति का यह खेल दिखानेवाले लोग इस काम में निपुणता प्राप्त करने के लिए बचपन ही से अभ्यास आरंभ कर देते हैं, क्योंकि बड़ी आयु में इस काम में दक्षता प्राप्त करना बहुत कठिन हो जाता है। भोज विद्या, इन्द्र जाल या भानुमति का खेल दिखानेवाले अपनी कन्याओं को यह विद्या सिखाने के लिए अति शैशवकाल ही में पहले उन्हें पानी में डुबकी लगाना अर्थात् जलनिमग्न होने की शिक्षा देते हैं। इस शिक्षा के दौरान उन बच्चों को दूध, घी, मांस का शोरबा और कोमल अन्न मण्ड आदि सुपथ्य वस्तुएं देते हैं। धीरे-धीरे जब उन बच्चों को पानी में डूबे रहने का अभ्यास हो जाता है, तब वे कम-से-कम अर्द्धदण्डकाल (१२ मिनट) तक पानी में डूबे रहने में कोई कष्ट अनुभव नहीं करते। इसके पश्चात् उनको स्थल पर रेत के ढेर के ऊपर बद्ध-पद्मासन लगाकर बैठने का अभ्यास कराया जाता है, और कुम्भक करने की शिक्षा दी जाती है। कुम्भक का अभ्यास जब दृढ़ हो जाता है, तो उनके आसन के नीचे से क्रमशः थोड़ी-थोड़ी रेत बिना कोई आवाज़ पैदा किये प्रतिदिन हटाई जाती है। इस प्रक्रिया के द्वारा एक दिन ऐसा आ जाता है कि जब वे बच्चे बिना सहारे के भूमि से ऊंचा शून्य में योगासनपूर्वक बैठने का सामर्थ्य प्राप्त कर लेते हैं। वाज़ीगरों के इस सामान्य कुम्भक अभ्यास की अपेक्षा योगियों का कुम्भकाभ्यास अधिक उन्नत और श्रेष्ठ होता है और उसका फल भी असाधारण होता है।

कुम्भक के अभ्यास और स्थिति काल को लम्बा करने के लिए योगी अपनी जिह्वा की निम्न त्वक् काट देते हैं। दो-चार दिन मक्खन लगाने से वह कटा हुआ स्थान सूख जाता है। इसके अनन्तर छिन्नमूल जिह्वा को मक्खन का लेप किया जाता है और लोहे के चिमटे से पकड़कर जिह्वा को खींचा जाता है। कुछ दिन तक इस प्रक्रिया का अनुष्ठान करने पर उनकी जिह्वा पहले की अपेक्षा लम्बी और पतली हो जाती है। फिर इसके द्वारा वे आसानी से सर्पजाति के स्वभाव का अनुकरण करने के योग्य हो जाते हैं। वे समझते हैं कि इस प्रकार से जिह्वा को लम्बा और पतला करके वे भी मेंढक की भांति लम्बे समय तक अनाहार और निश्चेष्ट रह सकते हैं। वास्तव में मेंढक और सर्प जाति की जिह्वा स्वभावतः ही लम्बी, पतली और विशेष रूप से स्थिति-स्थापक

अथवा लचीली होती है। वे शीत निद्रा के समय जिह्वा का उत्कर्षण कर के उसे कण्ठकूप में दाखिल करके सुखपूर्वक बिना कुछ खाये-पीये समय गुज़ारते हैं। यह देखकर योगी भी अपनी लम्बी जिह्वा के अग्रभाग उपजिह्वा को दबाकर श्वासछिद्र के अप्रशस्त पथ को बन्द कर के कुम्भक का अभ्यास करते हैं। परन्तु जिन योगियों की जिह्वा स्वभावतः ही कुछ लम्बी और पतली होती है, वे जिह्वा की मूल त्वक् को नहीं काटते। कुछ दिन तक चेष्टा करने से वे जिह्वा को आसानी से अन्न-नाली या कण्ठकूप में प्रविष्ट करने में सफल हो सकते हैं। योगियों का कहना है कि इस तरह के उपाय का सहारा लेकर बहुत दिनों तक वायु के वेग को धारण किया जा सकता है। यही कुम्भक के स्थायित्व में विशेष सहायक है और योगशास्त्र में इसीका नाम खेचरी मुद्रा है।

योगी यह भी कहते हैं कि चौबीस वर्ष इस प्रकार कुम्भक का अभ्यास कर सकने पर शरीर का समस्त लहू दूध के ऐसे शुभ्र-रस में परिणत हो जाता है। तब उनकी देह में कोई मानवीय उपादान नहीं रहता। उसके स्थान पर एक अनिर्वचनीय अभिनव उपादान का आविर्भाव हो जाता है। इसीलिए उनको मानवोचित भूख, प्यास, नींद, सुख, दुःख आदि किसी का भी अनुभव नहीं होता। इस सम्बन्ध में महाभारत में एक छोटी-सी आख्यायिका आती है। उसका संक्षिप्त मर्म यह है कि मन्कनक नामक एक ऋषि योग चर्चा में लगे हुए थे। एक दिन कुशधार से उनकी उंगली ज़रा-सी कट गई। उंगली के कटे हुए स्थान से शाक-रस निकला। उसे देखकर वह हर्ष से उन्मत्त से हो उठे। उनके विस्मय को दूर करने के लिए परम योगी सदाशिव वहां प्रकट हुए और उन्होंने अपनी उंगली थोड़ी-सी काटकर कटे हुए स्थान से भस्माकार शुभ्र रस निकालकर दिखाया। शरीर के रक्त का दूध-सा रंग हो जाने पर भी मनुष्य जीवित रहता है, यह बात उक्त आख्यायिका से प्रकट होती है।

कुछ भी हो कुंभक या श्वासरोध की सहायता से अनेक अलौकिक अद्भुत कार्य सम्पन्न हो सकते हैं। श्वासरोध की सहायता से बाज़ीगर और भी एक अद्भुत काम करते हैं। यहां उसका भी उल्लेख किया जा सकता है। बाज़ीगर एक चार कोने वाला लम्बा कपड़ा लेते हैं। उस कपड़े के चारों कोनों को चारों ओर खड़े होकर चार आदमी पकड़ लेते हैं। कपड़ा तनी हुई हालत में रखा जाता है। उस कपड़े पर से बाज़ीगर श्वासरोध पूर्वक अनायास ही दौड़ कर गुज़र जाता है। कपड़े पर कुछ भी बोझ अनुभव नहीं होता। यही नहीं, प्रत्युत यह भी पता नहीं चलता कि बाज़ीगर के पांव ने कपड़े को स्पर्श भी किया है या नहीं। कई लोग कहा करते हैं कि अमुक स्थान पर एक योगी आया था। उसने खड़ाव या जूता पहनकर पानी के ऊपर चलकर दिखाया था। जिन लोगों ने बाज़ीगर के तने हुए कपड़े पर चलने का खेल देखा है, वे उक्त जनरव को कभी गप्प या झूठ बात नहीं समझेंगे, क्योंकि जिस कौशल से कपड़े पर बाज़ीगर दौड़ सकता है, उसी कौशल से योगी भी पानी पर चल सकता है।

प्राणायाम के सम्बन्ध में यहां जो बातें कही गई हैं, उनसे यह सिद्ध होता है कि अभ्यास ही सबसे बड़ी शक्ति-सम्पन्न चीज़ है। संसार में कोई ऐसा कार्य नहीं, जो अभ्यास करने से सिद्ध न हो। अभ्यास करने से स्वाभाविक अवस्था से बहुत अधिक समय तक श्वास रोककर भी मनुष्य जीवित रह सकता है और वाह्य ज्ञान से शून्य हो जाता है। उसका शरीर उस समय इतना हल्का-फुल्का हो जाता है कि वह धुनी रूई के गाले के समान शून्य में तैर सकता है।

यहां एक प्रश्न उठता है कि वायु ही जीव का जीवन है। इसके बिना जीव के लिए क्षणभर भी जीते रहना संभव नहीं होता, तब प्राण धारण करने के इस प्रधान उपकरण वायु को रोक कर मनुष्य मरेगा नहीं—यह क्या अटपटी बात नहीं? इस बात का उत्तर देना हमारे लिए कठिन है। शरीर-शास्त्र सम्बन्धी अनेक पुस्तकों की छान-बीन से भी इसका सदुत्तर मिल सकेगा, इसमें बहुत सन्देह है। कुछ भी हो इस सम्बन्ध में दो एक बातों का उल्लेख तो आवश्यक ही है।

श्वास रोककर बहुत दिनों तक भूखे रहने पर भी योगी के प्राणों का जो क्षय नहीं होता, इसके कई कारण हैं। उन सब कारणों का स्पष्ट रूप से वर्णन करना कठिन है। कुछ एक उदाहरण अवश्य ऐसे मिल जाते हैं, जिनको सामने रखकर अनुमान किया जा सकता है कि बिना कुछ खाये-पिये मनुष्य बहुत दिनों तक जीवित रह सकता है। स्वल्प आहार, दीर्घ निद्रा और प्रगाढ़ चिन्ता—इन तीनों विषयों के समस्त तथ्यों का अनुसंधान करने पर कुछ-न-कुछ उत्तर अवश्य मिल जाता है। इन तीनों चीजों का शरीर पर क्या अद्भुत प्रभाव होते हैं, इसकी चर्चा किसी अलग लेख में की जा सकती है। ●

कसौटी पर

गीता-विज्ञान : श्री अरविन्द कृत 'ऐस्सेज आन दी गीता' में से संकलित और अनूदित, संकलनकर्त्ता और अनुवादक केशवदेव आचार्य, प्रकाशक : दिव्य जीवन साहित्य प्रकाशन, पांडिचेरी, पृष्ठ ४३२, मूल्य अजिल्द रु० १०.५०, सजिल्द रु० १२.५० ।

गीता के प्रति हमारे देश में अनेक महापुरुषों का आकर्षण रहा है और उन्होंने अपने-अपने ढंग से उसकी व्याख्या की है । श्रीअरविन्द के हृदय में भी गीता के प्रति गहरा सम्मान था । उन्होंने समय-समय पर गीता पर बहुत-कुछ लिखा । उनके 'ऐस्सेज आन दी गीता' अपने ढंग की निराली रचना है । अनुवादक के शब्दों में "इसे उन्होंने एक ऐसी उच्च चेतना में स्थित होकर लिखा है, जो सत्य को बिना किसी असत्य की मिलावट के प्रत्यक्ष देखती है । इस चेतना में स्थित होकर उन्होंने गीता के वास्तविक सत्य को खोजा और उसे ऐसी अत्यन्त स्वाभाविक और सजीव भाषा में व्यक्त किया, जो कि वर्त्तमान युग की मानव-जाति की मानसिक और आध्यात्मिक आवश्यकता के लिए उपयुक्त है ।

प्रस्तुत पुस्तक में श्रीअरविन्द के 'ऐस्सेज आन दी गीता' तथा अन्य रचनाओं के आधार पर गीता के श्लोकों का पदच्छेद, अन्वय तथा भावार्थ दिया गया है । गीता के मूल श्लोकों के सूक्ष्म भावों को सहज बनाने के लिए 'ऐस्सेज आन दी गीता' में से प्रसंगानुकूल वाक्यों का संकलन करके उनका अनुवाद टिप्पणियों के रूप में दे दिया गया है ।

पुस्तक यद्यपि दुरूह है, तथापि उसे सरल-सुगम ढंग से हिन्दी के पाठकों को उपलब्ध कराने का प्रयत्न किया गया है । हमें पूरा विश्वास है कि के पाठकों को इस कृति द्वारा ऐसी प्रेरणाएं मिलेगी, जो जीवन को समृद्ध बनावेंगी ।

पाठकों से अनुरोध है, वे इस पुस्तक को अवश्य पढ़ें ।

व्यास-अभिनंदन ग्रंथ: सम्पादक, सर्वश्री हजारीप्रसाद द्विवेदी, रामधारीसिंह 'दिनकर,' अक्षयकुमार जैन, माजदा असद, भवानीप्रसाद मिश्र और गोविन्दप्रसाद केजड़ीवाल, प्रकाशक—एस० चांद एण्ड कंपनी, दिल्ली । पृष्ठ, बड़े आकार के ४००, मूल्य २० रुपये ।

हिन्दी में अभिनंदन-ग्रंथों की परम्परा बहुत प्राचीन नहीं है, लेकिन इधर आकर तो अभिनंदन-ग्रंथों की बाढ़-सी आ गई है । छोटे-बड़े इतने ग्रंथ निकले हैं और निकल रहे हैं कि उनकी गिनती करना सम्भव नहीं । स्पष्ट है कि उनमें से अधिकांश ग्रंथ प्रचारात्मक हैं और उनके पीछे वैयक्तिक महत्वाकांक्षा है । लेकिन कुछ ग्रंथ ऐसे भी निकले हैं, जो अभिनंदित व्यक्ति के विषय में कम और लोकोपयोगी विषयों पर अधिक सामग्री प्रदान करते हैं । वे ग्रंथ स्पृहणीय हैं ।

प्रस्तुत ग्रंथ हिन्दी के लोकप्रिय कवि एवं कर्मठ कार्यकर्ता श्री गोपालप्रसाद व्यास की स्वर्ण-जयंती के अवसर पर प्रकाशित किया गया है । उसका प्रयोजन व्यासजी के व्यक्तित्व तथा कृतित्व पर प्रकाश डालना है । यही कारण है कि पूरे ग्रंथ की सामग्री व्यासजी से संबंधित है । पांच खण्डों में से पहले खण्ड में शुभकामनाएं और संदेश हैं । विनोबाजी के आशीर्वाद से लेकर अनेक लब्ध-प्रतिष्ठ साहित्यकारों, राजनेताओं तथा समाजसेवियों के उद्गार इस खण्ड में पढ़ने को मिलते हैं । दूसरे खण्ड में व्यासजी के व्यक्तित्व तथा साहित्य-साधना का मूल्यांकन है । तीसरे में उनकी कृतियों का अनुशीलन है । चौथे में उनकी जीवनी तथा संस्मरण है । अंतिम खण्ड में उनकी चुनी हुई रचनाएं हैं ।

पूरे ग्रंथ को देखने पर पाठक पर छाप पड़ती है कि व्यासजी की प्रतिभा बहुमुखी है । उनके व्यक्तित्व की अपनी विशेषताएं हैं । पर उनके जिस गुण को प्रायः सभी

लेखकों ने स्वीकार किया है, वह है उनकी कर्मशीलता। वह सामान्य वर्ग से उठकर ऊपर आये हैं और अपनी सामर्थ्य के बल पर समाज में और साहित्य में उन्होंने अपनी जड़ें जमाई हैं। उनके सम्बन्ध में जितने संस्मरण इस ग्रंथ में संग्रहीत हैं, उनमें हार्दिकता है।

जहांतक व्यासजी की साहित्यिक सेवाओं का सम्बन्ध है, उन्होंने गद्य और पद्य दोनों में लिखा है। उनकी रचनाओं के खण्ड को देखने से पता चलता है कि उन्होंने अनेक विषयों पर अपनी लेखनी चलाई है और ऐसी रचनाएं दी हैं, जो एक ओर लोकरंजन करती हैं तो दूसरी ओर पाठकों को झकझोरती भी हैं।

अपने निजी लेखन के अतिरिक्त उन्होंने हिन्दी की अभिवृद्धि के लिए भी ठोस कार्य किया है। अनेक संस्थाओं, मण्डलों तथा रेडियो के माध्यम से वह बराबर हिन्दी की सेवा करते रहे हैं। अपनी इन्हीं सेवाओं के कारण उन्हें भारत सरकार ने 'पद्मश्री' की उपाधि से सम्मानित किया है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि ग्रंथ की सामग्री सुपाठ्य है, छपाई अच्छी है, आवरण सुरुचिपूर्ण है और बहुत से चित्रों से ग्रंथ को सुशोभित किया गया है, लेकिन ग्रंथ का पटल सीमित है। उसकी समूची रचनाएं, विभिन्न व्यक्तियों की लिखी हुई होते हुए भी, एक ही व्यक्ति के इर्द-गिर्द घूमती हैं। अच्छा यह होता कि चार सौ पृष्ठों में व्यासजी के बारे में कुल पचास पृष्ठ होते, शेष पृष्ठों से हिन्दी और उसके साहित्य के विकास पर सारगर्भित निबन्ध रहते। कुछ लेखों में उनकी जन्म-भूमि तथा वहां की संस्कृति एवं साहित्य पर प्रकाश डाला जाता। उस अवस्था में ग्रंथ का केवल सामयिक महत्त्व न होकर स्थायी मूल्य होता। जिन-जिन ग्रंथों में ऐसी सामग्री दी गई है, उनकी आज भी बराबर मांग रहती है। उनमें व्यक्ति तो निमित्त है, मुख्य वस्तु वह ध्येय है, जिसके प्रति उस व्यक्ति का जीवन समर्पित रहा है।

इस कमी के होते हुए भी ग्रंथ अपने ढंग का निराला है। उससे व्यासजी को निकट से जानने और उनकी सेवाओं का यथार्थ मूल्यांकन करने में सहायता मिलती है।

हम आशा करते हैं कि ग्रंथ का सभी क्षेत्रों और वर्गों में स्वागत होगा और जो भी उसे पढ़ेंगे, उसमें से कुछ-न-कुछ अवश्य पायंगे।

इस उत्तम ग्रंथ को निकालने के लिए हम संपादक मण्डल तथा प्रकाशक को हार्दिक बधाई देते हैं।

बीड़ी सिगरेट तम्बाकू विष है : श्यामलाल जैन गंगेरवाल, प्रकाशक गंगेरवाल ट्रेडिंग कं०, ५४ रशीद मार्केट, दिल्ली, पृष्ठ १३२, मूल्य तीन रुपये।

धूम्रपान और तम्बाकू का सेवन स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त हानिकारक है। जैसा कि नाम से स्पष्ट है, यह पुस्तक बताती है कि बीड़ी, सिगरेट, तम्बाकू आदि का प्रयोग हमारे लिए कितना खतरनाक है। इस सम्बन्ध में लेखक ने बड़े परिश्रम से खोजकर ४० से अधिक देशी-विदेशी विशेषज्ञों के मत एकत्र किये हैं और पहले खण्ड में विस्तार से बताया है कि इस दुर्व्यसन को किस प्रकार छोड़ा जा सकता है। दूसरे खण्ड में उन्होंने बताया है कि हमारा शरीर किस प्रकार बना है और उसे किस प्रकार स्वस्थ रक्खा जा सकता है। भोजन, व्यायाम आदि अनेक बातों पर प्रकाश डाला है।

आज धूम्रपान का प्रचलन तेजी से बढ़ रहा है। उसमें स्वास्थ्य तो बिगड़ता ही है, धन का भी अपव्यय होता है।

प्रस्तुत पुस्तक निस्संदेह एक लोकोपयोगी प्रकाशन है। आशा है, इससे पाठक लाभ उठायंगे।

लोगों के साथ कैसे निभायें ? क्या करें, क्या न करें ? मूल लेखक—एम०के० रुस्तमजी, प्रकाशक : राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद्, नई दिल्ली।

यह पुस्तक 'बिजनेस इज पीपुल' का हिन्दी-रूपान्तर है। हम कोई भी काम करते हों और कहीं भी करते हों, अगर हम चाहते हैं कि वह अच्छी तरह से चले तो पहली जरूरी बात यह है कि हम जानें कि दूसरों के साथ हमें कैसा व्यवहार करना चाहिए। इसके लिए लोगों को समझना आवश्यक है। अच्छा अधिकारी वह है, जो अपने मातहतों को खुश रखता है, दूसरों को काम करने और आगे बढ़ने के अवसर देता है, अपने पर काबू रखता है और दूसरों में कर्त्तव्य की भावना पैदा करता है।

पुस्तक के प्रत्येक पृष्ठ पर एक-एक रंगीन चित्र दिया गया है। चित्रांकन श्री रोमा चक्रवर्त्ती ने किया है। यह चित्र पुस्तक की उपयोगिता को कई गुना बढ़ा देता है।

पुस्तक की दूसरी विशेषता यह है कि उसकी भाषा बड़ी ही सरल तथा प्रवाहपूर्ण है। पुस्तक के अनुवादक श्री रमेश मिश्र हैं। अनुवाद को पढ़ने में मूल का-सा आनंद आता है।

हिन्दी में यह अपने ढंग की पहली पुस्तक है। हम आशा करते हैं कि 'राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद्' इस प्रकार के और भी प्रकाशन करेगी।

—सव्यसाची

हमारी राय

क्या व कैसे ?

नेहरूजी की पुण्यतिथि

नेहरूजी की द्वितीय पुण्यतिथि २७ मई को देश-विदेश में मनाई गई । यह स्वाभाविक ही था । नेहरूजी उन महान् नेताओं में से थे, जिन्होंने युग को प्रभावित किया । लगभग चालीस वर्ष तक राजनीति में ही नहीं, अन्य अनेक क्षेत्रों में उन्होंने अपना योगदान दिया । लोगों ने अनुभव किया कि उन जैसा नेता जाने कितनी सदियों बाद पैदा हुआ है ।

लेकिन कहते हैं, जनता की स्मृति बड़ी अल्पकालीन होती है । जो आंखों से ओझल हुआ, वह स्मृति से भी प्रायः उतर जाता है । कुछ ऐसी ही अनुभूति हमें शांतिवन में नेहरूजी के पुण्य-तिथि-समारोह को देखकर हुई । जिस नेता को देखने और जिसकी वाणी सुनने के लिए लाखों की भीड़ इकट्ठी हो जाती थी, उसे श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए जितने सरकारी कर्मचारी, सैनिक तथा केन्द्रीय मंत्री आदि इकट्ठे हुए, उतनी जनता नहीं थी ।

हम इसके कारणों में नहीं जाना चाहते, लेकिन हमें यह देखकर विस्मय और वेदना हुई कि अपने महान् नेता को हम इतनी जल्दी भूल गये । इसमें कोई सन्देह नहीं कि युग का प्रवाह बड़ा तीव्र होता है, घटनाएं बहुत ही तेजी से आगे बढ़ती हैं, और अतीत को लेकर सोचनेवाले कम ही लोग होते हैं । लेकिन कृतज्ञता का तकाजा है कि जिन्होंने हमें सोते से जगाया, हमारे पैरों में ताकत पैदा की और हमारी गुलामी के बंधन तोड़े, उन्हें हम याद करें और उनके गुणों से और कार्यों से प्रेरणा लें । त्याग और बलिदान के अपने इतिहास को हम भूल जायंगे तो कहीं के न रहेंगे । नेहरूजी को हम याद रक्खें या न रक्खें, इससे उनका कुछ बिगड़ने वाला नहीं है, लेकिन उन्हें भूलकर हम निश्चय ही अपना भारी नुकसान करेंगे । नेहरूजी व्यक्ति नहीं थे, वह प्रतीक थे भारत की आत्मा के, वह प्रतीक थे मानव की उस गरिमा के, जिसका छोटे-से-छोटा व्यक्ति भी अधिकारी है । उनका जीवन त्याग-तपस्या का एक अद्भुत दृष्टान्त था ।

नेहरूजी विदेह रूप में आज भी हम सबके बीच विद्यमान हैं । उनके प्रति उपेक्षा रखकर हम अपने को कमजोर करेंगे और समाज तथा राष्ट्र की जड़ पर स्वयं कुठाराघात करेंगे ।

हिन्दी का प्रश्न : हमारा कर्त्तव्य

हिन्दी का मसला कितना उलझ गया है, यह बताने की आवश्यकता नहीं है । नौकरशाही इस बात पर तुली हुई है कि वह अंग्रेजी को नहीं जाने देगी । दक्षिण के कुछ राजनीतिज्ञ भी सत्तात्मक राजनीति के वशीभूत होकर हिन्दी के विरोध में अपना स्वर ऊंचा कर रहे हैं । विचित्र बात यह है कि जिसे दक्षिण भारत के हिन्दी-विरोधी होने की दुहाई दी जा रही है, वहां पिछले वर्षों में हिन्दी पढ़नेवालों की संख्या में २० प्रतिशत की वृद्धि हुई है ।

विनोबाजी ठीक कहते हैं—"नये राज्य में पुराना झण्डा एक दिन नहीं चलता", यही बात भाषा पर भी लागू होती है । पुराने राज्य की भाषा नये राज्य में कैसे चल सकती है, विशेषकर वह भाषा, जो पराई है और जिसे हमारे देश के ९८ फीसदी लोग नहीं समझते !

हमारे देश के कर्णधार जाने किस प्रेरणा के वशीभूत होकर अपनी राष्ट्र भाषा के प्रति उदासीन हैं । वे कहते हैं, भावात्मक एकता रहनी चाहिए । यह एकता बिना भाषा के कैसे रहेगी ? वे कहते हैं, अंग्रेजी चली जायगी तो उत्तर और दक्षिण दो भागों में बंट जायंगे । हम पूछते हैं, कैसे ? उत्तर और दक्षिण को जोड़नेवाली अंग्रेजी है, यह नितान्त असत्य है । वे कहते हैं, अंग्रेजी अन्तर्राष्ट्रीय भाषा है । यह बिलकुल गलत है । इंग्लैण्ड, अमरीका तथा थोड़े से कुछ दूसरे देशों को छोड़कर कहीं

भी अंग्रेजी से काम नहीं चलता। वे कहते हैं, अंग्रेजी संसार के ज्ञान की खिड़की है। हम कहते हैं, वह भाषा ज्ञान की खिड़की कैसे हो सकती है, जिसे अधिकांश लोग समझते ही नहीं ?

इस प्रकार अंग्रेजी के पक्ष में बहुत-सी थोथी दलीलें दी जाती हैं। वस्तुतः इन दलीलों को देने का प्रयोजन यह नहीं है कि वे अंग्रेजी के पक्ष का मजबूती से प्रतिपादन करती है। प्रयोजन यह है कि वे भाषा के प्रश्न को उलझाती हैं।

एक ओर हमारे शासन का यह रवैया है, दूसरी ओर हिन्दीभाषी हैं, जो नारों में विश्वास करते हैं। स्वराज्य मिलने के बाद के इन अठारह वर्षों में हिन्दी के अभावों को दूर करने के लिए हिन्दी के समर्थकों ने कितने ठोस कदम उठाये हैं, हम नहीं जानते। हिन्दी में एक भी बढ़िया कोश नहीं है। पारिभाषिक शब्दावली का अबतक सर्वमान्य प्रामाणिक अनुवाद नहीं है, बाल-साहित्य का भण्डार अबतक रीता है और तकनीकी साहित्य जितने परिमाण में तैयार होना चाहिए, अबतक नहीं हो पाया। हिन्दी में बड़ी-से-बड़ी संस्थाएं हैं, पर उन्हें पारस्परिक झगड़ों से ही अवकाश नहीं है। हिन्दी के प्रकाशक अपना मतलब देखते हैं। जो किताबें अधिक बिकती हैं, उन्हें छापते हैं, उनके लिए प्रकाशन-उद्योग धंधा बनाया है, मिशन नहीं रहा।

इस तरह हिन्दी को चारों ओर से कठिनाई का सामना करना पड़ रहा है।

इसमें से निकलने का रास्ता आसान है। दक्षिण भारत के हिन्दी प्रेमी हिन्दी की मांग करें या न करें, उत्तर भारत के लोग हिन्दी की चर्चा करना छोड़ दें और अगले पांच वर्ष हिन्दी के संवर्धन में योजनाबद्ध रूप से व्यतीत करें। इन पांच वर्षों में वे सभी विषयों की पारिभाषिक शब्दावली तैयार कर दें, तकनीकी साहित्य बड़े पैमाने पर निकाल दें और अपना सारा काम हिन्दी में करें। हिन्दी के भण्डार को समृद्ध करने के लिए भारतीय भाषाओं से जीभर कर शब्द लें।

दक्षिण भारत में हिन्दी की जड़ें बड़ी गहरी चली गई हैं। वहां जो कुछ विरोध दिखाई देता है, वह इने-गिने नेता लोगों का है, इसलिए दक्षिण से डरने की जरूरत नहीं है। जरूरत है इस बात की कि उत्तर भारत के लोग उनके पूरक बनें, उनके हाथ मजबूत करें।

जिस भाषा को २०-२२ करोड़ लोग बोलते हैं, उसके ऊपर केवल २ प्रतिशत लोगों की विदेशी भाषा सवार रहे, इससे बढ़कर लज्जा की बात और कोई नहीं हो सकती। पर हमारे माथे से यह कलंक नारों से हर्गिज दूर नहीं होगा। वह दूर होगा मुंह बंद करके ठोस काम करने से।

राष्ट्र के अभ्युदय के लिए

अपने हाल ही के एक भाषण में हमारे राष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन ने कहा है कि हमारे देश के अभ्युदय के लिए जिन दो चीजों की आज सबसे अधिक आवश्यकता है, वे हैं ईमानदारी और अनुशासन। वास्तव में ये दोनों ही बुनियादी गुण हैं, पर दुर्भाग्य से आज हमारे देश में इन दोनों का ही अभाव दिखाई दे रहा है। अपने स्वार्थ के प्रति आज हम इतने जागरूक हो गये हैं कि हमें और कुछ सूझता ही नहीं। अपने मतलब को सीधा करने के लिए हमें जो भी करना पड़े, करने में नहीं हिचकते। गांधीजी ने कहा था कि हमारा ध्येय पवित्र हो, इतना ही काफी नहीं है। उस ध्येय की प्राप्ति के साधन भी पवित्र होने चाहिए। उनकी यह शिक्षा एकदम भुलादी गई है। ईमानदारी, सच्चाई, प्रामाणिकता आदि का मूल्य जैसे कुछ रहा ही नहीं। आज देश में अन्न का संकट है। विदेशों से अन्न ला-लाकर इस संकट का मुकाबला किया जा रहा है। अपने ही देश में आज ऐसे लोग मौजूद हैं, जो इस स्थिति का लाभ उठा रहे हैं। जाने कितना अन्न दबा पड़ा है और जाने कितना चोर-बाजार में बिक रहा है। दैनिक वस्तुओं जैसे साग-भाजी आदि का मूल्य दिनोंदिन बढ़ रहा है, मानों ये वस्तुएं अपने देश में पैदा न होकर बाहर से आती हों। जिधर देखते हैं, उधर अनैतिकता-ही-अनैतिकता दीख पड़ती है।

जहां तक अनुशासन का संबंध है, वह अपवाद-स्वरूप रह गया है। अनुशासनहीनता आज नियम बन गई है। छोटे-बड़े, विद्यार्थी-नेता, सब इसके शिकार हो रहे हैं। विद्यार्थियों के आंदोलन आएदिन सिरदर्द पैदा करते

और नेताओं के आपसी झगड़े रोज की चीज बन गये । मजे की बात यह है कि ईमानदारी और अनुशासन ी बात सब करते हैं, लेकिन तदनुकूल आचरण करने ालों की संख्या नगण्य है ।

इस समस्या को सुलझाने के दो उपाय हैं । एक तो ह है कि शासन कड़ाई से काम ले । जहां कहीं उसे बेई-ानी दिखाई दे, और उसे देखना मुश्किल नहीं है, क्योंकि ह खुले आम हो रही है, वहां वह बिना किसी मुलाहिजे कड़ा कदम उठावें । दूसरा उपाय यह है कि लोक-क्ति जाग्रत हो । जनता इतनी प्रबुद्ध बने कि वह बेई-ानी को सहन न करे ।

इसमें दूसरा रास्ता थोड़ा मुश्किल है, कारण कि ारी जनता आज भी सुप्त है । वह अनाचार को देखती पर उसमें साहस नहीं कि उसके विरुद्ध विद्रोह करे । एक ही उपाय रह जाता है, यानी शासन बुराई को सी भी दशा में पनपने न दे । चाहे मंत्री हो या व्यापारी, ासक हो या विद्यार्थी, जहां कहीं उसे गंदगी दिखाई दे, ां वह तत्काल कड़ा कदम उठावे । शासन में मुलाहिजे ा अर्थ होता है बुराई को बढ़ावा देना । आज हमारे ासन में यही हो रहा है । अपराधी पहले तो पकड़ा ही हीं जाता, यदि पकड़ा भी जाता है तो उस पर मुकदमा लता है और साल दो साल की सिरदर्दी के बाद वह या छूट जाता है या उसे मामूली दण्ड मिलता है ।

बुराई की जड़ आज इतनी गहरी चली गई है कि ासन और जनता दोनों हैरान हैं । हमारे केन्द्रीय मंत्री ी गुलजारीलाल नंदा ने कहा था कि यदि वह दो वर्ष ीतर भ्रष्टाचार को नहीं मिटा पाये तो अपने पद से ागपत्र दे देंगे । आज दो वर्ष से ऊपर होगये, भ्रष्टाचार ों-का-त्यों बना है, बल्कि कुछ बढ़ा ही है और नंदा जी क प्रकार से विवश होकर उसे देख रहे हैं ।

समय आ गया है कि अब इस दिशा में शासन तत्पर । अधिक ढील देने का दुष्परिणाम आगे इतना भयंकर ो सकता है कि देश को संभालना ही मुश्किल हो जायेगा ।

हमारा आगामी विशेषांक

'जीवन-साहित्य' के हम समय-समय पर विशेषांक निकालते रहते हैं । पाठकों को पता है कि ये विशेषांक कितने महत्वपूर्ण होते हैं । हमें इस बात से बड़ी प्रसन्नता होती है कि पुराने-से-पुराने विशेषांक तक की मांग बराबर होती रहती है ।

हमने आगामी विशेषांक 'श्री लालबहादुर शास्त्री संस्मरण अंक' के रूप में निकालने का निश्चय किया है । श्री शास्त्रीजी की सेवाओं को कौन नहीं जानता । उन्होंने देश की बुनिजाद को पक्का करने के लिए अथक साधना की और शान्ति के लिए अपने प्राण विसर्जित कर दिये । शास्त्रीजी का बलिदान हमारे इतिहास में चिरस्मरणीय रहेगा ।

विशेषांक सौ पृष्ठ का होगा । हम चाहते हैं कि उसमें प्रशस्तियां न देकर केवल संस्मरण ही दिये जायं ।

अतः लेखकों से हमारा अनुरोध है कि जिन्हें शास्त्री-जी के निकट सम्पर्क में आने का अवसर मिला है, वे शास्त्रीजी के सम्बन्ध में अपने संस्मरण लिखकर हमें शीघ्र ही भेज देने की कृपा करें । इन संस्मरणों में शास्त्रीजी के व्यक्तित्व तथा कृतित्व पर प्रकाश पड़ना चाहिए । यदि किसी के पास शास्त्रीजी के महत्वपूर्ण पत्र हों तो उनकी भी प्रतिलिपि भेज देने का कष्ट करें । हम चुने हुए सुन्दर पत्रों को भी इस विशेषांक में देना चाहते हैं ।

विशेषांक शास्त्रीजी की वर्षगांठ पर अर्थात् २ अक्तूबर को निकलेगा । वह सितम्बर और अक्तूबर का संयुक्तांक होगा, यानी सितम्बर का अंक अलग से नहीं निकलेगा ।

इस विशेषांक के चुने हुए संस्मरणों को शास्त्रीजी के महत्वपूर्ण लेखों तथा भाषणों आदि के साथ एक ग्रंथ में निकालने की भी योजना है । इस ग्रंथ को शास्त्रीजी की पुण्य-तिथि पर, ११ जनवरी को प्रकाशित करने का विचार है ।

हम आशा करते हैं कि हमें लेखकों का पूरा सहयोग मिलेगा और विशेषांक न केवल उपयोगी होगा, अपितु संग्रहणीय भी ।

—य०

'मंडल' की ओर से

१९६७ की गांधी डायरी

आगामी वर्ष, अर्थात् १९६७ की 'गांधी डायरी' का कम्पोजिंग आरंभ हो गया है। विचार है कि जुलाई के अन्त तक छपाई पूरी हो जाय, जिससे गांधीजी के जन्म-दिवस, २ अक्तूबर, से पहले ही वह लोगों के हाथों में पहुंच जाय।

पुस्तक-विक्रेताओं से हमारा अनुरोध है कि वे अपनी-अपनी मांग हमें शीघ्र ही भेज देने की कृपा करें। हम यह ठीक से अन्दाज कर लेना चाहते हैं कि डायरी कितनी छपवानी चाहिए। अक्सर देखने में आता है कि पुस्तक-विक्रेता अपना आर्डर देर से भेजते हैं। नतीजा यह होता है कि हम उनकी पूरी मांग के अनुसार डायरियां नहीं भेज पाते। अगर हमें पहले से मांग का अन्दाज हो जाय तो हम उसी हिसाब से डायरी छपवायें।

पाठक जानते हैं कि डायरी में हमें कुछ बचता नहीं। बचाने के लिए डायरी निकाली भी नहीं जाती। लेकिन यदि कुछ कापियां बिकने से रह जाती हैं तो हमें उतना ही घाटा हो जाता है। मण्डल जैसी संस्था को यह घाटा उठाना भारी पड़ जाता है।

हमें पूरा विश्वास है कि पुस्तक-विक्रेता अपनी माँग जल्दी-से-जल्दी भेज देंगे। जो सीधे हमसे डायरी मंगाते हैं, वे भी अपनी प्रतियां सुरक्षित करा लेंगे। हम नहीं चाहते कि हम किसी को भी निराश करें, लेकिन यह तभी हो सकता है जब कि पुस्तक-विक्रेता और डायरी-प्रेमी हमारे साथ सहयोग करें।

कागज, छपाई, जिल्द आदि के भाव काफी बढ़ गये हैं, फिर भी हम डायरी के मूल्य में कोई वृद्धि नहीं कर रहे हैं, अर्थात् बड़ी का मूल्य २॥) और छोटी का १।) होगा। जिल्द पूरे कपड़े की होगी और कागज अच्छा लगाया जायगा। छपाई उत्तम होगी।

'मण्डल' के नवीन प्रकाशन

'मण्डल' के नये प्रकाशनों की सूचना हम समय-समय पर देते रहते हैं। इस बार नई पुस्तकों में निम्न-लिखित विशेष रूप से उल्लेखयोग्य हैं।

१. गांधी: व्यक्तित्व विचार और प्रभाव
२. वेद-मंत्रों के प्रकाश में
३. परम सखा मृत्यु
४. जमनालालजी की डायरी
५. नाश का विनाश
६. भारतीय संयोजन में समाजवाद
७. मेरे हृदयदेव

ये सभी पुस्तकें बड़ी उपयोगी हैं। प्रत्येक हिन्दी प्रेमी को इन्हें पढ़ना चाहिए।

एक कार्ड लिखकर 'मण्डल' का बड़ा सूची-पत्र मंगा-लीजिये और अपनी पसन्द की पुस्तकों का आर्डर भेजकर उन्हें प्राप्त कर लीजिये।

जीवन-साहित्य का विशेषांक

हम लोग 'जीवन-साहित्य' का बड़ा सुन्दर विशेषांक निकाल रहे हैं। यह विशेषांक १०० पृष्ठ का होगा और उसमें स्व० लालबहादुर शास्त्री के बड़े ही मार्मिक संस्मरण होंगे। सामग्री स्थायी महत्व की होगी।

हमने अन्य वर्षों की भांति निश्चय किया है कि जो व्यक्ति ४) वार्षिक शुल्क के भेजकर पत्र के ग्राहक बन जायेंगे, उन्हें यह विशेषांक बिना अतिरिक्त कुछ दिये मिल जायगा, वैसे विशेषांक का मूल्य २) या २॥) होगा।

पाठकों से हमारा अनुरोध है कि वे ४) मनीआर्डर द्वारा भेजकर ग्राहक बन जायं, अपने मित्रों को भी ग्राहक बनने की प्रेरणा दें।

विशेषांक में हमने कुछ चुने हुए सुरुचिपूर्ण विज्ञापन देने का भी निश्चय किया है। विज्ञापन की दरें इस प्रकार होंगी :

सामान्य एक पृष्ठ	१५०)
आवरण तीसरा	३५०)
आवरण चौथा (दोरंग में)	५००)

'जीवन साहित्य' सभी वर्गों तथा क्षेत्रों में जाता है इसलिए उसमें विज्ञापन देने की विशेष उपयोगिता है।

—मंत्री

हिन्दुस्तान को अपनी महिलाओं पर गर्व है। अपने पति को, भाई को, बच्चे को वह बिना किसी हिचक के देश की रक्षा के लिए न्योछावर करने को तैयार हैं। हर कठिनाई का मुस्कराहट के साथ सामना कर रही हैं। अनेक महिलाएं अस्पतालों में, खून के बैंकों में और दूसरी स्वयंसेवी संस्थाओं में काम करके अपना फ़र्ज़ अदा कर रही हैं। भारत की लाखों करोड़ों स्त्रियां देश की सेवा में जुटी हैं। सोचिये! आप देश के लिए क्या कर रही हैं?

एक महान देश हमारा
एक महान राष्ट्र

DA 65/F9

नवीन प्रकाशन

१९६५–६६

- गांधी : व्यक्तित्व, विचार और प्रभाव — २५.००
- महात्मा गांधी (जीवनी) — बी० आर० नंदा — ५.००
- विनोबा के विचार : भाग ३ — १.५०
- रचनात्मक राजनीति (राजनीति) — सं० रामकृष्ण बजाज — ४.००
- पत्र-व्यवहार (भाग ५) — सं० रामकृष्ण बजाज — ५.००
- सहकारिता (ग्रामोपयोगी) — जवाहरलाल नेहरू — २.००
- शिक्षा का विकास (शिक्षा) — भगवानप्रसाद — ३.००
- सामुदायिक विकास और पंचायती राज — जवाहरलाल नेहरू — २.५०
- अहिंसा की कहानी — यशपाल जैन — १.७५
- लड़खड़ाती दुनिया — जवाहरलाल नेहरू — ३.००
- भारत-सावित्री (खण्ड २) — वासुदेवशरण अग्रवाल — ५.००
- ज्वालामुखी (उपन्यास) — अनंत गोपाल शेवड़े — ३.५०
- तंदुरुस्त रहने के उपाय (स्वास्थ्य) — धर्मचंद सरावगी — १.२५
- विनोबा की बोध-कथाएं (कथाएं) — १.५०
- पुरंदरदास (जीवनी) — १.५०
- मेरा वकालती जीवन (संस्मरण) — ग० वा० मावलंकर — ४.००
- जिन्दगी दांव पर (उपन्यास) — स्टीफन ज्विग — ३.००
- जमना-गंगा के नैहर में (यात्रा) — विष्णु प्रभाकर — ४.५०
- मास्टर महिम (उपन्यास) — मनोज बसु — [illegible].००
- लोकतंत्र का लक्ष्य — इन्द्रचन्द्र शास्त्री — ४.००
- जैनधर्म का प्राण — सुखलाल संघवी — २.००
- पंजाब-केसरी लाला लाजपतराय — मुकुटबिहारी वर्मा — १.००
- हारजीत का भेद — आनंद कुमार — २.००
- कुछ शब्द : कुछ रेखाएं — विष्णु प्रभाकर — ३.५०
- हमारे संस्कार-सूत्र — लक्ष्मीराम शास्त्री — ३.००
- कुछ देखा, कुछ सुना — घनश्यामदास बिड़ला — ३.५०
- जमनालालजी — घनश्यामदास बिड़ला — १.५०
- पड़ोसी देशों में — यशपाल जैन — ६.००
- संस्कृति के परिव्राजक — संकलन — २०.००
- गांधीजी और उनके सपने — वियोगी हरि — १.००
- नीली झील — संपा० विष्णु प्रभाकर — ३.५०
- आकाशदानी दे पानी — गोविन्द चातक — २.५०
- मेरे हृदयदेव — हरिभाऊ उपाध्याय — ३.००
- मानवता के दीये — झवेरचंद मेघाणी — ४.५०
- रेंगनेवाले जीव — सुरेशसिंह — २.५०
- नाश का विनाश — मामा वरेरकर — ३.००
- परमसखा मृत्यु — काका कालेलकर — २.२५
- जमनालालजी की डायरी — ४.००
- वेद-मंत्रों के प्रकाश में — संपूर्णानंद — १.५०
- भारतीय संयोजन में समाजवाद — श्रीमन्नारायण — ३.५०
- प्रेम और प्रकाश — आंद्रे जीद — २.००

मण्डल के सम्पूर्ण साहित्य के लिए एक कार्ड लिखकर नया सूचीपत्र मंगा लीजिये

सस्ता साहित्य मण्डल

एन-७७, कनॉट सरकस, नई दिल्ली

शाखा : जीरो रोड, इलाहाबाद